B.Com-103
आर्थिक सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड– प्रथम : अर्थिक प्रणाली की मूल समस्याएँ तथा आधारभूत संकल्पनाएँ 03–126

इकाई–1 – आर्थिक प्रणालियों की मूलभूत समस्याएँ 07–38
इकाई–2 – आधारभूत संकल्पनाएँ 39–82
इकाई–3 – आर्थिक प्रणालियाँ 83–126

खण्ड– द्वितीय : उपभोक्ता व्यवहार तथा माँग का सिद्धान्त 127–180

इकाई–4 – सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम तथा समसीमांत उपयोगिता नियम 129–148
इकाई–5 – तटस्थता वक्र विश्लेंषण 149–158
इकाई–6 – माँग का विश्लेंषण 159–168
इकाई–7 – माँग की लोच 169–180

खण्ड– तृतीय : उत्पादन के सिद्धान्त 181–270

इकाई–8 – उत्पादन फलन-I 183–200
इकाई–9 – उत्पादन फलन-II 201–224
इकाई–10 – पूर्ति का नियम और पूर्ति की लोच 225–242
इकाई–11 – लागत सिद्धांत तथा लागत वक्र विश्लेषण 243–270

खण्ड– चतुर्थ : कीमत का सिद्धान्त 271–376

इकाई–12 – संतुलन की संकल्पना तथा शर्ते 275–294
इकाई–13 – पूर्ण प्रतियोगिता 295–310
इकाई–14 – एकाधिकार 311–338
इकाई–15 – एकाधिकारी प्रतियोगिता 339–354
इकाई–16 – अल्पाधिकार 355–376

खण्ड– पंचम : आय का विवरण 377–442

इकाई–17 – वितरण का सिद्धान्त 379–394
इकाई–18 – आय का ''वितरण-I : मजदूरी और ब्याज'' 395–414
इकाई–19 – आय का ''वितरण-II :लगान और लाभ'' 415–426
इकाई–20 – आय की असमानता 427–442

NFT-108

BCOM-103/2

B.Com-103

आर्थिक सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड–प्रथम

आर्थिक प्रणाली की मूल समस्याएँ तथा आधारभूत संकल्पनाएँ

इकाई–1 07–38
आर्थिक प्रणालियों की मूलभूत समस्याएँ
इकाई–2 39–82
आधारभूत संकल्पनाएँ
इकाई–3 83–126
आर्थिक प्रणालियाँ

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ. प्रदीप कुमार सिंह, सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक :– डॉ. आर.पी.एस. यादव निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनुवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रूफ रीडर

2020 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN-978-93-83328-78-9

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्यसाधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक – कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2025

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड़ प्रयागराज।

खंड–1

आर्थिक प्रणाली की मूल समस्याएँ तथा आधारभूत संकल्पनाएँ

आजकल की गहन व्यावसायिक समस्याओं का उचित समाधान प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत अनुभव, अंतःप्रज्ञा, अंतर्दृष्टि, दूरदर्शिता तथा निर्णय आदि अब काफी नहीं हैं। व्यावसायिक समस्याओं के इष्टतम समाधान के लिए आर्थिक तर्क और विश्लेषण अनिवार्य हैं। वाणिज्य का विद्यार्थी होने के नाते आपको आर्थिक सिद्धांत का कार्यसाधक ज्ञान होना आवश्यक है। आर्थिक सिद्धांत का यह पाठ्यक्रम इस आवश्यकता को ही पूरा करने के लिए बनाया गया है।

आर्थिक सिद्धांत नामक इस पाठ्यक्रम का यह पहला खण्ड है जिसका शीर्षक है– 'आर्थिक प्रणाली की मूल समस्याएँ तथा आधारभूत संकल्पनाएँ' इस खंड का मुख्य उद्देश्य व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए कुछ आधार तैयार करना है। इसमें अर्थव्यवस्था के मूल प्रश्न और समस्याओं, आधारभूत आर्थिक शब्दावली और संकल्पनाओं तथा विभिन्न देशों में प्रचलित अनेक आर्थिक प्रणालियों की व्याख्या की गई है।

इस खंड में तीन इकाइयाँ हैं।

इकाई–1 में आर्थिक प्रणाली का अर्थ, अर्थव्यवस्था की मूल समस्याएँ तथा विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्था में संसाधनों के आवंटन की प्रकृति का वर्णन किया गया है। इसमें उत्पादन के विभिन्न कारकों के अर्थ और विशेषताओं की भी चर्चा की गई है।

इकाई–2 में कुछ आधारभूत आर्थिक नियमों, संकल्पनाओं और शब्दावली की विवेचना की गई है। इसमें इस बात की भी व्याख्या की गई है कि किस प्रकार आर्थिक प्रणाली के विभिन्न अंग एक–दूसरे पर परस्पर निर्भर हैं।

इकाई–3 में आर्थिक प्रणालियों के विभिन्न रूपों की व्याख्या की गई है। यह मुख्य रूप से पूंजीवाद, समाजवाद और मिश्रित आर्थिक प्रणाली के लक्षणों तथा उनके कार्यकलापों से संबंधित है।

इकाई : 1 आर्थिक प्रणालियों की मूलभूत समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आर्थिक प्रणाली

- 1.2.1 साधनों का अभाव और आवश्यकताओं की असीमितता
- 1.2.2 आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था
- 1.2.3 आर्थिक अभिकर्ता

1.3 उत्पादन के कारक

- 1.3.1 भूमि
- 1.3.2 श्रम
- 1.3.3 पूंजी
- 1.3.4 संगठन
- 1.3.5 उद्यम
- 1.3.6 उत्पादन के साधनों का सापेक्षिक महत्व

1.4 अर्थव्यवस्था की मूल समस्याएँ

- 1.4.1 किस वस्तु का उत्पादन किया जाए?
- 1.4.2 कैसे उत्पादन किया जाए?
- 1.4.3 किसके लिये उत्पादन किया जाए?
- 1.4.4 विकास की समस्या
- 1.4.5 सार्वजनिक वस्तुओं और निजी वस्तुओं में चयन
- 1.4.6 सर्वहितकारी वस्तुओं की समस्या

1.5 उत्पाद संभावना वक्र

1.6. संसाधनों का आवंटन

- 1.6.1 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन
- 1.6.2 समाजवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन
- 1.6.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन

1.7 सारांश

1.8 उपयोगी शब्दावली

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि,

- समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए संसाधनों के अभाव की समस्या की व्याख्या कर सकेंगें,
- अर्थव्यवस्था के अर्थ और स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे,
- आर्थिक कारकों की धारणा का वर्णन कर सकेंगे,
- उत्पादन के साधनों की धारणा तथा उनके मुख्य वर्गों और लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे,
- अर्थव्यवस्था के संसाधनों, उनके स्वरूप एवं मूल समस्याओं के संबंध में विस्तृत जानकारी दे सकेंगे,
- उत्पादन संभावना वक्र की धारणा का वर्णन कर सकेंगे,
- पूंजी निवेश और उपभोग तथा निजी और सार्वजनिक वस्तुओं के बीच संसाधनों के आवंटन संबंधी मामलों का वर्णन कर सकेंगे तथा
- किसी बाजार अर्थव्यवस्था, समाजवादी अर्थव्यवस्था, मिश्रित अर्थव्यवस्था के आवंटन की विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में प्रत्येक अर्थव्यवस्था के समक्ष पैदा होने वाले कुछ मूल प्रश्नों और समस्याओं से परिचय कराया जाएगा। उनकी जानकारी से आपको आर्थिक तार्किकता और उस तार्किकता के आधार पर सिद्धान्तों को समझने में सहायता मिलेगी। इससे आपके लिए किसी अर्थव्यवस्था के समक्ष समस्याओं और ऐसी समस्याओं के समाधान किए जाने के प्रकारों को समझने में सरलता होगी। इस इकाई में आप आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था के अर्थ का विस्तार से अध्ययन करेंगे। किसी अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओ, उत्पादन के साधनों के अर्थ और लक्षणों, उत्पादन संभावना वक्र की धारणा, विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों, संसाधन आवंटन के विभिन्न प्रश्नों की विस्तार से चर्चा करेंगे।

1.2 आर्थिक प्रणाली

इससे पूर्व कि हम प्रत्येक अर्थव्यवस्था की मूलभूत धारणाओं, प्रश्नों तथा उनके समक्ष उपस्थित होने वाली विभिन्न समस्याओं की चर्चा करें, आइए हम पहले आर्थिक प्रणाली के अर्थ और स्वरूप संबंधी जानकारी प्राप्त करें–

1.2.1 साधनों का अभाव और आवश्यकताओं की असीमितता

मनुष्य का सर्वोच्च उद्देश्य है– "to Survive" Survive करने के लिए 'आवश्यकताओं' तथा 'इच्छाओं' का पूरा होना आवश्यक है। आधारभूत मानवीय आवश्यकताएँ–रोटी, कपड़ा और मकान हैं।

इसके बाद की आवश्यकताएँ क्रमशः इच्छाओं में परिवर्तित होती जाती हैं तथा इच्छाएँ अनन्त होती हैं। इन आवश्यकताओं तथा इच्छाओं की पूर्ति स्वतः नहीं होती है अतः इनकी पूर्ति हेतु संसाधनों की आवश्यकता होती है। संसाधन तीन प्रकार के होते हैं–

1. **प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)**
2. **मानवीय संसाधन (Human Resources)**
3. **भौतिक संसाधन (Physical Resources)**

चूँकि संसाधन सीमित हैं तथा मानवीय 'आवश्यकतायें' एवं 'इच्छायें' अनन्त हैं, अतः हमें संसाधनों के उन संयोगों का चुनाव करना चाहिए जिससे अधिकतम सम्भव मानवीय आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति हो सके।

अधिकतम सम्भव एवं नितान्त आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमे 'चुनाव या चयन' (choice or choose) की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। ("choice is the Central Economic Activity")

मानव 'सामाजिक उत्पादन प्रणाली' (Social Production System) का अभिन्न अंग है तथा चूँकि कोई भी अपने आप में पूर्ण नही है, अतः मानव समाज में निवास करता है।

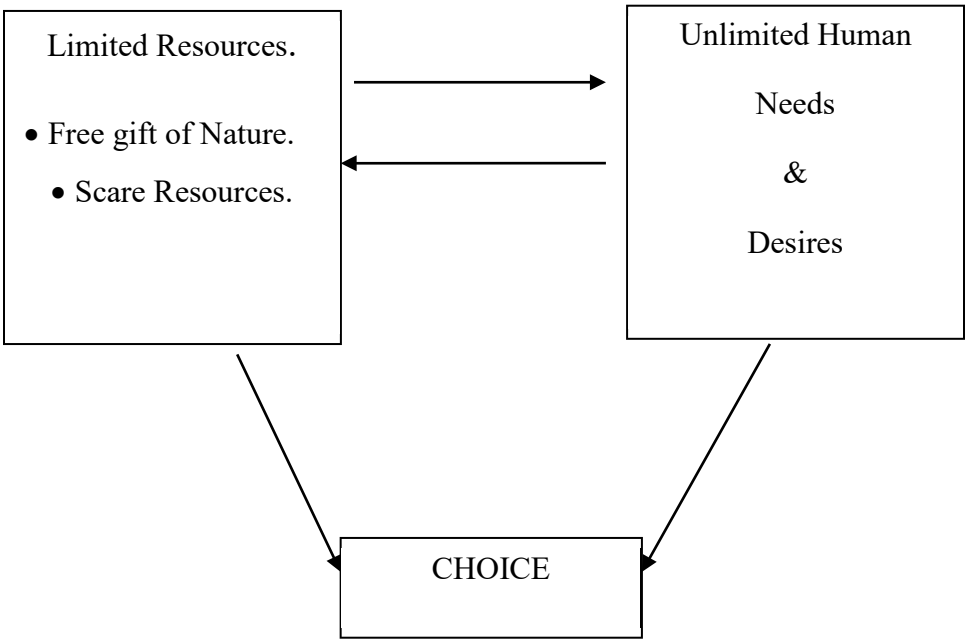

संसाधनों में कुछ दुर्लभ संसाधन (Scarce Resources) होते हैं, तो कुछ प्रकृति प्रदत्त निःशुल्क उपहार (Free gift of Nature), किन्तु सम्पूर्णता में अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि संसाधन सीमित हैं। इन संसाधनों से अधिकतम सम्भव आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति संसाधनों के किस अनुकूलतम संयोग द्वारा की

जा सकती है, यही अर्थशास्त्री बताते हैं तथा करते हैं Jacov Viner के शब्दों में ''अर्थशास्त्र वह है जो अर्थशास्त्री करते हैं । "Economic is What, Exonomists do"

इस प्रकार अर्थशास्त्री अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग कैसे किया जाय यह बताता है, ताकि अधिकतम सम्भव आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति की जा सके।

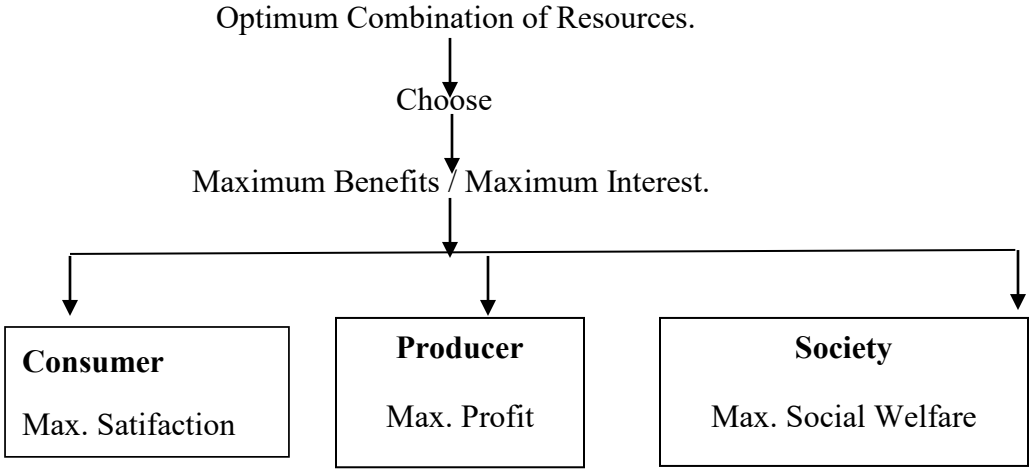

यदि अर्थव्यवस्था में उपलब्ध सीमित संसाधनों की बागडोर सरकार के हाथ में हो तो ऐसे में सरकार कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इन संसाधनों को एक केन्द्रीय नेतृत्व के माध्यम से प्रयोग करेगी, जिसे नियोजन (Planning) कहते हैं।

सरकार का प्रमुख उद्देश्य उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग से प्राप्त उत्पाद को समाज में वितरित करना होता है, जिससे समाज का कल्याण अधिकतम हो सके। इस प्रकार की प्रणाली को 'सामाजिक–आर्थिक प्रणाली' (Socio-Economic-System) कहते हैं। इस प्रकार की प्रणाली का व्यवस्थित एवं व्यापक उल्लेख Carl Marx तथा Angel की पुस्तक "A Communist Manifesto" में किया गया है। इस पुस्तक को इस प्रणाली का "Bible" कहते हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो0 जे0 के0 मेहता ने, जिन्हें 'भारतीय दार्शनिक संन्यासी अर्थशास्त्री (Indian Philosopher Saint Economist) कहा जाता है, आर्थिक क्रियाओं के उद्देश्य को एक नया रूप, फलस्वरूप अर्थशास्त्र को एक नया दृष्टिकोण देने का प्रयास किया है जो पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों के मत से सर्वथा भिन्न है, जो सर्वथा भारतीय है, जिसमें भारतीय संस्कृति, धर्म तथा नैतिकता का विशुद्ध प्रतिनिधित्व हुआ है। प्रो0 मेहता रॉबिन्स की इस बात से तो सहमत हैं कि अर्थशास्त्र मानव–व्यवहार का अध्ययन है जिसका लक्ष्य 'अधिकतम सन्तुष्टि' की प्रप्ति है। पर उनके सामने एक मौलिक किन्तु अत्यन्त ही स्वाभाविक प्रश्न है कि इस अधिकतम सन्तुष्टि के अभीष्ट लक्ष्य को किस प्रकार प्राप्त किया जाय? इसके सम्भवतः दो रास्ते हो सकते हैं। चूँकि सन्तुष्टि इच्छाओं की पूर्ति का ही प्रतिफल है इसलिए सन्तुष्टि की अधिकतम स्थिति को प्राप्त करने का एक तरीका तो यह हो सकता है कि इच्छाओं में वृद्धि लायी जाएँ तथा उनकी सन्तुष्टि के साधनों में वृद्धि लायी जाय। यह अधिकतम सन्तुष्टि की अवस्था को प्राप्त करने का भौतिकवादी पक्ष है जिसका समर्थन पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों ने किया। इसका दूसरा रास्ता आध्यत्मिक तथा भारतीय है।

इसके अनुसार अधिकतम सन्तुष्टि की प्राप्ति इच्छाओं में कमी के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है, जितनी ही इच्छाएँ अधिक होंगी, सन्तुष्टि के अभाव में उनसे असन्तुष्टि भी उतनी ही अधिक प्राप्त होगी। महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने उपदेश में कहा भी है ''शान्त तथा प्रसन्नचित्त रहना ही जीवन का सर्वोच्च आदर्श है, बुद्धिमान मनुष्य को अपनी प्रकृति से इच्छाओं तथा अभिलाषाओं को अधिक से अधिक निकाल देना चाहिए, वास्तविक वैभव (Riches) वस्तुओं की प्रचुरता में नही बल्कि इच्छाओं की अल्पता में निहित है। ''भारतीय संस्कृति के इस आदर्श का समर्थन मनुस्मृति में भी मिलता है।''

गीता, गौतम बुद्ध, गाँधी तथा भारतीय चिर पुरातन आदर्शों से प्रभावित होने के कारण प्रो0 मेहता ने यह मत व्यक्त किया कि अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य सन्तुष्टि की वृद्धि करना नहीं है बल्कि वास्तविक सुख (Real Hippiness) में वृद्धि करना है, उसे अधिकतम करना है और वास्तविक सुख की प्राप्ति इच्छाओं को अधिक रखने से नहीं होगी बल्कि न्यूनतम करने से होगी। इसीलिए प्रो0 मेहता ने यह मत व्यक्त किया है कि ''इच्छाओं से मुक्ति पाना ही आर्थिक समस्या है।'' इसीलिए उन्होंने अर्थशास्त्र की परिभाषा को इस रूप में व्यक्त किया '' अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मानवीय व्यवहार का 'इच्छारहित अवस्था' या 'इच्छा विहीनता की स्थिति' तक पहुँचने के साधन के रूप में अध्ययन करता है,'' तथा कहा कि अर्थशास्त्री का एक कार्य तो यह बताने का हे कि अन्तिम लक्ष्य अधिकतम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से प्राप्त नहीं हो सकता है इसलिए मनुष्य को इच्छाओं का परित्याग करना सीखना चाहिए और दूसरा कार्य उन रास्तों का निर्देश करना है जिनसे अन्तिम उद्देश्य को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।

प्रो0 मेहता के विचारों को भली–भाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि रॉबिन्स की 'सन्तुष्टि की धारणा' तथा प्रो0 मेहता की 'सुख की धारणा' के बीच अन्तर समझ लिया जाय क्योंकि यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि दोनों में अन्तर नहीं है तो फिर दोनों की प्राप्ति के अलग–अलग रास्ते ही क्यों होंगे? वस्तुस्थिति यह है कि इन दोनों में बहुत अधिक अन्तर है। सन्तुष्टि इच्छा की तृप्ति का प्रतिफल है अर्थात् सन्तुष्टि वह अनुभूति है जो कि किसी इच्छा या आवश्यकता की तृप्ति के बाद मिलती है। जब तक इच्छा की तृप्ति नहीं होती, तब तक कष्ट का अनुभव होगा और कष्ट की मात्रा उतनी ही अधिक होगी जितनी की इच्छा की तीव्रता होगी। कोई इच्छा जितनी ही अधिक तीव्र होगी उसकी पूर्ति के बाद उससे उतनी ही अधिक सन्तुष्टि होगी। प्रो0 मेहता ने इस प्रकार की सन्तुष्टि को आनन्द (pleasure) कहा। प्रो0 मेहता की सुख–सम्बन्धी धारणा इससे सर्वथा भिन्न है। उनके अनुसार 'सुख वह अनुभूति है जिसकी प्राप्ति उस समय होती है जबकि कोई इच्छा न हो। प्रो0 मेहता का यह मत है कि जब तक इच्छाएँ बनी रहती है तब तक मस्तिष्क सन्तुलन की स्थिति में नहीं रहता है, क्योंकि जैसे ही कोई इच्छा उत्पन्न होती है, मनुष्य के मस्तिष्क का सन्तुलन भंग हो जाता है और वह सन्तुलन की स्थिति की प्रप्ति के लिए इस इच्छा की पूर्ति का प्रयत्न करेगा क्योंकि मानसिक असन्तुलन की स्थिति में उसे कष्ट होगा। इस इच्छा की पूर्ति पर मानसिक संतुलन पुनः स्थापित हो जाएगा, उसे कुछ आनन्द प्राप्त होगा पर यह स्थिति सुख की नहीं होगी क्योंकि एक इच्छा की पूर्ति दूसरी इच्छा को जन्म दे सकती है, जैसे भोजन करने के बाद आराम की आवश्यकता। प्रो0 मेहता ने कहा कि इच्छा–विहीनता की स्थिति में जिस समय मस्तिष्क सन्तुलन में होता है, उसमें किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं रहता है, उस समय जो अनुभव मिलता है वही वास्तविक सुख है। अर्थशास्त्र का उद्देश्य इसी सुख को अधिकतम करना है। इस प्रकार उनके अनुसार 'सुख' इस बात का ज्ञान है कि मस्तिष्क सन्तुलन में है। 'कष्ट' इस बात का ज्ञान है कि

मस्तिष्क असन्तुलन में है। 'आनन्द' इस बात का ज्ञान है कि असन्तुलन के कारण द्वन्द्व चल रहा है और उसमें कमी हो रही है। मानव–व्यवहार जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का विषय है, वह मस्तिष्क की असन्तुलन की अवस्था का परिणाम है। मस्तिष्क क्यों असन्तुलन की स्थिति में है इसका कारण यह है कि यह इसके ऊपर बाहर से कार्य करने वाली शक्तियों द्वारा प्रभावित होता है। मानवीय मस्तिष्क का यह नियम है कि वह असन्तुलन को नापसन्द करता है और फलस्वरूप वह सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है क्योंकि असन्तुलन कष्ट है और इसका निवारण आनन्द। ''इस प्रकार स्पष्ट है कि मानसिक असन्तुलन इच्छाओं के कारण उत्पन्न होगा, 'अधिकतम सुख' तथा'' अधिकतम इच्छाएँ दोनों परस्पर विरोधी हैं, तथा दोनों एक साथ नहीं चल सकती हैं। सुख इच्छाओं के न्यूनतम करने में निहित है, अधिकतम करने में नहीं।

अभी हम लोगों ने देखा कि मानसिक सन्तुलन की प्राप्ति तथा उसे कायम रखना अर्थशास्त्र का प्रमुख ध्ऍय है तथा हम लोगों ने यह भी देखा कि मानसिक असन्तुलन के ऊपर बाहरी शक्तियों का प्रभाव पड़ता है। प्रश्न यह है कि क्या बाहरी शक्तियों के नियमन से मस्तिष्क के सन्तुलन की स्थिति पायी जा सकती है या दूसरे शब्दों में मानसिक संतुलन की स्थिति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है? इसकी प्राप्ति के दो तरीके हो सकते हैं– प्रथम, बाहरी शक्तियों के क्रियाशीलन में इस प्रकार समन्वय या नियमन जिससे एँ मस्तिष्क के साथ समन्वित हो जाएँ या उनके अनुकूल हो जाएँ। रॉबिन्स की 'साधनों के प्रयोग^ (Use of resources) की धारणा यही है। प्रो0 मेहता का कहना है कि बाहरी शक्तियों के नियमन से स्थायी संतुलन की स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है क्योंकि आवयकताएँ असीमित हैं और सीमित साधनों से सबकी सन्तुष्टि सम्भव नही है। इतना ही नहीं इच्छाओं में सृजनात्मक प्रवृत्ति होती है, एक आवश्यकता की पूर्ति दूसरी आवश्यकता को जन्म देती है। इस प्रकार पूर्ण संतुलन की प्राप्ति इस रास्ते से नहीं हो सकती है। प्रो0 मेहता के अनुसार साधनों के प्रयोग (जैसा रॉबिन्स ने कहा) या बाह्य शक्तियों के नियमन से आंशिक संतुलन ही प्राप्त किया जा सकता है, पूर्ण संतुलन नहीं। प्रो0 मेहता ने इसकी प्राप्ति के लिए एक दूसरा तरीका बताया जिसके अनुसार मस्तिष्क को एक ऐसी स्थिति में रखा जाय जहाँ कि उसके ऊपर बाहरी शक्तियों का प्रभाव ही नहीं पड़े। इसके लिए मस्तिष्क को दबाने की नहीं बल्कि उसे शिक्षित करने की आवश्यकता है इस स्थिति की प्राप्ति के लिए प्रो0 मेहता ने दो सुझाव दिए। प्रथम, मनुष्य को यह विश्वास होना चाहिएँ कि जीवन का उद्देश्य सुख की प्राप्ति है और इसकी प्राप्ति इच्छाओं से मुक्ति के द्वारा ही हो सकती है। दूसरे, इसकी प्राप्ति के लिए हमें अपने मस्तिष्क को बाह्य शक्तियों के प्रभाव से अलग रखना होगा अर्थात् मस्तिष्क को नियन्त्रित करना होगा। प्रो0 मेहता के शब्दों में ''कुछ इच्छाओं को हटाने का प्रयास भले ही कुछ सफल हो पर इसका अर्थ होगा और अधिक तथा बलवती इच्छाओं को जन्म देना। अतः हमें यह सोचना चाहिएँ कि अन्तिम उद्देश्य को प्राप्त करने का सरल एवं सर्वश्रेष्ठ उपाय प्रत्येक इच्छा का दमन करना है।'' प्रो0 मेहता के इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है, चूँकि सभी इच्छाओं का एकदम दमन नहीं किया जा सकता बल्कि उनमें धीरे–धीरे कमी लानी होगी इसलिए यह प्रश्न उठेगा कि किन इच्छाओं को समाप्त किया जाय? फलस्वरूप इच्छाओं के बीच चुनाव की समस्या होगी। प्रो0 मेहता के अनुसार ''इच्छाओं के बीच चुनाव की समस्या कुछ नियमों द्वारा संचालित होती है। एक अर्थशास्त्री बाहरी दशाओं या उकसाव (Timuli) द्वारा मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभाव की प्रतिक्रिया का, इच्छाओं की सन्तुष्टि के सम्बन्ध में अध्ययन करता है। बाहरी

दशाओं या उकसावों के प्रति मस्तिष्क की प्रतिक्रिया कुछ नियमों द्वारा संचालित होती है जिनकी खोज करना अर्थशास्त्री का कर्तव्य है।''

सम्पूर्ण विश्लेषण का यह निष्कर्ष निकला कि धीरे–धीरे मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं में कमी लानी चाहिए। चूँकि सभी आवश्यकताओं को अचानक नहीं छोड़ा जा सकता है इसलिए सबसे पहले उन आवश्यकताओं को छोड़ देना चाहिएँ जिनको पूरा करने के लिएँ मनुष्य के पास सामर्थ्य का अभाव है। इस प्रकार धीरे–धीरे मनुष्य के पास केवल वे ही आवश्यकताएँ ं शेष रह जाएँगी जिनको पूरा करने के साधन मनुष्य के पास है। सामर्थ्य के भीतर होने के कारण सभी आवश्यकताएँ ं पूरी हो जाएँगी, इसलिए उसे किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नही होगा। इस प्रकार प्रो0 मेहता के अनुसार अर्थशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य आवश्यकताओं को साधनों या सामर्थ्य तक घटाना है और इस लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास ही अर्थशास्त्री का कर्तव्य है।

1.2.2 आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था

मनुष्य भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए जो क्रियायें करता है, उन्हें ही आर्थिक क्रियाएँ कहते हैं। आर्थिक क्रियाओं के संचालन की विधि या तरीका ही आर्थिक पद्धति या आर्थिक प्रणाली कहलाता है। विश्व के सभी देशों में आर्थिक क्रियाओं के संचालन का संबंध साधनो के आवंटन से है जिनसे मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का प्रयत्न करता है। सीमित साधनों के आर्थिक विकास की विभिन्न और असीमित आवश्यकताओं में आवंटन का कार्य सभी देशों की अर्थव्यवस्था में एक जैसी समस्याएँ उत्पन्न करता हैं। ये आर्थिक समस्याएँ हैं (1) किसी वस्तु के उत्पादन के लिए साधनों का कितना प्रयोग हो, (2) वस्तु का उत्पादन कितनी मात्रा में हो, (3) उत्पादन के लिएँ साधनों का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग करने के लिए कौन सी–विधि अपनाई जाय, (4) उत्पादित वस्तु का वितरण किस प्रकार हो।

प्रत्येक देश में इन समस्याओं के समाधान के लिए दिन–प्रतिदिन जो आर्थिक क्रियाएँ, वहाँ के नागरिकों द्वारा या सरकार द्वारा संपादित की जाती हैं, उनका संकलित रूप ही आर्थिक प्रणाली है। सभी देशों में समस्याओं के निवारण हेतु की जाने वाली आर्थिक क्रियाएँ एक जैसी नहीं हैं इसलिए आर्थिक प्रणाली भी सभी देशों में एक जैसी नहीं है। जिन देशों में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व है, और व्यक्ति ही यह निर्णय करता है कि वह अपने साधनों से किस वस्तु का, कितनी मात्रा में, किस विधि से उत्पादन अपने निजी लाभ के लिए करें तो उस देश की आर्थिक प्रणाली पूँजीवादी प्रणाली कही जाती है। जिन देशों में उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व होता है, और समाज की प्रतिनिधि–संस्था सरकार एक निश्चित योजना के अंतर्गत प्राथमिकताओं का निर्धारण कर सामाजिक लाभ के लिए साधनों के प्रयोग का निर्णय करती है, वहाँ आर्थिक क्रियाओं की संचालन विधि को समाजवादी प्रणाली कहते हैं।

जिन देशों में उत्पादन के कुछ साधनों पर व्यक्तिगत और कुछ साधनों पर समूह या समाज का स्वामित्व होता है, वहाँ साधनों के आवंटन से उद्भूत समस्याओं के समाधान हेतु अपने–अपने साधनों की प्रयोग विधि के निर्णय, व्यक्ति और समाज दोनों के द्वारा ही क्रमशः व्यक्तिगत और समाज के लाभ के दृष्टिकोण से लिए जाते हैं। ऐसे देशों की आर्थिक प्रणाली न तो पूँजीवादी ही होती है और न ही तो समाजवादी बल्कि दोनों ही प्रणालियों का सह–अस्तित्व होता है। इसलिए इन देशों की प्रणाली को मिश्रित आर्थिक प्रणाली कहते है।

विभिन्न समाज विभिन्न समस्याओं का अलग–अलग तरीके से समाधान करने की चेष्टा करते हैं और इस प्रक्रिया में प्रत्येक समाज एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करता है जिसे अर्थव्यवस्था कहते हैं। ''अर्थव्यवस्था'' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है।

इसके अंतर्गत साधनों और आवश्यकताओं के बीच असंतुलन की मूलभूत स्थायी समस्या का समाधान करने के लिए गठित पूरी संरचना आ जाती है। इसमें न केवल प्राकृतिक साधन सम्मिलित हैं, अपितु मनुष्य द्वारा निर्मित साधन भी सम्मिलित हैं। इसके अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, व्यापार, विनिमय, परिवहन और वितरण आदि के लिए की गई सभी व्यवस्थाएँ आती हैं। इसी प्रकार इन युगल उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मित तथा चलाई जा रही व्यवस्थाएँ मुद्रा, बैंकिग वित्तीय परिसंपतियॉ (financial assets) और बाजार आदि संस्थान है। जो अर्थव्यवस्था का अंग है आप इस बात को भली भांति समझते है कि वास्तव में किसी अर्थव्यवस्था का गठन कई बातों पर निर्भर करता है। किसी देश के प्राकृतिक संसाधन, उसकी भौगोलिक और जलवायु संबंधी परिस्थितियाँ, इसकी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक व्यवस्था, उसके अतीत का इतिहास तथा अन्य तथ्य उस देश की अर्थव्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को निर्धारित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप किसी देश की अर्थव्यवस्था किसी अन्य देश की अर्थव्यवस्था से काफी भिन्न हो सकती है। इसी कारण हम ब्रिटिश अर्थव्यवस्था तथा जापानी अर्थव्यवस्था की तुलना में भारतीय अर्थव्यवस्था की चर्चा करते हैं। अतः ''भारतीय अर्थव्यवस्था शब्द का संबंध इस व्यवस्था की समग्रता से हैं जो युगल उद्देश्य को पूरा करने के लिए भारतीय समाज द्वारा गठित की गयी है। जिसमें –

(i) यह बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों की उपलब्धता को बढ़ाती है और

(ii) इसका अत्यंत मितव्ययी रूप से प्रयोग करती है। सभी प्राकृतिक और मनुष्य द्वारा उत्पादित संसाधन अर्थव्यवस्था के अंग है।

किसी अर्थव्यवस्था के मुख्य तथा विशिष्ट लक्षणों की जानकारी उसकी समस्याओं का विश्लेषण करने तथा उसका समाधान करने में मदद करती है। इस प्रकार हम अर्थव्यवस्थाओं का वर्गीकरण विशिष्ट लक्षणों के आधार पर करते है। उदाहरण के तौर पर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को लीजिए। इसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व तथा उत्तराधिकार व्यक्तियों के हाथ में होता है।

विभिन्न आर्थिक निर्णय बाजारों में वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों के आधार पर किए जाते है। किसी व्यक्ति की आय का निर्धारण उसके द्वारा सप्लाई किए गए उत्पादन के साधनों तथा उनके लिए दी गई दरों के आधार पर किया जाता है। विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में वर्गीकरण का एक और प्रकार उत्पादन संसाधनों के वर्गों की प्रधानता पर निर्भर करता है। इस आधार पर कोई अर्थव्यवस्था कृषि अर्थव्यवस्था अथवा औद्योगिक अर्थव्यवस्था समझी जाती है। इसी प्रकार विकास के स्तर पर निर्भर करते हुए (अर्थात्) आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन की क्षमता के आधार पर किसी अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था और अल्पविकसित अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। आपको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि समय के साथ–साथ या तो ऐतिहासिक विकास द्वारा अथवा सुविचारित नीति द्वारा अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताओं में परिवर्तन आता है।

ऊपर बताए गये विचारों का सारांश यह है। अर्थव्यवस्था में कि तुष्टि के साधनों के अभाव तथा सदा बढ़ती हुई आवश्यकताओं के संदर्भ में समाधान किया जाना

आवश्यक है। साधनों और आवश्यकताओं को कई प्रकार से जोड़ा जा सकता है। चाहे अर्थव्यवस्था विकसित हो अथवा अल्पविकसित, दुर्लभता की समस्या (prolem of scarcity) विद्यमान रहती है। अतएव उसमें दो मामलों की तरफ ध्यान देना होता है (i) तुष्टि के साधनों की उपलब्धता को बढ़ावा देना (ii) तुष्ट करने वाली वस्तुओं की प्राथमिकता निर्धारित करना।

1.2.3 आर्थिक अभिकर्ता

आर्थिक कारक (economic agents) किसी अर्थव्यवस्था में निर्णय लेने वाली इकाइयाँ होते हैं। सामान्यतः हम ऐसे आर्थिक कारकों को व्यक्तियों, परिवारों, वाणिज्यिक फर्मों, कंपनियों, संस्थाओं और राज्यों के रूप मे समझते हैं। कार्य करते हुए अलग–अलग हैसियतों में जैसे उपभोक्ता, बचत करने वाले, कच्चे माल के विक्रेता, माल एवं सेवाओं के पूर्तिकर्ता, उधार लेने वाले, उधार देने वाले इत्यादि, वे तरह – तरह के निर्णय लेते हैं। आर्थिक अभिकर्ताओ के ये निर्णय ही किसी अर्थव्यवस्था के क्रियाकलापों के लिए जिम्मेदार हैं और वे उसके स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता को निर्धारित करते हैं।

बोध प्रश्न 'क'

1. आवश्यकताओं की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं बताइए जो कि उन्हें असीमित बनाती है।
2. ''संसाधन सीमित परन्तु आवश्यकताएँ असीमित है।'' स्पष्ट करे।
3. आर्थिक प्रणाली से क्या तात्पर्य है?
4. ''अर्थव्यवस्था'' को परिभाषित करें।

बताइएँ कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत?

(i) सभी मनुष्यों की आवश्यकताएं असीमित होती हैं।

(ii) सब मनुष्यों की समान आवश्यकताएं होती हैं।

(iii) किन्हीं आर्थिक प्रणालियों में सभी व्यक्तियों की सभी आवश्यकताएं पूरी करनी संभव हैं।

(iv) किसी व्यक्ति की आवश्यकताएँ आय पर निर्भर करती हैं।

(v) किसी आवश्यकता की पूर्ति होने पर वह फिर पैदा हो जाती हैं।

(vi) आवश्यकताओं और उनकी तुष्टि करने के कई विकल्प हैं।

(vii) अधिकांश व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की तुष्टि के साधनों की उपलब्धता के अनुरूप कार्य करते हैं।

(viii) आर्थिक अभिकर्ता उन कमीशन एजेन्टो की तरह है जो अन्य लोगों को क्रय–विक्रय इत्यादि क्रियाकलापों में सहायता करते हैं।

1.3 उत्पादन के कारक

एक उत्पादक को किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन के लिए कुछ वस्तुओं या सेवाओं की आवश्यकता होती है, इन्हें हम उत्पादन के साधन कहते हैं।

सामान्यतः उत्पादन के कारकों को चार भागों में बाँटा जाता है–

1. **भूमि**
2. **श्रम**
3. **पूंजी**
4. **संगठन**

आज के वर्तमान औद्योगिक युग में बड़े पैमाने पर उत्पादन करना उत्पादन क्षेत्र की आवश्यकता बन गया है जिसके लिए श्रम–विभाजन और विशिष्टीकरण आवश्यक है। यही कारण है कि संगठन करने वाले व्यक्तियों एवं जोखिम और अनिश्चितता सहने वाले व्यक्तियों के अलग–अलग समूह बन गएँ हैं, जिसके कारण आधुनिक समय में उत्पादन के साधनों को पाँच भागों में बाँटा जाने लगा है।

आधुनिक उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन के पाँच साधनों को सम्मिलित किया जाता है–

1.3.1 भूमि (Land)

अर्थशास्त्र में भूमि का अभिप्राय संकुचित न होकर व्यापक दृष्टिकोण पर आधारित है। संकुचित अर्थ में भूमि का अभिप्राय केवल धरती से लिया जाता है, किन्तु अर्थशास्त्र में भूमि का अभिप्राय केवल धरती से नहीं होता बल्कि प्रकृति के द्वारा प्रदत्त सभी निःशुल्क उपहार जो पृथ्वी के धरातल पर तथा उसके गर्भ में पाएँ जाते हैं, भूमि की परिभाषा में सम्मिलित किए जाते हैं। खनिज, वन, नदी, पर्वत आदि अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से भूमि के अंग हैं।

1.3.2 श्रम (Labour)

श्रम का अर्थ साधारण रूप से केवल शारीरिक श्रमिकों से लिया जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में कोई भी शारीरिक या मानसिक क्रिया यदि वह आर्थिक साधन को प्राप्त करने की दृष्टि से की जाए तो श्रम कहलाती है, परन्तु यह क्रिया नैतिक और कानूनी रूप से मान्य होनी चाहिए।

मजदूर, स्वर्णकार, डॉक्टर, प्रवक्ता, इन्जीनियर आदि के कार्य श्रम कहलाते हैं। केवल मनोरंजन की दृष्टि से किए गए श्रम को अर्थशास्त्र में श्रम नहीं कहा जाएगा।

1.3.3 पूँजी (Capital)

धन का वह भाग जो भूमि को छोड़कर उत्पादन और अधिक करने में काम आये, पूँजी कहलाता है पूँजी मानव के पिछले श्रम के फल का भाग होता है जिसे आगे उत्पादन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसी कारण कुछ अर्थशास्त्रियों ने पूँजी को संचित श्रम भी कहा है। औजार, मशीन, नकद रूपया, यातायात के साधन आदि पूँजी हो सकते हैं।

1.3.4. उधमिता संगठन (Entrepreneurship Organisation)

एक उद्यमी के कार्यों को प्रमुख रूप से तीन भागों में बाँटा गया है–

(i) **जोखिम तथा अनिश्चिततओं का सहन (Risk and Uncertainty Bearing) :** उत्पादक उत्पादन क्षेत्र के सभी सम्भावित जोखिमों को वहन करता है। लाभ अथवा हानि की अनिश्चितता के लिए उसे सदैव तैयार रहना पड़ता है।

(ii) **प्रबन्धन तथा नियंत्रण (Management and Control) :** व्यवसाय का चुनाव, वस्तु का चुनाव, उत्पादन की इकाई का आकार, उत्पादन का पैमाना, उत्पादन स्थान, बिक्री का प्रबन्ध, नये आविष्कार, निर्देशन एवं नियंत्रण आदि।

(iii) **समन्वय (Co-Ordination) :** कच्चे माल की व्यवस्था, उचित मशीन और औजार, श्रमिकों का उपयोग, प्रतियोगियों से संबंध, सरकार से संबंध, आय का वितरण आदि।

उत्पादन का पैमाना बढ़ जाने के कारण दूसरे तथा तीसरे भागों मे उद्यमी के कार्यों को संगठनों द्वारा कराया जाता है। इस व्यवस्था को संगठन कहते हैं उद्यमी द्वारा इन्हें वेतन दिया जाता है।

1.3.5 उद्यम (Enterprise) - उद्यमी केवल पहले वर्ग से सम्बन्धित कार्य अर्थात् जोखिम और अनिश्चितताओं को सहन करता है। प्रतियोगिता के इस युग में जोखिम का तत्व कदम–कदम पर बढ़ जाने के कारण आधुनिक युग में उद्यमी का अधिक महत्व हो गया है।

1.3.6. उत्पादन के साधनों का सापेक्षिक महत्व (Relative Importance of Factors of Production) :

उत्पादन, उत्पादन साधनों के सामूहिक सहयोग और संयोग का परिणाम है। उत्पादन साधन, राष्ट्रीय उत्पादन में अपना योगदान देते हैं, अतः इन्हे इनका उचित प्रतिफल अवश्य मिलना चाहिए। उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन के सभी साधनों का एक समान सहयोग नहीं होता।

साधनों का सहयोग उत्पादन फलन पर निर्भर करता है। विभिन्न उत्पादन साधनों का उत्पादन में भिन्न–भिन्न सहयोग होने के कारण सभी साधनों को एकसमान प्रतिफल नहीं दिया जा सकता। यदि ऐसा सम्भव होता कि एक ही साधन से उत्पादन प्राप्त हो जाता, तो उत्पादन के वितरण की कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती किन्तु उत्पादन में अनेक साधनों का सहयोग होने के कारण उत्पत्ति का प्रत्येक साधन उत्पादन में अपने सापेक्षिक सहयोग के अनुसार ही प्रतिफल पाता है।

भूमि उत्पादन का एक अनिवार्य साधन है किन्तु यह निष्क्रिय साधन है, सक्रिय नहीं। क्योंकि भूमि स्वयं कोई उत्पादन नहीं कर सकती, जब तक इस पर सक्रिय साधन श्रम की इकाइयों का प्रयोग न हो। भूमि की उर्वरा–शक्ति के रूप में भू–स्वामी को जो पुरस्कार प्राप्त होता है, उसे लगान कहा जाता है। रिकार्डो के अनुसार लगान एक प्रकार का आधिक्य है जो भूखण्डों की भिन्न–भिन्न उर्वरा–शक्ति के कारण अच्छी उर्वरा–शक्ति वाले भू–स्वामियों को सीमान्त उर्वरता वाले भू–स्वामियों की अपेक्षा प्राप्त होता है। रिकार्डो का विचार था कि केवल भूमि ही लगान उत्पन्न करती है क्योंकि भूमि की पूर्ति को बढ़ाया नहीं जा सकता किन्तु

आधुनिक अर्थशास्त्री इस कथन से सहमत नहीं है'। इनके अुनसार उत्पादन का कोई भी दुर्लभ साधन लगान उत्पन्न कर सकता है। आधुनिक दृष्टिकोण के अुनसार भूमि की प्रचुरता आर्थिक समानता का एकमात्र मापदण्ड नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, भारत में भूमि की प्रचुरता होते हुए भी निर्धनता है जबकि सीमित भूमि वाले जापान जैसे देश आर्थिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न हैं। इसका अभिप्राय यह कि उत्पादन के लिए साधन की मात्रा से साधन की कार्यकुशलता अत्यधिक महत्वूपर्ण है। यही कारण है कि जापान जैसा छोटा देश अपने श्रम–साधन की उत्तम कार्यकुशलता के कारण विकसित राष्ट्रों की अग्र श्रेणी में खड़ा है। साथ ही साधनों की कार्यकुशलता में भिन्नता के कारण ही उत्पादन में विषमता उत्पन्न होती है।

भिन्न–भिन्न उत्पादन क्षेत्रों में उत्पादन के विभिन्न साधनों का भिन्न–भिन्न सापेक्षिक महत्व है। किसी उत्पादन क्षेत्र में श्रम तुलनात्मक रूप से अधिक प्रधान है तो कहीं पूंजी की प्रधानता है किन्तु आधुनिक औद्योगिक युग में 'श्रम और पूँजी दोनों का सहयोग आवश्यक है क्योंकि श्रम को अधिक कार्य–कुशल बनाने की दृष्टि से पूँजी का योगदान आवश्यक है।

तीव्र औद्योगीकरण, नई–नई तकनीकों के आविष्कार आदि के कारण औद्योगिक क्षेत्र में पूँजी का महत्व बहुत बढ़ गया है। साथ ही उत्पादन प्रक्रिया इतनी जटिल हो गयी है कि इसके सफल संचालन के लिए एक कुशल संगठन एवं निर्देशन की आवश्यकता होती है। इसी कारण औद्योगिक क्षेत्र में प्रबंध एवं नियंत्रण योग्यता का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

आधुनिक उत्पादन प्रक्रिया में जोखिम और अनिश्चितता का घटक अवश्य उपस्थित रहता है। ऐसे जोखिम एवं अनिश्चितता के वातावरण में उत्पादन प्रक्रिया को प्रारम्भ करना उधम्मी की अनुपस्थिति में असम्भव है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि आधुनिक युग में उत्पादन प्रक्रिया को सफलतापूर्वक जारी रखने के लिए उत्पादन के प्रत्येक साधन – भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन, एवं उधमी का सहयोग आवश्यक है।

बोध प्रश्न ''ख''

1. **उत्पादन के कारक कौन से हैं? नाम लिखिए।**

   .....

2. **बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत।**

   (i) उपयोगिता और तुष्टि एक ही चीज है।

   (ii) उपयोगिता किसी वस्तु की मांग की तुष्टि करने की क्षमता है।

   (iii) उत्पादन उपयोगिता का सृजन है।

   (iv) किसी देश में भूमि की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है।

   (v) उत्पादन के साधनों में बहुत सी मदें हैं जो कि कुल उत्पादन पर प्रभाव डाले बिना एक दूसरे का प्रतिस्थापन कर सकती है।

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(i) ..... और ..... उत्पादन के दो प्रमुख प्राथमिक कारक है।

(ii) उत्पादन प्रक्रिया में आदान का उपयोग होता है और उपार्दन वे मदें है जो कि .....।

(iii) ..... के लिए पूँजी उत्पादन का साधन है।

1.4 अर्थव्यवस्था की मूल समस्याएँ

प्रत्येक अर्थव्यवस्था चयन की समस्या (Problem of Choice) का सामना करती है। यह मौलिक आर्थिक समस्या है। यह वैकल्पिक प्रयोगों में संसाधनों के आवंटन की समस्या से संबंधित है। यह सामान्यतया संसाधनों के आवंटन की समस्या (Problem of Resources Allocation) के रूप में जानी जाती है। इसके तीन पहलू हैं, जो इस प्रकार है–

(i) क्या उत्पादन किया जाए? (What to Produce?)

(ii) कैसे उत्पादन किया जाए? (How to Produce?)

(iii) किसके लिए उत्पादन किया जाए? (For Whom to Produce?)

ये लोकप्रिया रूप से एक अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याएँ (Central Problems of an Economy) कहलाती हैं। इन समस्याओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1.4.1 किसी वस्तु का उत्पादन किया जाएँ? (What to Produce?)

इस समस्या के दो आयाम (Dimensions) हैं :

(i) किन वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाए तथा

(ii) किस मात्रा में वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन किया जाए।

इस कारण संसाधन सीमित हैं, प्रत्येक समाज उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर अवश्य ढूँढ़ेगा। परन्तु उत्तर ढूँढ़ना इतना आसान नहीं है। समस्या तब जटिल हो जाती है जब उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूँजीगत वस्तुओं के मध्य चयन करना होता हैं।

यह 'या तो यह या वह' (Either-or) का चयन नहीं हो सकता। क्योंकि उपभोक्ता तथा पूँजीगत दोनों ही वस्तुएँ महत्वपूर्ण होती हैं। उपभोक्ता वस्तुएँ जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life) को बढ़ाने के लिए अनिवार्य हैं। पूँजीगत वस्तुएँ उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए अनिवार्य हैं।

जब 'या तो यह या वह' का चयन संभव नहीं होता तो अर्थशास्त्री समस्या के अन्य पहलुओं पर अवश्य ही संघर्ष करेंगे, उपभोक्ता वस्तुओं की कितनी मात्रा और पूँजीगत वस्तुओं की कितनी मात्रा उत्पादित करें। यहाँ पुनः उत्तर इतना आसान नहीं है। इसके लिए अर्थशास्त्रियों, आयोजकों, राजनीतिज्ञों के मध्य बहुत अधिक वाद–विवाद की आवश्यकता है। क्योंकि यदि आप अधिक उपभोक्ता वस्तुएं उत्पादित करने का निर्णय लेते है तो वर्तमान पीढ़ी जीवन की उच्च गुणवत्ता का

लाभ उठाएगी। परन्तु पूँजीगत वस्तुओं का कम उत्पादन करने का अभिप्राय यह है कि आप भावी पीढ़ी के लिए उत्पादन क्षमता कम कर रहे हैं।

1.4.2 कैसे उत्पादन किया जाए? (How to Produce?)

'कैसे उत्पादन किया जाए' से अभिप्राय उत्पादन की तकनीक से है। चयन की समस्या इस कारण उत्पन्न होती है। क्योंकि वस्तुओं तथा सेवाओं को उत्पादित करने के एक से अधिक तरीके होते हैं।

व्यापक रूप से, उत्पादन की दो तकनीकें हैं– (i) श्रम प्रधान तकनीक (Labour-intensive Technique) तथा (ii) पूँजी प्रधान तकनीक (Capital-intensive Technique) श्रम प्रधान तकनीक का निहितार्थ है पूँजी की तुलना में श्रम का अधिक उपयोग, जबकि पूँजी प्रधान तकनीक का निहितार्थ है श्रम की तुलना में पूँजी (मशीन आदि) का अधिक उपयोग। पूँजी प्रधान तकनीक कुशलता को प्रोत्साहित करती है, जबकि श्रम प्रधान तकनीक रोजगार को प्रोत्साहित करती है। श्रम प्रधान तकनीक कम महँगी भी होती है, विशेषतया भारत जैसे देशों में जहाँ पूँजी की तुलना में श्रम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। श्रम प्रधान तकनीक तथा पूँजी प्रधान तकनीक के बीच चयन एक समस्या है क्योंकि उत्पादकों को अपनी लागत को कम करने की आवश्यकता होती है तथा उसी समय अपनी कुशलता को अधिकतम करना होता है। अर्थव्यवस्था के स्तर पर, श्रम प्रधान तकनीक बेरोजगारी को कम करने में सहायक होती है, जबकि पूँजी प्रधान तकनीक संवृद्धि की गति को तीव्र करती है।

1.4.3 किसके लिए उत्पादन किया जाए? (For Whom to Produce?)

यह समस्या अर्थव्यवस्था में उत्पादन (अथवा आय) के वितरण से संबंधित है। कौन कितनी मात्रा प्राप्त करता है? इसके दो पहलू हैं– (i) आय का कारक वितरण (Factoral Distribution of Income) तथा (ii) आय का अंतर–वैयक्तिक वितरण (Inter-Personal Distribution of Income) आय का कारक वितरण उत्पादन के विभिन्न कारकों के आय–भाग से संबंधित है अर्थात् श्रम के लिए मजदूरी, पूँजी के लिए ब्याज तथा भूमि के लिए किराया। अंतर–वैयक्तिक वितरण से अभिप्राय समाज में व्यक्तियों तथा परिवारों के आय–भाग से है। क्या यह कारक वितरण है अथवा अंतर–वैयक्तिक वितरण। आधारभूत प्रश्न समाज में समानता (अथवा असमानता) के आस–पास घूमता रहता है। समस्या यह है कि क्या संसाधनों का आवंटन समानता को प्रोत्साहित करता है अथवा असमानता को। निःसन्देह समानता एक सामाजिक गुण (Virtue) है, परन्तु असमानता उच्च बचत, उच्च निवेश तथा इस प्रकार संवृद्धि की उच्च दर को प्रेरित कर सकती है।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में केन्द्रीय समस्याओं का समाधान (Solution of Central Problems in Different Economies)

विभिन्न अर्थव्यवस्थाएँ केंद्रीय समस्याओं का समाधान अलग–अलग तरीकों से करती हैं, जो निम्नलिखित है–

1. बाजार अर्थव्यवस्था (Market Economy)

बाजार अर्थव्यवस्था एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था होती है जहाँ उत्पादकों को यह निर्णय लेने की स्वतंत्रता होती है कि क्या (What), कैसे (How) तथा किसके लिए (For

Whom) उत्पादन किया जाए। यह निर्णय उत्पादक किस आधार पर लेते हैं? यह बाजार में पूर्ति और मांग की शक्तियों पर निर्भर करता है।

क्या उत्पादन किया जाए? (What to Produce?) उत्पादक उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनकी मांग अधिक है और पूर्ति कम है? ऐसी वस्तुएं उत्पादकों को अधिक कीमत तथा ऊँचे लाभ प्रदान करती हैं।

कैसे उत्पादन किया जाए? (How to Produce?) उत्पादक उन आगतों का प्रयोग करेंगे जिनसे उत्पादन लागत कम से कम हो ताकि उनके लाभ अधिकतम हो सकें।

किसके लिए उत्पादन किया जाए? (For Whom to Produce) एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में उत्पादक उस वर्ग के लिए उन वस्तुओं का उत्पादन करेंगे जिनकी अधिक कीमत देने में वे सक्षम है। समाज के निर्धन वर्ग की अक्सर अवहेलना की जाती है जिसके कारण आर्थिक विभाजन (Economic Divide) की समस्या उत्पन्न होती है, जैसे कि पहले बताया गया है।

2. केंद्रीय योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Centrally Planned Economy)

केंद्रीय योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में 'क्या, कैसे और किसके लिए' उत्पादन किया जाए से संबंधित निर्णय सरकार के किसी केंद्रीय अधिकारी (Central Authority) द्वारा किया जाता है।

ये सभी निर्णय अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिए जाते हैं। बाजार अर्थव्यवस्था के विपरीत, केंद्रीय योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना नहीं होता है। ऐसी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जाता है, जो केंद्रीय अधिकारी (अथवा सरकार) के विचार में समाज के लिए सबसे अधिक उपयोगी हों। उत्पादन की ऐसी तकनीक का प्रयोग किया जाता है जो सामाजिक रूप से सबसे अधिक वांछनीय (Desirale) हो। उदाहरण के लिए, अत्यधिक बेरोजगारी की स्थिति में श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग किया जाएगा (न कि पूँजी प्रधान तकनीक का) ताकि बेरोजगारी कम हो जाए। समाज के निर्धन वर्ग के लोगों के लिए पर्याप्त वस्तुओं का उत्पादन ऐसी स्थितियों में भी होगा जहाँ इन वस्तुओं के उत्पादन से उत्पादनकर्ताओं को कोई लाभ नहीं मिल रहा हो। यहाँ अधिकतम लाभ की तुलना में सामाजिक न्याय को अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

3. मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था में, बाजार तथा केंद्रीय योजनाबद्ध अर्थव्यवस्थाओं, दोनों के गुण सम्मिलित होते हैं। 'क्या, कैसे और किसके लिए उत्पादन किया जाए' से संबंधित निर्णय बाजार शक्तियों (Market Forces) तथा सामाजिक कल्याण दोनों के आधार पर लिए जाते हैं। उत्पादन के कुछ क्षेत्रों में, उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होते हैं। परंतु कुछ क्षेत्रों में सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर ही निर्णय लिए जाते हैं। उदाहरण– भारत में, उत्पादकों को अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए, कपड़े या इस्पात का उत्पादन करने की स्वतंत्रता है। परंतु 'रेलवे' (Railways) पर सरकार का एकाधिकार है। सरकार यातायात सेवाएँ बिल्कुल ही कम कीमत पर उपलब्ध कराती है ताकि समाज के निर्धन वर्ग भी एँ सेवाएं प्राप्त कर सकें।

1.4.4 विकास की समस्या

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली उत्पादक संसाधनों (Productive resources) की कमी को दूर करने की चेष्टा करती है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उसके द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन के अंश को वर्तमान उपभोग से बचाकर उसका उपयोग पूँजी निर्माण अथवा उत्पादक संसाधनों के स्टॉक में वृद्धि करने में किया जाता है। इस प्रकार पूँजी निर्माण किसी अर्थव्यवस्था के बचाव अथवा संवर्द्धन के लिए एक महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य है। किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादक संसाधनों के स्टॉक में उनके लगातार उपयोग द्वारा कमी होती जाती है। अतः पूंजी स्टॉक में वृद्धि के लिए आवश्यक है कि कुल बचत और पूँजी निर्माण की मात्रा ह्रास की तुलना में अधिक हो।

1.4.5 सार्वजनिक वस्तुओं तथा निजी वस्तुओं में चयन

सार्वजनिक और निजी वस्तुओं के बीच चयन की समस्या को समझने के लिए आपको पहले यह समझना चाहिए कि सार्वजनिक और निजी वस्तुएँ क्या हैं। आइए पहले इन संकल्पनाओं को समझें।

(1) निजी वस्तुएँ (Private Goods) - ऐसी वस्तुएँ विशुद्ध निजी वस्तुएँ हैं जिनकी व्याख्या बाजार द्वारा हो तथा बाजार द्वारा निर्धारित एक निश्चित कीमत पर जिनका विनिमय हो। इस प्रकार जो व्यक्ति वस्तु की कीमत देने की स्थिति में नहीं होगा उसे उस वस्तु के उपभोग से वंचित किया जा सकता है अर्थात् ऐसी वस्तुओं के संदर्भ में ''अपवर्जन का नियम (Theory of Exculsion)'' लागू होगा। ऐसी वस्तुओं का सामूहिक उपभोग संभव नहीं होता है। इन वस्तुओं के संबंध में एक व्यक्ति के उपभोग में वृद्धि दूसरे व्यक्ति के उपभोग में आवश्यक रूप से कमी लाएगी।

यदि शुद्ध निजी वस्तु की पूर्ति W है तथा A एवं B दो ही उपयोक्ता है तो हम लिख सकते हैं $W=W_A+W_B$ जहाँ W_A = A= के उपभोग की मात्रा W_B = B के उपभोग की मात्रा

स्पष्ट है कि यदि W स्थिर है तो W_A की वृद्धि W_B में कमी लाएगी।

निजी वस्तु के संदर्भ में अलग–अलग उपभोक्ता बाजार में प्रचलित मूल्य पर अलग–अलग मात्रा की मांग करते हैं। इस प्रकार यदि दिए हुए प्रचलित मूल्य पर सभी उपभोक्ताओं द्वारा (यदि उपभोक्ता A तथा B हैं) मांगी गयी मात्राए को क्षैतिजीय जोड़ दें तो हमें निजी वस्तुओं की कुल मात्रा प्राप्त हो जाएगी अर्थात् $W = W_A + W_B$ इसी प्रकार यदि एक निश्चित मूल्य पर A तथा B द्वारा मांगी गयी मात्रा ज्ञात कर लें तो इसके आधार पर निजी वस्तुओं की मांग ज्ञात हो जाएगी।

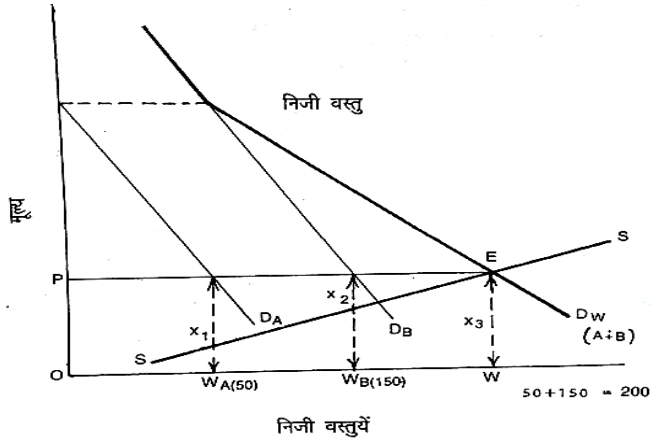

रेखाचित्र में D_A विभिन्न मूल्यों पर निजी वस्तु (W) की A की मांग वक्र है तथा D_B] B की मांग वक्र है। यदि हम मान लें कि अर्थव्यवस्था में दो ही उपभोक्ता हैं। P मूल्य पर $W_A + W_B$ क्षैतिजीय रूप से जुड़कर निजी वस्तु की कुल मांग होगी। अर्थात् हम D_A एवं D_B को क्षैतिजीय रूप से जोड़कर निजी वस्तु की कुल मांग वक्र D_W ज्ञात कर सकते हैं। स्पष्ट है कि उपभोक्ताओं A तथा B एवं बाजार का सीमांत लाभ एक ही होगा क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी वस्तु के लिए उससे प्राप्त होने वाले सीमांत लाभ से आधिक मूल्य नहीं देगा अर्थात $X_1 = X_2 = X_3 = P$

D_W तथा SS एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। निर्धारित मूल्य P तथा उत्पादन OW होगा जिसमें से OW_A मात्रा A उपभोक्ता द्वारा तथा OW_B मात्रा B उपभोक्ता द्वारा क्रय की जाएँ $xhAOW_A + OW_B = OW$

(2) सार्वजनिक वस्तुएँ (Public Goods)- एक विशुद्ध सार्वजनिक वस्तु या सामाजिक वस्तु वह है जिसकी व्यवस्था बजट द्वारा हो, जिसके एक व्यक्ति द्वारा उपभोग से समाज में रहने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए उस वस्तु की उपलब्धता कम न हो। यदि z समाज को सरकार द्वारा उपलब्ध करायी गयी सार्वजनिक वस्तु की मात्रा है (जैसे–सुरक्षा) चूँकि इसका उपभोग सभी द्वारा सामूहिक रूप से होगा, इसलिए सभी द्वारा इसका उपभोग बराबर होगा। यदि उपभोक्ता A का उपभोग Z_a तथा B का उपभोग Z_b है तो $Z = Z_a = Z_b$ A इनके बीच समता का तात्पर्य है कि अतिरिक्त व्यक्तियों को सार्वजनिक वस्तु की आपूर्ति की अतिरिक्त लागत या सीमांत लागत शून्य होगी। (Mc = O)

प्रो0 सैमुएलसन के अनुसार ''शुद्ध सार्वजनिक वस्तु एक ऐसी वस्तु है जिसका सभी लोग मिलकर इस अर्थ में आनन्द लेते हैं कि किसी एक व्यक्ति के उपभोग में वृद्धि किसी दूसरे के उपभोग में बिना कटौती के होती है।

शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं की निम्न दो प्रमुख विशेषताएँ हैं।

(1) प्रतिद्वन्द्विता रहित उपभोग (Non-Rivalness Cosumption) - किसी सार्वजनिक वस्तु की आपूर्ति जब किसी एक व्यक्ति को की जाती है तो उसी समय उसी के साथ उसकी आपूर्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों को शून्य ^^O^^ लागत पर होनी चाहिए। ये वस्तुएँ इस अर्थ में अविभाज्य होती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जो इनके उपभोग से लाभ प्राप्त करता है उसे न तो नापा जा सकता है औ न ही उसके प्रयोग कर्ताओं को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

(2) अपवर्जन नहीं (Non Exculsion) – शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं के संदर्भ में किसी व्यक्ति को इनके उपभोग से इसलिए वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह इसकी क्रय सामर्थ्य नहीं रखता या इसलिए भी नही वंचित किया जा सकता क्योंकि वह इसका उपभोग नहीं करना चाहता।

सार्वजनिक वस्तुओं के संदर्भ में मांग ज्ञात करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि सार्वजनिक वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से उपभोक्ता को जो सीमांत लाभ प्राप्त होगा उसके आधार पर वह अपने अधिमान को व्यक्त करने के लिए तैयार है। चित्र में D_A उपभोक्ता A तथा D_B उपभोक्ता B की मांग वक्र है जो आय की एक निश्चित मात्रा तथा अन्य वस्तु के स्थिर मूल्य की मान्यता पर खींची गयी है। ऐसी मांग वक्र को सैमुएल्सन ने कृत्रिम या काल्पनिक मांग वक्र (Beudo demand curve) कहा है, पर यदि यह मान लें कि उपभोक्ता अपने अधिमान को स्वतः व्यक्त कर देते हैं, जिसके आधार पर हमें D_A एवं D_B प्राप्त है। सार्वजनिक वस्तुओं की मांग D_A एवं D_B का लम्बीय योग होगी जो सार्वजनिक वस्तु के लिए

उन मूल्यों का योग प्रदर्शित करेगी जिसे A तथा B सार्वजनिक वस्तु की एक निश्चित मात्रा हेतु देने के लिए इच्छुक हैं। सार्वजनिक वस्तु के संदर्भ में मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वक्रों की उर्ध्वाधर (vertical) योग होगी। इसका प्रथम प्रतिपादन 1948 में हावर्ड आर ने किया।

रेखाचित्र में D_A एवं D_B A एवं B की कृत्रिम मांग वक्र है। OZ सार्वजनिक वस्तु के लिए A उपभोक्ता OP_1 तथा B OP_2 देने के लिए तैयार है। दोनों द्वारा दिया जाने वाला मूल्य $OP_1 + OP_2 = OP$, OZ की लागत को पूरा कर लेता है D_A एवं D_B को जोड़कर कुल मांग वक्र D_{A+B} ज्ञात की गयी है/SS पूर्ति वक्र है जो सामाजिक वस्तु की विभिन्न निर्गतों की सीमांत लागत जो A एवं B से प्राप्त किएँ जाएँगे प्रदार्शित करती है।

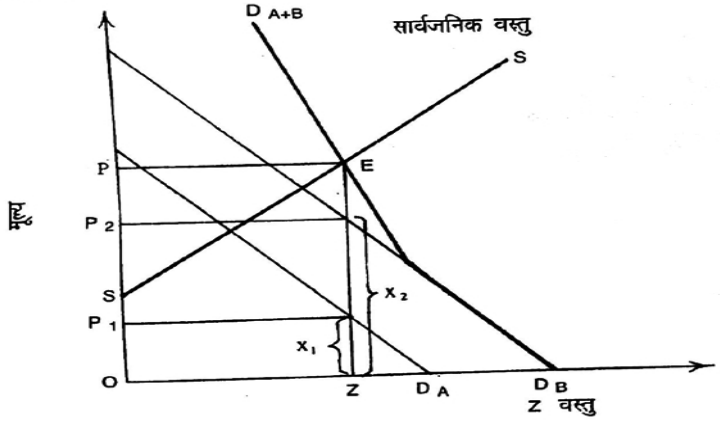

चित्र में पूर्तिवक्र SS मांग वक्र D_{A+B} को E बिन्दु पर काटती है। OZ सार्वजनिक वस्तु की मात्रा है जिसे A तथा B उपभोग करेंगे तथा इसकी सीमान्त लागत Z_E दोनों द्वारा दिएँ जाने वाले मूल्य OP के बराबर है जिसमें से OP_1 लागत A तथा OP_2 लागत B वहन करेगा। स्थान संबंधी सीमाओं (Spetiel Limitations) और क्षमता संबंधी सीमा (Capital Limitations) के आधार पर किसी सार्वजनिक वस्तु की सार्वजनिकता प्रतिबंधित होती है और इन स्थितियों में सार्वजनिक वस्तु में निजी वस्तु के लक्षण आ जाएँगे।

दोनों वस्तुओं की तुलनात्मक व्याख्या के बाद मसग्रेव यह निष्कर्ष देते हैं कि दोनों ही स्थितियाँ समान हैं पर दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर है। निजी वस्तु के सम्बन्ध में कुशलता के लिए प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा प्राप्त सीमान्त लाभ की सीमांत लागत के साथ समता आवश्यक है जबकि सार्वजनिक वस्तु के सम्बन्ध मे दो उपभोक्ताओं द्वारा सीमांत लाभ अलग–अलग होंगे, उनके सीमांत लाभ के योग की सीमांत लागत के साथ समता आवश्यक होगी जिसे प्रो0 सैमुएल्सन ने अपने 1950 में प्रकाशित महत्वपूर्ण शोध में स्थापित किया।

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर शुद्ध सार्वजनिक वस्तु तथा निजी वस्तु के बीच निम्नांकिंत अंतर सामने आते है–

1. सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग संयुक्त रूप से जबकि निजी वस्तुओं का उपभोग व्यक्तिगत स्तर पर होता है।
2. सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग पूर्ति किए जाने पर सामान्य रूप से होता है पर निजी वस्तुओं का उपभोग समान रूप से नहीं होता है।

3. निजी वस्तुओं के संदर्भ में अपवर्जन का सिद्धान्त लागू होता है जबकि सार्वजनिक वस्तु के संदर्भ में वह नहीं लागू होता हैं।

4. निजी वस्तुओ के संदर्भ में उपभोक्ताओं में प्रतिद्वन्द्विता होती है जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के संदर्भ में प्रतिद्वन्द्विता नहीं पायी जाती है।

5. व्यक्तिगत वस्तु के संदर्भ में विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा किसी वस्तु की विभिन्न मात्राएँ एक ही मूल्य पर उपभोग में लायी जाती हैं जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के संदर्भ में वस्तु की एक ही मात्रा विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अलग–अलग मूल्यों पर उपभोग में लानी चाहिए।

6. सामूहिक उपभोग, समान उपभोग तथा अपवर्जन के सिद्धान्त के लागू होने के कारण सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन सरकार द्वारा करना होगा।

7. व्यक्तिगत वस्तुओं की मांग विभिन्न उपभोक्ताओं की मांगों का क्षैतिजीय योग होगा जबकि सार्वजनिक वस्तुओं की मांग विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गयी मात्राओं के लम्बीय योग द्वारा ज्ञात होगी।

8. निजी वस्तु के संदर्भ में कुशलता के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक उपभोक्ता का सीमान्त लाभ वस्तु की सीमान्त लागत के बराबर हो। जबकि सार्वजनिक वस्तु के संदर्भ में कुशलता के लिए आवश्यक है कि उपभोक्ताओं के सीमांत लाभ का योग सार्वजनिक वस्तु की सीमान्त लागत के बराबर हो।

9. सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था बजट द्वारा होती है चाहे इसका उत्पादन या विनिर्माण सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा हो या निजी क्षेत्र द्वारा हो पर निजी वस्तु वह होगी जिसकी व्यवस्था बाजार द्वारा हो चाहे इसका उत्पादन निजी क्षेत्र द्वारा हो चाहे सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा हो।

10. व्यक्तिगत वस्तुओं के संबंध में उपभोक्ता के अधिमान की अभिव्यक्ति स्वतः होगी पर सार्वजनिक वस्तु के संदर्भ में स्वतः नहीं।

(3) मिश्रित वस्तुएं (Mixed goods) – जब वस्तु न तो शुद्ध निजी वस्तु हो और न ही शुद्ध रूप से सार्वजनिक वस्तु हो बल्कि उसमें सार्वजनिक तथा निजीपन का अंश विद्यमान हो तो उसे हम मिश्रित वस्तु कहते हैं।

स्थानीय सीमा तथा क्षमता संबंधी प्रतिबंध के कारण सार्वजनिक वस्तु में निजी वस्तु के लक्षण आ जाते हैं। यदि टेलीविजन जो कि निजी वस्तु है, को लॉन में रखकर मित्रों के साथ देखें तो यह अर्द्ध सार्वजनिक वस्तु बन जाती है। इस प्रकार व्यावहारिक संसार में मिश्रित वस्तुएँ ही अधिकांशतया पायी जाती है। शुद्ध सार्वजनिक तथा शुद्ध निजी वस्तुएं इन्हीं की अन्त्य (Extreme) स्थितियाँ है।

शुद्ध सार्वजनिक, शुद्ध निजी एवं मिश्रित वस्तुओं के बीच सम्बन्ध को निम्न सारणी से संदर्भित किया जा सकता है–

	अपवर्जनीय (Excludable)	अन–अपवर्जनीय (Non-Excludable)
प्रतिद्वन्द्विता युक्त (Rival)	1	2
प्रतिद्वन्द्विता रहित (Non- Rival)	3	4

1. संयोग 1 में प्रतिद्वन्द्विता के साथ अपवर्जन है, अतः यह निजी वस्तु होगी। इसकी व्यवस्था बाजार द्वारा कुशल होगी।

2. संयोग 2 में प्रतिद्वन्द्विता के साथ अन–अपवर्जन है, यह मिश्रित वस्तु होगी।

3. संयोग 3 में अप्रतिद्वन्द्विता के साथ अपवर्जन है यह मिश्रित वस्तु की स्थिति होगी।

4. संयोग 4 में अप्रतिद्वन्द्विता के साथ अन–अपवर्जन है, यह शुद्ध सार्वजनिक वस्तु होगी।

मसग्रेव के अनुसार उपर्युक्त चारों संयोगो में संयोग 1 में जो शुद्ध निजी वस्तु है, की व्यवस्था बाजार द्वारा कुशल होगी। बाकी तीनों संयोगों में बाजार व्यवस्था असफल होगी और राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी।

1.4.6 सर्वहितकारी वस्तुओं की समस्या (Merit goods)

मेरिट वस्तु वह वस्तु है जिसके संबंध में उनसे प्राप्त होने वाले सामाजिक लाभ के कारण सामान्यतया यह माना जाता है कि ये वस्तुये विस्तृत रूप से लोगों को उपलब्ध होनी चाहिए। ऐसी वस्तुएँ सार्वजनिक वस्तुएँ नहीं होती हैं, पर ऐसी निजी वस्तुएँ होती हैं जिनकी व्यवस्था सामाजिक दृष्टि से वांछनीयता के कारण कुछ वर्ग विशेष के लिए बजट के माध्यम से की जाती है।

उत्कृष्ट या मेरिट वस्तु पर प्रकाश डालते हुए मसग्रे यह मत व्यक्त करते है कि कुछ इस प्रकार की वस्तुएँ होती हैं जो इतनी उत्कृष्ट होती हैं कि उनकी व्यवस्था सार्वजनिक वस्तुओं की तरह बजट से की जाती है पर इनकी व्यवस्था करते समय उपभोक्ताओं के अधिमान (Consumers Preferences) को ध्यान में नहीं रखा जाता। शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक सहायता से उपलब्ध अल्प लागत आवासीय व्यवस्था, मुक्त या कम दर पर दी जाने वाली स्कूल में भोजन की व्यवस्था आदि इन वस्तुओं के उदाहरण के रूप में लिए जाते हैं। मेरिट वस्तुओं की पूर्ति उपभोक्ताओं के अधिमान में हस्तक्षेप पर आधारित होती है। इनके संबंध में उपभोक्ता अधिमान के स्थान पर प्रत्यारोपित अधिमान (Imposed Choice) होता है। इन वस्तुओं की मांग तथा पूर्ति को समाज, सरकार, संस्थाएँ आदि इकाइयों के अधिमान भी प्रभावित कर सकते हैं। ये ऐसी वस्तुएँ हैं जो इसके प्राप्तकर्ता को प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित करती हैं पर जो सामूहिक लाभ भी सृजित करती हैं।

बोध प्रश्न 'ग'

1. किसी अर्थव्यवस्था की मूलभूत समस्याएँ क्या हैं?

2. निजी एवं सार्वजनिक वस्तुओं को परिभाषित करें।

   .....

   मेरिट वस्तुओ को परिभाषित करें।

3. .....

4. पूँजी निर्माण कैसे होता है?

5. मिश्रित वस्तुओं से आप क्या समझते हैं?

6. उत्पादन की तकनीक क्या है?

7. सर्वहितकारी वस्तुएँ किसे कहते हैं?

8. सार्वजनिक और निजी वस्तुओं में अन्तर बताइए ?

9. **बताइए, निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत।**

   (i) किसी वस्तु के उत्पादन के लिए उपयोग में लिए जाने वाले उत्पादन के साधनों में सही अनुपात को उस मद के उत्पादन की तकनीक कहा जाता है।

   (ii) सभी व्यक्तियों को निजी उत्पाद बिना मूल्य के उपलब्ध कराए जाते हैं।

   (iii) ऐसी वस्तुएँ जिनकी उपलब्धता चुने हुए व्यक्तियों को ही की जाती है, को सार्वजनिक कहा जाता है।

   (iv) ऐसी वस्तुएँ जिनकी उपलब्धता चुने हुए व्यक्तियों को ही की जाती है, को सार्वजनिक कहा जाता है।

   (v) सर्वहितकारी वस्तु का उपयोग केवल उन्हीं व्यक्तियों को लाभ पहुचाता है, जो उनका सेवन करते हैं।

1.5 उत्पादन संभावन वक्र

उत्पादन संभावना वक्र वह वक्र है जो दिए हुए संसाधनों तथा उत्पादन की तकनीक के आधार पर दो वस्तुओं के उत्पादनों की वैकल्पिक संभावनाओं को प्रकट करता है। (The Production Possibility Curve is a curve showing alternative production possibilities of two goods with the given resources and technique of production.) इसे उत्पादन संभावना सीमा (Production Possibility Frontier or Boundary) भी कहा जाता है। अर्थशास्त्री इस रेखा को रूपांतरण रेखा (Transformation Line) या रूपांतरण वक्र (Transformation Curve) भी कहते हैं।

इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। एक उत्पादक उपलब्ध संसाधनों (तथा उपलब्ध तकनीक) के साथ चावल अथवा गेहूँ को उत्पादित करने का चयन या निर्णय लेता है। यदि उत्पादन के सभी संसाधन केवल गेहूँ के उत्पादन के लिए प्रयोग किए जाएँ तो 100 लाख टन गेहूँ का उत्पादन किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि सभी संसाधन केवल चावल के उत्पादन के लिए प्रयोग किए जाएँ तो 40 लाख टन चावल का उत्पादन किया जा सकता है। यदि वह गेहूँ और चावल दोनों के उत्पादन का निर्णय लेता है तब दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों का उत्पादन किया जा सकता है, जिसे तालिका 1 द्वारा प्रकट किया गया है।

गेहूँ तथा चावल के उत्पादन की विभिन्न संभावनाओं को प्रकट करने वाली तालिका को उत्पादन संभावना अनुसूची (Production Possibility Schedule) कहते हैं।

तालिका 1. उत्पादन संभावना अनुसूची
(Production Possibility Schedule)

वस्तुएँ	उत्पादन संभावनाएँ				
	A	B	C	D	E
गेहूँ (Wheat) (लाख टन)	100	90	70	40	0
चावल (Rice) (लाख टन)	0	10	20	30	40

तालिका 1 में संयोग A प्रकट करता है कि चावल का उत्पादन किए बिना 100 लाख टन गेहूँ का उत्पादन किया जा सकता है। इसी भॉति संयोग E प्रकट करता है कि गेहूँ का उत्पादन किए बिना 40 लाख टन चावल का उत्पादन किया जा सकता है। इन दोनों चरम सीमाओं के अतिरिक्त गेहूँ और चावल के उत्पादन की कई वैकल्पिक संभावनाएँ हैं जैसे संयोग B यह प्रकट करता है कि उपलब्ध संसाधनों और तकनीक के साथ 90 लाख टन गेहूँ और 10 लाख टन चावल का उत्पादन किया जा सकता है। इसी भाँति संयोग C यह प्रकट करता है कि उपलब्ध संसाधनों और तकनीक के आधार पर 70 लाख टन गेहूँ और 20 लाख टन चावल का उत्पादन किया जा सकता है। संयोग D यह प्रकट करता है कि दिए हुए संसाधनों और तकनीक के आधार पर 40 लाख टन गेहूँ और 30 लाख टन चावल का उत्पादन किया जा सकता है। उत्पादन की उपरोक्त संभावनाओं को एक ग्राफ द्वारा प्रकट करके उत्पादन संभावना वक्र को ज्ञात किया जा सकता है जो चित्र 1 द्वारा प्रकट किया गया है। चित्र 1 में X अक्ष पर चावल की मात्रा और Y अक्ष पर गेहूँ की मात्रा को दर्शाया गया है। दिए हुए संसाधनों और तकनीक के साथ बिन्दु A] B] C] D] और E उत्पादन की विभिन्न संभावनाओं को प्रकट करते हैं। इन सभी बिंदुओं को जोड़ने से हमें AE वक्र प्राप्त होता है जिसे उत्पादन संभावना वक्र (Production Possilibity Curve) या रूपांतरण वक्र (Transformation Curve) कहा जाता है।

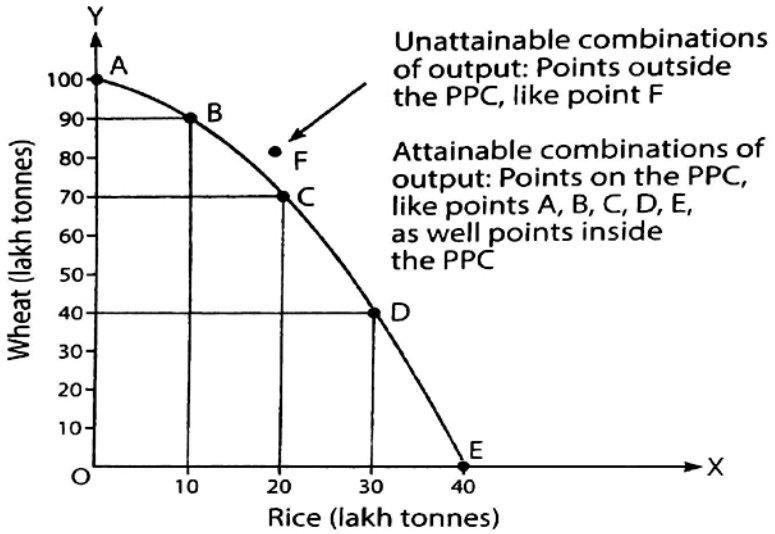

उत्पादन संभावना वक्र (PPC) की मान्यताएँ (Assumptions of PPC)

PPC की दो आधारभूत मान्यताएँ इस प्रकार है :

(i) उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण एवं कुशल प्रयोग किया गया है तथा

(ii) तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

ध्यानपूर्वक अवलोकन कीजिए, इन मान्यताओं में चार बातें निहित है :

(i) संसाधनों की एक निश्चित मात्रा दी गई है,

(ii) उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण प्रयोग किया गया है,

(iii) उपलब्ध संसाधनों का कुशल प्रयोग किया गया है तथा

(iv) तकनीक की स्थिति में परिवर्तन नहीं होता है।

इन मान्यताओं के संतुष्ट अर्थात् पूरा होने पर हम एक PPC प्राप्त करते हैं जो मूल बिन्दु की ओर नतोदर होता है।

उत्पादन संभावना वक्र का खिसकाव या स्थान परिवर्तन/घुमाव

(Shifting/Rotation of Production Possibility Curve)-

उत्पादन संभावना वक्र निम्नलिखित कारणों से खिसकता (Shift) है अथवा उसका घुमाव (Rotation) होता है:

(i) संसाधनों में परिवर्तन

(Change in Resources)

(a) संसाधनों में वृद्धि (Resources are Increased) यदि संसाधनों में वृद्धि होती है, तब हम दोनों वस्तुओं का अधिक उत्पादन कर सकते हैं। तदनुसार, उत्पादन संभावना वक्र दाई ओर खिसक जाता है, जैसा इस चित्र में दिखाया गया है (ab से a_1b_1 की ओर खिसकाव)-

(b) संसाधनों में कमी (Resources are Reduce) यदि संसाधनों में कमी होती है, तब हम दोनो वस्तुओ का कम उत्पादन कर सकते है। तदनुसार, उत्पादन संभावना वक्र बाई ओर खिसक जाता है, जैसे इस चित्र में दिखाया गया है (ab से a_1b_1 की खिसकाव):

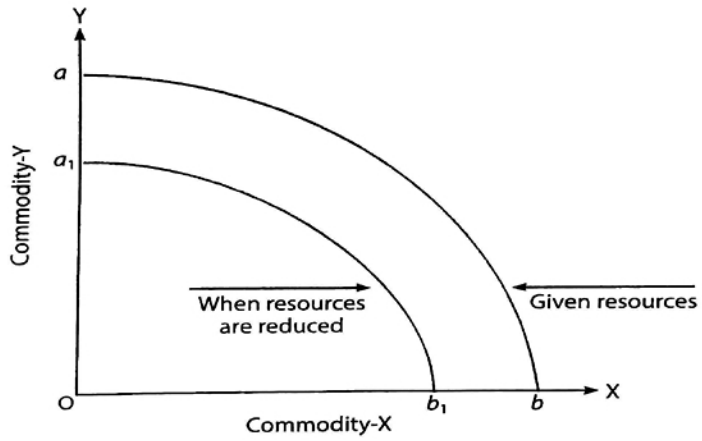

(ii) तकनीक में परिवर्तन (Change in Techonology)

(a) वस्तु X के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक (Effecient Techonology for the Production of Commodity-X)- वस्तु X के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक से अभिप्राय है कि उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग से वस्तु x की मात्रा का उत्पादन किया जा सकता हैं। तदनुसार, उत्पादन संभावना वक्र घूमेगा (खिसकेगा नहीं,) जैसे इस चित्र में दिखाया गया है (ab से a_1b_1 की ओर घुमाव) :

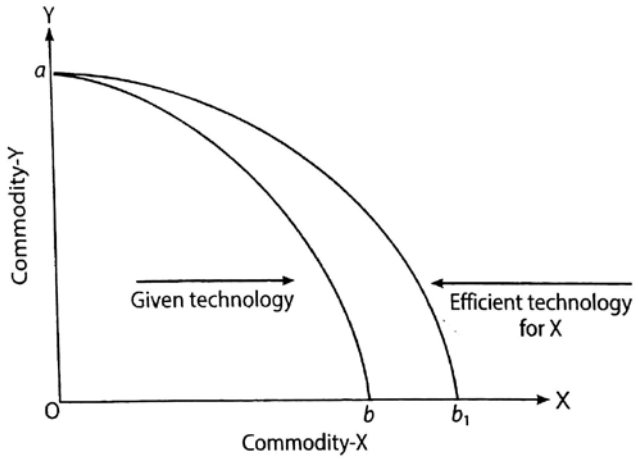

(b) वस्तु Y के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक (Effecient Techonology for the Production of Commodity –Y) : वस्तु Y के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक से अभिप्राय है कि उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग से वस्तु Y की अधिक मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है। तदनुसार, उत्पादन संभावना वक्र घूमेगा (खिसकेगा नही), जैसे इस चित्र में दिखाया गया है (ab ls a_1b_1 की ओर घुमाव) :

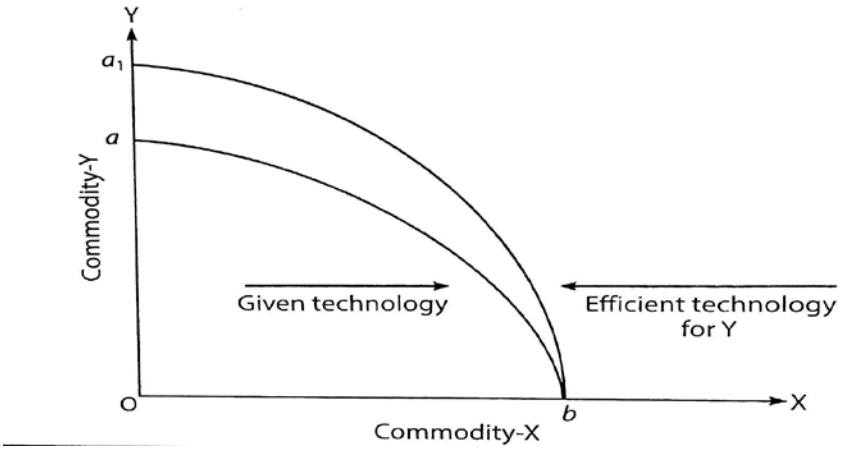

(c) **दोनों वस्तुओं X और Y के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक (Efficient Techonology for the Production of both X and Y)** : दोनों वस्तुओं के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक का अर्थ है कि समान संसाधनों द्वारा ही

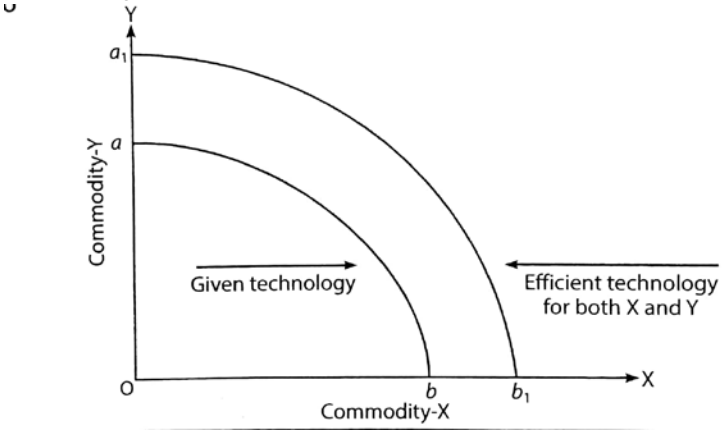

वस्तुओं X और Y का अधिक उत्पादन संभव है। तदनुसार, उत्पादन संभावना वक्र दाईं ओर खिसकेगा, जैसे इस चित्र में दिखाया गया है(ab से a_1b_1 की ओर घुमाव):

उत्पादन संभावना वक्र की दो मुख्य विशेषताएँ (Two Basic Properties of Production Possibility Curve or PPC)-

(1) उत्पादन संभावना वक्र का ढलान नीचे की ओर होता है (Production Possilibity Curve Slopes Downwards) : उत्पादन संभावना वक्र का ढलान ऊपर से नीचे की ओर बाएँ से दाएँ होता है। इसका कारण यह है कि उपलब्ध संसाधनों के पूर्ण तथा कुशल प्रयोग की स्थिति में दोनों वस्तुओं के उत्पादन को एक साथ नहीं बढ़ाया जा सकता है। एक वस्तु जैसे X का उत्पादन तभी अधिक किया जा सकता है जब दूसरी वस्तु जैसे Y का उत्पादन कम किया जाए।

(2) उत्पादन संभावना वक्र मूल बिन्दु के नतोदर तथा उन्मुख होत है

(PPC is Concave to the Point of Origin) :

1.6 संसाधनों का आवंटन

इस खण्ड में हम संक्षेप में विभिन्न तरह की आर्थिक प्रणालियों मे संसाधन आवंटन की समस्या की चर्चा करेंगें।

1. **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था**
2. **समाजवादी अर्थव्यवस्था**
3. **मिश्रित अर्थव्यवस्था**

1.6.1 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalistic Economy) में संसाधनो का आवंटन–

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन अध्ययन के इस स्तर पर आपको समझ लेना चाहिए कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और बाज़ार अर्थव्यवस्था को एक ही माना जा सकता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत संसाधन आवंटन की समस्या को समझने के लिए हमें इस प्रणाली के विशिष्ट लक्षणों की जानकारी पहले प्राप्त करनी चाहिए। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की विशिष्टताएँ निम्न प्रकार हैं:

(A) उत्पादन के साधन अथवा उत्पादक संसाधनों पर निजी स्वामित्व होता है। वे व्यक्ति जिनका संसाधनों पर प्रधिकार होता है, वे जब भी चाहें पूर्ति को बाजारों में भेजने से रोक सकते हैं।

(B) प्रत्येक वस्तु और सेवा (जिसमें उत्पादक संसाधन भी शामिल होते है) कि एक कीमत होती है, जो मांग और पूर्ति के परस्पर क्रिया द्वारा निर्धारित होती है। कि आधार पर कीमतों को मुक्त रूप से तय किए जाने की क्रिया सभी वस्तुओं और सेवाओं तक फैली होती है और इसे कीमत–निर्धारण की प्रक्रिया (price mechanism) कहा जाता है। याद रखें

कि कीमत निर्धारण प्रक्रिया में, स्वतंत्रता, पूँजीवादी अथवा बाज़ार अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है।

(C) प्रत्येक आर्थिक इकाई विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करती है अर्थात् यह केवल अपने ही हित में कार्य करती है। अर्थात् बेचने वाला उच्चतम मूल्य देने वाले को ही बेचता है। खरीदने वाला वस्तु को कम से कम कीमत पर खरीदता है, इत्यादि।

(D) समाज के किसी सदस्य की आय को दो पहलुओं द्वारा निर्धारित किया जाता हैः (क) उसके द्वारा बाज़ार में सप्लाई किए गए उत्पादक संसाधनों की मात्रा। (ख) वह कीमत जो उनके लिए अदा की जाती है।

पूँजीवादी प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है, और उनका प्रयोग निजी लाभ के लिए करने की स्वतंत्रता होती है। अपनी आवश्यकताओं की अधिकतम संतुष्टि हेतु साधनों द्वारा किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाएँ , कितनी मात्रा में उत्पादन हो, और उत्पादन की विधि क्या हो, इसका निर्णय जब किसी केन्द्रीय नियोजन द्वारा न ही कर, व्यक्ति बाजार यन्त्र (माँग पूर्ति) के आधार पर स्वतन्त्र रूप से करता है, तो इसे ही पूँजीवादी प्रणाली कहते है। इस प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर राज्य का कोई स्वामित्व नहीं होता और न राज्य आर्थिक क्रियाओं के संचालन में कोई हस्तक्षेप ही करता है। यद्यपि इस प्रणाली में राज्य द्वारा कुछ प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं, परन्तु उनका प्रभाव आर्थिक क्रियाओं पर न होकर केवल सामाजिक महत्व का होता है।

1.6.2 समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) में साधनों का आवंटन

किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित होती है :

(A) उत्पादन के संसाधनों का निजी स्वामित्व नहीं होता। इसके विपरीत इनका स्वामित्व सहकारिताओं (Co-operatives) या सरकार के हाथ में होता है।

(B) कोई भी समाजवादी अर्थव्यवस्था समाज के सदस्यों के अधिकतम कल्याण के लिए कार्य करती है। यह ऐसी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने की चेष्टा करती है, जो कि समाज के सदस्यों की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप होती हैं। यह आय और पूँजी की असमानताओं को निम्न स्तर तक कम करने की चेष्टा करती है।

(C) इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए बाजार प्रक्रिया को मुक्त रूप से कार्य नहीं करने दिया जाता। इसका अभिप्राय है कि कीमतों को मांग और पूर्ति की शक्तियों पर पूरी तरह आधारित नहीं होने दिया जाता। उसी प्रकार वस्तुओं और सेवाओं की मांग और पूर्ति के संबंध में निर्णय भी सदा कीमतों पर आधारित नहीं होते। ऐसे निर्णय पृथक आर्थिक एककों द्वारा नहीं लिए जाते, उनके स्थान पर ये निर्णय किसी केंद्रीय आयोजन प्राधिकरण अर्थात् स्वयं सरकार द्वारा लिए जाते है। पृथक आर्थिक इकाइयों की ओर से आवश्यक निर्णय केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा लिए जाते हैं।

इस बात का निर्णय कि अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं का हल किस प्रकार किया नाम, केंद्रीय आयोजन प्राधिकरण द्वारा किया जाता है। इस कारण समाजवादी अर्थव्यवस्था को केंद्रीय आयोजन वाली अर्थव्यवस्था (centrally planned economy) भी कहते हैं।

(D) उत्पादकों तथा विक्रेताओं को लाभपूर्ण कार्य करने नहीं दिया जाता। जिसका अर्थ है कि उन्हें अपने लाभ को अधिकतम करने नहीं दिया जाता इसकें स्थान पर आदानों और उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों पर निर्णय केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा प्रशासनिक रूप से लिए जाते हैं। कुछ अत्यावश्यक वस्तुओं और सेवाओं का राशन भी किया जाता है तथा सभी अथवा चुने हुए सदस्यों को सहायित दरों (subsidized rates) पर खुले रूप में इनका वितरण किया जाता है। आमतौर पर केवल गैर आवश्यक वस्तुएँ ही बाजार कीमतों पर बेची जाती हैं।

मार्क्स ने प्रो0 हीगल के विचारों को उद्धृत करते हुए कहा है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और फिर उसका संयोजन होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूँजीवादी प्रणाली की प्रतिक्रियास्वरूप ही समाजवादी प्रणाली अस्तित्व में आई। वास्तव में यह प्रणाली 19 वीं शताब्दी की परिस्थितियों की देन है। निजी सम्पत्ति के अधिकार एवं उसके निजी लाभ के लिए संचालन की स्वतन्त्रता ने धन का जो असमान वितरण करके समाज को अमीर और गरीब वर्गों में बाँट दिया था, उसके फलस्वरूप विद्रोह की अभिव्यक्ति ही समाजवाद के रूप में परिलक्षित हुई। सामान्यतया आर्थिक क्रियाओं के संचालन की उस पद्धति को ही समाजवाद के नाम से जाना जाता है, जिसमें साधन व्यक्तिगत व्वामित्व में न होकर समूह या समाज के अधिकार में होते हैं और समाज ही एक केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत निर्णय लेता है कि क्या और कितना तथा किस विधि से अर्थव्यवस्था में समाज के हित में उत्पादन करना है।

1.6.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) में संसाधनों का आवंटन

प्रत्येक अर्थव्यवस्था की प्रमुख तथा आधारभूत समस्या साधनों के आवंटन की होती है, और एकमात्र उद्देश्य अधिकतम भौतिक लाभ प्राप्त करना होता है। प्रश्न केवल एक है कि सीमित साधानों के विभिन्न उत्पादनों में आवंटन का कार्य कौन सम्पन्न करे? उत्पादन किस वस्तु का हो? कितनी मात्रा में हो? किस विधि से हो? वितरण किस प्रकार हो? इसको सम्पादित करने के दो ही माध्यम हो सकते हैं, (i) व्यक्ति, (ii) व्यक्तियों की प्रतिनिधि संस्था–राज्य। जब स्वतन्त्र उपक्रम के अन्तर्गत उपरोक्त समस्याओं से सम्बन्धित कार्य निजी साहस द्वारा सम्पादित होता है तो इसे पूँजीवादी प्रणाली और जब समाज की प्रतिनिधि संस्था सरकार द्वारा ये निर्णय लिये जाते हैं, तो इसे समाजवादी कहा जाता है। इस प्रकार वास्तव में अर्थव्यवस्था के संचालन की दो ही विधियाँ हैं, पूँजीवादी तथा समाजवाद। इन दो पद्धतियों के अतिरिक्त तीसरी कोई प्रणाली हो ही नहीं सकती। यदि कोई तीसरी आर्थिक प्रणाली हो सकती है तो उपरोक्त दोनों प्रणालियों की मिलीजुली प्रणाली हो सकती है। दोनों परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच समझौते के परिणामस्वरूप जो तीसरी आर्थिक प्रणाली विकसित हुई है, उसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं।

बोध प्रश्न 'घ'

1. उत्पादन संभावना वक्र से क्या तात्पर्य है?
2. पूँजीवादी एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था में साधनों का आवंटन कैसे होता है?
3. एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में साधनों का आवंटन कैसे होता है?
4. **बताइए, निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत।**

   (i) बाजार अर्थव्यवस्था में साधनों का आवंटन समाज की वास्तविक आवश्यकता के अनुरूप होता है।

   (ii) आर्थिक विवेक के आधार पर लिए गए निर्णय समाज की दृष्टि से सदा श्रेष्ठ होते हैं।

   (iii) किसी बाजार अर्थव्यवस्था के संबंध में निर्णय मूल्य संकेतों से प्रभावित होता है।

   (iv) समाजवादी अर्थव्यवस्था में केंद्रीय समस्याओं का समाधान बाजार प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

   (v) मिश्रित अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन आंशिक रूप से निजी क्षेत्र द्वारा निर्धारित किया जाता है।

   (vi) किसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में प्राधिकारियों द्वारा निजी क्षेत्र को अनियमित छोड़ दिया जाता है।

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

(i) बाजार तंत्र का अभिप्राय है..... के बीच अंतः क्रिया।

(ii) आर्थिक ..... का भी अर्थ है कि आर्थिक इकाई अपने ही हितों के लिए कार्य कर रही है।

(iii) ..... अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक निर्णय आर्थिक विवेक के आधार पर लिए जाते हैं।

1.7 सारांश

प्रत्येक समाज को उसकी सदा बढ़ती हुई और सीमित आवश्यकताओं की तुष्टि करने के लिए उनकी तुलना में साधनों के अभाव की निरंतर समस्या का सामना करना पड़ता है। अतः प्रत्येक समाज एक ओर तो साधनों की उपलब्धता में बढ़ोतरी करने तथा दूसरी ओर उनके उपयोग में बचत लाने का प्रयास करता है। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न संस्थान (Institutions) विधियाँ और व्यवस्थाएँ खोजी गई है और उनके समग्र स्वरूप को अर्थव्यवस्था अथवा आर्थिक प्रणाली कहा जाता है। किसी भी आर्थिक प्रणाली की प्रकृति यथार्थ रूप में प्रत्येक समाज में भिन्न–भिन्न होती है। फिर भी किसी समाज द्वारा अपनाई गई आर्थिक पद्धति भी समय के साथ–साथ बदलती रहती है। अर्थव्यवस्थाओं को कई प्रकार से

वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे कि उपयोग में लाए जाने वाले उत्पादक संसाधनों की प्रमुखता के आधार पर, उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के आधार पर तथा संस्थाओं के प्रकारों तथा सम्पत्ति के अधिकारों आदि के आधार पर किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक अभिकर्ता (economic agents) निर्णय लेने वाले एकक होते हैं।

उत्पादक संसाधन अथवा उत्पादन के साधन उत्पादन में उपयोग में लाई जाने वाली अतिरिक्त उपयोगिता का सृजन है अर्थात् आदान है। उत्पादन अर्थात् किसी मद की आवश्यकता की तुष्टि करने की क्षमता/उत्पादन के साधनों को समरूप इकाइयों के समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। अर्थात् ऐसे एकक जिन्हें एक दूसरे के स्थान में बिना उत्पादन पर प्रभाव डाले प्रतिस्थापित किया जा सकता है। ऐसे प्रत्येक ग्रुप को उत्पादन के साधन कहा जाता है। उत्पादन के साधनों को परंपरागत रूप से चार वार्गों में विभाजित किया जाता है :

1. **भूमि।**
2. **श्रम।**
3. **पूँजी।**
4. **संगठन या उद्यमकर्ता।**

भूमि एक ऐसा उत्पादन संसाधन है जो प्रकृति द्वारा बिना मूल्य के प्रदान किया गया है। मनुष्य भूमि पैदा नहीं कर सकता, बेशक अज्ञात संसाधनों की खोज करना तो उसके लिए संभव है। उसी प्रकार ज्ञात संसाधनों के अलावा नए उपयोगों की खोज करना भी संभव है। श्रम उत्पादन के लिए मानव द्वारा किए गए भौतिक एवं मानसिक प्रयासों का द्योतक है। पूँजी के अंतर्गत मनुष्य के द्वारा उत्पन्न किए उत्पादन संसाधन आते हैं अर्थात् उत्पादित उत्पादनो के साधन उद्यमकर्ता व्यावसायिक क्रिया–कलापों के संबंध में निर्णय लेने वाला और जोखिम उठाने वाला व्यक्ति है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं जो कि आवश्यकताओं की तुलना में उत्पादन के साधनों के अभाव से पैदा होती हैं। ये समस्याएँ हैं –

1. **किस वस्तु का उत्पादन किया जाए?**
2. **किसके लिए उत्पादन किया जाए?**
3. **बचत और पूँजी निवेश द्वारा वर्तमान उपभोग और विकास के मध्य चुनाव।**

क्या उत्पन्न किया जाए की समस्या का घनिष्ठ संबंध उत्पादन के साधनों और विकल्पी प्रयोगों के आवंटन से है। जबकि तकनीक का चयन इस समस्या को उजागर करता है कि कैसे उत्पादन किया जाए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अर्थव्यवस्था को निजी और सार्वजनिक वस्तुओं के संबंध में तथा निजी वस्तुएँ किस सीमा तक निजी क्षेत्र में उत्पादित की जाएँ ये निर्णय भी करने होते हैं।

प्रत्येक अर्थव्यवस्था को सर्वहितकारी वस्तुओं की सप्लाई की वृद्धि का भी ध्यान रखना होता है अर्थात् ऐसी वस्तुएँ जिनके बारे में माना जाता है कि जिनका

उपयोग किया जाना पूरे समाज के लिए हितकारी है। किस वस्तु का उत्पादन किया जाय, इसे सामान्यतः उत्पादन संभावना वक्र अथवा उत्पादन परिवर्तन वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसे कुछ सरल मान्यताओं के आधार पर तैयार किया जाता है। इस वक्र द्वारा दर्शाया गया भाव यह है कि जब कोई अर्थव्यवस्था अपने संसाधनों का पूरा उपयोग करती है तब ये दी गयी उत्पादन तकनीक के आधार पर कुछ वस्तुओं का उत्पादन तब तक बढ़ा नहीं सकती जब तक अन्य वस्तुओं का उत्पादन कम न किया जाए। फिर भी आर्थिक विकास के साथ यह संभव है कि सभी वस्तुओं का उत्पादन साथ–साथ कराया जाए ताकि सभी वस्तुओं का उत्पादन एवं उत्पादन संभावना वक्र बाहर की ओर ऊँचे उठें।

किसी आर्थिक प्रणाली तुलना में दूसरी आर्थिक प्रणाली में संसाधनों का आवंटन भिन्न प्रकार से होता है। किसी बाजार अर्थव्यवस्था अथवा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आवंटन बाजार प्रक्रिया की सहायता से होता है। उसका अभिप्राय है कि माँग पूर्ति और मूल्यों की परस्पर क्रिया द्वारा इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर निजी एककों का स्वामित्व होता है तथा वे अलग–अलग परिस्थितियों में निर्णय लेते हैं जैसे उपभोक्ता, उत्पादक इत्यादि। प्रत्येक इकाई का व्यवहार आर्थिक विवेक से निर्धारित होता है। नियोजक आदानों और उसे प्राप्त होने वाली उत्पादिता और मूल्यों की तुलना करके निर्णय करता है। नियोजक यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि आदानों पर व्यय किए गए प्रत्येक रूपये से उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। तदानुंसार अर्थव्यवस्था की मांग प्रक्रिया ही अन्ततोगत्वा, संसाधनों का आवंटन निर्धारित करती है। चूँकि बाजार अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है कि इसमें आय और पूँजी के वितरण में भारी असमानताएँ होती हैं, माँग का ढाँचा समाज की वास्तविक आवश्यकताओं को दर्शाने में सफल नहीं होता। आवश्यक वस्तुओं की तुलना में विलासिता वस्तुओं का उत्पादन तथा विक्रय करना अधिक लाभप्रद हो जाता है। परिणामस्वरूप संसाधनों का आवंटन भी वास्तविक आवश्यकताओं को नहीं दर्शाता।

किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व नहीं होता। उनके स्थान पर उनका स्वामित्व सरकार के पास अथवा सहकारी समितियों के पास होता है। अर्थव्यवस्था आय और पूँजी की असमानताओं को दूर करने का प्रयास करती है। इसमें चेष्टा की जाती है कि वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन और इसलिए संसाधनों का आवंटन समाज की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इस कारण से बाजार प्रक्रियाओं को मुक्त रूप से कार्य करने नहीं दिया जाता। अधिकांश वस्तुओं की कीमतें उनकी मांग और पूर्ति की स्थिति को आधार न बनाकर प्रशासनिक आधार पर तय की जाती हैं। पृथक् आर्थिक एककों पर आर्थिक विवेकशीलता के आधार पर अपना निर्णय लेने पर प्रतिबंध लगाया जाता है।

किसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में निर्णय लेने की प्रक्रिया पृथक् आर्थिक एककों और प्राधिकारियों के साथ मिल–जुलकर तय की जाती है। फिर भी, जहाँ भी आवश्यकता हो निजी आर्थिक एककों और सरकारी नियमों, विनियमों के अधीन चलना पडता है, जैसे कि मूल्य नियंत्रण, अर्थ सहाय (subsidies) कराधान, कोटे, श्रमिक कानून इत्यादि।

1.8 उपयोगी शब्दावली

पूँजी : मनुष्य द्वारा निर्मित अथवा उत्पादित उत्पादन के साधन।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) 3. (i) नहीं (ii) नहीं (iii) नहीं (iv) सही (v) सही (vi) सही (vii) नहीं (viii) नहीं

ख) 2. (i) नहीं (ii) सही (iii) सही (iv) नहीं (v) सही

3. (i) भूमि, श्रम

(ii) और आगे उत्पादन

(iv) मनुष्य द्वारा निर्मित

ग) 6 (i) नहीं (ii) सही(iii) नहीं (iv) सही(v) नहीं

घ) 2. (i) नहीं (ii) नहीं (iii) सही (iv) नहीं (v) सही (vi) नहीं

3. (i) माँग पूर्ति तथा मूल्य (ii) तर्काधार (iii) बज़ार/पूंजीपति

1.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. आर्थिक प्रणाली किसे कहते हैं? किसी अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओं को स्पष्ट कीजिए।
2. मानवीय आवश्यकताओं की मुख्य विशिष्टताएँ क्या हैं?
3. ''न्यूनता सभी आर्थिक प्रणालियों की जननी है'' व्याख्या कीजिए।
4. उत्पादन के साधनों से क्या समझते हैं? उनके चार तत्वों की संक्षेप में व्याख्या करें।
5. सार्वजनिक एवं निजी वस्तुएँ एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न होती हैं, स्पष्ट करें।
6. आर्थिक अभिकर्ता से आप क्या समझते हैं, स्पष्ट करें।
7. विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओं का समाधान कैसे होता है, स्पष्ट करें।
8. **निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–**

   (A) सार्वजनिक वस्तुएँ और निजी वस्तुएँ

   (B) सर्वहितकारी वस्तुएँ

   (C) मानवीय आवश्यकताएँ

9. स्पष्ट करें कि किसी अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओं का समाधान किस प्रकार एक दूसरे से संबंधित है।

10. उत्पादन संभावना वक्र की संकल्पना को स्पष्ट करें। उसकी मान्यताओं का उल्लेख करें तथा इसे किसी उदाहरण की मदद से प्रदर्शित करें।

11. संक्षेप में बताइए कि निम्न आर्थिक व्यवस्थाओं में संसाधनों का आवंटन किस प्रकार होता है।

    (A) बाजार अर्थव्यवस्था

    (B) समाजवादी अर्थव्यवस्था

    (C) मिश्रित अर्थव्यवस्था

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0, 2008)
- ❖ एस0 के0 मिश्र : आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र (प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली, 1988)
- ❖ प्रो0 एस0 एन0 लाल : अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजा : व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- ❖ एस0सी0 बरला : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- ❖ लक्ष्मी नारायण नाथूरामका : व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)
- ❖ पी0ए0 सैम्युलसन : अर्थशास्त्र दसवाँ संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस, 1982)
- ❖ डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैन : मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- ❖ एन0सी0ई0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र : एक परिचय, कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014

****

इकाई : 2 आधारभूत संकल्पनाएं

इकाई की संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अर्थशास्त्र की आधारभूत शब्दावली

2.3 वर्तुल प्रवाहों की प्रणाली के रूप में अर्थव्यवस्था

2.4 आर्थिक कार्य–पद्धति और आर्थिक नियम

2.4.1 आगमनात्मक और निगमनात्मक तर्क

2.4.2 यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहैं

2.4.3 संतुलन

2.5 यथार्थमूलक बनाम आदर्श अर्थशास्त्र

2.6 यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र

2.7 स्टॉक और प्रवाह

2.8 स्थैतिकी और गतिकी

2.9 विकल्प लागत

2.10 सारांश

2.11 उपयोगी शब्दावली

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि,

- उन प्रमुख संकल्पनाओं और शब्दों का स्पष्टीकरण कर सकेंगे जो सामान्य अर्थशास्त्र की शब्दावली के अंग हैं,
- यह बता सकेंगे कि आर्थिक तर्क किस प्रकार किया जाता हैं और आर्थिक नियमों का सामान्यीकरण कैसे होता हैं,
- आर्थिक नियमों के स्वरूप और उनकी विश्वसनीयता को बता पाएँगे,
- आर्थिक तर्कों से संबंधित कुछ विश्लेषणात्मक संकल्पनाओं का स्पष्टीकरण कर सकेंगे तथा

- यह विवेचन कर सकेंगे कि हमारे भौतिक कल्याण के लिए अर्थशास्त्र का उपयोग किया जाता हैं या नहीं।

2.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि आर्थिक प्रणाली का क्या अर्थ होता हैं, सभी आर्थिक प्रणालियों को किन प्रमुख समस्याओं का सामना करना होता हैं, उत्पादन के कारक क्या हैं और विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों में संसाधनों का आवंटन (allocation of resources) किस प्रकार होता हैं। चर्चा के दौरान आपके सम्मुख कुछ मूल संकल्पनाएँ आती हैं, जैसे उपयोगिता, उत्पादन, उत्पादन के कारक/आगत, उत्पादन संभावना वक्र, दुर्लभता आदि। इस इकाई में आप इनमें से कुछ संकल्पनाओं के संबंध में और विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे तथा कुछ नई संकल्पनाओं के संबंध में भी आपको जानकारी मिलेगी। आप यह भी देखेंगे कि किसी आर्थिक प्रणाली के विभिन्न अंग किस प्रकार एक–दूसरे पर निर्भर होते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक तर्क के तत्वों तथा आर्थिक नियमों और सिद्धान्तों के स्वरूप और विश्वसनीयता के संबंध में परिचय दिया जाएगा। उसी प्रकार इस संबंध में भी विचार किया जाएगा कि अर्थशास्त्र केवल ज्ञान प्रदान करने वाला विषय नहीं हैं अपितु यह भौतिक कल्याण की वृद्धि में हमें व्यावहारिक मार्ग निर्देशन भी प्रदान करता हैं। इस इकाई को पढ़ते समय आर्थिक तर्क से संबंधित कुछ विश्लेषणात्मक संकल्पनाओं के संबंध में भी विवेचन किया जाएगा।

2.2 अर्थशास्त्र की आधारभूत शब्दावली

1. **उपयोगिता (Utility)-** आवश्कताओं को सन्तुष्ट करने की क्रिया उपभोग हैं तथा आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की वस्तु की क्षमता उपयोगिता हैं। यदि दूध पीने से किसी व्यक्ति की भूख सन्तुष्ट हो जाये तो यह कहा जा सकता हैं कि दूध में भूख को समाप्त करने की जो क्षमता हैं, वही उसकी उपयोगिता हैं। उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य हैं, जो व्यक्तिगत होती हैं तथा जो समय, स्थान तथा व्यक्ति के साथ बदलती रहती है। किसी वस्तु से जो उपयोगिता हम प्राप्त करते हैं, वह केवल वस्तु से ही सम्बन्धित नहीं होती है बल्कि हमारी आवश्यकता की तीव्रता से भी सम्बद्ध हैं। यदि भूख बहुत तेज लगी हो तो रोटी की उपयोगिता अधिक होगी जबकि भूख कम लगी रहने पर उपयोगिता कम होगी।

उपयोगिता की माप के संबंध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं। एक ओर प्रो0 मार्शल हैं जो यह मानते हैं कि उपयोगिता नापी जा सकती है, दूसरी ओर हिक्स, ऐलेन, सेमुएलसन आदि हैं जो यह कहते हैं कि उपयोगिता को नापा नहीं जा सकता है, बल्कि सन्तुष्टि का स्तर ही व्यक्त किया जा सकता हैं। इस प्रकार उपयोगिता की माप के संबंध में दो दृष्टिकोण हैं– संख्यावाचक दृष्टिकोण (Cardinal Approach) तथा क्रम–वाचक दृष्टिकोण (Ordinal Approach)।

संख्यात्मक विश्लेषण– मार्शल का यह मत है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य होने के बावजूद भी मुद्रा के द्वारा नापी जा सकती है। हम किसी वस्तु के लिए मुद्रा के रूप में मूल्य क्यों देते हैं? क्योंकि उसमें उपयोगिता हैं। किसी भी वस्तु का मूल्य हम उसकी उपयोगिता से अधिक देने के लिए तैयार नहीं होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु के बदले दिए जाने वाले रूपये के बराबर हुई। उदाहरण के लिये, यदि हम एक गिलास दूध के लिए

1 रूपया देने के लिये तैयार हों तो यह कहा जा सकता हैं कि 1 गिलास दूध की उपयोगिता 1 रूपया के बराबर हुई। किसी वस्तु के बदले दिया जाने वाला मूल्य ही उस वस्तु की उपयोगिता का माप हुआ।

मार्शल द्वारा बताई गई उपयोगिता के माप की इस विधि को संख्यात्मक विधि कहते हैं। इस विधि के अनुसार किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को 10, 15, 50, 65..... आदि संख्याओं के रूप में व्यक्त किया जा सकता हैं जैसे रोटी की पहली इकाई से 25, दूसरी से 15, तीसरी से 10 उपयोगिता आदि।

क्रमवाचक विश्लेषण– आधुनिक अर्थशास्त्री मार्शल के इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। पैरेटो (Pareto), ऐलेन (Allen), जे0 आर0 हिक्स (Hicks), पाल ए0 सेमुएलसन आदि का यह कहना है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक तथा व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) विचार हैं, इसकी अनुभूति की जा सकती है। इसकी माप किसी वस्तुनिष्ठ (Objective) आधार पर नहीं की जा सकती है, इतना ही नहीं किसी वस्तु की उपयोगिता भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न तो होगी ही साथ ही एक ही व्यक्ति के लिए विभिन्न समय पर अलग–अलग होगी। उपयोगिता बदलती रहती हैं अतः उसकी माप संभव नहीं हैं। संख्यावाचक विधि के दोषों के दूर करने के लिएँ इन अर्थशास्त्रियों ने क्रमवाचक विधि प्रस्तुत की। इसके अनुसार, यह नहीं कहा जा सकता कि रोटी की पहली इकाई से 25 तथा दूसरी इकाई से 15 उपयोगिता मिली। इस विधि के अनुसार केवल सन्तुष्टि या उपयोगिता का स्तर (Level of Satisfaction) व्यक्त किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि इस विधि के द्वारा यह तो कहा जा सकता हैं कि पहली रोटी से मिलने वाली संतुष्टि का स्तर दूसरी से अधिक रहा, पर यह नहीं कहा जा सकता कि कितनी संतुष्टि मिली अथवा पहली से दूसरी की अपेक्षा कितनी अधिक संतुष्टि मिली। पहली विधि के अनुसार उपयोगिता को 1, 2, 3, 4, 5 आदि संख्याओं में मापा जाता हैं। जबकि दूसरी विधि में पहला (1^{st}), दूसरा (2^{nd})] तीसरा (3^{rd}) आदि के रूप में नापा जाता हैं। इस प्रकार उपयोगिता के माप की संख्यावाचक विधि के अुनसार संतुष्टि की माप के लिये हिक्स ने अनधिमान वक्र (Indifference Curve) विधि का प्रयोग किया जिसकी व्याख्या हम अन्यत्र करेंगे।

इसके पूर्व कि हम मार्शल द्वारा प्रतिपादित संस्थिति निर्धारण सिद्धान्त की व्याख्या करें, यह उचित होगा कि हम इसमें प्रयुक्त होने वाली कुछ धारणाओं को पहले स्पष्ट कर दें।

औसत उपयोगिता, सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता– उपयोगिता को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता हैं– कुल उपयोगिता (Total Utility), सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) तथा औसत उपयोगिता (Average Utility)

उपभोग की क्रिया में पहली इकाई के उपभोग से लेकर अन्तिम इकाई के उपभोग तक प्रत्येक इकाई से मिलने वाली उपयोगिता का योग ही कुल उपयोगिता होगी, यदि कुल उपयोगिता को उपभोग की गयी इकाइयों की संख्या से भाग दे दें तो हमें औसत उपयोगिता प्राप्त हो जाएगी। तथा इस उपभोग की क्रिया में वस्तु की किसी इकाई से मिलने वाली उपयोगिता अथवा उस इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि ही सीमान्त उपयोगिता है बोल्डिंग के अनुसार– ''वस्तु की किसी मात्रा की सीमान्त उपयोगिता, कुल उपयोगिता में वह वृद्धि हैं जो कि उपभोग में एक इकाई की वृद्धि के फलस्वरूप होती है, उदाहरण के लिए, यदि रोटी की पहली इकाई से 14, दूसरी इकाई से 12 तथा तीसरी इकाई से 10

उपयोगिता मिले तो इन तीनों इकाइयों से कुल उपयोगिता 36 होगी। अब यदि चौथी रोटी के उपभोग से कुल उपयोगिता बढ़कर 45 हो जाय तो चौथी रोटी की सीमान्त उपयोगिता 45–36=9 होगी। गणितीय भाषा में सीमान्त उपयोगिता को इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है–''किसी भी इकाई से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता उससे प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता तथा उस संख्या से 1 कम इकाई से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता का अन्तर है। इस प्रकार दवीं की सीमान्त उपयोगिता $MU_n = TU_n - TU_{n-1}$ चूँकि प्रत्येक इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि सीमान्त उपयोगिता है, इसलिए कुल उपयोगिता (TU) वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर ढाल उससे संबंधित उपभोग की गयी वस्तु के लिए सीमान्त उपयोगिता प्रदर्शित करेगा।

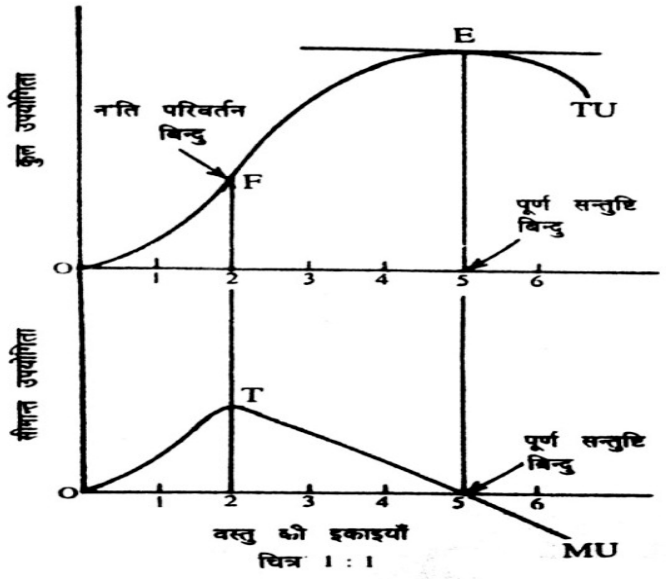

चित्र 1 : 1

मूल्य (Value)– इस शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में इसका उपयोग किसी उपभोक्ता या उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु की लाभप्रदता को बताने के लिए किया जाता है। इस अर्थ में उस व्यक्ति के लिए इसमें उपयोगिता होती है, अर्थात उसके लिए यह उपयोगी है। इस मूल्य को उस वस्तु का उपभोग–मूल्य (Use-value) कहा जाता है। दूसरे अर्थ में, किसी वस्तु के पास इस अर्थ में मूल्य होता है कि इसका किसी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय किया जा सकता है या इसे बेचा जा सकता है। जिस कीमत के लिए इसे बेचा जा सकता है उसे इसका विनिमय मूल्य (Exchange Value) कहा जाता है।

किसी वस्तु का उपयोग–मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह जिस आवश्यकता/जिन आवश्यकताओं की तुष्टि करती है उसमें कितनी तीव्रता है। इसीलिए जल जैसी जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रारंभिक मात्राओं में अधिक उपयोग–मूल्य होता है। लेकिन यदि वे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं तब उनका सीमांत उपयोग–मूल्य उनकी उत्पादन लागत तथा माँग की तुलना में उनकी दुर्लभता से प्रभावित होता है। इसीलिए हीरा तथा सोना जैसी कुछ वस्तुओं का विनिमय मूल्य बहुत अधिक होता है।

2. **मूल्य (Value)–** इस शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में इसका उपयोग किसी उपभोक्ता या उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु की लाभप्रदता को बताने के लिए किया जाता है। इस अर्थ में उस व्यक्ति के लिए

इसमें उपयोगिता होती है, अर्थात उसके लिए यह उपयोगी है। इस मूल्य को उस वस्तु का उपभोग–मूल्य (use-value) कहा जाता है। दूसरे अर्थ में, किसी वस्तु के पास इस अर्थ में मूल्य होता है कि इसका किसी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय किया जा सकता है या इसे बेचा जा सकता है। जिस कीमत के लिए इसे बेचा जा सकता है उसे इसका विनिमय मूल्य (Exchange Value) कहा जाता है।

किसी वस्तु का उपयोग–मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह जिस आवश्यकता/जिन आवश्यकताओं की तुष्टि करती है उसमें कितनी तीव्रता है। इसीलिए जल जैसी जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रारंभिक मात्राओं में अधिक उपयोग–मूल्य होता है। लेकिन यदि वे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं तब उनका सीमांत उपयोग–मूल्य उनकी उत्पादन लागत तथा माँग की तुलना में उनकी दुर्लभता से प्रभावित होता है। इसीलिए हीरा तथा सोना जैसी कुछ वस्तुओं का विनिमय मूल्य बहुत अधिक होता है।

3. **उत्पादन (Production)-** परम्परागत अर्थशास्त्री उत्पादन को भौतिक वस्तुओं का निर्माण मानते थे। इन अर्थशास्त्रियों की यह विचारधारा इस वैज्ञानिक तथ्य पर आधारित थी कि मानव न तो किसी पदार्थ का निर्माण कर सकता हैं और न ही विनाश। यह कार्य केवल प्रकृति द्वारा ही सम्भव हैं। इस प्रकार प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उत्पादन के अभिप्राय का एँक संकुचित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते थे जिसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

यह सत्य है कि मानव किसी पदार्थ का निमाण नहीं कर सकता किन्तु मानव अपने प्रयत्नों एवं अन्य साधनों के सहयोग से पदार्थोंके रूप, रंग, आकार आदि में परिवर्तन करके उनकी उपयोगिता में वृद्धि अवश्य कर सकता है। उदाहरण के लिए, मिट्टी एक पदार्थ है जिसका निर्माण अथवा विनाश मानव नहीं कर सकता, किन्तु मानव अपने प्रयत्नों एवं अन्य साधनों से जब इस मिट्टी का स्वरूप परिवर्तित करके एक घड़ा बना देता है, तब उपयोगिता का सृजन (Creation of Utility) होता हैं क्योंकि पदार्थ के परिवर्तित स्वरूप अर्थात घड़े से मानव आवश्यकता की पूर्ति होती है। सामान्य अर्थों में यही उत्पादन है। आधुनिक अर्थशास्त्री उपयोगिता में वृद्धि के स्थान पर मूल्य वृद्धि को उत्पादन मानते है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन के लिए उपयोगिता के सृजन के साथ–साथ मूल्य वृद्धि का भी होना आवश्यक है। यदि किसी कार्य द्वारा किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि तो होती है किन्तु उसका विनिमय मूल्य नहीं बढ़ता, तब इस कार्य को उत्पादन नहीं कहा जाएगा। दूसरे शब्दों में, उत्पादन के लिए वस्तु के प्रयोग मूल्य (अर्थात् उपयोगिता) के साथ–साथ वस्तु के विनिमय मूल्य (अर्थात् वस्तु की कीमत) दोनों में वृद्धि होना अनिवार्य है। आधुनिक अर्थशास्त्री थॉमस के अनुसार, ''वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि ही उत्पादन है। इस प्रकार उत्पादन के अभिप्राय का आधुनिक दृष्टिकोण उपयोगिता सृजन एवं मूल्य सृजन दोनों की उपस्थिति एक साथ अनिवार्य मानता है।

4. **सम्पत्ति (Wealth)–** संपत्ति की संकल्पना का अर्थ भिन्न–भिन संदर्भो में भिन्न–भिन्न होता है। मूल रूप में यह सभी उपलब्ध उपयोगी साधनों के कुल योग का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए किसी व्यक्ति की संपत्ति के अंतर्गत केवल उसकी भू–संपत्ति तथा अन्य भौतिक वस्तुएँ ही नहीं बल्कि उसके पास के मुद्रा–रूप अधिशेष (Money balances) तथा अन्य वित्तीय परिसम्पत्तियाँ (Financial assets) भी आ जाती हैं, परंतु अर्थव्यवस्था के संदर्भ में संपत्ति की संकल्पना से अभिप्राय कुछ और ही होता है देश के सभी प्राकृतिक संसाधन, जिन पर सरकार या अन्य आर्थिक इकाईयों का स्वामित्व हो या नहीं इसकी संपत्ति के अंतर्गत आ जाते हैं। इस दृष्टिाकोण से राष्ट्रीय संपत्ति के अंतर्गत मानव संपत्ति भी आ जाती

हैं जिसका प्रतिनिधित्व आबादी के आकार, स्वास्थ, शिक्षा और प्रशिक्षण तथा लोगों के नैतिक चरित्र और कार्य के प्रति उनकी प्रवृत्ति द्वारा होता हैं। राष्ट्रीय संपत्ति के अंतर्गत मशीन और उपस्कर, भवन, सड़क, पुल आदि मानव निर्मित संसाधन तथा शेष विश्व के देशों पर किसी देश के दावे भी आ जाते हैं। यह स्मरणीय हैं कि व्यक्तियों की वित्तीय संपत्ति राष्ट्रीय संपत्ति का अंश नहीं होती क्योंकि एँक श्रेणी के व्यक्तियों के दायित्व (liabilities) दूसरे श्रेणी के व्यक्तियों के दावों से कट जाते हैं।

5. **पदार्थ या वस्तुएँ (Goods)–** इस पद के अंतर्गत सेवाएँ भी आ जाती हैं। ऐसी किसी भी वस्तु को पदार्थ कहा जाता है जिसमें उपयोगिता हो या जिसका उपयोग और अधिक पदार्थों और सेवाओं के उत्पादन में किया जा सकें। पदार्थों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। जो पदार्थ व्यक्तियों और परिवारों की आवश्यकताओं की तुष्टि करते हैं उन्हैं उपभोग वस्तु (Consumption goods) कहते हैं। इसके विपरीत जिन पदार्थों का उपयोग बिक्री के लिए वस्तुओं/सेवाओं के उत्पादन कार्य में होता है, उन्हे मध्यवर्ती वस्तुएँ (intermediate goods) कहते हैं। जिन वस्तुओं का उपयोग एक से अधिक बार उत्पादन कार्य के लिए किया जा सकता है (जैसे मशीन और उपस्कर) उन्हें पूँजी–वस्तुएँ (capital goods) कहा जाता है। मध्यवर्ती वस्तुओं के उदाहरण हैं कच्चे माल, कोयला, मशीनें, हस्तोपकरण (Hand tools) आदि, जिनका उपयोग विनिर्माण उद्योगों (Manufacturing industires) में किया जाता है। तथा बीज, उर्वरक और कीटनाशक जिनका उपयोग किसान लोग खेती के काम में करते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि एक ही वस्तु उपभोग वस्तु की कोटि से मध्यवर्ती वस्तु की कोटि में जा सकती है और इसके विपरीत भी हो सकता हैं। ऐसा होना इस बात पर निर्भर करता है कि उस वस्तु का उपयोग किस उद्देश्य से किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, एक मोटरगाड़ी का मालिक उसका उपयोग यदि अपने निजी कार्य के लिए करता है तब उसे उपभोग वस्तु कहा जाएगा परंतु यदि इसका उपयोग टैक्सी के रूप में किया जाता है तब उसे पूँजी वस्तु या मध्यवर्ती वस्तु कहा जाएगा।

वस्तुओं का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जाता है कि वे किस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। जो वस्तुएँ भूख, सर्दी और गर्मी से रक्षा तथा कुछ सामाजिक दायित्वों को निभाने जैसी हमारी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। उन्हें– ''आवश्यक वस्तुएँ'' (Necessities) कहते हैं। इस प्रकार से तुष्ट की जाने वाली आवश्यकताएँ अत्यंत तीव्र होती हैं, इसलिए आवश्यक वस्तुओं की उपयोगिता बहुत अधिक होती है। यदि आवश्यकताओं की तीव्रता कुछ कम होती हैं, तब उन्हें पूरा करने वाली वस्तुओं का वर्गीकरण ''सुख की वस्तुओं'' (Comforts) के रूप में किया जाता हैं। सुख की वस्तुओं के प्रयोग के फलस्वरूप प्रायः हमारी कार्यक्षमता और उत्पादिता बढ़ जाती है इसी प्रकार '' विलास वस्तुएँ'' (luxuries) वे होती हैं जिनके उपभोग से हमारी अत्यंत कम तीव्र आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस प्रकार की आवश्कताओं की पूर्ति मुख्यतः सामाजिक प्रतिष्ठा आदि की दृष्टि से की जाती है। सामान्यतः व्यक्ति पहले आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करता है और उसके बाद सुख की वस्तुओं और विलास वस्तुओं का। परंतु इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि जो वस्तु किसी के लिए विलास की है वह किसी अन्य के लिए सुख की वस्तु तथा किसी और व्यक्ति के लिए आवश्यक वस्तु हो सकती है। इसके अतिरिक्त समय बीतने के साथ–साथ व्यक्ति की आवश्यकताओं में परिवर्तन हो सकता है जिसके फलस्वरूप उसके लिए वस्तुओं का पुनर्वर्गीकरण करना होता है।

6. **पूर्ति (Supply)-** किसी वस्तु की पूर्ति की संकल्पना का संबंध उसकी उपलब्धता के साथ होता है। उत्पादक तथा स्टॉकधारी विभिन्न कीमतों पर किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं में बिक्री करने को तत्पर रहते हैं। इस प्रकार वस्तु की पूर्ति का अर्थ है किसी निर्दिष्ट कीमत पर बिक्री के लिए उस वस्तु की दी जाने वाली मात्रा। किसी वस्तु की कीमत के घटने–बढ़ने के साथ ही साथ उसकी पूर्ति की मात्रा भी घटती–बढ़ती है आमतौर पर वस्तु की कीमत के बढ़ने पर उसकी पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत के घटने पर उसकी पूर्ति भी घटती है। परन्तु उत्पादन लागत में परिवर्तन होने की स्थिति में दी हुई कीमत पर भी पूर्ति में परिवर्तन हो सकता है। इसके अतिरिक्त यदि अर्थव्यवस्था में प्रतिसार (Recession) या मंदी (Depression) आ जाती है तब कीमत के घटने पर पूर्ति बढ़ती है क्योंकि कीमतों में और गिरावट होने के भय से विक्रेता अपने स्टॉक को समाप्त करना चाहते है। पूर्ति फलन, वस्तु की पूर्ति एवं उसे प्रभावित करने वाले कारक तत्वों के बीच फलनात्मक संबंध को दर्शाता है। किसी वस्तु की पूर्ति उस वस्तु के मूल्य, वस्तु के उत्पादन हेतु आवश्यक आगतों (Imputs) की पूर्ति एवं तकनीक आदि पर निर्भर करती है। यदि वस्तु की पूर्ति S_x, वस्तु के मूल्य को P_x, आगतों की पूर्ति को Si और तकनीक को Tech द्वारा व्यक्त किया जाय तो पूर्ति फलन को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता हैं– $S_x = F (P_x, Si, Tech)$

पूर्ति फलन एकदिष्ट (Single valued) होते हैं, कयोंकि पूर्ति के नियमानुसार अगर पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक तत्व समान रहें तो मूल्य मे वृद्धि होने से पूर्ति में वृद्धि होती है और इसके विपरीत मूल्य में कमी होने से पूर्ति में भी कमी होती है। 'अन्य कारक तत्व'– जिनके समान रहने की बात की जा रही है, का तात्पर्य आगतों (Inputs) की पूर्ति तथा तकनीक के समान या स्थिर रहने से हैं। अब हम पूर्ति फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं– $S_x = F (P_x)$ cet. pet.

पूर्तिफलन से प्राप्त वक्र दायीं और उठता हुआ होता है। अर्थात इसका ढाल सदैव धनात्मक होता है इस प्रकार पूर्ति फलन का सामान्य समीकरण $S_x = d + ep$ के रूप में होगा।

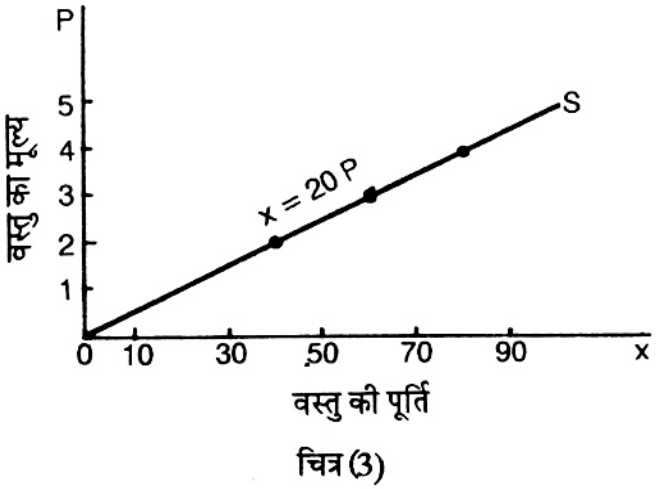

चित्र (3)

7. **मांग (Demand)–** जैसा कि आप जानत ह, ावभिन्न कीमतों पर क्रेता किसी वस्तु का विभिन्न मात्राओं में क्रय करने को तत्पर रहते हैं। इस प्रकार किसी वस्तु के लिए मांग का कोई अर्थ तभी होता है जब कि खरीदी जाने वाली वस्तु

की मात्रा के साथ–साथ उसकी कीमतें भी दी हुई हों। क्रेता उस कीमत को देने के इच्छुक होने के साथ ही साथ समर्थ भी हों। आम तौर पर कीमत के बढ़ने पर वस्तु की माँग घटती है और कीमत के घटने पर माँग बढ़ती हैं परंतु किन्हीं विशेष परिस्थितियों में तथा कुछ वस्तुओ के साथ ऐसा नहीं भी होता है। जैसे कि दुर्लभता की स्थिति में खाद्य पदार्थों की कीमत के बढ़ने पर उनकी माँग भी बढ़ सकती हैं क्योंकि उपभोक्ताओं को यह भय होता है कि बाजार में ये वस्तुए उपलब्ध नहीं रहेंगी तथा उनकी कीमतें और भी चढ़ जाएगी। अतः वे इसे अपनी औसत आवश्यकता से अधिक मात्रा में खरीदकर अपने पास रखना चाहेंगे। उसी प्रकार हीरे–जवाहरात तथा अन्य फैन्सी वस्तुओं की खरीद लोग मुख्य रूप से अपने वैभव–प्रदर्शन के लिए करते हैं। इसीलिए इनकी कीमतों के बढ़ने पर माँग में भी वृद्धि हो जाती है।

माँग फलन (Demand Function) जैसा हम लोगों ने देखा कि माँग का नियम किसी वस्तु की माँग (अश्रित चर) तथा उसके निर्धारक तत्त्वों (स्वतंत्र चर) के बीच संबंध प्रदर्शित करता है। इसे माँग फलन कहते हैं क्योकि यह गणितीय रूप में आश्रित तथा स्वतंत्र चरों के बीच संबंध प्रदर्शित करता है। माँग फलन को हम लोगों ने इस प्रकार व्यक्त किया–

$$D_x = f\,(P_x, ¡a\ Y, ¡a\ T, ¡a\ Po)$$

सरलतम रूप में माँग फलन को हम इस रूप में व्यक्त कर सकते हैं–$D_x = f\,(P_x)$ जिसमें स्वतंत्र चर के रूप में केवल P_x ही लिया गया है।

माँग के नियम की व्याख्या करते समय हम लोगों ने देखा कि वस्तु की माँग (D_x) तथा मूल्य (P_x) में विपरीत संबंध होता है। फलन के संबंध में एक बात उल्लेखनीय है और वह यह कि यदि किसी भी फलन में स्वतंत्र चर (यह P_x) को बढ़ते हुए मान देने पर आश्रित चर (यहाँ D_x) के प्राप्त होने वाले संगत मान अगर घटते हुए क्रम में प्राप्त होते हैं, या स्वतंत्र चर के घटते हुए मानों के लिए आश्रित चर के बढ़ते हुए मान प्राप्त हों तो ऐसे फलनों का वक्र ऋणात्मक ढाल का होगा अथवा दाहिनी ओर गिरता हुआ होगा। इस प्रकार माँग फलन का वक्र सामान्यतया ऋणात्मक ढाल का होगा इसलिए माँग–फलन का सामान्ता समीकरण $D_x = a - b\ P_x$ होगा। (यदि हम उपभोक्ता की आय (Y) को भी परिवर्तनशील मान लें तो माँग फलन दो प्रकार के हो सकते हैं।

(A) रैखिक माँग फलन (Linear Demand Function)- एक माँग फलन तब रैखिक होगा जबकि माँग वक्र का ढाल ($\Delta P/\Delta D$) मांग वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर एक ही रहें। इस स्थिति में मांग वक्र सीधी रेखा के रूप में होगा, सरलतम रूप में होगा। सरलतम रूप में रैखिक माँग फलन इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता हैं।

$$D_x = a - b\ P_x$$

जिसमें a एक अन्तः खण्ड (Intercept) या 'स्थिरांक (constant) है जो शून्य पर माँग प्रदर्शित करता हैं, तथा b जो ढाल $(\Delta P/\Delta D)$ प्रदर्शित करता है, भी स्थिर है।

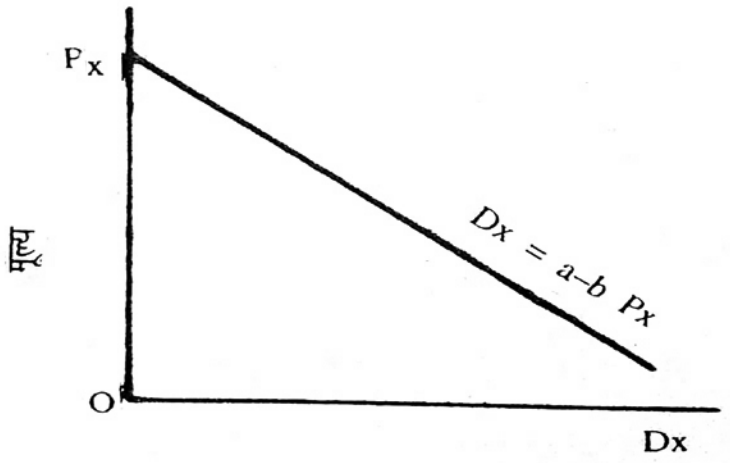

$D_x = a - b\ P_x$ को प्रदर्शित करने वाली रेखा एक सीधी रेखा होगी, जैसा रेखाचित्र में प्रदर्शित है, तथा जो नीचे दाहिनी और गिरती हई होगी।

स्पष्ट है कि माँग फलन ($D_x = a - b\ P_x$) दिया हुआ हो, तथा यदि a तथा b के मूल्य ज्ञात हों तो एक दिए हुए मूल्य के सन्दर्भ में समीकरण के आधार पर D_x की गणना की जा सकती है, तथा इसी प्रकार D_x के लिए P_x की गणना की जा सकती हैं। एक उदाहरण लीजिए।

मान लीजिये मांग फलन इस रूप में दिया है–

X= 100 - 2P, X वस्तु की मांग ज्ञात करना हो जबकि मूल्य प्रति इकाई 5 रूपया हो। स्पष्ट है, यदि हम P के स्थान पर 5 रख दें तो मांग ज्ञात हो जायेगी। P के स्थान पर 5 रखने पर

$$X = 100 - (2\times 5)$$

$$= 100 - 10 = 90 \text{ वस्तु}$$

(B) गैर रैखिक मांग–फलन (Non Linear Demand Function)– एक माँग–फलन तब गैर रैखिक कहलाएगा जबकि माँग वक्र का ढाल $(\Delta P/\Delta D)$ परिवर्तित होता जाय। गैर रैखिक माँग–फलन को प्रदर्शित करने पर हमें सीधी रेखा नहीं प्राप्त होगी बल्कि एक माँग वक्र प्राप्त होगा। गैर रैखिक फलन इस रूप में व्यक्त किया जा सकता है– $D_x = a\ P_x - b$

अथवा अति परिवलय (rectangular hyperbola) के रूप में हो सकता है–

$$D_x = \frac{a}{Px+c} - b \text{ जिसमें a, b, c} > 0$$

गैर रैखिक फलन को इस रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया है।

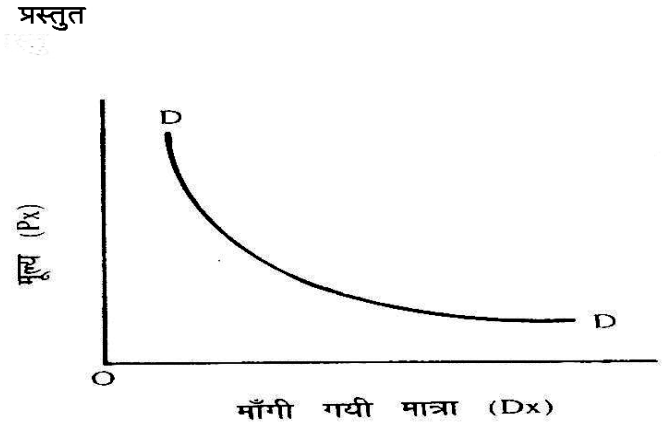

8. **उपभोग (Consumption)-** अर्थशास्त्र में उपभोग की परिभाषा के सम्बंध में काफी मतभेद रहा है, कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'उपभोग वस्तु की उपयोगिता को नष्ट करना है।' 'प्रो0 मार्शल ने तो 'उपभोग को नकारात्मक उत्पादन' (Negative Production) कहा है, पर इससे उपभोग का स्पष्ट स्वरूप सामने नहीं आता है। पहली बात तो यह है कि उपयोगिता नष्ट नहीं होती है और मार्शल का यह कहना कि उपभोग नकारात्मक उत्पादन है, उसी प्रकार से है जैसे हसने की क्रिया को स्पष्ट करते हुए यह कहा जाय कि 'जो रोना नहीं है।' इससे 'उपभोग क्या हैं' इसका पता तो लगता नहीं, उल्टे एक समस्या आ जाती है। वह यह कि 'उपभोग क्या नहीं है' या ' उत्पादन क्या हैं' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपभोग की जो परिभाषाएँ ऊपर बतलायी गयीं उनका सैद्धान्तिक मूल्य नहीं है। उपभोग की सबसे उत्तम परिभाषा प्रो0 मेहता ने दी है, उनके अनुसार ''उपभोग उस क्रिया को कहते हैं जिससे किसी आवश्यकता की सन्तुष्टि के रूप में प्रत्येक इकाई से क्रमशः घटती हुई उपयोगिता प्राप्त होती है।'' स्पष्ट हैं कि उपभोग मानवीय आवश्यकता को पूरा करने की वह क्रिया है जिससे हमें उपयोगिता मिलती है पर यह उपयोगिता प्रयोग की वृद्धि के साथ क्रमशः घटती जाती हैं।

9. **विनिमय (Exchange)-** व्यक्ति, परिवार, फर्मे, व्यवसाय इकाइयाँ तथा सरकार के अंग आदि आर्थिक एजेंट या आर्थिक क्रियाओं के एजेंट अनेक प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को अपने हाथ में लेते हैं। इनमें से उत्पादन और उपभोग जैसी क्रियाओं के संबंध में आप पढ़ ही चुके हैं। विनिमय भी एक महत्वपूर्ण आर्थिक–क्रिया है। जब कोई आर्थिक एजेंट किसी वस्तु या सेवा के बदले में कोई और वस्तु या सेवा प्रदान करता है तब इस कार्य को विनिमय कहा जाता है। इसे ही दूसरे शब्दों मे, यों कहा जा सकता हैं कि एक वस्तु/सेवा का विक्रय किसी अन्य वस्तु/सेवा के रूप में किया जाता है। यह विक्रय द्रव्य की कुछ रकम के बदले में भी किया जा सकता हैं। जब विनिमय वस्तुओं और सेवाओं के बीच होता है तब इसे वस्तु–विनिमय सौदा (Barter transaction) या वस्तु विनिमय बिक्री (Barter sale) या केवल वस्तु–विनिमय कहा जाता है। जब वस्तु/सेवा का विक्रय द्रव्य के साथ होता है तब उसे मौद्रिक विनिमय (money exchange) कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक स्थिति में वस्तु/सेवा या मुद्रा का स्वामी इसे अन्य किसी के साथ बदल सकता है।

विनिमय क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें विनिमय क्रिया को क्रेता के दृष्टिकोण से देखना होगा। यदि क्रेता उपभोक्ता है, तब उसके लिए खरीदी जाने वाली वस्तु की उपयोगिता कीमत के रूप में दी जाने वाली वस्तु की उपयोगिता की तुलना में अधिक होती है। यदि क्रेता व्यापारी है तब वह आशा करता है कि उस वस्तु को बेचकर वह अधिक धन कमाएगा। उसी प्रकार खरीदी गई वस्तु यदि उत्पादन का आदान (Iinput) है तब क्रेता को आशा होती हैं कि उर्पाद की बिक्री आय (Sale proceeds) के रूप में उसे अधिक प्रतिफल मिलेगा। परंतु यह स्मरणीय है कि इन सभी स्थितियों में होने वाला विनिमय स्वैच्छिक (voluntary) होता हैं तथा सौदा करने वाले दोनों पक्षों (विक्रेता और क्रेता) को लाभ की आशा होती है। इसीलिए प्रायः कहा जाता है कि विनिमय कार्य डकैती नहीं है। परंतु इस संबंध में ध्यान देने की यह भी बात है कि सौदा करने वाले पक्ष को कम लाभ होता है या अधिक, यह इस बात पर निर्भर करता हैं कि क्रेता की सौदा–शक्ति (Bargaining power) कितनी है।

10. **सीमांत (Marginal)-** आर्थिक तर्क के संदर्भ में सीमांत की संकल्पना एक महत्वपूर्ण साधन है तथा विभिन्न हैसियत की आर्थिक इकाइयों के व्यवहार स्वरूप और उनके नीति–निर्धारकों के संबंध में बताने में उसका उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है इस संकल्पना का संबंध विचाराधीन चर (variable) की अंतिम इकाई के साथ होता है। आमतौर पर प्रयोग में आने वाले कुछ शब्दों के संबंध में विचार द्वारा इस विषय को और स्पष्ट किया जा सकता है जैसा कि आपने पहले ही देखा है। सीमांत उपयोगिता (Marginal utility) वह उपयोगिता है जिसे कोई उपभोक्ता अपनी खरीदी गई वस्तु की अंतिम इकाई से प्राप्त करता है इसके विपरीत औसत उपयोगिता (Average utility) का अर्थ होता है खरीदी गई कुल इकाइयों से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता में इन इकाइयों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त उपयोगिता। उदाहरणार्थ– हम उस स्थिति को लें जब कि कोई क्रेता चार ब्रेड खरीदता है, जिनकी उपयोगिता क्रमशः 20, 16, 14 और 6 इकाइयाँ हैं। इस स्थिति में चौथी और अन्तिम ब्रेड की उपयोगिता को सीमांत उपयोगिता कहा जाता है जो 6 इकाइयों की उपयोगिता के बराबर है। इसके विपरीत उपभोक्ता को चारों ब्रेडों से 56 इकाइयों की उपयोगिता मिलती है, अतः औसत उपयोगिता $56/4 = 14$ इकाइयाँ है। आसानी से यह देखा जा सकता हैं कि खरीदी गई वस्तु की मात्रा और अन्य संबंधित परिस्थितियों में कोई भी परिवर्तन होने से औसत और सीमान्त इन दोनों ही उपयोगिताओं में परिवर्तन की संभावना होती है। यह स्मरणीय है कि इनमें से किसी भी स्थिति में किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता का अर्थ होता है वस्तु की अंतिम इकाई द्वारा कुल उपयोगिता में की गई वृद्धि। उसी के अनुरूप उत्पादन के क्षेत्र सीमांत लागत (Marginal cost) की संकल्पना होती है, जिसका अर्थ होता है अंतिम इकाई के उत्पादन के फलस्वरूप कुल उत्पादन की लागत में होने वाली वृद्धि। उसी प्रकार सीमांत आय (Marginal revenue) का अर्थ होता है एक और इकाई की बिक्री के फलस्वरूप कुल बिक्री आय (Sale proceeds) में हुई वृद्धि।

सामान्य की संकल्पना (Concept of Normal)- अर्थशास्त्र में सामान्य की संकल्पना का अर्थ होता है बार–बार होने वाली घटना। दूसरे–शब्दों में, इससे पता चलता है कि सामान्य रूप में क्या होता है। जो कुछ होता है इसकी वांछनीयता अथवा अवांछनीयता के संबंध में यह कुछ भी नहीं कहता। उदाहरणार्थ, जब हम कहते हैं कि आमतौर पर कोई फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है, तब हम केवल तथ्य की बात कर रहें हैं। इस कथन का किसी प्रकार से ऐसा कोई अभिप्राय नहीं होता कि ऐसा करना सामान्य या कानूनी रूप से उचित है

या नहीं। सामान्य शब्द का प्रयोग वास्तव में किसी घटना (occurrence) या व्यवहार स्वरूप (Behaviour pattern) के सामान्यीकरण के लिए किया जाता है।

इस शब्द का प्रयोग एक अन्य अर्थ में भी होता है। कीमतों, लागतों, संवृद्धि दरों (growth rates) आदि आर्थिक चरों (Economic variables) में यह दीर्घकालिक प्रवृत्ति होती है। उनका कार्य एक विशिष्ट प्रकार का होता है। किसी चर में जिस स्तर (कीमत, उत्पादन, लागत आदि) को प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है उसे उसका (कीमत, उत्पादन, लागत आदि का) सामान्य स्तर कहा जाता है। परंतु अल्पकाल में कोई चर प्रायः अपने सामान्य या दीर्घकालिक मार्ग से हट कर दूर चला जाता है।

2.3 वर्तुल प्रवाहों की प्रणाली के रूप में अर्थव्यवस्था

आप पहले ही पढ़ चुके है कि आर्थिक प्रणाली की स्थापना उर्पादन के संसाधनों में वृद्धि करने तथा सार्थक ढंग से उनका उपयोग करने के लिए की जाती है। व्यक्तियों, परिवारों, व्यवसाय, इकाइयाँ तथा सरकार के अंगों जैसे निर्णय लेने वाले आर्थिक एजेंटों के संबंध में भी आपने पढ़ा है। ये एजेंट उपभोग, उत्पादन, निवेश, विनिमय आदि आर्थिक क्रियाओं को करते हैं। ये क्रियाएँ अव्यवस्थित नहीं होती। इनका अपना एक ढंग होता है वे एक दूसरे के साथ समन्वित होती हैं और अर्थव्यवस्था व्यवस्थित रूप से चलने लगती है। आर्थिक क्रियाओं और उनके द्वारा निर्मित अर्थव्यवस्था के अध्ययन से पता चलता है कि ये क्रियाएँ कुछ निश्चित कानूनों और नियमों का पालन करती हैं। विभिन्न प्रकार की शक्तियों और प्रोत्साहन के प्रति वे संवेदनशील होती हैं। अतः उनके निर्णयन (decision making) और कार्यकलापों का मानकीकरण (standardization) किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि वे अव्यवस्थित नहीं होती बल्कि उनमें इतनी सुसंगतता होती हैं कि उन्हें सामान्य सिद्धान्तों और आर्थिक नियमों के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। इस रूप में देखने पर हम यह अनुभव करते हैं कि अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसके कार्य को कुछ नियमों के रूप में समझा जा सकता है। इस प्रकार विनिमय कार्यो की एक श्रेणी का प्रादुर्भाव होता है जिसका वर्गीकरण और सेवाओं के वर्तुल प्रवाहों के रूप में किया जा सकता है।

1. द्विक्षेत्रीय माडल में आय का चक्रीय प्रवाह तथा राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्यांकन– द्विक्षेत्रीय माडल में दो क्षेत्र हैं– व्यापारिक क्षेत्र तथा घरेलू क्षेत्र। मान लीजिए घरेलू क्षेत्र उत्पादन के सभी साधनों का मालिक है तथा वही व्यापारिक क्षेत्र को इनकी पूर्ति करता है जिसके बदले उसे प्रतिफल प्राप्त होता है। व्यापारिक क्षेत्र सभी प्रकार की वस्तुओं तथा सेवाओं का अकेला उत्पादक है। द्विक्षेत्रीय माडल में चक्रीय प्रवाह की स्थिति को सरल रूप में चित्र 1 तथा 2 में नीचे प्रदर्शित किया गया है–

(A) मान लीजिए घरेलू क्षेत्र व्यापारिक क्षेत्र से उत्पादनों के साधनों की अपूर्ति के बदले इस प्रकार प्रतिफल प्राप्त करता है– मजदूरी 1950 रू0, ब्याज 200 रू0, लगान 75 रू0 तथा लाभ 275 रू0। मान लीजिए वस्तु की 500

इकाइयाँ उत्पादित की जाती हैं जो पांच रूपया प्रति इकाई के अनुसार बेची जाती हैं। इसी स्थिति को नीचे चित्र मे प्रदर्शित किया गया है–

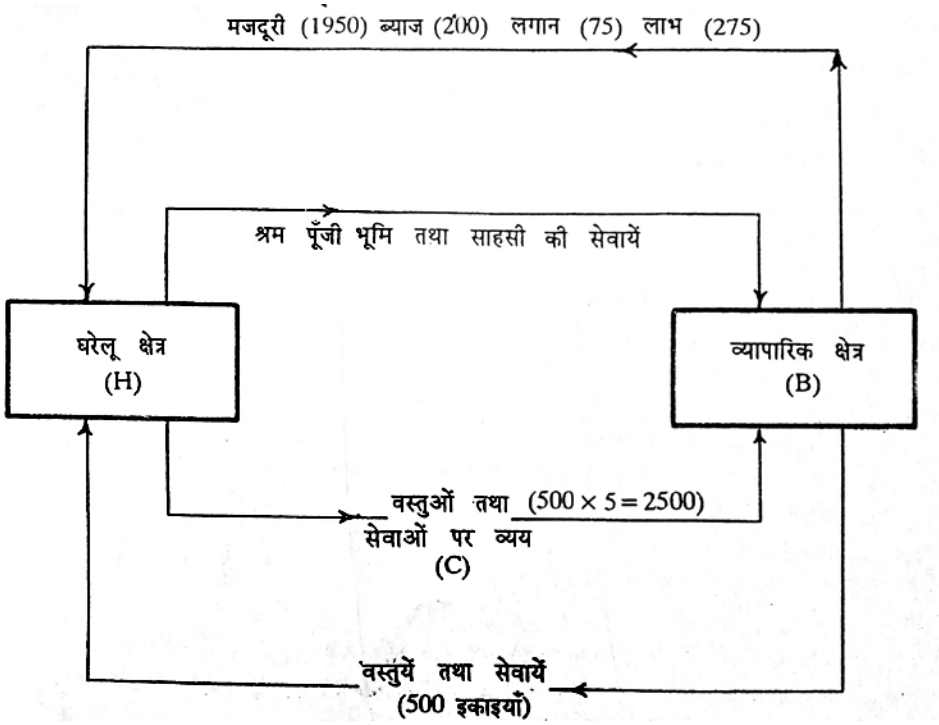

रेखाचित्र का ऊपरी भाग घरेलू क्षेत्र से व्यापारिक क्षेत्र की और साधनों की सेवाओं का प्रवाह प्रदर्शित करता है, जिसके बदले घरेलू श्रेत्र में वापसी प्रवाह मजदूरी, ब्याज, लगान तथा लाभ के रूप में प्रदर्शित है। इस प्रकार ऊपरी भाग 'आय प्रवाह' प्रदर्शित करता है। निचला भाग व्यापारिक क्षेत्र से अन्त्य वस्तुओं तथा सेवाओं का घरेलू क्षेत्र की ओर प्रवाह प्रदर्शित करता है, तथा वापसी प्रवाह वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य के रूप में घरेलू क्षेत्र के व्यय के रूप में प्रदर्शित हैं। निचला भाग व्यय प्रवाह प्रदर्शित करता है।

रेखाचित्र से स्पष्ट है उत्पादित अन्त्य वस्तुओं का मूल्य $500 \times 5 = 2500$ रूपया हैं जो इन पर किया गया कुल व्यय $(C) = 2500$ है तथा यही इसे उत्पादित करने वाले साधनों को दी गयी आय मजदूरी 1950+ ब्याज 200 + लगान 75 + लाभ $275 = 2500$ रू0 है। हम पहले ही देख चुके हैं कि GNP ≡ समग्र व्यय ≡ साधनों को प्राप्त प्रतिफल। इस द्विक्षेत्रीय माडल में घरेलू क्षेत्र अकेली व्यय करने वाली इकाई है, इसलिए समग्र व्यय $= C$

द्विक्षेत्रीय माडल में ही हम एक दूसरी स्थिति लेते हैं जिसमें घरेलू क्षेत्र प्राप्त आय का सम्पूर्ण भाग व्यय नहीं करता है बल्कि व्यक्ति आय का कुछ भाग बचा लेता है।

मान लीजिए पहले वाले उदाहरण में घरेलू क्षेत्र को साधनों के प्रयोग के बदले जो आय 2500 रू0 प्राप्त होती है उसमें से 500 रूपया घरेलू क्षेत्र की बचत है। इस प्रकार व्यय 2000 रूपये का है।

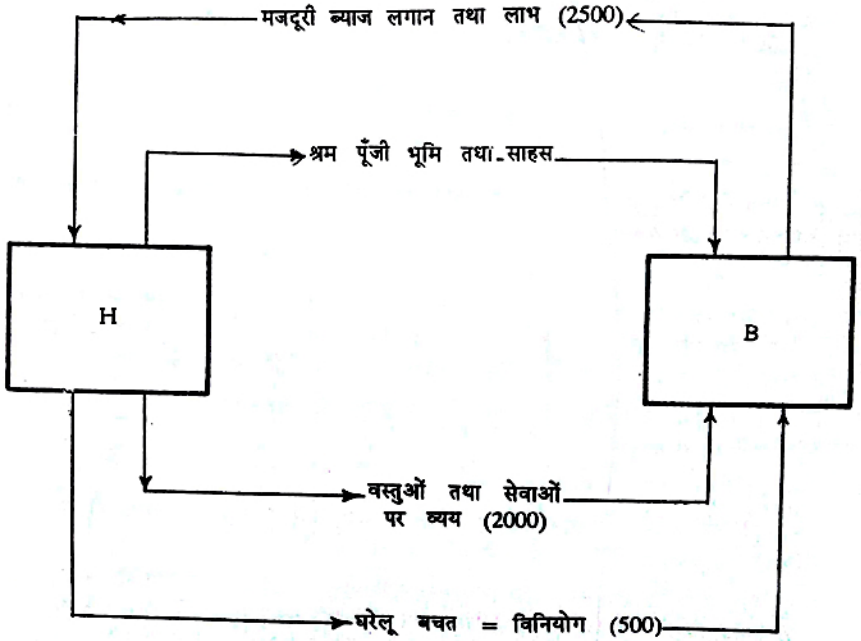

इस स्थिति में ऊपरी भाग के आधार पर तो GNP की गणना चित्र 1 की तरह होगी, GNP = 2500 साधनों की आय, निचले भाग में व्यय के आधार पर GNP = C+I या 2000 + 500 = 2500 , समझाने की दृष्टि से हम एक छोटा–सा उदाहरण और लेते हैं।

मान लीजिए घरेलू क्षेत्र को व्यापारिक क्षेत्र से मजदूरी 4000 रू0 ब्याज 1000 रू0 लगान 500रू तथा लाभ 700 रू0 प्राप्त होता है। मानलीजिए पूँजी सम्पत्ति पर ह्रास 350 रू0, सकल विनियोग 750 रू0 तथा उपभोग व्यय 5800 रूपया है। इस उदाहरण में यदि हम GNP की गणना करना चाहें तो दो प्रकार से कर सकते है। व्यय आधार पर यदि हम गणना करें तो हमें ध्यान में रखना होगा कि GNP = C+I । इसलिए GNP ≡ 5800 + 750 = 6550 रू0। GNP को दूसरे प्रकार से भी ज्ञात कर सकते हैं। हम जानते है कि GNP ≡ NNP +D और एवं द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में जहाँ परोक्ष कर नहीं है, NNP = उत्पादन के साधनों को प्राप्त प्रतिफल। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि GNP = उत्पादन के साधनों को प्राप्त प्रतिफल +D अर्थात 6200 + 350 = 6550। NNP ≡ GNP - D इसलिए इस स्थिति में NNP = 6550 – 350 = 6200 रू0 जो हमें उपभोग व्यय तथा निवल विनियोग (सकल विनियोग – ह्रास या 750–350= 400) अर्थात् 5800 + 400 = 6200 रूपया)। जोड़कर प्राप्त होता हैं।

2. त्रिक्षेत्रीय माडल में आय का चक्रीय प्रवाह, राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्यांकन तथा महत्वपूर्ण समिकायें–

इस माडल में तीन क्षेत्र हैं– घरेलू, व्यापारिक तथा सरकारी। पहले की ही तरह हम यह मान ले रहें हैं कि उत्पादन व्यापारिक क्षेत्र में हो रहा है, सभी उत्पादन के साधनों की पूर्ति घरेलू क्षेत्र व्यापारिक क्षेत्र को करता हैं जिसके बदले उसे आय के रूप में प्रतिफल प्राप्त होता है। इस प्रकार व्यापारिक क्षेत्र को वस्तुओं तथा सेवाओं

के उत्पादन से प्राप्त आय या तो घरेलू क्षेत्र को चली जाती है या परोक्ष कर के रूप में सरकार को जाती है। घरेलू क्षेत्र को प्राप्त आय अन्त्य वस्तुओं तथा सेवाओं पर खर्च होती हैं, कुछ प्रत्यक्ष कर के रूप में सरकार को जाती है तथा कुछ बचत के रूप में रहती है। हम यह मान ले रहे हैं कि सरकार का बजट एक सन्तुलित बजट है, इसलिए सरकार को व्यापारिक क्षेत्र से प्राप्त परोक्ष कर से आय तथा घरेलू क्षेत्र से प्राप्त प्रत्यक्ष कर से आय वस्तुओं तथा सेवाओं के सरकारी क्रय पर व्यय हो जाएगी। त्रिक्षेत्रीय माडल में आय के चक्रीय प्रवाह तथा राष्ट्रीय उत्पाद की धारणा के स्पष्टीकरण के लिएँ आगे रेखाचित्र में दिया गया है।

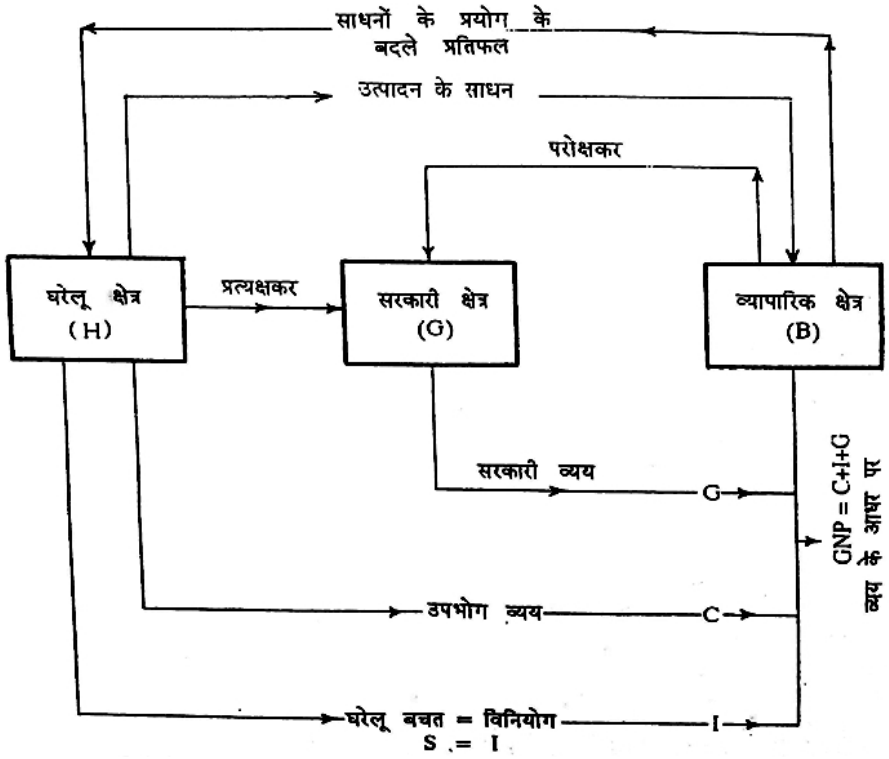

त्रिक्षेत्रीय माडल में राष्ट्रीय उत्पाद की विभिन्न धारणाओं को समझाने के लिए हम एक सरल उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए घरेलू क्षेत्र को व्यापारिक क्षेत्र से प्राप्त होने वाली आय 6000 रूपये है जिसमें से 5000 रूपया वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय हैं। घरेलू क्षेत्र 300 रूपया सरकार को प्रत्यक्ष कर के रूप में देता है तथा 700 बचत करता है। सरकार को व्यापारिक क्षेत्र से 500 रूपया परोक्ष कर के रूप में देता है तथा 700 बचत करता है। सरकार को व्यापारिक क्षेत्र से 500 रूपया परोक्ष कर के रूप में प्राप्त होता है। सरकारी व्यय 800 रूपया है। विनिमय पर व्यय 700 रूपया है।

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि GNP $\equiv$ C + I + G अर्थात व्यय के आधार पर GNP = 5000 (C) + 700 (I) + 800 (G) = 6500 रूपया। GNP की गणना हम घरेलू क्षेत्र को प्राप्त (6000) तथा परोक्ष कर (500 रूपया) को जोड़कर प्राप्त कर सकते हैं, द्विक्षेत्रीय माडल में जब परोक्ष कर था हम लोगों ने देखा था कि NNP साधनों से प्राप्त प्रतिफल के बराबर होगा।

3. चार क्षेत्रीय प्रणाली या खुली अर्थव्यस्था में चक्रीय प्रवाह

अब तक हम लोगों ने चक्रीय प्रवाह की जो व्याख्या की वह एक बन्द अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित थी, जिसे हम लोगों ने त्रिक्षेत्रीय प्रणाली कहा। अब हम खुली अर्थव्यवस्था लेते हैं जिसमें हम H. B तथा G के साथ विदेशी क्षेत्र ¼F½ भी सम्मिलित कर लेते हैं। वैसे हम लोगों ने सकल राष्ट्रीय आय की व्याख्या करते समय विदेशी क्षेत्र को सम्मिलित करके कुछ मूलभूत समस्याओं का विश्लेषण किया था, यहाँ हम विदेशी क्षेत्र के सम्मिलित करने के कारण उत्पन्न होने वाली निम्नांकित चार बातों का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं–

(i) अर्थव्यवस्था के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मूल्य आवश्यक रूप से उत्पादित अन्त्य वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य के योग के बराबर नहीं होगा। यह बराबर तभी होगा जब निवल निर्यात मूल्य $(X-M) = 0$ हो या सकल निर्यात = सकल आयात। यदि $(X-M) = 0$ अन्त्य वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य घरेलू उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं से कम होगी, पर यदि $(X-M) < 0$ या निवल निर्यात शून्य से कम है या आयात निर्यात से अधिक है, तो इस स्थिति में अन्त्य वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य, चालू वर्ष में देश के भीतर उत्पादित सकल उत्पादन से अधिक होगा।

(ii) वस्तुओं तथा सेवाओं का निर्यात चक्रीय प्रवाह में अतिरिक्त आय प्रवाहित करता हैं, जबकि दूसरी ओर आयात चक्रीय प्रवाह से आय की निकासी है।

(iii) घरेलू अर्थव्यवस्था द्वारा विश्व के शेष देशों में तथा विश्व के देशों द्वारा घरेलू अर्थव्यवस्था में विनियोग किया जाता है। यदि निवल घरेलू विनियोग शून्य से अधिक हो तो चक्रीय प्रवाह से आय की निकासी होगी, निवल घरेलू विनियोग के शून्य से अधिक होने की स्थिति देश के भीतर आने वाले विनियोग की अपेक्षा देश से बाहर जाने वाले विनियोग के रूप मे आय प्रवाह से रिसाव अधिक होगा पर इसके विपरीत यदि निवल घरेलू विनियोग शून्य से कम हो तो चक्रीय प्रवाह में आय प्रवाहित होगी।

(iv) घरेलू अर्थव्यवस्था द्वारा शेष विश्व के देशों तथा विश्व के देशों द्वारा घरेलू अर्थव्यवस्था को कुछ हस्तान्तरण भुगतान किये जाते हैं, जैसे ब्याज, लाभांश आयात–निर्यात जो विनियोग में सम्मिलित नहीं रहते हैं। इन भुगतानों का प्रभाव चक्रीय प्रवाह पर पड़ता हैं। घरेलू क्षेत्र द्वारा शेष विश्व को किया गया हस्तान्तरण भुगतान चक्रीय प्रवाह से निकासी है जबकि शेष विश्व द्वारा घरेलू अर्थव्यवस्था में किया गया हस्तान्तरण भुगतान चक्रीय प्रवाह में अतिरिक्त आय का डालना हैं।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए अब चार क्षेत्रीय प्रणाली में आय के चक्रीय प्रवाह की समस्या पर विचार करेंगे। एक बात और, हम लोगों ने जो चक्रीय प्रवाह का विश्लेषण त्रिक्षेत्रीय प्रणाली में किया, उसे भी चार क्षेत्रीय प्रणाली की व्याख्या के समय ध्यान में रखना आवश्यक हैं।

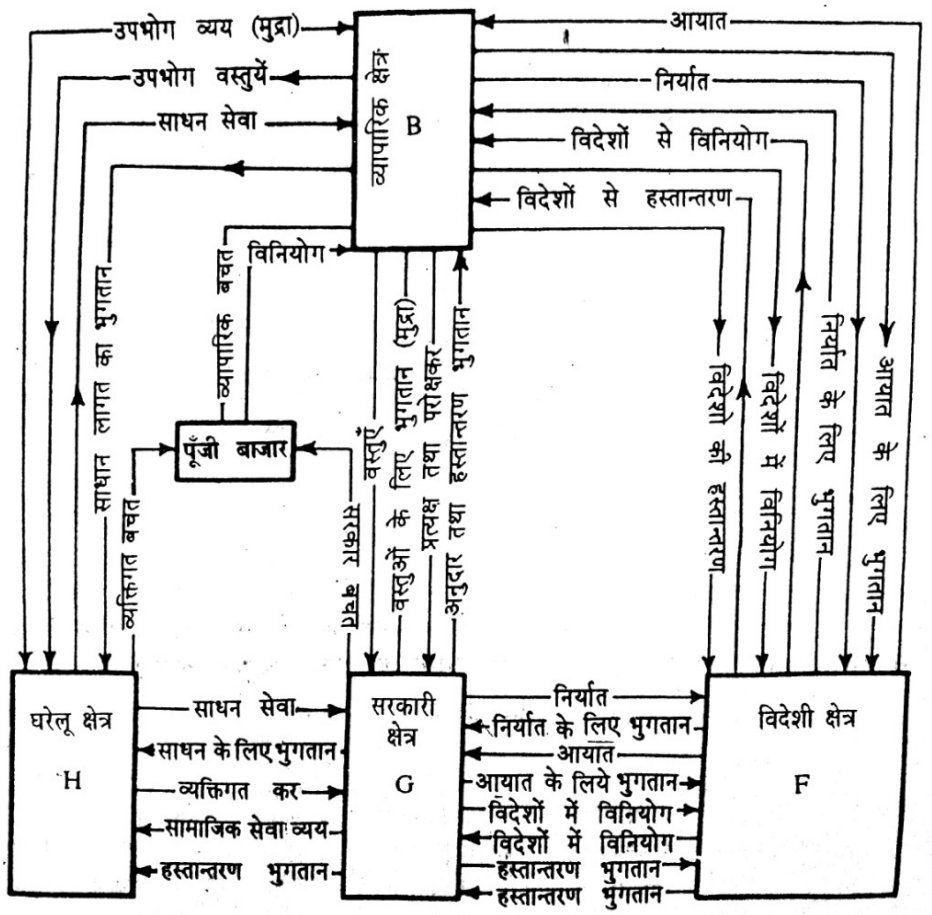

विश्लेषण के समय हमें इस बात को ध्यान में रखना है कि सभी क्षेत्रों H, B, G तथा F के बीच परस्पर कौन–कौन से प्रवाह होते हैं तथा किस प्रकार अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह को प्रभावित करते हैं। बिना इनके ज्ञान के चक्रीय प्रवाह के विश्लेषण को समझना कठिन होगा।

ऊपर रेखाचित्र में चारों क्षेत्रों H, B, G, तथा F को एक साथ सम्मिलित करके चक्रीय प्रवाह की क्रिया प्रदर्शित की गयी है। रेखाचित्र में व्याख्या करते समय यह मान लिया गया है। कि H का प्रत्यक्ष सम्बन्ध F के साथ नहीं है, विदेशी क्षेत्र से सम्बन्ध केवल व्यापारिक क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र का ही है। B, G, तथा F के बीच वस्तुओं, सेवाओं तथा मुद्रा का किस रूप में तथा किस प्रकार प्रवाह होता है, यह संकेतक तीरों की दिशा से उन पर संकेतित मदों से सुस्पष्ट हो जाता है।

G तथा F की क्षेत्र की ओर प्रवाह के रूप में निर्यात, आयात के लिए भुगतान, विदेशों में विनियोग, हस्तान्तरण भुगतान आदि प्रदर्शित है जबकि विदेशों से अन्तर्प्रवाह के रूप में निर्यात के लिए भुगतान, हस्तान्तरण भुगतान, आयात, विदेशों से विनियोग आदि प्रदर्शित है। ठीक इसी प्रकार की मदें B तथा F के बीच बहिर्प्रवाह तथा अन्तर्प्रवाह के रूप में प्रदर्शित हैं। H तथा B, H तथा G एवं B तथा G के बीच भी परस्पर प्रवाहित होने वाली मदें प्रदर्शित हैं।

बोध प्रश्न 'क'

1. किसी वस्तु के विनिमय–मूल्य और उपयोग–मूल्य के बीच भेद बताएँ।
2. माँग के नियम की व्याख्या करें।
3. किसी वस्तु की कीमत एवं पूर्ति के संबंध की व्याख्या करें।
4. उपभोग और निवेश के बीच भेद बताएँ।
5. आय के चक्रीय प्रवाह की व्याख्या करें।
6. वस्तु–विनिमय और मुद्रा–विनिमय के बीच भेद बताएँ।
7. **बताए कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत।**

   (i) उपयोगिता वस्तुपरक होती है तथा इसे मापा जा सकता है।

   (ii) किसी वस्तु की अंतिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता को उसकी सीमांत उपयोगिता कहा जाता है।

   (iii) किसी वस्तु के उपयोग–मूल्य और उसके विनिमय–मूल्य के बीच कोई भेद नहीं होता।

   (iv) विभिन्न व्यक्तियों या विभिन्न समय के बीच किसी वस्तु के उपयोग मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता।

   (v) किसी देश के वित्तीय संसाधन उसकी संपत्ति के अंग होते हैं।

   (vi) किसी वस्तु की कीमत और पूर्ति की गति प्रायः विपरीत दिशा में होती हैं।

   (vii) किसी वस्तु के उपभोग और उसकी उपयोगिता के विनाश के बीच कोई भेद नहीं होता।

   (viii) किसी वस्तु की मांग और कीमत की गति प्रायः विपरीत दिशा में होती है।

   (ix) कोई व्यक्ति यदि छः संतरे खरीदता है तब छठे संतरे की उपयोगिता उसके लिए संतरों की सीमांत उपयोगिता होती है।

   (x) अर्थशास्त्र में सामान्य क्रिया सदा ही सही प्रकार की क्रिया होती है।

2.4 आर्थिक कार्य–पद्धति और आर्थिक नियम

प्रत्येक विज्ञान के पास अपनी विश्लेषण की तकनीकें (विश्लेषण के उपकरण), विश्लेषण किए जाने वाली मूल सूचना (आधार–सामग्री) को एकत्रित करने के उपाय, तर्क की पद्धति आदि होते हैं। इन सबके योग को इस विज्ञान की कार्य–पद्धति (methodology) कहा जाता हैं। अर्थशास्त्र में भी एक समुचित कार्य–पद्धति की आवश्यकता पड़ती हैं और प्रत्येक अर्थशास्त्री इसके किसी न किसी रूप को अपने काम में लाता है। प्रत्येक अर्थशास्त्र में कुछ कारणों के आधार पर अनुमान लगाए जाते हैं या निष्कर्ष निकाले जाते हैं। ये कारणों काल्पनिक स्थितियों के रूप में हो सकते हैं या वे प्रेक्षित तथ्यों (observed facts) से प्राप्त किये जा सकते हैं या ये इन दोनों के मिश्रण हो सकते हैं। इसके पश्चात् उनके

अनुरूप परिणाम निकाला जाता है। तथा निर्दिष्ट कारणों और उनके परिणाम के बीच के संबंध को दिखाने वाले कथन को इस विज्ञान का नियम कहा जाता हैं। प्रत्येक विज्ञान में ऐसे अनेक नियम होते हैं।

सामाजिक विज्ञान में विषय–वस्तु होती है– समाज व्यवस्था में मुनष्य का व्यवहार। इसमें ऋषि–मुनियों जैसे उन व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन नहीं किया जाता है जो समाज से अलग पर्वतों–वनों जैसे एकांत स्थानों मे रहते हैं। सामाजिक विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र होता है समाज में रहने वाले व्यक्तियों के कार्य (व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही प्रकार के)। विभिन्न कारणों और शक्तियों के प्रत्युत्तर में समाज के सदस्य किस प्रकार के कार्य करते है, उसे जानने का प्रयास किया जाता है और फिर कारणों तथा शक्तियों की विभिन्न श्रणियों के प्रत्युत्तर में प्रत्याशित व्यवहारात्मक परिणाम को सामान्य सिद्धान्तों के रूप में रखा जाता हैं। ये सामान्य सिद्धान्त (gerneralisations) प्रवृत्तियों के विवरण होते हैं और वे सामाजिक नियम कहैं जाते हैं।

अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, अतः आर्थिक नियम सामाजिक नियमों के अंग होते हैं। अल्फ्रेड मार्शल के शब्दों में, हमें समाज के सदस्यों के व्यवहार के उस अंश को अलग कर लेना चाहिए जहां मुख्य उद्देश्य को मुद्रा–कीमत (money price) के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है तब इसके अनुरूप क्रियाएँ आर्थिक क्रियाए होती हैं। लेकिन आर्थिक नियमों और अन्य सामाजिक नियमों के बीच की विभाजन रेखा सदा स्पष्ट नहीं होती। कभी–कभी कोई कार्य आर्थिक तथा आर्थिकेतर (economic and non economic) इन दोनों ही कारणों से किया जाता हैं। अतः अक्सर ऐसे आर्थिक नियमों को बनाना कठिन होता है, तो पूर्णतः युक्तिसंगत हों अथवा न भी हों।

2.4.1 आगमनात्मक और निगमनात्मक तर्क (Inductive and Deductive Reasoning)-

मार्शल के अनुसार ''प्रत्येक विज्ञान की भाँति अर्थशास्त्र का कार्य भी तथ्यों को एकत्रित करना, उन्हैं व्यवस्थित करना तथा उनसे निष्कर्ष निकालना है। ''इसीलिए प्रो0 बोल्डिंग ने यह कहा कि ''आर्थिक विश्लेषण का प्रधान उद्देश्य ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण करना है जिनके द्वारा तथ्यों का चयन एवं विवेचन हो सके। ''पर प्रश्न यह है कि किस प्रकार एकत्रित तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाए? अथवा किस प्रकार 'कारण एवं 'परिणाम' के आधार पर नियम का निर्देश किया जाय? यह समस्या न केवल अर्थशास्त्र की है बल्कि सभी प्रकार के विज्ञानों की है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भिन्न–भिन्न प्रणालियों या रीतियों का प्रयोग किया जाता है और वे उस विज्ञान की रीतियाँ कहलाती हैं। अर्थशास्त्र के अध्ययन में प्रमुख रूप से दो विधियों का प्रयोग किया जाता हैं– (A) निगमन विधि (Deductive Method) जिसे ऐतिहासिक, प्रायोगिक (experimental) तथा सांख्यिकीय विधि भी कहते हैं। (A) आगमन विधि (Inductive Method) जिसे विश्लेषणात्मक, वैज्ञानिक तथा गणितीय विधि भी कहते है, निगमन विधि मे तर्क प्राधान्य होता है जबकि आगमन विधि में तथ्यों का। अब हम इन दोनों विधियों पर प्रकाश डालेंगे।

(1) निगमन विधि

निगमन विधि का प्रयोग 19 वीं शताब्दी में क्लासिकल अर्थशास्त्रियों विशेषतः रिकार्डो ने किया। इस प्रकार यह आर्थिक अध्ययन की सबसे प्राचीन प्रणाली है। निगमन विधि अध्ययन की वह प्रणाली है जिसमें सामान्य सत्य (general truth) या

सर्वमान्य स्वयंसिद्ध या आधारभूत तथ्यों को आधार मानकर विशिष्ट सत्य या निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस प्रकार इसमें अध्ययन का क्रम 'सामान्य से विशिष्ट की ओर' (From general to particular) होता है इस रीति के प्रमुख उदाहरण के रूप में दिया जाता है कि 'यह स्वयंसिद्ध सत्य है। कि मनुष्य एक मरणशील प्राणी है। चूँकि राम भी एक प्राणी है इसलिए यह भी मरणशील होगा।' आर्थिक उदाहरण लीजिए। सभी मनुष्य सस्ते मूल्य पर वस्तुओं को खरीदना चाहते हैं इसलिए यह विशिष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि A भी (जो मनुष्य है) सस्ते मूल्य पर वस्तुओं को खरीदने का प्रयत्न करेगा। चूँकि इस प्रणाली में केवल अनुमान ही लगाये जा सकते हैं इसलिए इसे अनुमान प्रणाली कहा जा सकता हैं। प्रो0 बोल्डिंग निगमन रीति को 'प्रबुद्ध प्रयोग रीति' (Intellectual experimet method) कहते हैं। उनके अनुसार वास्तविक संसार जटिलताओं तथा उलझनों से भरा हुआ है, फलस्वरूप उसका वास्तविक रूप में (उसी रूप में) अध्ययन नहीं किया जा सकता है। अतः अध्ययन करते समय सबसे पहले कम वास्तविक तथा सरल मान्यताओं के साथ प्रारम्भ करते हैं, तदन्तर धीरे–धीरे अन्य जटिल मान्यताओं को अध्ययन में सम्मिलित करते जाते हैं जिससे कि वास्तविकता तक पहुँचा जा सके। निगमन रीति दो प्रकार की होती है–गणितीय तथा अगणितीय (Non Mathematical)। अगणितीय विधि का प्रयोग क्लासिकल तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने किया। इसके अन्तर्गत गणित के चिन्हों अथवा गणित की विधियों को प्रयोग नहीं किया जाता हैं। गणितीय विधि का प्रयोग प्रो0 एजवर्थ ने 19 वीं शताब्दी मे पर्याप्त मात्रा में किया। आजकल आर्थिक निष्कर्षो के अध्ययन में इसका बहुत अधिक प्रयोग हो रहा है।

(2) आगमन विधि

आगमन विधि निगमन विधि के ठीक विपरीत हैं। इस विधि के अन्तर्गत तर्क के माध्यम से विशिष्ट सत्य के आधार पर सामान्य निष्कर्ष तक पहुँचा जाता हैं। इस प्रकार इसमें तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर (From particular to-general) होता है। आगमन विधि के अन्तर्गत सबसे पहले व्यक्तिगत निरीक्षणों (Observations) तथा प्रयोगों (Experiments) के माध्यम से विशिष्ट सत्यों का पता लगाया जाता है और फिर उन्हीं सत्यों के आधार पर सामान्य सत्य या सामान्य नियम का प्रतिपादन किया जाता हैं। उदाहरण के लिए यदि यह देखा जाय कि चावल के मूल्य में कमी होने पर 100 व्यक्तियों ने चावल के क्रय को बढ़ा दिया है तथा इसी प्रकार गेहूँ के मूल्य में कमी होने के बाद 70 लोगों ने गेहूँ की मांग में वृद्धि कर दी है तो यह सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि वस्तुओं के मूल्य में कमी होने पर उनकी माँग बढ़ जाती हैं। स्पष्ट है कि यहाँ तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर है। इस विधि के अन्तर्गत सांख्यिकी या इतिहास से सामाजिक तथ्यों को संकलित किया जाता हैं। घटनाओं का पर्यवेक्षण करके उनसे संबंधित आंकड़े एकत्रित किए जाते हैं और उनके विश्लेषण के द्वारा नियम प्रतिपादित किए जाते हैं।

सामान्यतया आगमन रीति के दो रूप हैं– (A) प्रायोगिक रीति (Experimental Method) तथा (B) सांख्यिकीय रीति (Statistical Method)। जहाँ तक प्रायोगिक आगमन रीति का प्रश्न है इसका प्रयोग भौतिक विज्ञानों में किया जाता है, जहाँ प्रयोग की सुविधाएँ हैं, प्रयोगशालाएँ हैं तथा जिसमें प्रयोगकर्ता किसी तथ्य का अपनी इच्छानुसार किसी निश्चित अवस्था में अध्ययन कर सकता है पर अर्थशास्त्री ऐसा नहीं कर सकता है। अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जिसका विषय

मानव–व्यवहार है जो भौतिक विज्ञानों के प्रयोगों की तरह निर्जीव नहीं। अर्थशास्त्री घटनाओं का उसी रूप में अध्ययन करता है, उन्हें बदल नहीं सकता हैं।

ऊपर निर्दिष्ट कठिनाई के कारण अर्थशास्त्र में सांख्यिकीय रीति का विशेष महत्व है। सामाजिक विज्ञान में तथ्यों का अध्ययन बहुत अधिक जटिल हैं सामाजिक विज्ञान में तथ्यों के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि अनेक व्यक्तियों द्वारा किसी घटना से सम्बन्धित तथ्यों के संबंध में आँकड़े एकत्रित किये जायें, उनका विश्लेषण किया जाय तथा उनके आधार पर नियम प्रतिपादित किये जाएँ। उदाहरण के लिए यदि अनेक देशों में उपलब्ध आय संबंधी आँकड़े एकत्रित किए जाएँ, उनका विश्लेषण किया जाय तभी यह कहा जा सकता है कि भारत एक गरीब देश है क्योंकि इसमें आय का स्तर अत्यन्त नीचा है। इस प्रकार का अध्ययन आगमन की सांख्यिकीय विधि के अनुसार होगा। स्पष्ट है कि आगमन की सांख्यिकीय रीति को ही आगमन रीति कहा जाना चाहिए। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आगमन–विधि का प्रारम्भ निगमन विधि के दोषों की प्रतिक्रिया के रूप में जर्मनी के ऐतिहासिक स्कूल (Historical school) द्वारा हुआ। **इसका प्रारम्भ रोशर (Roscher) की प्रसिद्ध पुस्तक 'राजनीति अर्थशास्त्र' (1854) के प्रकाश्न से हुआ।** बाद में इसका समर्थन लिस्ट, नीज (Knies) तथा हिल्डब्राण्ड (Hildebrand) द्वारा हुआ।

2.4.2 यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहैं (Ceteris Paribus)–

इन्हीं सब कारणों से प्रत्येक आर्थिक नियम के साथ कुछ शर्तें या सीमाबंधन लगे होते हैं। उसके साथ ये शब्द जुड़े होते हैं कि यदि अन्य बातें पूर्ववत रहें, जिसका अर्थ होता है कि यदि अन्य बातें पहले के समान रहैं। जहाँ इन शब्दों को स्पष्ट रूप में नहीं कहा जाता, वहाँ भी यह मान लिया जाता है कि ये मौजूद हैं। इस शर्त का अर्थ यह है कि ये कारण जब कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं।, तब अंतिम परिणाम के होने तक उनमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्य विज्ञानों में भी यह शर्तें सदा स्पष्ट रूप में दी हुई होती हैं। अन्य विज्ञानों में ''यदि अन्य बातें पूर्ववत रहें''। शर्त प्रायः प्रयोगशाला की स्थितियों में लागू होती है या उसे कार्य में लाया जा सकता है। परन्तु अर्थशास्त्र मे यह शर्त पूरी नहीं हो पाती। नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत आर्थिक प्रयोग करना संभव नहीं होता। चूँकि आर्थिक नियमों से हमारा अभिप्राय विभिन्न शक्तियों के प्रत्युत्तर में आर्थिक क्रियाओं का विवरण है, अर्थशास्त्री कुछ ऐसे निर्देशक सिद्धान्तों (guiding principles) को काम में लाते हैं जिनके अंतर्गत प्रतिक्रियाओं के होने की धारणा की जाती हैं। ऐसा एक निर्देशक सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई विभिन्न कारणों के प्रति अपने उत्तर का निर्णय तर्क की कसौटी के आधार पर करती है (इकाई 1 में आप इस संकल्पना के संबंध में पढ़ चुके हैं।) इसका अर्थ है कि प्रत्युत्तर (response) का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि उससे यह आशा की जा सके कि वह उत्तरदायी इकाइयों के हित की रक्षा भली भाँति करेगा। उदाहरणार्थ, किसी उपभोक्ता से आशा की जाती है कि वह व्यय की दी हुई मात्रा का उपयोग अपनी खरीद द्वारा अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिए करेगा। किसी एकाधिकारी से यह आशा की जाती है कि वह अपने उत्पादन की उस मात्रा को चुनेगा और अपने उत्पादन के लिए उस कीमत को निश्चित करेगा जिससे उसे अधिकतम लाभ मिल सके।

आर्थिक नियम को बनाने से संबंधित दूसरा निर्देशक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई तर्कसम्मत प्रयोजन से कार्य करते

हुए इष्टतम (optimum) अर्थात् सर्वोत्तम प्राप्य स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करती है। इष्टतमीकरण (optimization) का अर्थ यह होता है कि किसी मापदंड या उद्देश्य को निश्चित कर लिया जाता है और फिर इसे प्राप्त करने या यथासंभव इसके अधिक से अधिक निकट पहुँचने का प्रयास किया जाता है। इस मापदंड की दो कसौटियाँ हैं, लाभ को अधिकतम करना तथा उत्पादन लागत को कम से कम करना। व्यवहार रूप में कुछ कठिनाइयों के कारण इस कसौटियों तक नहीं भी पहुँचा जा सकता हैं।

2.4.3 संतुलन (Equilibrium)

संस्थिति से तात्पर्य 'संतुलन की अवस्था' (State of balance) या 'विश्राम की अवस्था' (State of rest) से है। सामान्यतया जब एक ही विषय या वस्तु (object) पर क्रियाशील होने वाली दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ परस्पर सन्तुलित हो जाएँ तो वह जिस पर ये शक्तियाँ कार्य कर रही थीं, संस्थिति की अवस्था में कही जाएगी। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि अर्थशास्त्र में संस्थिति या सन्तुलन का अर्थ भौतिकशास्त्र में इसके अर्थ से भिन्न है। भौतिक विज्ञान में या यांत्रिक पदावली में संस्थिति से अभिप्राय ऐसी स्थिति से है जिसमें गति नहीं रह जाये। रस्सी के सहारे लटकाया हुआ एक पत्थर का टुकडा तब तक असन्तुलन में कहा जायेगा जब तक कि उसमें गति हो पर जब उस पर काम करने वाली शक्तियाँ, जो उसमें गति पैदा कर रही थीं, समाप्त हो जायें य सन्तुलित हो जायें तो उस पत्थर के टुकडे में गतिशून्यता आ जायेगी और वह साम्य या संस्थिति की स्थिति में कहा जाएगा, पर अर्थशास्त्र में संस्थिति का अर्थ आवश्यक रूप से गति का समाप्त होना नहीं है। वस्तुस्थिति तो यह है कि यदि गति समाप्त हो जाये तो अर्थव्यवस्था ही ध्वस्त हो जाएगी। अर्थशास्त्र में संस्थिति का आशय यह नहीं है कि संस्थिति की स्थिति में गति नहीं होनी चाहिए बल्कि गति की दर (rate of movement) में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए। एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का उत्पादन तथा उपभोग किया जा रहा है अर्थात् उनमें गति है। संस्थिति का अर्थ यह नहीं है कि इसमें गति नहीं हो अर्थात् उत्पादन तथा उपभोग का होना बन्द हो जाय बल्कि यह है कि उत्पादन तथा उपभोग की गति की दर में परिवर्तन नहीं होना चाहिए। जब तक इनकी दरें यथास्थिर रहैंगी अर्थव्यवस्था संस्थिति की स्थिति में होगी, जैसा प्रो0 मेहता ने कहा 'अर्थशास्त्र में संस्थिति गति परिवर्तन की अनुपस्थिति बतलाती है जबकि विज्ञान में यह संस्थिति स्वयं गति की अनुपस्थिति को ही बतलाता है।'

प्रो0 सिटोवास्की ने संस्थिति को और स्पष्ट करते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया 'कोई भी व्यक्ति संस्थिति की स्थिति में तब होगा जब वह यह समझे कि इन परिस्थितियों में जितना अधिक से अधिक सम्भव हो सकता है उतने उत्तम ढ़ंग से उसने वास्तविक व्यवहार किया है और जब तक परिस्थितियाँ अपरिवर्तित रहैं उसे अपने व्यवहार को बदलने की इच्छा नहीं हो। यही बात एक फर्म की भी संस्थिति के सम्बन्ध में सत्य हैं। इस प्रकार कोई बाजार, कोई अर्थव्यवस्था, व्यक्तियों तथा फर्मों का कोई समूह संस्थिति की स्थिति में होगा जबकि उसका कोई सदस्य अपने वर्तमान व्यवहार को बदलने के लिए बाध्य नहीं हैं।'' संस्थिति की अब तक की व्याख्या से यह स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति, फर्म, समूह या अर्थव्यवस्था उस समय संस्थिति की स्थिति में कही जाएगी जबकि दी हुई परिस्थितियों में वह एक ऐसी स्थिति को प्राप्त कर ले जिससे उत्तम स्थिति की प्राप्ति किसी भी प्रकार के परिवर्तन या पुनर्गठन से सम्भव ही नहीं हो। वस्तु बाजार मॉडल के प्रयोग के द्वारा संस्थिति को और स्पष्ट किया जा सकता है। वस्तु के मूल्य के निर्धारण के सम्बन्ध

में यह ज्ञात है कि माँग एवं पूर्ति की शक्तियाँ जिस मूल्य पर समान हो जाती हैं, वही मूल्य संस्थिति मूल्य होगा। जैसा हम आगे देखेंगे, माँग तथा पूर्ति दोनों ही मूल्य के फलन हैं। यदि Q_d वस्तु की माँगी गयी मात्रा, Q_s वस्तु की पूर्ति, P मूल्य तथा f फलनात्मक सम्बन्ध का प्रतीक हो तो माँग एवं मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, जिसका अर्थ यह होगा कि मूल्य के परिवर्तन का प्रभाव माँग तथा पूर्ति पर पडेगा।

$$Q_d = f(P)$$

$$Q_s = F(P)$$

इसलिए संस्थिति की स्थिति वहाँ होगी जहां P के एक निश्चित स्तर पर माँग पूर्ति के बराबर हो।

$$Q_d = Q_s$$

माँग एवं पूर्ति की इन शक्तियों के क्रियाशीलन के द्वारा किस प्रकार संस्थिति मूल्य का निर्धारण होगा इसे रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया हैं।

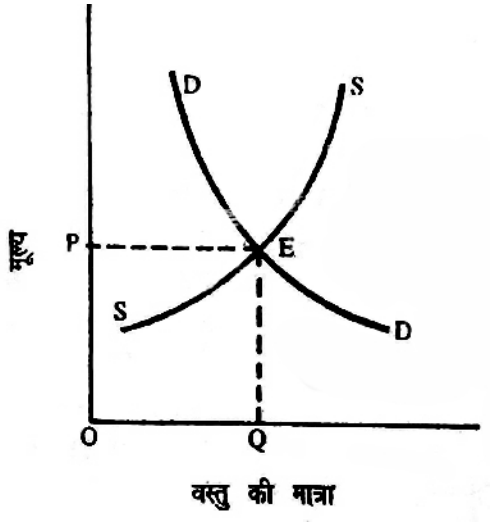

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि DD माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र SS पूर्ति वक्र E बिन्दु पर एक दूसरे के बराबर हैं। OP संस्थिति मूल्य है। यदि इससे मूल्य अधिक हो तो माँग पूर्ति की अपेक्षा कम होगी तथा कम होने पर माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक होगी। दोनों ही परिस्थितियों में असंस्थिति की स्थिति होगी। इस प्रकार OP ही एक ऐसा मूल्य है जिस पर वस्तु की माँग ठीक उतनी ही है जितनी कि उत्पादक बेचना चाहते हैं। यही संस्थिति की स्थिति है।

(1) संस्थिति के प्रकार (Kinds of Equilibrium)

स्थिर (Stable), अस्थिर (Unstable) तथा तटस्थ (Neutral) संस्थिति– एक इकाई या अर्थव्यवस्था उस समय स्थिर संस्थिति में हो जाएगी जबकि किसी कारण से संस्थिति की स्थिति भंग होने पर या असन्तुलन होने पर ऐसी शक्तियाँ स्वतः क्रियाशील हो जायें जिससे संस्थिति की प्रारम्भिक स्थिति की प्राप्ति हो जाये या उसमें उसे प्राप्त होने की प्रवृत्ति हो। अस्थिर संस्थिति की स्थिति उस समय होगी जबकि किसी भी गड़बड़ी के कारण संस्थिति भंग होने पर ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील होने लगें जिससे संस्थिति की मूल स्थिति निरन्तर दूर ही होती जाय, इस प्रकार

एक बार असन्तुलन पैदा होने पर संस्थिति की मूल स्थिति पुनः न प्राप्त हो तथा तटस्थ संस्थिति उस समय होगी जबकि एक बार संस्थिति की स्थिति भंग होने पर पुरानी संस्थिति की स्थिति तो न प्राप्त हो बल्कि उसी स्तर पर अर्थात् मूल संस्थिति की स्थिति तथा नई संस्थिति की स्थिति में कोई अन्तर न हो नयी संस्थिति को पहुँचकर स्थिर हो जायैं

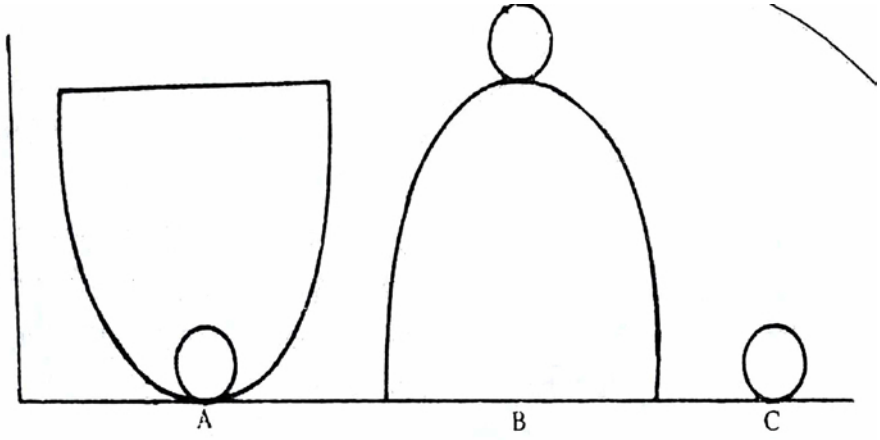

इसका प्रदर्शन ऊपर दिये गये चित्र में किया गया है– इसमें A स्थिर संस्थित, B मे अस्थिर तथा C में तटस्थ संस्थिति का प्रदर्शन किया गया हैं।

(क) **'स्थिर संस्थिति मूल्य' (Stable equilibrium value)** का प्रदर्शन इस रेखाचित्र में किया गया है–

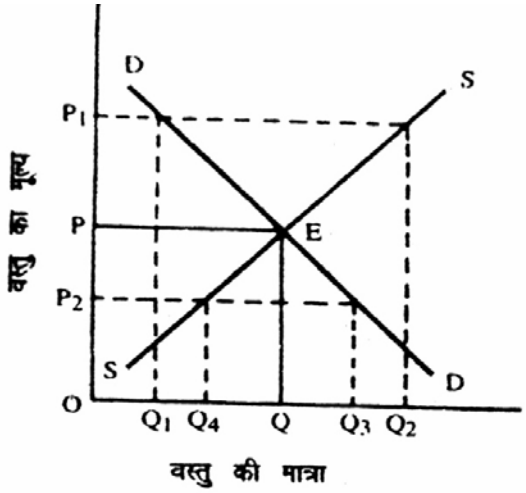

इस रेखाचित्र मे DD माँग वक्र तथ SS पूर्ति वक्र एक दूसरे के E बिन्दु पर बराबर हैं। OP स्थिर संस्थिति मूल्य है। इस रेखाचित्र में DD का ढाल ऋणात्मक है तथा SS का ढाल धनात्मक है, दोनों का स्वरूप सामान्यतया पाया जाने वाला स्वरूप हैं। OP स्थिर संस्थिति मूल्य है क्योंकि मूल्य मूल्य OP से कम या अधिक हो जाये तो पुनः OP मूल्य कायम हो जाएगा। मान लीजिये मूल्य OP से बढ़कर OP_1 हो जाय तो माँगी गयी मात्रा OQ_1 तथा पूर्ति की मात्रा OQ_2 होगी, पूर्ति मांग से अधिक होगी। (OQ_2 की मात्रा OQ_1 से अधिक)। ऐसी स्थिति में मूल्य नीचे गिरेगा, और तब तक गिरता जायेगा जब तक कि वह OP पर न आ जाये, जहाँ माँग तथा पूर्ति परस्पर बराबर हैं। इसी प्रकार यदि मूल्य OP से गिरकर OP_2 हो जाये तो पूर्ति OQ_4 तथा माँग OQ_3 होगी, माँग पूर्ति से अधिक होगी ($OQ_3 > OQ_4$), मूल्य में

ऊपर उठने की प्रवृत्ति होगी और मूल्य तब तक ऊपर उठेगा जब तक कि यह संस्थिति मूल्य OP पर न पहुँच जाये।

(ख) 'अस्थिर संस्थिति मूल्य' (Unstable equilibrium value)– उस समय होगा जबकि माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र सामान्यतया पाये जाने वाले स्वरूप के नहीं हों।

जब माँग वक्र का ढाल धनात्मक हो अर्थात् यह दाहिनी ओर नीचे गिरती हुई न हो बल्कि बायीं ओर ऊपर उठती हुई हो जैसे गिफेन वस्तुओं या निकृष्ट कोटि की वस्तुओं (inferior goods) के सम्बन्ध में पाया जाता है तथा पूर्ति वक्र का ढाल ऋणात्मक हो एक अत्यन्त ही काल्पनिक स्थिति तो अस्थिर संस्थिति मूल्य की स्थिति पायी जाएगी। इसका प्रदर्शन नीचे रेखाचित्र में किया गया है–

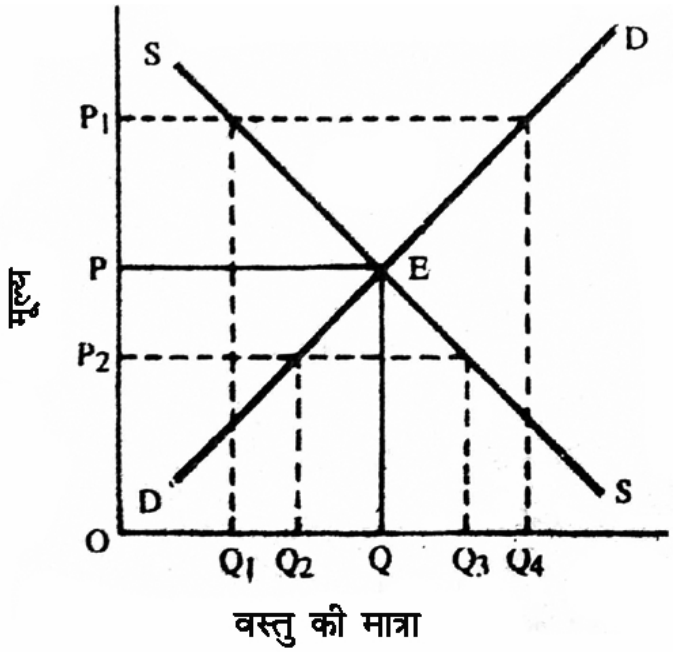

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि मूल संस्थिति मूल्य OP है पर यदि मूल्य बढ़कर OP_1 हो जाये तो पूर्ति OQ_1 तथा माँग OQ_4 होगी अर्थात् माँग पूर्ति से अधिक होगी, मूल्य और बढेगा, तथा इसी प्रकार यदि मूल्य OP से घटकर OP_2 हो जाये तो माँग OQ_2 तथा पूर्ति OQ_3 हो जाएगी, माँग पूर्ति से कम होगी, मूल्य में और कमी आएगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी कारण से यदि गड़बड़ी पैदा हो जाये तो एक बार मूल्य में वृद्धि होने पर मूल्य निरन्तर बढ़ता ही जायेगा तथा कमी होने पर मूल्य में निरन्तर कमी ही होती जायेगी।

(ग) 'तटस्थ संस्थिति मूल्य' (Neutral Equilibrium Value) की स्थिति तब होगी जबकि माँग एवं पूर्ति रेखाओं का ढाल कुछ दूरी तक बराबर हो। तटस्थ संस्थिति मूल्य का प्रदर्शन नीचे रेखाचित्र में किया गया है–

इस रेखाचित्र से स्पष्ट है कि माँग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS का ढाल E_1 से E_2 के बीच परस्पर बराबर है। मान लीजिये मूल रूप से संस्थिति की स्थिति E पर है, माँग पूर्ति के बराबर है तथा संस्थिति मूल्य OP है अब यदि मूल्य घटकर OP_2 या बढकर OP_1 हो जाय तो संस्थिति की स्थिति वही बनी रहैंगी क्योंकि

प्रत्येक स्तर पर माँग पूर्ति के बराबर है। इस प्रकार संस्थिति का क्षेत्र E_1 E_2 है जिसके बीच बाजार में तटस्थ संस्थिति की स्थिति रहेगी।

(घ) स्थैतिक तथा प्रावैगिक संस्थिति (Static and Dynamic Eqilibrium)- स्थैतिक संस्थिति की धारणा एक स्थैतिक अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है और एक स्थैतिक अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसके विभिन्न संघटक अंगो उत्पादन, जनसंख्या, प्रौद्योगिकी, माँग पूर्ति आदि, में परिवर्तन होने की प्रवृत्ति नहीं रहती और वे हमेशा स्थिर रहते हैं। संस्थिति उस समय स्थैतिक कहलायेगी जब वह एक निश्चित समयावधि के बाद भी बनी रहे। स्थैतिक संस्थिति इस मान्यता पर आधारित है कि उन आर्थिक घटनाओं में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता जिनके फलस्वरूप यह स्थिति प्राप्त हुई है। यदि मान लिया जाय कि मांग एवं पूर्ति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो तो माँग एवं पूर्ति के सन्तुलन के द्वारा प्रदर्शित संस्थिति स्थैतिक संस्थिति का सबसे स्पष्ट उदाहरण है। प्रवैगिक संस्थिति का सम्बन्ध एक प्रावैगिक अर्थव्यवस्था से है और प्रावैगिक अर्थव्यवस्था वह है जिसका विभिन्न संघटक अंगों–जैसे जनसंख्या, प्रौद्योगिकी, उत्पादन, माँग आदि में परिवर्तन तो हो पर परिवर्तन की दर समान रहें।

(च) आंशिक एवं सामान्य संस्थिति (Partial and General Equilibrium)- आर्थिक संतुलन व्यष्टि इकाइयों के व्यवहार का अध्ययन करता है। व्यष्टि इकाइयों से हमारा तात्पर्य एक उपभोक्ता, एक उत्पादक इकाई अथवा एक उद्योग से है। इसके विपरीत सामान्य सन्तुलन विश्लेषण के अन्तर्गत हम सम्पूर्ण अर्थिक निकाय (Economic System) के सन्तुलन का अध्ययन करते हैं– अर्थात् अर्थव्यवस्था को सामान्य सन्तुलन की स्थिति में तब कहा जायेगा जब अर्थव्यवस्था में प्रत्येक उपभोक्ता, उत्पादन की प्रत्येक इकाई, प्रत्येक उद्योग एक साथ सन्तुलन की अवस्था में हो। अन्य शब्दों में यदि प्रत्येक उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति में हो तथा प्रत्येक उत्पादक इकाई अधिकतम लाभ की स्थिति में हो तो अर्थव्यवस्था की इस स्थिति को सामान्य सन्तुलन की अवस्था कहैंगे।

(छ) एकाकी तथा बहुतत्वीय संस्थिति (Single and Multiple Equilibrium)- जिन चरों के बीच संस्थिति का अध्ययन किया जा रहा है यदि उनकी केवल एक ही ऐसी मात्रा हो जिस पर संस्थिति की स्थिति प्राप्त हो तो उसे एकाकी संस्थिति कहैंगे। उत्पादन की मात्रा तथा मूल्य के सम्बन्ध में एकाकी संस्थिति की व्याख्या करते समय यह कहा जा सकता है कि एकाकी संस्थिति की स्थिति उस स्थिति में होगी जबकि उत्पादन तथा वस्तु की मात्रा एक ही बिन्दु पर ऐसी हो कि संस्थिति की शर्तें पूरी हों।

इसके विपरीत बहुतत्वीय संस्थिति की स्थिति उस समय होती है जबकि संस्थिति की शर्तों की सन्तुष्टि अनेक बिन्दुओं पर विभिन्न मूल्य तथा उत्पादन की मात्राओं द्वारा होती है। ऐसा तब होता है जबकि माँग वक्र का ढाल एक नहीं रहे, बल्कि उसमें परिवर्तन होता रहे। ऐसी स्थिति में जबकि बाजार में विभिन्न आय वर्ग के उपभोक्ता हों तो ऐसी स्थिति में कभी–कभी ऐसा समय आ सकता है जब वस्तु का मूल्य इतना अधिक गिर जाये कि उपभोक्ताओं का नया वर्ग, जो कम आय वाला है, उसे खरीदने में समर्थ हो जाय और माँग वक्र पहले से भी अधिक

लोचदार हो जाय। ऐसी स्थिति में माँग की लोच कभी कम होगी तो कभी अधिक तथा फिर कम।

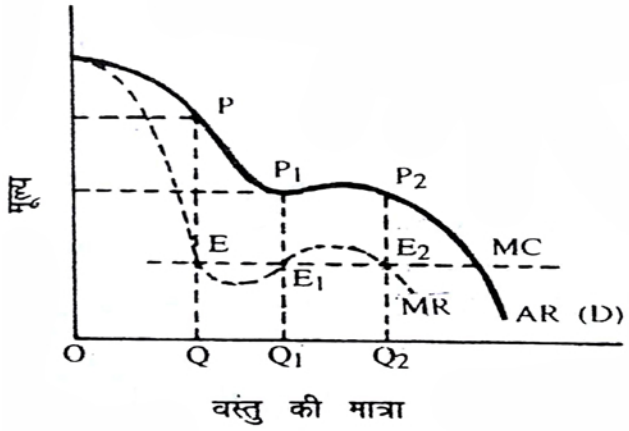

जैसा रेखाचित्र में प्रदर्शित है। इस रेखाचित्र में अनेक प्रकार की मांग की लोच को प्रदर्शित करने वाले मांग–वक्र (AR) या (D) को खींचा गया है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि मांग–वक्र (AR) से संबंधित सीमांत आय–वक्र (MR) अनेक मोड़ वाला प्रदर्शित है। फलस्वरूप सीमांत लागत वक्र (MC) उसे तीन अलग–अलग बिन्दुओं E, E_1 तथा E_2 पर काटता है तथा इनसे संबंधित OP, OP_1 तथा OP_2 संस्थिति–मूल्य हैं। आगे की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाएगा कि इस प्रकार की संस्थिति–स्थिति केवल एकाधिकार की ही स्थिति में देखी जायेगी, पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में नहीं।

(ज) अल्पकालीन तथा, दीर्घकालीन संस्थिति– प्रो0 मार्शल पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने मूल्य–निर्धारण की समस्या के सम्बन्ध में 'समय तत्त्व' (Time element) को सम्मिलित किया तथा समय के आधार पर उन्होंने मूल्य को चार भागों में विभक्त किया–बाजार मूल्य या अति अल्पकालीन मूल्य, अल्पकालीन मूल्य, दीर्घकालीन मूल्य (सामान्य–मूल्य) तथा अतिदीर्घकालीन मूल्य। इनकी व्याख्या पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत मूल्य–निर्धारण के संदर्भ में की गयी हैं। यहाँ हम केवल इतना ही स्पष्ट करके रह जायेंगे कि जब समय इतना कम हो कि मांग में होने वाले परिवर्तन के अनुसार पूर्ति का समायोजन केवल चालू साधनों के द्वारा ही किया जा सके अर्थात् उत्पादन में लगे हुए स्थिर साधनों में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं लायी जा सके, न तो फर्म की संख्या में वृद्धि हो और न कमी तो इसे अल्पकाल कहेंगे पर इस अवधि में भी संस्थिति पायी जाती है। मांग में होने वाले परिवर्तन के अुनसार पूर्ति को चालू साधनों के द्वारा ही समायोजित किया जाता हैं। इसे अल्पकालीन संस्थिति कहेंगे। दीर्घकाल उस अवधि को कहेंगे जबकि समय इतना अधिक हो कि मांग के अनुसार पूर्ति को समायोजित करने के लिए हर प्रकार के परिवर्तन किये जा सकें। इस अवधि में पायी जाने वाली संस्थिति को दीर्धकालीन संस्थिति कहेंगे।

(झ) समष्टि तथा व्यष्टि संस्थिति– संस्थिति की व्याख्या जब हम, व्यष्टि इकाइयों के सन्दर्भ में करते है तो यह व्यष्टि संस्थिति कहलाती है पर जब इसकी व्याख्या समष्टिगत चरों के सन्दर्भ में की जाती है तो संस्थिति समष्टि संस्थिति होगी। इस प्रकार सम्पूर्ण आर्थिक निकाय की संस्थिति समष्टि होगी जबकि व्यक्तिगत की संस्थिति व्यष्टि संस्थिति की स्थिति प्रदार्शित करेंगी।

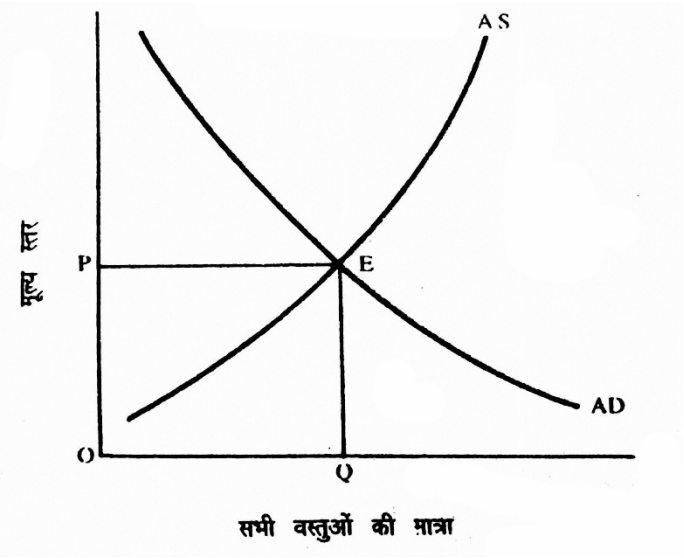

बोध प्रश्न 'ख'

1. निगमनात्मक तर्क और आगमनात्मक तर्क के बीच भेद बताएँ।
2. आंशिक एवं सामान्य संस्थिति की व्याख्या करें।
3. संतुलन की संकल्पना की व्याख्या करें।
4. इष्टतमीकरण की संकल्पना को स्पष्ट करें।
5. **बताएँ कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत।**

   (i) आर्थिक नियमों का उपयोग सही भविष्यवाणी के लिए किया जाता है।

   (ii) विभिन्न शक्तियों और उनके परिणामों के प्रत्युत्तर मे की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं के विवरण को आर्थिक नियम कहा जाता है।

   (iii) आगमनात्मक तर्क का आधार होता है प्रेक्षित तथ्यों का अध्ययन।

   (iv) निगमनात्मक तर्क निर्दिष्ट कारणों पर आधारित होता है।

   (v) निगमनात्मक तर्क के अंतर्गत सभी मान्यताएँ अवास्तविक होती है।

   (vi) आर्थिक नियमों तथा अन्य शेष सामाजिक नियमों के बीच भेद करना सदा ही संभव होता हैं।

   (vii) आर्थिक नियम भौतिक विज्ञान के नियमों के समान नहीं होते।

   (viii) प्रत्येक आर्थिक नियम के साथ ''यदि अन्य बातें पूर्ववत रहैं'' शर्त लगी होती हैं।

   (ix) कोई आर्थिक चर संतुलन में तब होता है जब उसे निर्धारित करने वाली शर्तें एक दूसरे के संतुलन में होती हैं।

2.5 यथार्थमूलक बनाम आदर्शक अर्थशास्त्र

वास्तविक तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अन्तर तथा सम्बन्ध का विश्लेषण करने से पूर्व उनके अर्थ के विषय में स्पष्ट होना आवश्यक है। वास्तविक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत हम कारण–परिणाम संबंध (Cause and Effect Relationship) तक ही सीमित रहते हैं। उन परिणामों के नैतिक पहलू का अध्ययन अर्थशास्त्र के क्षेत्र के बाहर होता है। उदाहरणार्थ ''पूर्ति स्थिर रहने पर मांग में वृद्धि होने से मूल्यों में वृद्धि होती है'' वास्तविक अर्थशास्त्र तो ऐसा क्यों होता है, की व्याख्या तक ही सीमित रहा है यह ''मूल्यों में वृद्धि वांछनीय है अथवा नहीं'' इसके विषय में कोई निर्णय नहीं देता है। इस प्रकार वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक घटना 'क्या' है (What is) प्रश्न से संबंधित होता हैं।

इसके विपरीत, कल्याणकारी अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम कारण–परिणाम संबंधों की वांछनीयता अथवा अवांछनीयता से संबंधित होते हैं अर्थात् उपर्युक्त उदाहरण में यदि मूल्य में वृद्धि हो जाती है तो क्या 'यह वांछनीय है अथवा नहीं' इससे संबंधित होते हैं इसके साथ ही यदि मूल्यों में वृद्धि वांछनीय नहीं है तो उसे कम करने के उपाय के विषय में भी कल्याणकारी अर्थशास्त्र सुझाव देता है। इस प्रकार कल्याणकारी अर्थशास्त्र 'What oughat to be' (क्या होना चाहिए)? प्रश्न से संबंधित होता है।

वास्तविक तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अंतर जो हाल के वर्षों में हुआ है वह बहुत स्पष्ट अंतर है। वास्तविक अर्थशास्त्र के निष्कर्षों की कुछ मान्यताओं के आधार कुछ वास्तविक जगत से एकत्रित आंकड़ों के आधार पर परीक्षण किया जा सकता है। उदाहरणार्थ आंकड़ों द्वारा यह परीक्षण किया जा सकता है कि अन्य बातों के समान रहने पर यदि मूल्य कम होता है तो उसकी मांगी गयी मात्रा बढ़ जाती है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र के निष्कर्षो का आंकड़ों द्वारा परीक्षण नहीं किया जा सकता क्योंकि कल्याण एक मानसिक विचार है जिसकी ठीक–ठीक माप सम्भव नहीं हैं। उदाहरणार्थ यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो जाय तो हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते हैं कि समाज का कल्याण पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है। एक व्यक्ति या समाज के कल्याण को परिभाषित करने के पश्चात् उन दशाओं को निर्धारित किया जा सकता है जिनसे सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है। किन्तु यदि उन दशाओं के पूरा होने पर भी सामाजिक कल्याण में वृद्धि नहीं होती है तो हमारी मान्यताएँ निश्चित रूप से अनुचित हैं। इस प्रकार ''**वास्तविक अर्थशास्त्र** (positive economics) में एक सिद्धान्त के परीक्षण की सामान्य विधि उसके निष्कर्षों का परीक्षण करना है जब कि कल्याणकारी प्रस्तावों के परीक्षण की सामान्य विधि उनकी मान्यताओं (assumptions) के परीक्षण करने की है। ''अतः किसी कल्याणकारी प्रस्ताव का परीक्षण करने के लिए हमें उसकी मान्यताओं का परीक्षण करना आवश्यक होता है।

वास्तविक तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। आर्थिक सिद्धान्त को आदर्शात्मक पहलू से अलग नहीं किया जा सकता है। पीगू ने अर्थशास्त्र को केवल प्रकाश दायक (light bearing) के रूप में ही नहीं वरन् फल–दायक (fruit bearing) शास्त्र के रूप में स्वीकार किया। राबिन्स ने अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र अर्थात् वास्तविक अर्थशास्त्र का आदर्शात्मक पहलू से कोई संबंध नहीं स्थापित किया। वास्ताविक अर्थशास्त्र के निष्कर्षों की भाँति ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र के प्रस्तावों को अनेक मान्यताओं के आधार पर व्युत्पन्न

किया जा सकता है। इस प्रकार वास्तविक तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं।

2.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र

प्रत्येक अर्थव्यवस्था अनेक आर्थिक इकाइयों का समूह होती है। अर्थव्यवस्था भी फर्म, उद्योग, व्यक्ति आदि की ही तरह एक इकाई होती है पर इनसे इसका स्वरूप बड़ा होता है तथा इसका निर्माण इन इकाइयों के मिश्रण से होता हैं। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था से संबंधित किसी भी समस्या का विश्लेषण दो प्रकार से किया जा सकता है–एक तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से तथा दूसरा अर्थव्यवस्था की अलग–अलग इकाइयों की दृष्टि से। इस आधार पर आर्थिक समस्याओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है, प्रथम वह जो अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाइयों (फर्म, उद्योग, व्यक्ति आदि) से सम्बन्द्ध समस्याएँ हैं जैसे वस्तु के मूल्य–निर्धारण की समस्या, फर्म में विवेकीकरण की समस्या, फर्म में मजदूरी–निर्धारण की समस्या आदि। दूसरी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से संबंधित समस्याएँ हैं, जैसे कुल रोजगार की समस्या, कुल आय तथा बचत की समस्या। पहली समस्या के विश्लेषण के लिए हम जिस विधि का प्रयोग करते हैं, उसे **व्यष्टिभावी–विश्लेषण** (Micro-analysis) तथा दूसरी समस्या के विश्लेषण के लिए हम जिस विधि का प्रयोग करते है उसे **समष्टिभावी–विश्लेषण** (Macro-analysis) कहते हैं। इन दोनों ही शब्दों का प्रथम बार प्रयोग रेगनर फ्रिश ने किया तथा उसके बाद सभी अर्थशास्त्रियों ने इन्हैं अपना लिया। 'माइक्रो' शब्द ग्रीक भाषा के 'मिक्रोस' (Mikros) शब्द से बना है जिसका अर्थ है छोटा (Small) तथा 'मैक्रो' ग्रीक भाषा 'मैक्रोस' (Makros) से बना है जिसका अर्थ है बड़ा (Large)। इस प्रकार 'माइक्रो' छोटी इकाइयों से संबंधित है जबकि 'मैक्रो' बड़े समूह से संबंधित हैं।

व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र का स्पष्टीकरण सर्वप्रथम क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की पुस्तकों में मिला। एडम स्मिथ को इसका प्रतिपादक कहना उचित होगा। से का बाजार–सिद्धान्त (Say's Law of Market) जिसमें उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि 'पूर्ति, मांग का सृजन स्वयं करती है', व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र का स्पष्ट उदाहरण है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का यह विचार था कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति रहती है, बेरोजगारी, अधि–उत्पादन, अधि–बचत तथा अधि–विनिमय की समस्या, अर्थव्यवस्था में उत्पन्न ही नहीं होती है। फलस्वरूप इन अर्थशास्त्रियों ने वस्तु के मूल्य–निर्धारण, उत्पादन के विभिन्न साधनों के संयोग से उत्पादित वस्तु से प्राप्त आय का संबंधित साधनों के बीच वितरण आदि जैसी समष्टिभावी समस्याओं पर विचार किया।

1930 के विश्व के महान् अवसाद ने व्यष्टिभाव अर्थशास्त्र की नींव हिला दी। स्पष्ट बात यह है कि तब तक अर्थव्यवस्था सुचारू रूप से चलती रही, तथा ठीक ढंग से विकसित होती रही। अर्थशास्त्रियों ने सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की ओर ध्यान ही नहीं दिया, और उसे पूर्व–निश्चित मान लिया तथा व्यक्तिगत मूल्यों, मजदूरी आदि की ही बात की एवं राष्ट्रीय आय, सामान्य मूल्य स्तर (General Price Level) आदि पर विचार ही नहीं किया। पर 1930 की मंदी ने विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को अस्त–व्यस्त कर दिया। सर्वत्र बेरोजगारी व्याप्त थी। इस परिस्थिति में कीन्स ने यह स्पष्ट किया कि समष्टिभावी अर्थशास्त्र पर आधरित क्लासिकल एवं निओक्लासिकल अर्थशास्त्रियों की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती है। उनके अनुसार इस प्रकार का विश्लेषण उस समय तो सत्य सिद्ध हो सकता है जिस

समय अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार हो तथा अधि–उत्पादन नहीं हो पर बेरोजगारी तथा अधि–उत्पादन के ज्वर से ग्रस्त अर्थव्यवस्था में यह सर्वथा असफल हो जायेगा। पर कीन्स के अनुसार अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकती है। फलस्वरूप कुल मांग (Aggregate Demand) तथा कुल पूर्ति (Aggregate Supply) के आधार पर कीन्स ने अर्थव्यवस्था में कुल रोजगार की समस्या पर विचार किया तथा उन तत्वों पर प्रकाश डाला जिन पर किसी अर्थव्यवस्था में रोजगार, विनियोग, बचत तथा आय निर्भर करते हैं। कीन्स के अतिरिक्त विकसेल (Wicksell), वालरा तथा फिशर आदि ने समष्टिभावी अर्थशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया।

(1) व्यष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण– व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र के संबंध में जो बातें प्रारम्भ में दी गयीं तथा इसके स्वभाव पर जो प्रकाश डाला गया उससे स्पष्ट है कि व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र एक सम्पूर्ण आर्थिक निकाय के विभिन्न संघटक अंगों, व्यक्तिगत इकाइयों तथा व्यक्तियों के छोटे–छोटे समूहों के आर्थिक व्यवहारों का अध्ययन है, किसी भी आर्थिक निकाय का प्रत्येक संघटक अंग चाहें वह व्यक्तिगत इकाई के रूप में व्यक्तिगत उपभोक्ता हो या व्यक्तिगत उत्पादक या इन्हीं का छोटा–छोटा समूह हो सभी यह प्रयास करते हैं कि उन्हें अधिकतम तुष्टि या अधिकतम कल्याण या अधिकतम लाभ या अधिकतम उत्पादन की स्थिति प्राप्त हो जाय। अधिक विशिष्ट भाषा में हम यह कह सकते है कि आर्थिक निकाय का प्रत्येक अंग संस्थिति की स्थिति (Equilibrium point) को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र में हम इस बात का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं कि किस प्रकार किसी अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाइयाँ–उपभोक्ता, उत्पादक कार्य करने वाले श्रमिक, व्यवहार करते हैं तथा किस प्रकार संस्थिति को प्राप्त करते हैं।

(2) समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण– समष्टिभावी अर्थशास्त्र समूह, समग्र या सम्पूर्ण आर्थिक निकाय का अर्थशास्त्र हैं। प्रो0 बोल्डिग ने कहा भी कि–''समष्टिभावी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र का वह भाग है जो कि अर्थव्यवस्था की व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन न करके समूहों (Aggregates) तथा औसतों से संबंध रखता है, इन समूहों को उपयोगी ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न करता है तथा इनके संबंध की विवेचना करता है।'' ''समष्टिभावी अर्थशास्त्र में बड़े–बड़े समग्रों या समूहों जैसे समग्र आय, कुल रोजगार, सामान्य मूल्य–स्तर, आय का वितरण आदि का अध्ययन किया जाता है। समष्टि आर्थिक विश्लेषण इन विभिन्न समग्रों के बीच फलनात्मक संबंध का अध्ययन हैं। इसीलिए इसे 'समग्र का अर्थशास्त्र' (Economics of Aggregates) भी कहा जाता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि व्यष्टि अर्थशास्त्र में भी कुछ समग्रों का अध्ययन किया जाता है, उदाहरण के लिए व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र की सबसे प्रमुख समस्या मूल्य–निर्धारण को लीजिए। किसी वस्तु का मूल्य उसकी मांग एवं पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता हैं। मांग तथा पूर्ति दोनों 'समग्र' है। बाजार मांग व्यक्तिगत उपभोक्ताओ की मांग का योग है। इसी प्रकार पूर्ति भी समग्र पूर्ति है जो विभिन्न उत्पादकों की पूर्ति का मिला हुआ रूप है। ये भी समग्र मांग तथा समग्र पूर्ति ही है। फर्मों का समूह कहने का अभिप्राय यह है कि व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र में भी हम कुछ समूहों या समग्रों का अध्ययन करते हैं पर समष्टिभावी अर्थशास्त्र में उन्हीं समग्रों का अध्ययन करते हैं जिनका संबंध सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से होता है। एक उद्योग का अध्ययन तो व्यष्टिभावी विश्लेषण के अन्तर्गत आएगा पर औद्योगिक नीति का अध्ययन जो अर्थव्यवस्था के सभी उद्योगों के विकास से संबंधित है, समष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आएगा। समष्टिभावी अर्थशास्त्र में केवल बड़े समग्रों का ही अध्ययन नहीं किया

जाता है, छोटे समग्रों या समूहों का भी अध्ययन किया जाता है फिर भी ये छोटे समग्र भी व्यष्टिभावी विश्लेषण में अध्ययन किये जाने वाले छोटे समग्रों से भिन्न होते हैं। ये छोटे समग्र बड़े समग्रों के उप समग्र मात्र होते है और यदि इन सभी छोटे उप–समग्रों को एक में मिला दिया जाय तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से संबंधित समग्र प्राप्त हो जाएगा जैसे समग्र राष्ट्रीय उत्पादन को उपभोग–वस्तु तथा पूँजीगत वस्तुओं के बीच बाँटना, समग्र राष्ट्रीय आय को कृषि से प्राप्त होने वाली तथा उद्योगों से प्राप्त होने वाली आय में बाँटना। व्यष्टिभावी विश्लेषण में अध्ययन किए जाने वाले 'संमग्रों' तथा समष्टिभावी विश्लेषण में अध्ययन किए जाने वाले 'समग्रों' के बीच अन्तर स्पष्ट करते हुए **प्रो0 एक्ले** ने कहा ''समष्टिभावी विश्लेषण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में प्रयुक्त होने वाले समग्रों की अपेक्षा छोटे 'समग्रों' का प्रयोग करता है पर केवल इस सन्दर्भ में कि वे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए कुल योग के उप–विभाग मात्र हैं। व्यष्टिभावी अर्थशास्त्र भी 'समग्रों' का उपयोग करता है पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के योग या समग्र के सम्बन्ध के रूप में नहीं।

2.7 स्टॉक और प्रवाह

अर्थशास्त्र में स्टॉक एवं प्रवाह चरों (Variables) को आर्थिक मॉडलों की व्याख्या करने में प्रयोग किया जाता है। स्टॉक से अभिप्राय एक निर्दिष्ट समय (Point of time) पर एक वस्तु की संचय की गई मात्रा से हैं। दूसरी ओर, एक वस्तु के चालू उत्पादन की मात्रा जो एक मार्केट में से गति करती है उसे प्रवाह कहते हैं। **शपीरो** (Shapiro) के अनुसार, ''एक स्टॉक समय के एक निर्दिष्ट बिन्दु में माप मात्रा है और प्रवाह एक मात्रा है जो केवल समय के एक निर्दिष्टकाल में मापी जा सकती हैं। '' दूसरे शब्दों में, एक स्टॉक चर का कोई समय आयाम (time dimension) नहीं होता है।'' दूसरी ओर, एक प्रवाह चर का एक निर्दिष्ट समय काल (specified period of time) होता है।

उदाहरणार्थ–कोयला, इस्पात, गेहूँ आदि की चालू पूर्ति या उत्पादन जो प्रतिदिन, साप्ताहिक, मासिक या वार्षिक मण्डी में बेचा या खरीदा जाता है, प्रवाह को व्यक्त करता है। इसके विपरीत, इन वस्तुओं की मात्रा जो किसी एक विशेष दिन या समय पर पाई जाती है, इसे स्टॉक कहते हैं।

स्टॉक और प्रवाह की धारणाएँ व्यष्टि एवं समष्टि दोनों अर्थशास्त्रों के विश्लेषण में प्रयोग होती हैं।

कीमत सिद्धान्त या व्यष्टि अर्थशास्त्र में स्टॉक एवं प्रवाह धारणाओं का संबंध वस्तुओं की मांग और पूर्ति से होता हैं। किसी निर्दिष्ट समय पर मार्केट मांग और पूर्ति को स्टॉक में व्यक्त किया जाता हैं। किसी वस्तु का स्टॉक मांग वक्र बाएँ से दाएँ नीचे की ओर ढालू होता है जैसे कि एक सामान्य मांग वक्र जो कीमत पर निर्भर करता है। जबकि स्टॉक पूर्ति वक्र Y- अक्ष के समानान्तर होता है क्योंकि वस्तु की कुल मात्रा या स्टॉक एक निर्दिष्ट समय पर स्थिर होता है। दूसरी ओर, प्रवाह मांग और पूर्ति वक्र सामान्य मांग और पूर्ति वक्रों की तरह होते हैं जो चालू कीमतों द्वारा प्रभावित होते हैं। परन्तु कीमत न तो स्टॉक और न ही प्रवाह चर है क्योंकि इसको एक समय आयाम की आवश्यकता नहीं होती और न ही यह स्टॉक परिमाण हैं। वास्तव में यह नकदी के प्रवाह और वस्तुओं के प्रवाह के बीच अनुपात हैं।

स्टॉक और प्रवाह धारणाओं का प्रयोग समष्टि अर्थशास्त्र या आय, उत्पादन तथा रोजगार सिद्धान्त में अधिक किया जाता है मुद्रा एक स्टॉक है जबकि मुद्रा का व्यय

प्रवाह है। धन एक स्टॉक है और आय एक प्रवाह। किसी व्यक्ति द्वारा एक मास में की गई बचत एक प्रवाह है जबकि किसी दिन उनकी कुल बचतें एक स्टॉक है। सरकारी ऋण एक स्टाक है परन्तु सरकारी घाटा एक प्रवाह हैं। बैंक का उधार देना एक प्रवाह है और बैंक का बकाया कर्जा एक स्टॉक हैं।

कुछ समष्टि चर जैसे आयात, निर्यात, मजदूरी, आयकर भुगतान, सामाजिक सुरक्षा लाभ और लाभांश केवल प्रवाह ही होते हैं तथा इनके स्टॉक के बारे में सोचा ही नहीं जा सकता। यद्यपि ऐसे प्रवाहों के प्रत्यक्ष स्टॉक नहीं होते लेकिन वे अप्रत्यक्ष तौर से अन्य स्टॉकों को प्रभावित करते हैं जैसे आयात, पूँजी पदार्थों के स्टाक को प्रभावित कर सकते हैं।

एक स्टॉक प्रवाहों के कारण ही परिवर्तित हो सकता है परन्तु प्रवाहों का आकार अपने–आप स्टॉक में परिवर्तनों द्वारा स्वयं भी निर्धारित हो सकता हैं। उदाहरणार्थ पूँजी के स्टॉक और निवेश के प्रवाह में संबंध है। पूँजी–स्टॉक केवल निवेश–प्रवाह के अधिक होने से ही बढ़ सकता है या नये पूँजी पदार्थों के उत्पादन और पूँजी पदार्थों के उपभोग के प्रवाह के अन्तर द्वारा। दूसरी ओर, स्वयं निवेश का प्रवाह पूँजी स्टॉक के आकार पर निर्भर करता हैं। परन्तु स्टॉक प्रवाहों पर प्रभाव तभी डाल सकते हैं यदि समय अवधि इतनी लम्बी हो कि स्टॉक में इच्छित परिवर्तन लाया जा सके। अतः प्रवाह अल्पकाल में स्टॉक में परिवर्तन द्वारा प्रभावित नहीं हो सकते हैं।

स्टॉक और प्रवाह के संबंध में एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि चाहैं आय को हम प्रति सेकेन्ड, प्रति दिन, प्रति मास या प्रति वर्ष व्यक्त करें, इसका प्रवाह या तो समय के बिन्दु पर (Point of time) तात्कालिक दर है या यह समयान्तर में (over a period of time) ऐसे तात्कालिक दरों का औसत हैं।

अन्तिम, स्टॉक और प्रवाह चरों की दोनों धारणाओं का आय, उत्पादन, रोजगार, ब्याज दर, व्यापार चक्र आदि आधुनिक सिद्धान्तों में बहुत महत्व है।

2.8 स्थैतिकी और गतिकी

स्थैतिक तथा प्रावैगिक विश्लेषण की धारणा के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में एक मत नहीं हैं। इनके सम्बन्ध में जहाँ एक ओर मुख्य रूप से रेगनर फ्रिश तथा हिक्स का दृष्टिकोण है, वहीं दूसरी ओर हैंराड तथा सेमुएलसन अलग मत रखते हैं। **रेगनर फ्रिश** के अनुसार ''कोई भी प्रणाली प्रावैगिक कही जाएगी यदि समयान्तर में उसके व्यवहार का निर्धारण उन चरों द्वारा हो जो विभिन्न समय बिन्दुओं से सम्बन्धित हों तथा यदि सम्बन्धित चर विभिन्न समय बिन्दुओं से सम्बन्धित न हों तो विश्लेषण स्टैटिक या स्थैगिक होगा।'' इन पर विचार करते हुए **प्रो0 जे.आर. हिक्स** यह मत व्यक्त करते है कि आर्थिक सिद्धान्तों के उन भागों को स्थैतिक कहा जाता है जिनमें हम तिथि निर्धारण (dating) का ध्यान नहीं रखते हैं और प्रावैगिक उन भागों को कहते हैं जिनमें प्रत्येक इकाई के सम्बन्ध में तिथि निर्धारण आवश्यक है। स्थैतिक तथा प्रावैगिक विश्लेषण की इस धारणा को हम एक उदाहरण के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं। मांग के नियम को लीजिए जो यह स्पष्ट करता है कि किसी वस्तु की मांग (D) उसके मूल्य (P) पर निर्भर करती है। अब यदि दोनों ही चरों का सम्बन्ध एक ही अवधि से हो तो हम मांग फलन को इस प्रकार लिख सकते हैं $D_t=f(P_t)$। इस विश्लेषण में चूंकि दोनों ही चर एक

ही समय से सम्बन्धित हैं इसलिए यह विश्लेषण स्थैतिक विश्लेषण कहा जाएगा, पर यदि t अवधि में (D_t) भावी प्रत्याशित मूल्य या (t+1) अवधि के मूल्य (P_{t+1}) पर निर्भर करे, $D_t=f(P_{t+1})$ तो यह विश्लेषण आवधिक विश्लेषण होगा और इसे हम प्रावैगिक विश्लेषण कहैंगे।

रॉय हैंरॉय ने अपनी पुस्तक 'टुवर्ड्स ए डाइनमिक एकोनामिक्स' में प्रावैगिक विश्लेषण के सम्बन्ध में एक नए दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। हैरॉड के अनुसार प्रावैगिक विश्लेषण 'परिवर्तन की दर' (rate of change) या 'वृद्धि की दर' से सम्बन्धित हैं। हम सामान्यतया हिक्स–फ्रिश दृष्टिकोण का अनुसरण करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि किसी माडल के सभी चर (स्टाक या प्रवाह या दोनों) एक समयावधि से ही सम्बन्धित हों और जिनके तिथिकरण की कोई समस्या ही नहीं हो, इन चरों के बीच सम्बन्ध या इनका विश्लेषण 'स्थैतिक होगा पर यदि माडल के चर विभिन्न समयाविधियों से सम्बन्धित हों तथा इनका तिथिकरण हो तो इनके बीच सम्बन्ध तथा विश्लेषण प्रावैगिक होगा। स्थैतिक विश्लेषण में चरों का सम्बन्ध केवल एक समय से होता है और उस समय को ध्यान में रखा जाता है जो दो समय बिन्दुओं के बीच गुजरते हैं, इसलिए स्थैतिक विश्लेषण दो समय बिन्दुओं या दो संस्थिति बिन्दुओं के बीच परिवर्तन की प्रक्रिया पर प्रकाश नहीं डालता, यह स्पष्ट नहीं करता कि किस प्रकार तथा किन कारणों से एक संस्थिति बिन्दु दूसरे संस्थिति बिन्दु को प्राप्त करता है। इस प्रकार की व्याख्या केवल प्रावैगिक विश्लेषण के द्वारा ही हो सकती है। शपीरो के अनुसार, ''वास्तविकता तो यह है कि स्थैतिक विश्लेषण उन माडल के सम्बन्ध में लागू होगा जो संस्थिति की स्थिति में हों, जबकि प्रावैगिक विश्लेषण उस माडल के सम्बन्ध में लागू होगा जो असंस्थिति में हो। प्रावैगिक विश्लेषण मॉडल में प्रयुक्त चरों के समयावधि में होने वाले परिवर्तनों की प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है, यह इसकी व्याख्या करता है कि किस प्रकार से कोई प्रणाली एक संस्थिति बिन्दु या असंस्थिति की स्थिति से गुजर कर संस्थिति बिन्दु को प्राप्त करती है या निरन्तर अन्तहीन असंस्थिति बिन्दुओं से गुजरती है।''

स्थैतिक तथा प्रावैगिक विश्लेषण का प्रयोग व्यष्टि तथा समष्टि दोनों ही क्षेत्रों में किया जा सकता है। सरल मांग का नियम जो एक वस्तु माडल के रूप में प्रदर्शित किया जाता है, जिसमें मांग तथा मूल्य एक ही समय से सम्बन्ध होता है व्यष्टि–स्थैतिक विश्लेषण के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है, और यदि मांग तथा पूर्ति में समय पश्चता हो तथा यदि हम इसका विश्लेषण करें कि किन असंस्थिति की स्थितियों से गुजरने के बाद संस्थिति की स्थिति कायम होती है, तो विश्लेषण व्यष्टि प्रावैगिक विश्लेषण होगा।

यदि माडल का एक संस्थिति हल हो तो इसका विश्लेषण स्थैतिकी विधि से होगा, यदि माडल ऐसा हो कि मूल संस्थिति बिन्दु विवर्तित होकर नये संस्थिति बिन्दु को प्राप्त हो जाये तो इसके विश्लेषण के लिए तुलनात्मक स्थैतिक विश्लेषण पर्याप्त होगा, पर यदि माडल ऐसा है कि इसका कोई संस्थिति हल (equilibrium solution) नहीं हो तो स्थैतिक और न ही तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण पर्याप्त

होगा, इस स्थिति का विश्लेषण केवल प्रवैगिक विश्लेषण द्वारा ही किया जा सकता है। उस स्थिति में भी जबकि उस पथ की व्याख्या करनी हो जिससे एक संस्थिति से दूसरी संस्थिति स्थिति को प्राप्त करने में आर्थिक निकाय गुजरा हो तब भी प्रावैगिक विश्लेषण प्रयोग में आएगा, स्थैतिकी तथा तुलनात्मक स्थैतिकी नहीं।

स्थैतिक विश्लेषण के सम्बन्ध में कुछ बातें उल्लेखनीय हैं, आइयें इन्हें समझने का प्रयास करे :–

प्रथम, स्थैतिक विश्लेषण में चूंकि हम दी हुई निश्चित दरों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध का अध्ययन एक समय बिन्दु पर करते हैं, इसलिए उसको निर्धारित करने वाले अन्य कारकों में भेद रह ही नहीं जाता है। द्वितीय, चूँकि स्थैतिक विश्लेषण में हम आर्थिक निकाय का अध्ययन एक समय बिन्दु पर करते हैं, समयान्तर में नहीं, इसलिए अर्थव्यवस्था ने किस प्रकार एक संस्थिति स्थिति को छोड़कर दूसरी स्थिति को प्राप्त किया है, इसका अध्ययन हम स्थैतिक विश्लेषण में नहीं करते हैं, जैसे प्रो0 बॉबर ने कहा ''एक स्थैतिक विश्लेषण किसी समय बिन्दु में संस्थिति स्थिति को निर्धारित करने वाले तथ्यों के अध्ययन से सम्बन्धित नहीं है जिससे अर्थव्यवस्था समग्र रूप में या विशिष्ट वस्तु बाजार के रूप में, एक संस्थिति स्थिति को छोड़कर अध्ययन की जानेवाली संस्थिति स्थिति को प्राप्त करती है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि स्थैतिक विश्लेषण कुछ निश्चित चरों के बीच एक निश्चित समयावधि में अन्य निर्धारक चरों को स्थिर मानते हुए फलनात्मक सम्बन्ध का अध्ययन है। प्रो0 शुम्पीटर स्थैतिक आर्थिक विश्लेषण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि स्थैतिक विश्लेषण से हमारा अभिप्राय आर्थिक सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाली ऐसी विधि से है जो आर्थिक निकाय के विभिन्न तत्त्वों, मूल्य तथा वस्तुओं की मात्रा जो एक ही समय से सम्बन्धित हैं– के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करती हैं। माँग तथा पूर्ति का सामान्य सिद्धान्त, जो किसी वस्तु के बाजार से सम्बन्धित है, इस स्थिति को प्रदर्शित करता हैं। स्थैतिक आर्थिक विश्लेषण की प्रक्रिया को रेखाचित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है–

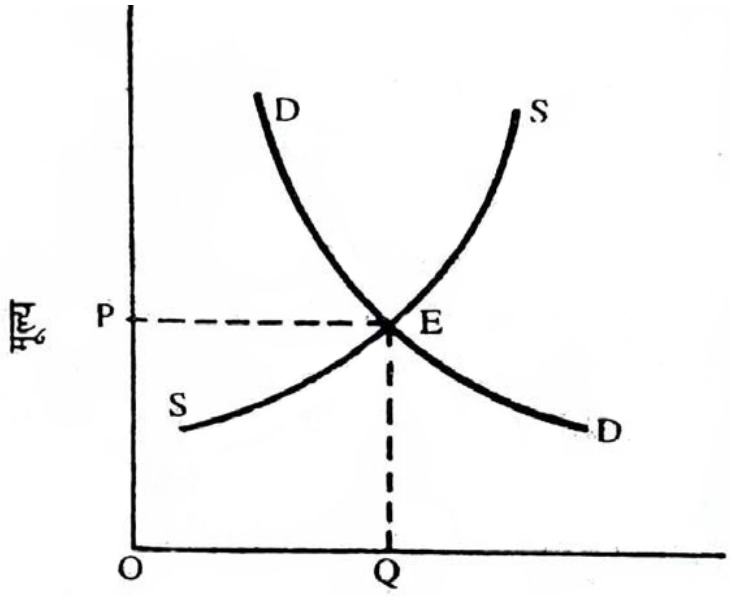

व्यष्टिभावी क्षेत्र में किसी वस्तु के मूल्य–निर्धारण का उदाहरण लीजिए। पूर्ण प्रतियोगिता में किसी समय–बिन्दु पर संस्थिति का निर्धारण उस समय बिन्दु पर मांग तथा पूर्ति के द्वारा होता है अर्थात् किसी समय बिन्दु पर संस्थिति मूल्य $P_t = D_t = S_t$ जिसमें $P_t = t$ अवधि में मूल्य, $D_t = t$ अवधि में मांग तथा $S_t = t$ अवधि में पूर्ति का प्रतीक हैं। इसका प्रदर्शन रेखचित्र में किया गया हैं। इस रेखाचित्र में मांग वक्र (DD) तथा पूर्ति वक्र (SS) एक दूसरे के (E) बिन्दु पर बराबर हैं। संस्थिति मूल्य (OP) होगा। मूल्य–निर्धारण का यह स्थैतिक विश्लेषण है क्योंकि इससे सम्बंधित सभी चर–मांग, पूर्ति तथा मूल्य एक ही समयबिन्दु से संबंधित हैं तथा इस प्रकार के मूल्य–निर्धारण के समय यह मान लिया गया है कि अन्य निर्धारक तत्व जैसे उपभोक्ता की आय, रूचि, फैशन तथा उत्पादन की दशायें अपरिवर्तित हैं।

2.9 विकल्प लागत

आधुनिक अर्थशास्त्री लागत के एक तीसरे प्रकार की चर्चा करते हैं, जिसे अवसर लागत कहा जाता हैं। प्रायः उत्पादन के साधनों के अनेक प्रयोग सम्भावित होते हैं जैसे भूमि के एक टुकड़े पर दुकान बनाना, गेहूँ उत्पन्न करना अथवा चावल की खेती करना आदि। एक श्रमिक को मेज बनाने में लगाना, इससे कुर्सी बनवाना अथवा किसी अन्य कार्य में लगाना आदि। पर एक समय में किसी उत्पादन के साधन को किसी एक ही प्रयोग में लगाया जा सकता है और उसके अन्य प्रयोगों के अवसर का त्याग करना आवश्यक हो जाता हैं। उस प्रयोग में लगे हुए उत्पादन के साधन की अवसर लागत उन वैकल्पिक प्रयोगों का त्याग ही है जिनमें उस उत्पादन के साधनों को लगाया गया होता है। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने त्याग तथा कष्ट के माध्यम से अवसर लागत की गणना न करके उसकी गणना उस साधन के वैकल्पिक प्रयोग के आधार पर की जिसका त्याग उत्पादन के साधन को एक विशेष प्रयोग में लगाने पर करना पड़ता है। इसे दूसरे रूप से इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि यदि उस उत्पत्ति के साधन को वर्तमान प्रयोग में न लगाया गया होता तो किसी दूसरी वस्तु का कितना उत्पादन किया गया होता । अवसर लागत के इस विश्लेषण को एक रेखाचित्र के माध्यम से और स्पष्ट किया जा सकता है।

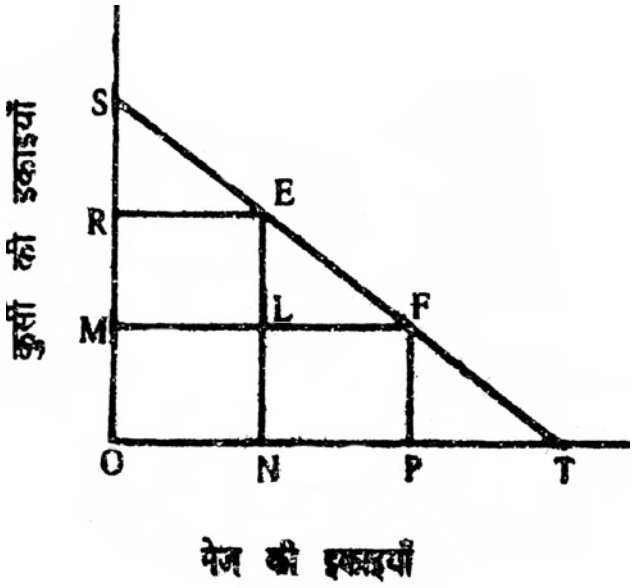

इस रेखाचित्र में ST वक्र ऐसी रेखा है जो विभिन्न संयोगों (Combinations) को प्रदर्शित करती है जो श्रम की किसी एक इकाई के प्रयोग से उपलब्ध है। अर्थात् यदि श्रमिक को केवल कुर्सी बनाने पर लगाया जाय तो वह OS कुर्सियाँ बनायेगा तथा यदि उसे केवल मेज बनाने पर लगाया जाय तो वह OT मेज बनायेगा। ST रेखा पर E बिन्दु यह दिखाती है कि श्रम की उस इकाई से OR कुर्सियाँ तथा ON मेज उपलब्ध होंगे पर यदि उत्पादन E बिन्दु पर न होकर F बिन्दु पर हो तो उसे OM कुर्सियाँ तथा OP मेज उपलब्ध होंगे अर्थात् मेज में वृद्धि तो NP इकाइयों की होती है पर कुर्सियों में कमी RM की होती हैं। aF बिन्दु पर NP मेज की अवसर लागत MR कुर्सियाँ हैं जिनके उत्पादन का परित्याग करना पड़ता है। यही E बिन्दु से F बिन्दु पर जाने की अवसर लागत है।

अवसर लागत को वैकल्पिक लागत, स्थानान्तरण लागत अथवा स्थानान्तरण मूल्य भी कहते हैं। अवसर लागत के सम्बन्ध में बेन्हम का विचार यह है कि 'मुद्रा की वह मात्रा जो कि कोई एक इकाई सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकती है(वही उसकी अवसर लागत हैं।) इसे कभी–कभी स्थानान्तरण आय भी कहते हैं।'' श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने अवसर लागत को इस प्रकार व्यक्त किया है– ''वह पारितोषिक, जो कि किसी साधन की इकाई को किसी उद्योग में बनाये रखने के लिए आवश्यक हो, स्थानान्तरण आय (Transfer Earning) अथवा कीमत कहलाती है।'' अवसर लागत का इस रूप में सबसे पहले प्रयोग मार्शल ने किया। कहने का तात्पर्य यह है कि उत्पादन के किसी साधन को वर्तमान प्रयोग अथवा कार्य, जिसे उसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग (First Best Use) कहेंगे, में बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसे कम से कम इतना पारिश्रमिक मिलना चाहिये जो वह दूसरे सर्वश्रेष्ठ प्रयोग (Second Best Use) में प्राप्त कर सकता। यदि उसे उतना न मिले तो वह दूसरे उपयोग में स्थानान्तरित हो जायेगा। उदाहरण के लिए यदि भूमि के किसी एक टुकड़े के सर्वश्रेष्ठ प्रयोग गेहूँ के उत्पादन में 200 रूपये की आय प्राप्त होती है तथा उसके दूसरे प्रयोग चावल के उत्पादन से 150 रूपये की आय मिलती है तो भूमि के टुकड़े को कम से कम 150 रूपये का परिश्रमिक मिलना चाहिए जो उसे गेहूँ के उत्पादन में बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं।

बोध प्रश्न 'ग'

1- बताएं की निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

(i) यथार्थमूलक अर्थशास्त्र का संबंध ''क्या होना चाहिए'' के साथ होता हैं।

(ii) आदर्श अर्थशास्त्र के अंतर्गत नीति संबंधी उपायों की सिफारिश के लिए मूल्य निर्णय प्रणाली की आवश्यकता होती है।

(iii) किसी विशेष आर्थिक समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक अर्थशास्त्री एक ही उपाय को बताता है।

(iv) यथार्थमूलक अर्थशास्त्र सदा वास्तविकता का चित्रण करता हैं।

(v) व्यष्टि अर्थशास्त्र के निष्कर्षों को समष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सदा ही लागू किया जाता है।

(vi) माँग और पूर्ति ये दोनों ही स्टॉक चर हैं।

(vii) तुलनात्मक स्थैतिकी के अंतर्गत दो संतुलन स्थितियों के बीच तुलना की जाती है।

(viii) यह कथन कि समस्त अर्थव्यवस्था या किसी आर्थिक इकाई को जो कुछ भी लाभ होता है उसकी कुछ विकल्प लागत होती है, कभी–कभी सही नहीं भी होता।

(ix) किसी वस्तु के उत्पादन में अर्थव्यवस्था को होने वाली विकल्प लागत सदा नियत होती हैं।

2- स्तंभ "A" में दिए हुए मदों का स्तंभ "B" में दिए हुए मदों के साथ मिलान करें।

स्तंभ 'A'	**'स्तंभ 'B'**
(i) किसी एक फर्म और उद्योग का अध्ययन	(क) वस्तु–विनिमय
(ii) वह चर जिसका माप किसी समय	(ख) समष्टि अर्थशास्त्र
(iii) बिन्दु पर किया जा सके	
(iv) किसी अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्र का	(ग) सीमांत उपयोगिता
(v) अध्ययन	
(vi) वह चर जिसका माप किसी अवधि के	(घ) यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहैं
(vii) दौरान किया जा सके	
(viii) आवश्यकता की तुष्टि करने की किसी	(च) प्रवाह चर
(ix) वस्तु की क्षमता	
(x) एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से	(छ) व्यष्टि अर्थशास्त्र
(xi) होने वाली तुष्टि	
(xii) यदि अन्य बातें समान हों	(ज) उपयोगिता
(xiii) अंडों के साथ सेब का विनिमय	(झ) स्टाक चर

2.10 सारांश

अर्थशास्त्र में उपयोगिता, मूल्य, विनिमय, संपत्ति, पदार्थ, पूर्ति, मांग, उपभोग, सीमांत आदि अनेक शब्द तथा संकल्पनाएं हैं जो लोकप्रिय आर्थिक शब्दावली के अंश होते हैं।

अर्थव्यवस्था को वस्तुओं और सेवाओं के वर्तुल प्रवाह की प्रणाली के यप में देखा जा सकता है। यह वर्तुल प्रवाह परिवारों, व्यवसाय–इकाइयों, सरकार आदि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र को के बीच होता है। प्रत्येक आर्थिक इकाई को दूसरी आर्थिक इकाइयों से आगत प्राप्त होते हैं और उनके बदले में उन्हैं भुगतान वह अपने निर्गत के रूप में करती हैं। आर्थिक प्रणाली के लिए यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

आर्थिक नियमों का निरूपण आर्थिक इकाइयों के कार्यों का चित्रण करने के लिए किया जाता है जो विभिन्न कारणों और शक्तियों के प्रत्युत्तर में किए जाते हैं। ये नियम प्रवृत्तियों के विवरण होते हैं। चूँकि इनका संबंध मनुष्य के व्यवहार के साथ होता है जिसे वह समाज का सदस्य होने के नाते करता है, अतः ये सामाजिक

नियमों के अंतर्गत माने जाते हैं। आर्थिक नियमों का निरूपण निगमनात्मक या आगमनात्मक तर्क के आधार पर किया जाता है। निगमनात्मक विधि के अंतर्गत धारणाओं या कारणों को चुन लिया जाता है और तर्क द्वारा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। कारण या धारणाएँ वास्तविकता को बता भी सकती हैं और नहीं भी। इसके विपरीत आगमनात्मक तर्क के अंतर्गत तथ्यों को एकत्रित किया जाता है और यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि विभिन्न शक्तियों और उद्दीपनों की प्रतिक्रिया के रूप में इकाइयों का वास्तविक व्यवहार स्वरूप क्या होगा। आर्थिक नियमों को सशक्त और परिष्कृत करने तथा अर्थव्यवस्था की कार्यवाही को समझने के लिए इन दोनों ही विधियों का प्रयोग होना चाहिए।

चूँकि नियंत्रित प्रयोग करना संभव नहीं होता तथा मानव व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन होते रहते हैं, अतः आर्थिक नियमों का प्रयोग विश्वसनीयतापूर्ण कथन के लिए नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त वास्तविकता इतनी जटिल होती है कि आर्थिक नियमों को बनाते समय सभी सक्रिय कारणों पर ध्यान देना संभव नहीं हो पाता। दूसरी बात यह है कि अधिकतर स्थितियों में होता यह है कि अंतिम परिणाम के निकलने के पहले ही कोई बाह्य शक्ति प्रक्रिया में विघ्न डाल देती है। इसी कारण प्रत्येक आर्थिक नियम के साथ यह वाक्य जुड़ा होता है कि ''यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें'' या ''यदि अन्य बातें समान हों''।

यथार्थमूलक अर्थशास्त्र से अभिप्राय आर्थिक विश्लेषण के उस अंश से होता है जो केवल वास्तविकता या सैद्धांतिक तर्क का विवरण प्रस्तुत करता है। इसके अंतर्गत यह नहीं बताया जाता कि आर्थिक विश्लेषण से निकले परिणाम वांछनीय है या नहीं। इसके विपरीत आदर्श अर्थशास्त्र का संबंध ''क्या होना चाहिए'' के साथ होता हैं। यह वास्तविकता को समाज द्वारा निर्धारित लक्ष्यों के संदर्भ में देखता है तथा उन्हें प्राप्त करने के उपाय बताता है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र शब्दों का उपयोग समुच्चय के स्तर (level of aggregation) के संबंध में किया जाता है, अर्थात् इस संबंध में कि आर्थिक विश्लेषण के अंतर्गत आर्थिक इकाइयाँ और चर किस सीमा तक आ जाते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत पृथक–पृथक आर्थिक इकाइयों और उनके छोटे–छोटे वर्गों की आर्थिक क्रियाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता हैं। समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक इकाइयों के बृहत समूहों, उनके समुच्चयों तथा उनकी औसतों और समष्टि चरों का अध्ययन होता है जैसे कि राष्ट्रीय आय, बेरोजगारी आदि। व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र, इन दोनों ही का अपना–अपना महत्व है और इन दोनों ही का अध्ययन होना चाहिए। क्योंकि ये एक दूसरे के पूरक हैं।

आर्थिक चरों को स्टॉक और प्रवाह नामक दो वर्गों के बीच बाँटा जा सकता हैं। स्टॉक चर वह है जिसका माप केवल किसी समय बिन्दु के संदर्भ में किया जा सकता हैं। इसके विपरीत प्रवाह चर (flow variable) का माप किसी अवधि के दौरान किया जाता है। प्रायः इन दोनों ही चरों का साथ–साथ उपयोग करना आवश्यक होता है।

स्थैतिक अर्थशास्त्र का तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण की वह तकनीक है जिसमें अर्थव्यवस्था के प्राचलों को दिया हुआ मान लिया जाता है। ''यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें'' को मान लिया जाता है तथा प्रारंभिक और अंतिम संतुलन स्थितियों के बीच तुलना की जाती है। गत्यात्मक अर्थशास्त्र या गत्यात्मक विश्लेषण के अंतर्गत अर्थव्यवस्था के प्राचलों में परिवर्तन होने दिया जाता है तथा ''यदि अन्य बातें

पूर्ववत् रहें'' नामक शर्त को छोड़ दिया जाता है। इस विश्लेषण के अंतर्गत किसी चर की प्रारम्भिक स्थिति की तुलना में उसकी नई स्थिति को जानने का एकमात्र उपाय होता है उसके परिवर्तन के मार्ग का पता लगाना।

किसी वस्तु की विकल्प लागत से अभिप्राय उस वस्तु की क्षति से होता है जिसे कि प्राप्त होने वाली वस्तु के बदले में छोड़ना पड़ता है। यह संकल्पना किसी आर्थिक प्रणाली के प्रत्येक पक्ष पर लागू होती है। विकल्प लागतों की अभिव्यक्ति मुद्रा–लागत, विकल्प उत्पादन की क्षति, विकल्प आय–प्राप्ति की क्षति आदि रूपों में होती है। यह संकल्पना व्यष्टि और समष्टि इन दोनों ही स्तरों पर लागू होती है।

2.11 उपयोगी शब्दावली

- **औसत उपयोगिता (Average Utility) :** कुल उपयोगिता में वस्तु की कुल इकाइयों से भाग देने पर एक इकाई की जो उपयोगिता प्राप्त होती है उसे औसत उपयोगिता कहते हैं।

- **वस्तु विनिमय (Barter):** वस्तु/सेवाओं के बदले में किन्हीं अन्य वस्तुओं/सेवाओं का विनिमय।

- **यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहैं (Ceteris Paribus) :** प्रत्येक आर्थिक नियम के विवरण के साथ लगी शर्त, जिसका अर्थ होता है कि अंतिम परिणाम पर पहुँचने के पूर्व कोई भी बाहरी शक्ति इस प्रक्रिया में बाधा नहीं डालेगी।

- **सुख की वस्तुएँ (Comforts) :** वे वस्तुएँ जिनका उपयोग हमारी उत्पादन क्षमता को बढ़ाने और हमारे जीवन को और सुखमय बनाने के लिए किया जाता है।

- **उपभोग (Consumption) :** किसी आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया के अंतर्गत उपयोगिता का उपयोग।

- **निगमनात्मक तर्क (Deductive Reasoning) :** विश्लेषण की वह तकनीक जिसके अंतर्गत कारणों या मान्यताओं का चयन कर लिया जाता है और उनके आधार पर परिणाम निकाले जाते है।

- **माँग (Demand) :** वस्तु की वह मात्रा जिसे किसी अवधि के अंतर्गत प्रति इकाई के लिए दी हुई कीमत पर क्रेता खरीदने को तैयार हो।

- **गत्यात्मक अर्थशास्त्र (Dynamic Economics) :** विश्लेषण की एक तकनीकी जिसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था के प्राचलों और अन्य वस्तुओं में अपूर्वसूचनीय ढंग से परिवर्तन होने दिया जाता है। विचारधीन चर की स्थिति का अनुमान लगाने का एकमात्र उपाय यह होता है कि मार्ग का पता लगाया जाए।

- **आर्थिक नियम (Economic Laws) :** प्रवृत्तियों के विवरण जो आर्थिक इकाइयों की उन मानकीकृत या व्यापक प्रतिक्रियाओं का चित्रण प्रस्तुत करते हैं जो विभिन्न शक्तियों और उद्दीपनों के प्रति की जाती हैं।

- **विनिमय मूल्य (Exchange Value) :** बाजार में किसी वस्तु के लिए मिलने वाली कीमत।

- **प्रवाह चर (Flow Variable) :** वह चर जिसका माप केवल किसी समय अवधि के संदर्भ में किया जा सकता है।

- **वस्तु/पदार्थ (Goods) :** कोई भी वस्तु जिसमें उपयोगिता हो या जिसका उपयोग अन्य पदार्थों या सेवाओं के उत्पादन में किया जा सके।

- **आगमनात्मक तर्क (Inductive Reasoning) :** विश्लेषण की एक तकनीक जिसके अंतर्गत विभिन्न शक्तियों और उद्दीपनों के प्रत्युत्तर में विभिन्न आर्थिक इकाइयों के व्यवहार स्वरूप को जानने के लिए सही सूचना का प्रयोग किया जाता है।

- **मध्यवर्ती वस्तुएँ (Intermediate Goods) :** वे आगत जिनका उपयोग उत्पादन के लिए किया जाता है।

- **विलास वस्तुएँ (Luxuries) :** वे वस्तुएं जिनका उपयोग अपनी हैंसियत को दिखाने या सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए किया जाता है।

- **समष्टि अर्थशास्त्र (Marco Economics) :** आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा जिसके अतंर्गत केवल समस्त अर्थव्यवस्था या उसके बड़े क्षेत्रकों की गतिविधियों का ही अध्ययन किया जाता है।

- **सीमांत (Margin) :** किसी वस्तु की अंतिम इकाई से संबंधित विचारधीन चर का मूल्य।

- **सीमांत उपयोगिता (Marginal Utility) :** किसी वस्तु की एक और इकाई के उपभोग से प्राप्त होने वाली अतिरिक्त तुष्टि।

- **कार्य–पद्धति (Methodology) :** यह विश्लेषण के उपकरणों, आधार सामग्री के संग्रह और उनके उपयोग तथा तर्क प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है।

- **व्यष्टि अर्थशास्त्र (Micro Economics) :** आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा जिसके अंतर्गत एकल आर्थिक इकाइयों या उनके छोटे वर्गों तथा अलग–अलग वस्तुओं की अलग–अलग कीमतों जैसे व्यष्टि–चरों के अध्ययन पर जोर दिया जाता है।

- **मुद्रा विनिमय (Money Exchange) :** मुद्रा के बदले में वस्तुओं/सेवाओं का विक्रय।

- **आवश्यक वस्तुएँ (Necessities) :** हमारे जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के काम में आने वाली वस्तुएँ।

- **सामान्य (Normal):** किसी चर में ऐसी प्रवृत्ति का होना कि वह बार–बार, प्रायः आमतौर पर या दीर्घ काल तक बनी रहें।

- **आदर्शक अर्थशास्त्र (Normative Economics) :** आर्थिक विश्लेषण का वह अंश जिसका संबंध इन बातों के साथ हो कि **क्या होना चाहिए** और वर्तमान परिस्थितियों में परिवर्तन लाकर किस प्रकार उनकी प्राप्ति की जा सकती है।

- **विकल्प लागत (Opportunist Cost) :** किसी आर्थिक पदार्थ के अगले सर्वोत्तम उपयोग या अवसर का मूल्य, त्याग किए हुए विकल्प का मूल्य।

- **यथार्थमूलक अर्थशास्त्र (Positive Economics) :** आर्थिक तर्क का वह अंश जिसके अंतर्गत क्या है के संबंध में विचार किया जाता है। इसकी वांछनीयता या अन्यथा के साथ इसका कोई संबंध नहीं होता। उसी प्रकार वर्तमान स्थिति को बदलने के संबंध में भी वह कुछ नहीं कहता।

- **स्थैतिक अर्थशास्त्र (तुलनात्मक स्थैतिकी) (Static Economics) (Comparative Statics) :** विश्लेषण की एक तकनीक जिसके अंतर्गत प्रारंभिक और अंतिम संतुलन परिस्थितियों की तुलना इस मान्यता के आधार पर की जाती है कि आर्थिक प्रणाली के मूल तत्वों में (जिन्हैं अर्थव्यवस्था के प्राचल भी कहा जाता है) कोई परिवर्तन नहीं होता।

- **स्टॉक चर (Stock Variable) :** वह चर जिसकी माप केवल किसी समय बिन्दु के संदर्भ में ही की जा सके।

- **पूर्ति (Supply) :** किसी वस्तु की वह मात्रा जिसकी प्रति इकाई के लिए दी हुई कीमत पर और नियत समय पर विक्रेता बाजार में बेचने को तैयार हों।

- **कुल उपयोगिता (Total Utility) :** किसी वस्तु की कुल इकाइयों से प्राप्त कुल संतुष्टि।

- **उपयोग मूल्य (Use Value) :-** किसी वस्तु की उपयोगिता।

- **उपयोगिता (Utility) :-** आवश्यकता तुष्ट करने की किसी वस्तु की शक्ति। इससे आशय होता है कि कोई वस्तु किसी उपभोक्ता को क्या सेवा या संतुष्टि प्रदान कर पाती हैं।

2.12 बोध प्रश्नों का उत्तर

A) 4 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) गलत v) गलत vi) सही

vii) गलत viii) सही xi) गलत x) सही xi) गलत

B) 3 i) गलत ii) सही iii) सही iv) गलत v) गलत vi) गलत

vii) सही viii) सही xi) सही

C) 1 i) गलत ii) सही iii) गलत

iv) गलत– यह यथार्थ का चित्रण तभी कर सकता है जब मान्यताएं यथार्थवादी हों। अन्यथा इसका तर्क तो सही होगा परंतु उसके निष्कर्ष उपयोग योग्य नहीं भी हो सकते है।

v) गलत vi) गलत vii) सही viii) गलत ix) गलत

2 i) छ ii) झ iii) ख iv) च v) ज vi) ग vii) घ viii) क

2.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 यथार्थमूलक और आदर्शक के बीच अंतर बताएं। आप इनमें से किसे उत्तम समझते है और क्यों?

प्रश्न–2 निम्नलिखित के संबंध में संक्षिप्त नोट लिखें:

(A) संतुलन की संकल्पना।

(B) आर्थिक नियमों की सीमाएं।

(C) यदि अन्य बातें पूवंवत् रहें।

(D) परिवर्तन के मार्ग का पता लगाना।

प्रश्न–3 निम्नलिखित के बीच भेद बताएं।

(A) समष्टि अर्थशास्त्र और व्यष्टि अर्थशास्त्र।

(B) स्थैतिक अर्थशास्त्र और गत्यात्मक अर्थशास्त्र।

प्रश्न–4 प्रायः प्रत्येक आधुनिक अर्थव्यवस्था गतिशील होती हैं। इसके कारण बताएं।

प्रश्न–5 उपभोक्ता, उत्पादक निवेशकर्त्ता और उत्पादन के कारक के लिए अवसर लागतों की अभिव्यक्ति किस रूप में होती हैं।

प्रश्न–6 संतुलन के अर्थ और विभिन्न प्रकारो के बारे में बताये।

प्रश्न–7 स्टॉक एवं चरो में अन्तर स्थापित करे।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0, 2008)
- ❖ एस0 के0 मिश्र : आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र (प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली, 1988)
- ❖ प्रो0 एस0 एन0 लाल : अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजा : व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- ❖ एस0सी0 बरला : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- ❖ लक्ष्मी नारायण नाथूरामका : व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)

- पी0ए0 सैम्युलसन : अर्थशास्त्र दसवाँ संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस, 1982)
- डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैन : मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- एन0सी0ई0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र : एक परिचय, कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014

इकाई : 3 आर्थिक प्रणालियाँ

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आर्थिक प्रणाली

3.3 विभिन्न आर्थिक प्रणालियाँ

3.4 पूँजीवाद

- 3.4.1 पूँजीवाद का आविर्भाव
- 3.4.2 पूँजीवाद की विशेषताएँ
- 3.4.3 पूँजीवाद का वर्तमान स्वरूप
- 3.4.4 पूँजीवाद प्रणाली के गुण
- 3.4.5 पूँजीवाद प्रणाली के दोष
- 3.4.6 कीमत तंत्र और पूँजीवाद अर्थव्यवस्था का कार्यचालन
- 3.4.7 पूँजीवाद अर्थव्यवस्था में आधुनिक निगम

3.5 समाजवाद

- 3.5.1 समाजवाद का निर्माण
- 3.5.2 समाजवाद की विशेषताएँ
- 3.5.3 समाजवादी आर्थिक प्रणाली के गुण
- 3.5.4 समाजवादी आर्थिक प्रणाली के दोष
- 3.5.5 समाजवादी अर्थव्यवस्था में आयोजन की भूमिका

3.6 साम्यवाद

3.7 मिश्रित अर्थव्यवस्था

- 3.7.1 मिश्रित अर्थव्यवस्था का अम्युदय
- 3.7.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
- 3.7.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुण
- 3.7.4 मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष
- 3.7.5 मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में तर्क
- 3.7.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था की सीमाएँ

3.8 सारांश

3.9 उपयोगी शब्दावली

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.11 महत्पूर्ण प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि, :

- आर्थिक प्रणालियों के विभिन्न प्रकारों की पहचान कर सकेंगे,
- पूँजीवाद, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ बता सकेंगे तथा
- पूँजीवाद, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के कार्यचालन को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में अक्सर ही हम पूँजीवाद, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था की चर्चा करते हैं। विभिन्न देशों में आज ये ही आर्थिक प्रणालियाँ प्रचलित हैं। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि इन प्रणालियों का वास्तविक अभिप्राय क्या होता है। आप यह भी देखेंगे कि इन प्रणालियों का आविर्भाव कैसे हुआ या इनका निर्माण कैसे होता है और प्रायः इनकी कार्यविधि क्या है। साथ ही साथ आप यह भी पढ़ेंगे कि विभिन्न आर्थिक प्रणालियों के बीच बाजार और राज्य की योजना के कार्यभाग के संबंध में किस प्रकार के अंतर होते हैं।

3.2 आर्थिक प्रणाली

मनुष्य भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए जो क्रियायें करता है, उन्हें ही आर्थिक क्रियायें कहते हैं। आर्थिक क्रियाओं के संचालन की विधि या तरीका ही आर्थिक पद्धति या आर्थिक प्रणाली कहलाता है। विश्व के सभी देशों में आर्थिक क्रियाओं के संचालन का सम्बन्ध साधनों के आवंटन से है जिनसे वह अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का प्रयत्न करता है। सीमित साधनों का आर्थिक विकास की विभिन्न और असीमित आवश्यकताओं में आवंटन कार्य सभी देशों की अर्थव्यवस्था में एक–सी समस्यायें उत्पन्न करता है। ये आर्थिक समस्यायें हैं– **1.** किसी वस्तु के उत्पादन के लिए साधनों का कितना प्रयोग हो, **2.** वस्तु का उत्पादन कितनी मात्रा में हो, **3.** उत्पादन के लिए साधनों का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग करने के लिए कौन–सी विधि अपनायी जाय, **4.** उत्पादित वस्तु का वितरण किस प्रकार हो।

प्रत्येक देश में इन समस्याओं के समाधान के लिए दिन–प्रतिदिन जो आर्थिक क्रियायें, वहाँ के नागरिकों द्वारा या सरकार द्वारा संपादित की जाती हैं, उनका संकलित रूप ही आर्थिक प्रणाली है। सभी देशों में समस्याओं के निवारण हेतु की जाने वाली आर्थिक क्रियायें एक जैसी नहीं हैं, इसलिए आर्थिक प्रणाली भी सभी देशों में एक जैसी नहीं है। जिन देशों में उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व है, और व्यक्ति ही यह निर्णय करता है कि वह अपने साधनों से किस

वस्तु का, कितनी मात्रा में, किस विधि से उत्पादन अपने निजी लाभ के लिए करे, तो उस देश की आर्थिक प्रणाली **पूँजीवादी प्रणाली** कही जाती है। जिन देशों में उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व होता है, और समाज की प्रतिनिधि–संस्था सरकार एक निश्चित योजना के अन्तर्गत प्राथमिकताओं का निर्धारण कर सामाजिक लाभ के लिए साधनों के प्रयोग का निर्णय करती है, वहाँ आर्थिक क्रियाओं की संचालन विधि को **समाजवादी प्रणाली** कहते हैं।

जिन देशों में उत्पादन के कुछ साधनों पर व्यक्तिगत और कुछ साधनों पर समूह या समाज का स्वामित्व होता है, वहाँ साधनों के आवंटन से उद्‌भूत समस्याओं के समाधान हेतु अपने–अपने साधनों की प्रयोग विधि के निर्णय, व्यक्ति और समाज दोनों के द्वारा ही क्रमशः व्यक्तिगत और समाज के लाभ के दृष्टिकोण से लिए जाते हैं। ऐसे देशों की आर्थिक प्रणाली न तो पूँजीवादी ही होती है और न ही समाजवादी प्रणाली ही होती है, बल्कि दोनों ही प्रणालियों का सह–अस्तित्व होता है। इसलिए इन देशों की प्रणाली को **मिश्रित आर्थिक प्रणाली** कहते हैं।

आर्थिक प्रणालियों की संकल्पना को इस रूप में लेने का अर्थ है, इसे अत्यंन्त सरल ढंग से प्रस्तुत करना। अधिक वैज्ञानिक अर्थ में आर्थिक प्रणाली से अभिप्राय जो उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के कुछ स्वरूपों पर आधारित ''उत्पादक शक्तियों'' (Production forces) और उत्पादन के संबंधों (relation of production) के सहयोग से है। इसलिए किसी समाज की आर्थिक प्रणाली के स्वरूप को समझने के लिए हमें उस समाज में विद्यमान उत्पादन–संबंधों के साथ–साथ उसकी उत्पादक शक्तियों के संबंध में भी विचार करना होगा।

उत्पादक शक्तियाँ (Production forces) :- जीवित रहने के लिए मनुष्य को भोजन, वस्त्र, मकान तथा अन्य अनेक प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन सबके उत्पादन में उसे अपना श्रम लगाना होता है। हम जानते हैं कि केवल श्रम से ही किसी वस्तु का उत्पादन नहीं किया जा सकता। मनुष्य के लिए उपयोगी वस्तु के निर्माण में श्रम के साथ कच्चा लोहा, कोयला, उपकरण, मशीन, भवन जैसी वस्तुओं का उपयोग करना होता है। इस प्रकार की सभी वस्तुएँ जिनका उपयोग उत्पादन कार्य में किया जाता है उत्पादन के साधन कहे जाते हैं। उत्पादन के साधनों का वर्गीकरण दो मुख्य श्रेणियों में किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी के अंतर्गत उत्पादन के वे साधन आते है जिनके साथ श्रम का उपयोग प्रत्यक्ष रूप में किया जाता है। इसके अंतर्गत कपास, तिलहन, रसायन और खनिज आदि कच्चे माल आते हैं। इन्हें श्रम की वस्तुएँ (Objects of labour) कहा जाता है। मशीन, औजार आदि पूँजीगत उपकरणों को श्रम के उपकरण (instruments of labour) कहा जाता है। श्रम के इन उपकरणों के अतिरिक्त सड़कों, फैक्ट्रियों, भवनों, पत्तनों, गोदामों आदि का भी उपयोग उत्पादन कार्य मे करना होता है। जिन्हें श्रम के साधन (means of labour) के नाम से जाना जाता है।

आदिम अथवा आधुनिक सभी समाजों में उत्पादन के साधन और श्रम एक दूसरे को सदा ही प्रभावित करते रहे हैं और इसी क्रिया के द्वारा इन समाजों में उत्पादक शक्तियों का निर्धारण होता है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में प्रगति के साथ–साथ मशीनों और औजारों में बहुत कुछ सुधार हुए हैं। श्रम के उपकरणों में बहुत विविधता आ गई है और आज भी अत्याधिक कौशल की आवश्यकता पड़ती है। इन सब तर्कों का सार यह है कि समय के साथ–साथ उत्पादक शक्तियों का विकास हुआ है और आज भी इनमें और वृद्धि के संकेत दिखाई पड़ रहे हैं।

उत्पादक शाक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच संगति–संघर्ष (Compatibility and Confilict between Productive Forces and Relation of Production) :- किसी भी अर्थव्यवस्था के आर्थिक ढाँचे के लिए दो मुख्य कारक उत्तरदायी होते हैं–

1. उत्पादन की विधि (Mode of Production)
2. उत्पादन के सम्बन्ध (Relationship in Production)

1. उत्पादन की विधि (Mode of Production) :– यह उत्पादन ढाँचे को बताता है तथा इसकी सामाजिक अवस्था को स्पष्ट करता है जैसे– उत्पादन क्षेत्र में लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों की अधिकता है या बड़े पैमाने के उद्योगों की, कृषकों में सीमान्त व छोटे कृषक अधिक हैं या बड़े कृषक।

2. उत्पादन के सम्बन्ध (Relationship in Production) :– यह संसाधनों के स्वामित्व का ढाँचा स्पष्ट करता है। सामाजिक समता को बताता है। यदि सामाजिक समता नही है तो समाज में दो वर्गों का उदय होता है अर्थात् समाज दो वर्गों में बट जाता है–

- जिनके पास संसाधनों का स्वामित्व है – पूँजीपति वर्ग
- जिनके पास संसाधनों का स्वामित्व नहीं है – सर्वहारा वर्ग

उत्पादन की विधि का मुख्य निर्धारक है श्रम तथा उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने वाले उत्पादन के अन्य साधन। मार्क्स ने श्रम को प्राथमिकता तथा प्रथम वरीयता प्रदान की है। इन्होने श्रम को सर्वोच्चता प्रदान की है। श्रम तो Supreme है इस प्रतिष्ठा (Dignity) के रूप में देखा जाता चाहिए। पूंजी या तकनीक को इन्होने दूसरा स्थान दिया है। यह श्रम का साधन है जिससे वह उत्पादन करता है।

मार्क्स ने विश्लेषण में कृषि को भी महत्व नहीं दिया और न ही अर्थव्यवस्था को दो भागों में बाँटा। इन्होंने लगान को भी लाभ का ही रूप माना है और वह पूंजीपति के लाभ में ही शमिल रहता है। इस प्रकार इन्होंने लगान और लाभ में स्पष्ट भेद नहीं किया है।

मार्क्स ने माना कि श्रम के औद्योगिक या आर्थिक क्रियाकलाप में संलग्न होने पर इसे जो मजदूरी के रूप में परिश्रमिक दिया जाता है श्रमिक इससे कहीं अधिक उत्पादन करता है। कारण यह है कि श्रमिकों को महज जीवन निर्वाह स्तर की मजदूरी दी जाती है और श्रमिक उससे अधिक योगदान देता है।

श्रम द्वारा किये गये उत्पादन और श्रमिक को प्राप्त होने वाली मजदूरी के अन्तर को मार्क्स ने अतिरेक मूल्य (Supreme Value) कहा। इसे निम्नवत लिखा जा सकता है–

S=E-W

S= अतिरेक मूल्य

E= श्रमिक द्वारा उत्पादित वस्तु का मूल्य

W= मजदूरी

मार्क्स के अनुसार अतिरेक मूल्य का सृजन केवल श्रम ही कर सकता है। मार्क्स ने इसे चुराया गया श्रम (Corneelsol labour) कहा है। यही अतिरेक मूल्य ही पूँजी

संचय व पूँजी निर्माण का कार्य करता है, जिसे पूँजीपति के लाभ के रूप मे देखा जाता है। अतः पूँजी निर्माण एक रूपान्तरित श्रम ही है।

Mode of Production में पूँजी निर्माण व पूँजी संचय परिवर्तन लाते हैं जिससे उत्पादन के पैमाने तथा प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आते हैं। इसके परिणामस्वरूप Relationship in Production में विरोध प्रारम्भ हो जाता है। यही पूँजीवाद की पूर्वावस्था (Early Capatilism) कही जाती है। इससे पूँजी की प्रधानता बढ़ती है, उत्पादन प्रणाली पूँजी प्रधान होती जाती है। उत्पादक अपना लाभ बढ़ाने के लिए अन्य उद्यमियों को हानि पहुँचाकर भी लाभ अर्जित करने का प्रयास करते हैं। इसमें तकनीकी विकास सहायक होता है। इस प्रतियोगिता में जो सफल होगा वह और बड़ा पूँजीपति होगा और जो असफल होगा वह सर्वहारा वर्ग में शामिल होगा। इस प्रकार उद्योगों के लिए श्रम का आकार या बेरोजगार श्रमिकों की संख्या बढ़ती है। इसे मार्क्स ने ''औद्योगिक रिजर्व सेना'' (Industrial Reserve Army) कहा। इसी कारण मजदूरी बढ़ती नहीं है बल्कि स्थिर बनी रहती है।

3.3 विभिन्न आर्थिक प्रणालियाँ

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज की आर्थिक प्रणालियां प्राचीन और मध्य युग में विद्यमान नहीं थी। जो आर्थिक प्रणालियाँ विकसित हुई या जिन्हें स्थापित किया गया, वे आनुक्रमिक रूप में इस प्रकार थी–

1. **आदिम समाज (Primitive Society)**
2. **दासप्रथा (The slave owning system)**
3. **सामंतवाद (feudalism)**
4- **पूँजीवाद (Capitalism)**
5- **समाजवाद (Socialism)**

1. **आदिम समाज :–** सबसे पहले मुनष्य ने जिस व्यवस्था को विकसित किया वह आदिम समाज के नाम से जानी जाती है। यह प्रणाली हजारों वर्ष तक चलती रही और उसका अंत आज से लगभग 6–7 हजार वर्ष पहले हुआ। यह ऐसा समय था जब मनुष्य अत्यंत कमजोर और असहाय स्थिति में था। उस युग में श्रम के उपकरण आदिकालीन थे, अतः एक दूसरे के साथ सहयोग करने के अतिरिक्त मुनष्य के सम्मुख और कोई विकल्प नहीं था। लोग झुंड बनाकर शिकार करने जाते थे और वे इस सम्मिलित श्रम के फल का उपभोग सामूहिक रूप में रहकर करते थे। इस प्रणाली में निजी संपत्ति नहीं होती थी। समय के साथ–साथ जब उत्पादक शक्तियों का विकास हुआ और मनुष्य ने खेती करना सीख लिया, तब उत्पादन के संबंध बदलने लगे। इस बदली हुई स्थिति में चूंकि मुनष्य के लिए यह संभव हो गया कि वह अपने निर्वाह के लिए आवश्यक मात्रा से अधिक का उत्पादन कर सके, अतः दासप्रथा का जन्म हुआ। इसी समय निजी संपत्ति की धारणा भी स्वीकार्य बन गई। दासप्रथा और निजी संपत्ति के उद्‌भव के साथ ही साथ प्रणालीविहीन आदिम समाज (Classless Primitive Society) के स्थान पर एक ऐसा प्रणाली समाज (Class Society) आया जिसमें स्वामी और दास नामक दो प्रणाली थे।

2. **दासप्रथा :–** इस प्रणाली के अंतर्गत उत्पादन के साधनों के स्वामी व्यक्ति होते थे जिनका नियंत्रण दासों के श्रम के ऊपर भी होता था। दासप्रथा के

प्रारम्भिक काल में दासों के साथ मालिक भी काम करते थे। लेकिन समय के साथ–साथ ऐसा नहीं रहा तथा श्रम कार्य केवल दासों से ही लिया जाने लगा। समस्त उत्पादन को मालिक हड़प लेते थे और उसमें से दासों को उतना ही अंश दिया जाता था जो उनके निर्वाह मात्र के लिए अत्यंत आवश्यक था।

दासप्रथा के अंतर्गत उत्पादकों को, जो सदा ही दास होते थे, तकनीक में सुधार लाने के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं होती थी क्योंकि उससे उनका कोई भला नही होने वाला था। उन्नत प्रकार की टेक्नालॉजी से उत्पादकता बढ़ती है, जिसके फलस्वरूप केवल अधिशेष (Surplus) में वृद्धि होती है जिसे मालिक हड़प लेते थे। इसलिए दासप्रथा पर आधारित समाज में उत्पादन के संबंध उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक सिद्ध हुए। इस अंतर्विरोध और मालिकों और दासों के हितों के बीच विरोध होने के फलस्वरूप अंततः उस आर्थिक प्रणाली का ही विनाश हो गया। उसके बाद जो आर्थिक प्रणाली विकासित हुई उसका नाम था सामंतवाद।

3. **सामंतवाद :–** दासप्रथा के अंत और सामंतवाद के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप उत्पादक शक्तियों के विकास का अवसर आया। सामंतवाद के अंतर्गत भूमि उत्पादन का मुख्य साधन थी और यह राजाओं, सामंतों तथा अमीर प्रणाली के स्वामित्व में होती थी। जो लोग वास्तव में कृषि कार्य करते थे, उनके पास अपनी भूमि नहीं होती थी। उन्हें दास कहा जाता था। वे लोग सामंतों के खेतों पर काम करते थे और उसके बदले में उन्हें उतना ही दिया जाता था जिससे उनका जीवन–निर्वाह मात्र होता रहे। अन्य वस्तुओं का उत्पादन कारीगर (artisans) और दस्तकार (handcraft workers) करते थे और यह कार्य मुख्यतः स्थानीय मांग की पूर्ति के लिए किया जाता था। समय बीतने के साथ–साथ जब इन वस्तुओं के बाजार का विस्तार हुआ तथा औद्योगिक टेक्नालॉजी और उन्नत हो गई, तब कारखानों को खोलने की आवश्यकता हुई। इसी के फलस्वरूप सामंतवाद के अंतर्गत उत्पादन के संबंधों और उत्पादक शक्तियों के बीच असंगति आ गई। कारखानों में काम करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता थी लेकिन सामंतों के बंधन से दासों को जब तक मुक्ति नहीं मिलती थी तब तक इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती थी। इसीलिए पूंजीपतियों ने अपने ही हित में दासों को उकसाना शुरू कर दिया कि वे अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करें। इसी के फलस्वरूप अंततः सामंतवाद का पतन हो गया। इसके वाद जो आर्थिक प्रणाली उभरी उसका नाम था पूँजीवाद।

4. **पूँजीवाद :–** पूँजीवादी प्रणाली से अभिप्राय आर्थिक क्रियाओं के संचालन की उस विधि से हैं, जिसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है, और उनका प्रयोग निजी लाभ के लिए करने की स्वतंत्रता होती है। अपनी आवश्यकताओं की अधिकतम संतुष्टि हेतु साधनों द्वारा किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाये, कितनी मात्रा में उत्पादन हो, और उत्पादन की विधि क्या हो, इसका निर्णय जब किसी केन्द्रीय नियोजन द्वारा न कर, व्यक्ति बाजार यन्त्र (माँग पूर्ति) के आधार पर स्वतन्त्र रूप से करता है, तो इसे ही पूँजीवाद प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर राज्य का कोई स्वामित्व नहीं होता और न राज्य आर्थिक क्रियाओं के संचालन में कोई हस्तक्षेप ही करता हैं। यद्यपि इस प्रणाली में राज्य द्वारा कुछ प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, परन्तु उनका प्रभाव आर्थिक क्रियाओं पर न होकर केवल सामाजिक महत्व का होता है।

पूँजीवाद प्रणाली बड़ी ही पुरानी प्रणाली है। इसको विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। इन परिभाषाओं का आधार पूँजीवाद की आधारभूत विशेषताएँ हैं। कुछ विद्वानों द्वारा निजी स्वामित्व और निजी लाभ को ही

केन्द्रीय प्रवृत्ति मानकर तथा कुछ विद्वानों द्वारा केन्द्रीय नियोजन की अनुपस्थिति को ही पूँजीवाद की आत्मा मानकर पूँजीवादी प्रणाली की परिभाषा की गई है। प्रो0 पीगू के अनुसार ''एक पूँजीवादी उद्योग वह है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों का प्रमुख भाग निजी स्वामित्व के अन्तर्गत होता है, या वे व्यक्तियों द्वारा किराए पर ले लिए जाते हैं और इनका उपयोग उनकी आज्ञानुसार इस प्रकार किया जाता है कि उनकी सहायता से उत्पन्न वस्तुएँ अथवा सेवाएँ लाभ पर बेंची जा सकें। एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था या पूँजीवादी प्रणाली वह है, जिसके उत्पादक साधनों का प्रमुख भाग पूँजीवादी उद्योग में लगा हो।'' प्रो0 पीगू ने अपनी परिभाषा में पूँजीवादी प्रणाली और पूँजीवादी उद्योग दोनों को ही समुचित स्थान देने का प्रयास किया है। पूँजीवादी प्रणाली का आधार उनके अनुसार पूँजीवादी उद्योग है और पूँजीवादी उद्योग वह है, जिसके अन्तर्गत 1– उत्पादक के साधन निजी स्वामित्व के अन्तर्गत होते हैं, 2– साधनों का उपयोग व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर करता है, 3– साधनों के उपयोग का उद्देश्य निजी लाभ या हित होता है।

5. समाजवाद :– (मार्क्स ने प्रो0 हीगल के विचारों को उद्धृत करते हुए कहा है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और फिर उसका संयोजन होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूँजीवादी प्रणाली की प्रतिक्रियास्वरूप ही समाजवादी प्रणाली अस्तित्व में आयी। वास्तव में यह प्रणाली 19 वीं शताब्दी की परिस्थितियों की देन है। निजी सम्पत्ति के अधिकार एवं उसके निजी लाभ के लिए संचालन की स्वतन्त्रता ने धन का जो असमान वितरण करके समाज को अमीर और गरीब वर्गों में बाँट दिया था उसके फलस्वरूप विद्रोह की अभिव्यक्ति ही समाजवाद के रूप में परिलक्षित हुई। सामान्यतया आर्थिक क्रियाओं के संचालन की उस पद्धति को ही समाजावाद के नाम से जाना जाता है, जिसमें साधन व्यक्तिगत व्वामित्व में न होकर समूह या समाज के अधिकार में होते है और समाज ही एक केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत निर्णय लेता है कि क्या और कितना तथा किस विधि से अर्थव्यवस्था में समाज के हित में उत्पादन करना है। लेकिन समाजवाद के सम्बन्ध में इतने दृष्टिकोण हैं, इतना कुछ उसके सम्बन्ध में कहा और लिखा जा चुका है कि उसका वास्तविक स्वरूप ही अस्पष्ट हो गया, इसलिए कि उसको बहुत अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। प्रो0 जीड कहते भी हैं, ''संक्षेप में समाजवाद एक ऐसी टोपी है, जिसका रूप प्रत्येक व्यक्ति के पहनने के कारण बिगड़ गया है।'' (Socialism in short is a cap which has loast it shape because everybody wears it.)

प्रो0 लुक्स एवं हूट के शब्दों में ''समाजवाद को बहुत सी वस्तुएँ कहा गया है, और बहुत–सी वस्तुओं को समाजवाद कहा गया है।'' परिणामस्वरूप समाजवाद एक आर्थिक प्रणाली के साथ–साथ एक शासन–प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है।'' प्रो0 लुक्स एवं हूट के कथन की पुष्टि प्रो0 शेडवेल द्वारा समाजवाद के स्वरूप के सम्बन्ध में दिए गए कथन से भी होती है। शेडवेल के अनुसार ''यह सैद्धान्तिक तथा रचनात्मक, भौतिक, विस्तार एक कोरी भावना से लेकर एक ठोस रचनात्मक कार्यक्रम तक फैला हुआ है। इसके विभिन्न समर्थक इसे एक जीवन–दर्शन, एक प्रकार का धर्म, एक नैतिक नियम, एक आर्थिक प्रणाली, एक ऐतिहासिक पद्धति और एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह एक लोकप्रिय आन्दोलन तथा एक वैज्ञानिक विवेचन है। यह भूतकाल पर एक टिप्पणी और भविष्य का दिग्दर्शन है, यह प्रेम और सभ्यता का महाग्रन्थ है, और घृणा तथा लालच के विरूद्ध आन्दोलन है। यह मनुष्य की भावी आशा है, और सभ्यता का अन्त है। यह एक अति आकर्षक भविष्य का प्रारम्भ है और भयपूंर्ण संकट की चेतावनी है।'' प्रो0 शेडवेल के उपरोक्त कथन इसकी अस्पष्टता और

विभिन्न रूपों में की गयी व्याख्याओं के सन्दर्भ में अक्षरशः सत्य हैं। यह आज के युग में ऐसा जनप्रिय नारा है कि अधिकांश लोग अपने को समाजवादी मानते हैं और अपनी भावनाओं के अनुसार इसका स्वरूप भी बना लेते हैं। इसीलिए प्रो0 मार्शल इसको एक भावना के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार ''प्रत्येक व्यक्ति 25 वर्ष की अवस्था के पहले समाजवादी होता है, और 25 वर्ष के बाद पूँजीवादी होता है।)

बोध प्रश्न 'क'

1. विभिन्न आर्थिक प्रणालियों का नाम बताइए।

   (i) (ii)

   (iii) (iv)

2. पूँजीवाद किसे कहते हैं?

3. समाजवाद किसे कहते हैं?

4. सामंतवाद से आप क्या समझते हैं?

5. वर्ग–संघर्ष से आप क्या समझते हैं?

6. समाजवादी आर्थिक–प्रणाली के संदर्भ में मार्क्स के विचारों को स्पष्ट करें।

7. **निम्नलिखित में कौन–सा कथन सही है और कौन–सा गलत?**

   (i) जब उत्पादन के संबंधों के साथ उत्पादक शक्तियों का मेल नहीं होता, तब आर्थिक प्रणाली स्थिर हो जाती है।

   (ii) सामाजिक विकास में पूँजीवाद अंतिम आर्थिक प्रणाली है।

   (iii) समाजवाद का उद्‌गम पूँजीवाद से होता है।

   (iv) समाजवाद का उद्‌गम अपने पहले की प्रणाली से नहीं होता बल्कि इसका निमार्ण करना होता है।

   (v) दासप्रथा पर आधारित आर्थिक प्रणाली शोषणकारी होती है।

   (vi) सामंतवाद के अंतर्गत उत्पादन का मुख्य साधन भूमि होती है।

   (vii) आदिम समाज के अंतर्गत वर्ग–संघर्ष था।

   (viii) श्रमिकों की दृष्टि से पूँजीवाद आदर्श आर्थिक प्रणाली है क्योंकि इसके अंतर्गत उनके शोषण की गुंजाइश नहीं होती।

3.4 पूँजीवाद

(पूँजीवाद प्रणाली से अभिप्राय आर्थिक क्रियाओं के संचालन की उस विधि से है, जिसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता हैं, और उनका प्रयोग निजी लाभ के लिए करने की स्वतंत्रता होती है। अपनी आवश्यकताओं की अधिकतम संतुष्टि हेतु साधनों द्वारा किन वस्तुओं का उत्पादन

किया जाये, कितनी मात्रा में उत्पादन हो, और उत्पादन की विधि क्या हो, इसका निर्णय जब कोई केन्द्रीय नियोजन न कर, व्यक्ति बाजार यन्त्र (माँग–पूर्ति) के आधार पर स्वतन्त्र रूप से करता है, तो इसे ही पूँजीवाद प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाली में उत्पादन के साधनों पर राज्य का कोई स्वामित्व नहीं होता और न राज्य आर्थिक क्रियाओं के संचालन में कोई हस्तक्षेप ही करता हैं। यद्यपि इस प्रणाली में राज्य द्वारा कुछ प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, परन्तु उनका प्रभाव आर्थिक क्रियाओं पर न होकर केवल सामाजिक महत्व का होता है।

पूँजीवाद प्रणाली बड़ी ही पुरानी प्रणाली है। इसको विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। इन परिभाषाओं का आधार पूँजीवाद की आधारभूत विशेषताएँ हैं। कुछ विद्वानों द्वारा निजी स्वामित्व और निजी लाभ को ही केन्द्रीय प्रवृत्ति मानकर तथा कुछ विद्वानों द्वारा केन्द्रीय नियोजन की अनुपस्थिति को ही पूँजीवाद की आत्मा मानकर पूँजीवादी प्रणाली की परिभाषा की गई है। प्रो0 पीगू के अनुसार ''एक पूँजीवादी उद्योग वह है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों का प्रमुख भाग निजी स्वामित्व के अन्तर्गत होता है, या वे व्यक्तियों द्वारा किरायें पर ले लिए जाते हैं और इनका उपयोग उनकी आज्ञानुसार इस प्रकार किया जाता है कि उनकी सहायता से उत्पन्न वस्तुएँ अथवा सेवाएँ लाभ पर बेंची जा सकें। एक पूँजीवाद अर्थव्यवस्था या पूँजीवादी प्रणाली वह है, जिसके उत्पादक साधनों का प्रमुख भाग पूँजीवादी उद्योग में लगा हो।'' प्रो0 पीगू ने अपनी परिभाषा में पूँजीवादी प्रणाली और पूँजीवादी उद्योग दोनों को ही समुचित स्थान देने का प्रयास किया है। पूँजीवादी प्रणाली का आधार उनके अनुसार पूँजीवादी उद्योग है और पूँजीवादी उद्योग वह है, जिसके अन्तर्गत 1– उत्पादक के साधन निजी स्वामित्व के अन्तर्गत होते है, 2– साधनों का उपयोग व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर करता है, 3– साधनों के उपयोग का उद्देश्य निजी लाभ हित होता है।) प्रो0 पीगू ने अपनी परिभाषा में केन्द्रीय नियोजन की अनुपस्थिति तथा पूँजीवाद के स्वभाव को सम्मिलित नहीं किया है।

प्रो0 वेनहम ने पूँजीवाद की एक विस्तृत तथा इसकी सभी विशेषताओं से युक्त परिभाषा दी है–''पूँजीवादी अर्थव्यवस्था आर्थिक तानाशाही की विरोधी है। पूरे उत्पादन का कोई केन्द्रीय नियोजन नहीं होता। राज्य द्वारा लगाये हुए प्रतिबन्ध के होते हुए भी, व्यक्ति कम या अधिक, अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र होता है। समाज की आर्थिक क्रियाओं का निर्धारण विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के समन्वयरहित निर्णयों के द्वारा होता है। क्योंकि प्रत्येक उत्पत्ति के साधन का स्वामी जिसमें दास प्रथा न होने के कारण श्रमिक भी सम्मिलित होता है उस साधन को अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता है और अपनी आय को स्वेच्छा से व्यय करता है।'' इस परिभाषा में प्रो0 बेनहम ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की लगभग सभी विशेषताओं को सम्मिलित कर लिया है। उनके अनुसार इस प्रणाली में कोई केन्द्रीय नियोजन नहीं होता, परन्तु राज्य का अस्तित्व होता है, और उसके द्वारा कुछ प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं, यद्यपि व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर इनका प्रभाव कम पड़ता है। अन्य विशेषताएँ प्रो0 बेनहम ने भी वही बतायी है जो प्रो0 पीगू ने अपनी परिभाषा में बतायी हैं।

3.4.1 पूँजीवाद का आविर्भाव – उत्पादन के पूँजीवादी संबंध का विकास सामंतवाद के गर्भ में हुआ । इस कथन से अभिप्राय यह है कि सामंतवाद के पतन के पूर्व ही पूँजीवाद के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे। इसे समझने के लिए निम्नलिखित के संबंध में चर्चा करना आवश्यक है, जिनके कारण सामंतवाद का पतन हुआ और पूँजीवाद के आविर्भाव के लिए मार्ग साफ हो गया।

1. **व्यापार और वाणिज्य की मात्रा में तेजी से विस्तार–** सामंतवाद के अतर्गत उत्पादक शक्तियों में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि की उत्पादकता बढ़ गई जिससे खाद्य तथा अन्य प्रकार के कृषि पदार्थ बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध होने लगे। अतः दूरस्थ बाजारों में व्यापार के लिए इन पदाथों का उपयोग किया जाने लगा। परिवहन की सुविधाओं में सुधार हो जाने से वाणिज्यिक और औद्योगिक नगरों की स्थापना को बल मिला जहाँ पर व्यापारी पूँजीपति (merchant capitalist) की मुख्य भूमिका अदा करने लगे।

2. **उद्योग में घरेलू उत्पादन प्रणाली (Putting out systems industry) -** सामंतवाद के अंतर्गत विनिर्माण कार्यों को परिवार उद्यम के रूप में किया जाता था तथा कारखाने, औजार, कच्चे माल, श्रम आदि परिवारों के ही होते थे। सामंतवाद के आगे के बाद के चरणों में उत्पादन की इस प्रणाली के स्थान पर धीरे–धीरे घरेलू उत्पादन प्रणाली आ गई। इस प्रणाली के प्रारम्भिक रूप में व्यापारी पूँजीवादी शिल्पकारों को कच्चा माल देते थे जो इसे तैयार माल का रूप देकर इसे व्यापारियों को सौंप देते थे। बदले में शिल्पकारों को इस सेवा के लिए पारिश्रमिक मिलता था। समय बीतने के साथ–साथ इन शिल्पकारों के औजार तथा कारखानों का स्वामित्व भी व्यापारी पूँजीपतियों के हाथों मे चला गया जो मजदूरी देकर श्रमिकों से इन कारखानों में काम कराने लगें। इस प्रकार उत्पादन के पूँजीवादी संबंध का विकास होने लगा।

3. **कृषि में बाड़ाबंदी आंदोलन (Enclosure movement) :-** उत्पादन के पूँजीवादी संबंध के लिए आवश्यक होता है कि ऐसे श्रमिक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते रहें जिनका अपने नियोजकों के साथ सामंतवाद के अधीन के दासों (serfs) के समान कोई प्रथागत बंधन (customary tie) नहीं होता तथा जिनके पास उत्पादन के अपने कोई साधन नहीं होते। यूरोप के बाड़ाबंदी आंदोलन तथा सोलहवीं सदी में हुई जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप इस प्रकार के श्रमिकों की पूर्ति में बहुत मदद मिली। बाड़ाबंदी आंदोलन का अर्थ यह था कि सामंतों ने शामिलात जमीनों पर बाड़ा लगा दिया और इनका उपयोग वे भेड़ों को पालने के लिए करने लगे। वस्त्र उद्योग में ऊन की मांग के बढ़ने के फलस्वरूप भेड़ पालन अत्यंत लाभदायक व्यवसाय हो गया। इस कार्य में अधिक श्रम की आवश्यकता न होने के कारण बहुत बड़ी मात्रा में दासों तथा उनके परिवार के लोगों को अपनी जीविका की खोज में नगरों की ओर जाना पड़ा। पूँजीवादी उद्योगों की श्रम के लिए मांग की पूर्ति इन्ही लोगों द्वारा हुई।

3.4.2 पूँजीवाद की विशेषताएँ

आइये पूँजीवाद की निम्नलिखित विशेषताओं को समझने का प्रयास करें:–

1. **उत्तराधिकार का नियम :–** पूँजीवाद का आधार निजी सम्पत्ति है। निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार उत्तराधिकार के नियम से संचालित है। इस नियम के कारण ही सम्पत्ति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्वतः हस्तान्तरित होती रहती है। यह नियम ही इस प्रणाली में व्यक्ति को अधिक कार्य करके अधिक सम्पत्ति जोड़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। व्यक्ति अपनी सन्तान को अपने से अधिक सम्पन्न देखना चहता है, इसलिए मरणोपरान्त उसके लिए अधिक सम्पत्ति भी छोड़ जाना चाहता है। इसीलिए इस नियम के ही कारण इस प्रणाली में सम्पत्ति वालों की सम्पत्ति और बढ़ती चली जाती है।

2. **सम्पत्ति के उपयोग का पूर्ण अधिकार :–** इस पद्धति में सम्पत्ति के स्वामी को अपनी सम्पत्ति को किसी भी रूप में रखने अर्थात् रहने रखने, बेच देने या

किसी को भी दे देने का पूर्ण अधिकार होता है। लड़कों को भी मृत्यु के उपरान्त ही सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त होता है। अपने जीवन काल में व्यक्ति चाहे तो अपने लड़कों को न देकर जिसको चाहे अपनी सम्पत्ति का स्वामी बना सकता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वह अपनी सम्पत्ति का जिस रूप में चाहे प्रयोग कर सकता है।

3. **व्यवसाय के चुनाव की स्वतन्त्रता :–** व्यक्ति इस प्रणाली में अपनी सम्पत्ति या साधनों का प्रयोग किसी भी व्यवसाय में कर सकता है। व्यवसाय के चुनाव में उसे बाध्य नहीं किया जा सकता। जिस व्यवसाय में उसे लाभ दिखाई दे, उसमें वह अपनी सम्पत्ति या साधन लगाने के लिए सवतन्त्र होता है। अपनी इच्छा से वह साधन को एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में हस्तान्तरित करने के लिए स्वतन्त्र होता है।

4. **उत्पादन की स्वतन्त्रता :–** पूँजीवादी प्रणाली में किस वस्तु का उत्पादन करना है? कितनी मात्रा में उत्पादन करना है, इसका निर्णय व्यक्ति करता है। इसी प्रकार किस वस्तु के उत्पादन में कितना साधन लगाना है, इसका निर्णय भी व्यक्ति ही करता है। यह निर्णय वह बाजार यन्त्र के आधार पर करता है। इसमें राज्य का कोई हस्ताक्षेप नहीं होता है।

5. **उपभोग की स्वतन्त्रता :–** इस प्रणाली में व्यक्ति को अपनी आय का उपभोग या व्यय करने की स्वतन्त्रता होती है, इसलिए वह अपनी आय को किसी भी वस्तु के उपयोग पर व्यय कर सकता है। उपभोक्ता पूँजीवादी प्रणाली में सम्राट् कहा जाता है। वही अर्थव्यवस्था में उत्पादन का नियमन करता है, और उत्पादन का नियन्त्रण भी करता है। उपभोक्ता की मांग को ध्यान में रखकर ही उत्पादन होता है, और वह जितनी मांग करता है उतना ही उत्पादन होता है। जिस वस्तु की मांग वह कम कर देता है, उत्पादक उस वस्तु का उत्पादन कम करने को बाध्य हो जाता है।

6. **व्यक्तिगत स्वार्थ या निजी लाभ की प्रधानता :–** पूंजीवादी प्रणाली में व्यक्ति आर्थिक क्रियाओं का संचालन व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर करता है उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्ति का स्वामित्व होता है, इसलिए उसका प्रयोग वे अपने लाभ के लिए करते हैं। पूँजीपति उस वस्तु के उत्पादन में विनियोग करते हैं, जिनको बेचने से उन्हें लाभ अधिकतम प्राप्त होता है। श्रमिक अपना श्रम वहाँ लगाते हैं, जहाँ उन्हें पारिश्रमिक अधिक मिलता है क्योंकि इस प्रणाली में भूमि, उत्पादन के यन्त्र एवं समुदाय की श्रम शक्ति पर एक प्रणाली का स्वामित्व होता है, इसलिए लाभ भी उसको ही अधिक प्राप्त होता है। श्रमिक भी निजी लाभ को अधिक करने के लिए स्वतन्त्र होता है, परन्तु श्रम की नाशवान प्रकृति के कारण वह अपने लाभ को अधिक नहीं कर पाता है।

7. **प्रतियोगिता की भावना :–** पूँजीवादी प्रणाली पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है। अतः प्रतियोगिता ही उत्पादन का आधार होती है। साधन पर स्वामित्व या अधिकार और व्यवसाय चुनने की आर्थिक स्वतन्त्रता व्यक्ति को अपना लाभ सुनिश्चित करने का अधिकार प्रदान करते हैं। अतः अधिकांश व्यक्ति उस वस्तु के उत्पादन में पूँजी का विनियोग करना चाहते हैं, जिस वस्तु की बाजार में मांग अधिक होती है। इसलिए व्यक्तियों द्वारा विनियोग के कारण प्रतियोगिता की भावना का उदय होना स्वाभाविक है। प्रत्येक विनियोगकर्ता न्यूनतम लागत पर अच्छी से अच्छी वस्तु का उत्पादन कर सस्ते मूल्यों पर अधिक वस्तुओं की बिक्री कर अपने लाभ को बढ़ाना चाहता है। कभी–कभी यह प्रतियोगिता गलाकाट

प्रतियोगिता के रूप में भी परिलक्षित होती है। प्रतियोगिता के कारण कुशल एवं सक्षम उत्पादक ही बाजार में रह पाते हैं।

8. **मूल्य यंत्र :–** मूल्य यंत्र पूँजीवादी प्रणाली का आधार है। इस प्रणाली में उत्पादन कार्य मूल्य यंत्र ही निश्चित करता है। उत्पादन किसी योजना के अन्तर्गत नहीं होता है। उत्पादक उत्पादन कार्य हेतु साधनों का आवंटन मूल्य यंत्र के आधार पर ही करता है। किस वस्तु का उत्पादन हो, और कितनी मात्रा में उत्पादन हो यह बाजार में मांग के आकार पर निर्भर करता है। पूर्ति की परिस्थितियाँ उत्पादन को नियन्त्रित करती हैं। साधनों का आवटन भी साधनों की मांग और पूर्ति पर निर्भर करता है। साधनों का मूल्य भी उनकी मांग और पूर्ति से निश्चित होता है। उदाहरण के लिए पूँजी का क्या ब्याज होगा, श्रम की मजदूरी दर क्या होगी, यह पूँजी और श्रम की मांग–पूर्ति की दशाएँ निश्चित करेंगी।

9. **योजना का आभाव :–** व्यवसाय कार्य या आर्थिक क्रियाओं के संचालन का कोई विचारपूर्ण नियमन तथा नियन्त्रण नहीं होता। अर्थात् उत्पादन कार्य किसी योजना के अन्तर्गत संचालित नहीं होता। साहसियों के व्यक्तिगत निर्णयों के आधार पर उत्पादन कार्य होता है। निर्णय का आधार बाजार की मांग पूर्ति की शक्तियां होती हैं। कीमत, मांग और पूर्ति के बीच समायोजन करती है क्योंकि उपभोक्ता द्वारा वस्तु की मांग का आधार मूल्य होता है, और उत्पादक द्वारा उत्पादन की पूर्ति का आधार भी मूल्य ही होता है।

10. **सरकारी हस्तक्षेप का अभाव :–** इस प्रणाली में राज्य आर्थिक क्रियाओं में हस्ताक्षेप नहीं कर पाता, क्योंकि सम्पत्ति का अधिकार और स्वतन्त्र रूप में उसका उत्पादन और उपभोग हेतु व्यय करने की स्वतन्त्रता का मौलिक अधिकार राज्य के हस्तक्षेप को सीमित कर देता है। यद्यपि राज्य कुछ प्रतिबन्ध अवश्य लगाता है, जैसे पूँजी का प्रयोग उस वस्तु के उत्पादन में ही करने की स्वतन्त्रता होती है, जिसके उपभोग से जनता का अहित न हो। लेकिन इन प्रतिबन्धों का सामाजिक महत्व ही होता है।

11. **साहसी का महत्व :–** पूँजीवादी प्रणाली को प्रतिष्ठित करने वाला साहसी ही होता है। साहस और जोखिम उठाने की भावना ही पूँजीवाद को जीवन प्रदान करती है। पूँजीवादी व्यवस्था मांग और पूर्ति को ध्यान में रखकर ही कार्यशील रहती है। परन्तु मांग का अनुमान लगाना एक बहुत ही जोखिम का कार्य होता है। यदि अर्थव्यवस्था के अधिकांश साहसी आवश्यकता से अधिक अनुमान लगा लिए, तो अधिक उत्पादन की समस्या हो जायेगी, और निश्चित ही अर्थव्यवस्था मंदी के गर्त में गिर जायेगी। इस प्रकार मांग का अनुमान यदि अधिकांश साहसियों द्वारा आवश्यकता से कम लगाया गया तो उत्पादन की कमी के कारण मूल्य बढ़ जाएगा, और अर्थव्यवस्था अभिवृद्धि की स्थिति में पहुँच जाएगी।

12. **वर्ग–विभाजन :–** इस प्रणाली में समाज दो वर्गों में स्वतः विभक्त हो जाता है, एक साधन सम्पन्न वर्ग, दूसरा साधन विहीन वर्ग अर्थात् श्रमिक वर्ग। पूँजीवादी प्रणाली का क्रियान्वयन ही इस प्रकार होता है कि समाज स्वतः ही दो वर्गो में विभक्त हो जाता है। वेब के शब्दों में उद्योगों और वैधानिक संस्थाओं के विकास की स्थिति में श्रमिकों का एक भाग स्वयं उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से इस प्रकार वंचित हो जाता है कि वह मजदूरी पर जीवनयापन करने की स्थिति में रह जाता है।

13. **नाशवान प्रकृति :–** मार्क्स ने पूँजीवाद की एक और मुख्य विशेषता पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार यह प्रणाली अपने विनाश का बीज अपने कार्य

संचालन विधि में ही छिपाए हुए है। एक ओर तो जनसंख्या में एक अल्पसंख्यक प्रणाली के पास ही साधन होते हैं, और बहुसंख्यक प्रणाली साधन विहीन होती है, जो मजदूरी पर जीवित रहता है। दूसरी कठिन प्रतियोगिता के कारण साहसियों में अकुशल साहसी भी प्रतियोगिता से बाहर होकर मजदूर प्रणाली में सम्मिलित होकर उनकी संख्या बढ़ाते हैं। पूँजीपतियों की संख्या कम होती जाती है।

3.4.3 पूँजीवाद का वर्तमान स्वरूप

आज विश्व के किसी भी पूँजीवादी देश में पूँजीवाद की उपरोक्त विशेषताओं में से अधिकांश विशेषताएँ नहीं पायी जातीं अर्थात् शुद्ध पूँजीवादी प्रणाली कहीं भी नहीं है। 20 वीं सदी काह पूँजीवाद 19 वीं सदी के पूँजीवाद से काफी अंशों में भिन्न है। रूस की राज्य क्रान्ति से पूँजीवाद को जो आघात लगा, उससे वह अपने सैद्धान्तिक स्वरूप में परिवर्तन करने के लिए बाध्य हो गया। स्वीकार कर उसने अपने मूल स्वरूप को बनाए रखने के लिए समाजवाद की कुछ विशेषताओं को अपनाकर अपनी दूरदर्शिता प्रदर्शित की समाजवाद के धक्के से शुद्ध पूँजीवाद का महल धराशायी हो गया, उसके स्थान पर कमोवेश समाजवाद की मूल विशेषता केन्द्रीय नियोजन को अपनाकर पूँजीवादी प्रणाली वर्तमान युग में मिश्रित आर्थिक प्रणाली के रूप में परिवर्तित हो गयी। यद्यपि नियोजन का वह स्वरूप नहीं है जो समाजवाद में है लेकिन आर्थिक नियोजन का प्रारम्भ हो गया है।

इसी प्रकार पूँजीवाद का आधार पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता रही है। वर्तमान में यह आधार भी डगमगा गया है। सत्य तो यह है कि यह प्रणाली विज्ञापन से युक्त प्रतियोगिता के आधार पर संचालित है। सं0 राज्य अमेरिका जैसा पूँजीवादी प्रणाली का गढ़ समझा जाने वाला देश द्वैयाधिकार एवं अल्पाधिकार की विशेषताओं से युक्त है।

आज पूँजीवादी प्रणाली में राज्य का हस्ताक्षेप बढ़ गया है। राज्य उत्पादन के दिशा–निर्देशन से लेकर आयात एवं निर्यात पर प्रतिबंध लगाने का कार्य सम्पन्न कर रहा है। स्वतन्त्र व्यापार के स्थान पर राजकीय हस्तक्षेप के कारण प्रतिबन्धित व्यापार प्रणाली इन देशों में अपनायी जाने लगी है। इसी प्रकार आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण भी इस प्रणाली का आधार बनता जा रहा है। आय वितरण की विषमता को कम करने के लिए राज्य द्वारा ऊँची दर पर प्रत्यक्ष कर प्रणाली देशों की अर्थव्यवस्था की आवश्यकता बन गयी है। आर्थिक स्वतन्त्रता, जो पूँजीवाद की मुख्य विशेषता है, उस पर भी अंकुश लग गया है। एकाधिकारी पर कड़ा अंकुश इस स्वतन्त्रता पर एक प्रहार है। इसी प्रकार उन वस्तुओं के उत्पादन की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लग रहे हैं, जिनसे मानव हित बाधित होता है। इतना ही नहीं समाजवादी प्रणाली के मुख्य कार्य, बोनस या लाभ और प्रबन्ध व्यवस्था में श्रमिकों की साझेदारी तथा श्रमिकों के लिए लाभ हिस्सा योजना को भी पूँजीवादी प्रणाली ने स्वीकार कर लिया है।

इसके अतिरिक्त अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए अन्य अनेक समाजवादी कार्यक्रमों को लगातार अपनाया जा रहा है। इन परिवर्तनों को देखते हुए यह

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि पूँजीवादी व्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित होती जा रही है।

3.4.4 पूँजीवादी प्रणाली के गुण

पूँजीवादी प्रणाली में कुछ ऐसे गुण हैं कि यह प्रणाली पुरानी होते हुए भी नित्य नवीन रूप में संशोधित होकर जीवित हैं। मार्क्स ने जिन देशों से पूँजीवाद को समाप्त होने की बात कही थी, वहाँ पर यह प्रणाली और भी गहरी जड़ अपनी विशिष्टताओं के कारण जमाती जा रही है। पूँजीवादी प्रणाली के गुण निम्नलिखित हैं–

1. **उत्पादन में वृद्धि –** पूँजीवादी प्रणाली ने पूँजीवादी देशों को ही नहीं बल्कि विश्व को सम्पन्न बनाया है। निजी सम्पत्ति के अधिकार ने इस व्यवस्था के अन्तर्गत लोगों को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की, पुनश्च आर्थिक स्वतन्त्रता ने लोगों को मनचाहा और अधिक उत्पादन के लिए विनियोग हेतु विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया और निजी लाभ की भावना ने विनियोग हेतु उत्साह को द्विगुणित कर दिया। इस प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन वृद्धि में उपर्युक्त विशेषताओं से भी बढ़कर भूमिका अदा की प्रतियोगिता की भावना ने। इसके कारण ही न्यूनतम लागत पर वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्पादन की नई विधियों की खोज एवं आधुनिक मशीनों के निर्माण को बल दिया गया। पूँजीवाद के प्रबल आलोचक मार्क्स ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।

2. **उत्पादन हेतु साधनों की कुशलता में वृद्धि –** प्रतियोगिता पूँजीवादी प्रणाली का गुण है। प्रतियोगिता में ऊपर आपने की भावना साधनों की कार्य कुशलता में वृद्धि को आवश्यक बना देती है क्योंकि उत्पादन लागत में न्यूनता साधनों की कार्य कुशलता की वृद्धि में ही निहित है। प्रतियोगिता की इस दौड़ में वे साधन बाजार या उत्पादन से बाहर हो जाते हैं जो पर्याप्त कुशल नहीं है।

3. **प्राकृतिक साधनों का शोषण –** प्राकृतिक साधनों का शोषण औद्योगिक पूँजीवाद का स्तम्भ है। इस पर ही पूर्ण रूप से पूँजीवाद का महल निर्मित है। तीव्रगति से औद्योगीकरण हेतु प्राकृतिक साधन जो प्राप्त हैं, उनका तो पूर्ण प्रयोग किया ही जाता है उसके अतिरिक्त जो साधन जमीन या जमीन के नीचे पड़े हैं, उनको भी ऊपर लाकर उनका दोहन करके अर्थव्यवस्था में उत्पादन की गति में वृद्धि की जाती है।

4. **साधनों का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग –** पूँजीवादी प्रणाली निजी सम्पत्ति एवं निजी लाभ की भावना से संचलित होती है। व्यक्ति की सम्पत्ति पर जब उसका ही स्वामित्व हो तो यह स्वाभाविक है कि वह अपने साधनों का प्रयोग काफी सोच समझकर इस प्रकार सम्पन्न करेगा कि अपव्यय न हो और यदि हो तो भी बहुत कम मात्रा में हो। इसलिए उद्योगपति साधनों का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग करता है। पूँजीपति अपनी पूँजी का और श्रमिक अपने श्रम का मितव्ययितापूर्वक प्रयोग करता है।

5. **श्रम विभाजन का लाभ –** इस पद्धति में अधिक सुन्दर तथा सस्ती वस्तु का उत्पादन करने की प्रतियोगिता में उत्पादक उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, जिनके उत्पादन में वह अधिक सक्षम या कुशल हैं। उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करने का अधिक महत्व होता है।

6. **स्वचालित आर्थिक व्यवस्था**–बाजार यन्त्र के आधार पर संचालित होने के कारण इस प्रणाली के अन्तर्गत दिन प्रतिदिन होने वाले कार्य स्वयं संचालित होते रहते हैं। मांग और पूर्ति की शक्तियाँ बाजार में वस्तुओं का नियमन एवं नियन्त्रण करती रहती है। अर्थव्यवस्था में कभी असमायोजन नहीं हो पाता। यदि कभी ऐसी स्थिति बनती भी है तो बाजार यंत्र ही अर्थव्यवस्था को सही रास्ते पर ले आता है। समाजवाद की तरह इस कार्य के लिए कोई अलग से विभाग नहीं स्थापित होता।

7. **आविश्कार एवं अनुसन्धान** – निजी लाभ के लिए संचालित अर्थव्यवस्था में न्यूनतम लागत पर उत्पादन करके बाजार में बने रहने के लिए या अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए नये आविष्कार और नयी–नयी तकनीक की खोज होती रहती है, उत्पादन की विधियों को चुनने की स्वतंत्रता आविष्कार का कारण बन जाती है।

8. **व्यक्तिगत लाभ के साथ सामाजिक लाभ में वृद्धि** – यद्यपि पूँजीवादी प्रणाली में साधनों का प्रयोग निजी लाभ के उद्देश्य से किया जाता है परन्तु निजी लाभ अन्त में समुदाय का लाभ स्वतः ही बन जाता है। यदि पूँजी का स्वामी निजी लाभ के लिए पूँजी का प्रयोग करता है, तो श्रम का स्वामी भी निजी लाभ देखकर ही श्रम का प्रयोग करता है। इस प्रकार समाज के दोनों वर्गों का यह निजी लाभ सम्पूर्ण समाज या राष्ट्र का लाभ बन जाता है।

9. **उपभोक्ता को लाभ** – इस प्रणाली में उपभोक्ता सम्राट् होता है। किसी वस्तु की मांग कर के वही उत्पादन का नियमन करता है, और मांग घटाकर वही उत्पादन का नियंन्त्रण भी करता है। प्रतियोगिता के कारण उपभोक्ता को सस्ती, सुन्दर और पर्याप्त वस्तुएँ उपभोग हेतु पूँजीवाद में उपलब्ध होती हैं।

10. **रहन–सहन का उच्च स्तर** – यद्यपि पूँजीवाद में सौदेबाजी में श्रम के सक्षम न होने के कारण श्रमिक उतना लाभ नहीं ले पाते हैं, जितना कि पूँजीपति प्राप्त करता है, फिर भी समग्र रूप में अर्थव्यवस्था सम्पन्न बनती जाती है। श्रमिकों का रहन–सहन का स्तर भी उच्च होता जाता है। सस्ते मूल्य पर उपभोग की ऐच्छिक वस्तुओं की प्राप्ति, रोजगार में साधनों के बने रहने की स्थिति, रहन–सहन का स्तर स्वतः ही बढ़ा देती है। अनुभव भी यह स्पष्ट करता है कि पूँजीवादी देशों का गरीब भी दूसरी प्रणालियों के अन्तर्गत संचालित अर्थव्यवस्था के सम्पन्न कहे जाने वाले लोगों से अधिक सम्पन्न है।

11. **प्रजातान्त्रिक स्वरूप** – इस प्रणाली में जनता की इच्छाओं को ध्यान में रखकर उत्पादन होता है, उनकी इच्छा (मांग) पर ही उत्पादन कम भी हो जाता है। उपभोक्ता पर कोई उत्पादन थोपा नहीं जाता है। सम्पत्ति का अधिकार, आर्थिक स्वतन्त्रता, निजी लाभ और प्रतियोगिता पर संचालित अर्थव्यवस्था प्रजातन्त्र के सम्पूर्ण गुणों से युक्त है। सत्य तो यह है कि पूँजीवाद एवं लोकतन्त्र अन्योन्याश्रित हैं, एक के अभाव में दूसरा अपना अस्तित्व बनाकर रह ही नहीं सकता।

12. **लोच का गुण** – पूँजीवादी प्रणाली का यह सबसे बड़ा गुण है। अपनी इस विशेषता के कारण ही यह प्रणाली आज गहरी जड़ जमा कर जीवित है। समाजवादी लोकप्रियता को देखकर यह प्रणाली उसके कार्यों को अपनाकर संशोधित रूप में कार्यरत है। इस गुण के कारण यह प्रणाली भविष्य में भी सभी आघातों को सहन करके जीवित रहेगी। आज समाजवादी चिन्तक भी इस तथ्य को स्वीकार करने को बाध्य हैं कि अपनी प्रावैगिकता के कारण इस प्रणाली का विनाश संभव नहीं है।

3.4.5 पूँजीवादी प्रणाली के दोष :– पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली के जितने गुण हैं, दोष उससे कहीं अधिक और गंभीर हैं। अपनी स्थापना काल से लेकर अब तक इस प्रणाली में मानवता का इतना अधिक शोषण हुआ है कि यह व्यवस्था ही मानवीय शोषण की प्रतीक बन गयी है। इस पद्धति ने समाज को साधन सम्पन्न और साधन विहीन वर्गों में बाँट कर अमीर और गरीब की खाई को निरन्तर चौड़ा किया और समाज को वर्ग–संघर्ष के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया। सामाजिक न्याय को इस व्यवस्था में तिलांजलि दे दी गयी। आध्यात्मिकता एवं नैतिकता को इस व्यवस्था ने इतिहास की धरोहर बनाकर मानव मात्र को भौतिकता की दौड़ में एक साथ दौड़ दिया जिसमें तीव्र धावक व्यक्ति बहुसंख्यक कमजोर वर्ग को रौंदता हुआ आगे निकल कर खड़ा हो गया है और पिछड़ों को अँगूठा दिखा रहा है। व्यक्ति का धर्म एवं ईमान भी पैसे की गिरफ्त में आ गया। संक्षेप में इस प्रणाली ने अन्याय, अधर्म, बेईमानी, शोषण, असमानता, गरीबी, अमितव्ययिता, एवं आर्थिक जटिलता को जन्म दिया। आज तो पूँजीवादी प्रणाली का समर्थन करना भी मानवता का विरोध बनता जा रहा है। अपनी इन्हीं बुराइयों के कारण ही पूँजीवाद के महल में दरारें बन गईं, और वह अब तक गिरने की राह देख रहा है। समाजवाद की बढ़ती हुई लोकप्रियता कहीं धक्का देकर गिरा न दे, इस भय से यह प्रणाली अपना सैद्धान्तिक रूप छोड़ कर मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में जीने को बाध्य है, संक्षेप में इसकी बुराइयाँ निम्नलिखित हैं–

1. **व्यापार चक्र –** व्यापार चक्र इस प्रणाली की विशेषता है और यही इसकी मूल बुराई है। सिद्धान्ततः इस प्रणाली में यह बुराई नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि 'पूर्ति अपनी मांग का सृजन स्वयं कर लेती है, इसलिए न्यून या अति उत्पादन का संकट नही उत्पन्न होता।' लेकिन व्यवहार में इस प्रणाली का इतिहास ही उतार–चढ़ाव या उच्चावचन का रहा है क्योंकि उत्पादन आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किसी योजना के अन्तर्गत नहीं होता, बल्कि मांग को ध्यान में रखकर किया जाता है, जिससे सामाजिक उत्पादन का सामाजिक आवश्यकताओं से कोई तारतम्य न होने के कारण कभी उत्पादन आवश्यकता से अधिक हो जाता है, तो कभी कम रह जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था अति उत्पादन एवं न्यून उत्पादन के बीच झूलती रहती है। उत्पादन की यह स्थिति अर्थव्यवस्था में कभी मन्दी तथा कभी समृद्धि की स्थिति बना देती है, जिससे अर्थव्यवस्था में अस्थिरता बनी रहती है।

2. **सामाजिक कल्याण की उपेक्षा –** यह प्रणाली इस मान्यता पर आधारित होती है कि व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक स्वार्थ में कोई अन्तर नहीं होता। इसलिए इस व्यवस्था में व्यक्तिगत सम्पत्ति या स्वामित्व बना रहता है। परन्तु सत्य इसके विपरीत है। व्यक्ति का स्वार्थ या लाभ, समाज का लाभ नहीं बन पाता है। पूँजीपति अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उस वस्तु का उत्पादन करता है, जिसकी माँग अधिक होती है इसलिए वह अधिक मूल्य प्राप्त कर अपने लाभ में वृद्धि करता है। परिणाम यह होता है कि इस प्रणाली में उस वस्तु का उत्पादन अधिक लाभप्रद होता है, जिसको अधिक क्रयशक्ति वाला प्रणाली खरीदता है। इस प्रकार बहुसंख्यक गरीब या कम क्रय कर सकने वाले वर्ग की आवश्यक वस्तुएँ नहीं उत्पादित होतीं।

3. **असमान वितरण –** वेब के अनुसार पूँजीवादी सभ्यता में श्रमिकों का एक भाग स्वयं को उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से इस प्रकार वंचित पाता है कि उसकी स्थिति मजदूरी द्वारा जीवनयापन करने वाले श्रमिक की हो जाती है। इस तरह इस व्यवस्था में उत्पादन का अधिक भाग वह वर्ग पाता है जो भूमि, यन्त्र और

समुदाय की श्रम शक्ति का स्वामी है और दूसरा वर्ग जो साधनहीन है, मजदूरी के लौह सिद्धान्त के अनुसार जीवित रहने के लिए कुल उत्पादन में केवल मजदूरी प्राप्त करता है।

4. **मजदूर वर्ग का शोषण** – यह प्रणाली सामूहिक सौदेबाजी की मान्यता पर आधारित है, जिसके अनुसार पूँजीपति और श्रमिक दोनों ही सौदेबाजी के आधार पर मूल्य निश्चित करते समय अपने लाभ को ध्यान में रखते हैं। मजदूर वहाँ कार्य करना चाहेगा, जहाँ उसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो, और पूँजीपति उसे उस कार्य पर लेगा जिसमें उसे कम से कम मजदूरी देय हो। लेकिन व्यवहार में श्रम की नाशवान प्रकृति के कारण मजदूर सौदेबाजी में कमजोर पड़ता है। पूँजीपति इस कमजोरी का लाभ उठाकर कम से कम मजदूरी देकर श्रमिकों से अधिक से अधिक कार्य कराता है। परिणामस्वरूप सम्पत्ति का केन्द्रीकरण होता जाता है, तथा मजदूर वर्ग की मजदूरी में कटौती करके उसका शोषण किया जाता है। इस प्रणाली में गुलाम खरीदे और बेचे जाते है तथा मजदूरी के लिए लौह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है।

5. **सामाजिक अन्याय** – निजी सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार कभी भी सामाजिक न्याय का नियामक नहीं हो पाता। साधन सम्पन्न वर्ग अपने साधनों का प्रयोग कर दिन दूना उन्नति करता है और दिन–प्रतिदिन सम्पन्न बनता जाता है। जबकि साधनहीन वर्ग कभी भी जीवन–यापन से अधिक नहीं प्राप्त कर सकता। प्रतियोगिता में न टिक सकने के कारण मध्यम श्रेणी का वर्ग भी कालान्तर में श्रम वर्ग में परिणत हो जाता है। परिणाम यह होता है कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था कुछ लोगों के हाथ में रह जाती है जो अधिक साधन सम्पन्न वर्ग है।

6. **आर्थिक स्वतन्त्रता भी सैद्धान्तिक है** – व्यवहार में आर्थिक स्वतन्त्रता भी समाज के केवल उस वर्ग को ही प्राप्त होती है, जो साधनसम्पन्न हैं। लेकिन उनको इस स्वतन्त्रता से क्या लाभ है जिनके पास साधन ही नहीं है। श्रमिक के लिये अपने श्रम का स्वामित्व सैद्धान्तिक ही है। व्यवहार में तो वेब के अनुसार श्रम–शक्ति पर भी साधन सम्पन्न वर्ग का ही नियन्त्रण होता है। अर्थात् इस प्रणाली में श्रमिकों का अपने श्रम पर भी अधिकार नहीं होता। परिणामस्वरूप श्रमिक अपने श्रम का भी स्वेच्छा से प्रयोग नहीं कर सकता। इसी प्रकार उपभोक्ता वर्ग को भी वही प्राप्त होता है, या उसे उस वस्तु का ही प्रयोग करना पड़ता है जिसे अपने लाभ का ध्यान रखकर उद्योगों में उत्पादित किया जाता है। अतः उपभोक्ता पूँजीवादी व्यवस्था में सम्राट् होता है, यह कथन मात्र सैद्धान्तिक कथन है।

7. **वितरण की असमानता** – व्यक्तिगत सम्पत्ति और उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम, तथा निजी लाभ के उद्देश्य से सम्पत्ति या साधनों का प्रयोग अर्थव्यवस्था में धन के वितरण में असमानता उत्पन्न करते हैं। श्रम को दी जाने योग्य मजदूरी के अतिरिक्त, राष्ट्रीय उत्पादन का अधिकाश भाग उनको ही प्राप्त होता है जो भूमि, पूँजी तथा मशीनों के स्वामी हैं। इस प्रकार साधनसम्पन्न वर्ग अपने साधनों का उपयोग कर उत्तरोत्तर धनी होता जाता है और साधनविहीन वर्ग साधन के अभाव में उत्तरोत्तर गरीब होता जाता है। उत्तराधिकार के नियम के कारण अयोग्य व्यक्ति भी सम्पन्न होते जाते हैं।

8. **वर्ग संघर्ष** – पूँजीवादी व्यवस्था का स्वभाव इसके वर्ग संघर्ष में निहित है। यह प्रणाली अपनी विशेषताओं के कारण समाज को प्रतिरोधी वर्ग–गरीब और अमीर तथा पूँजीपति और श्रमिक में बाँट देती है। दोनों ही वर्गों के स्वार्थ एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। अतः विभिन्न स्वार्थ वाले वर्गों के बीच संघर्ष

अवश्यम्भावी हो जाता है। मजदूर वर्ग की संख्या इस व्यवस्था की संचालन पद्धति के कारण दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। मजदूर श्रम संघ बना कर पूँजीपतियों से सौदेबाजी पर आ जाते हैं, तथा हड़ताल का आश्रय लेने लगते हैं, जिससे संघर्ष की स्थिति बन जाती है, जिसकी परिणति श्रम–अशान्ति में होने लगती है।

9. **अपव्ययी प्रकृति** – पूँजीवादी व्यवस्था में प्रतियोगिता के कारण विज्ञापन तथा बिक्री व्यय के रूप में व्यर्थ ही बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है। प्रतियोगिता में जिन पूँजीपतियों को बाजार से हटना पड़ता है, उनके द्वारा उत्पादन कार्य में लगाई गयी पूँजी तथा अन्य साधन व्यर्थ हो जाते है। राष्ट्रीय साधनों का भी अपव्यय ही होता है क्योंकि उनका प्रयोग निजी लाभ के लिए होता हैं, समाज के लाभ के लिए नहीं।

10. **बेरोजगारी** – श्रीमती जॉन राबिन्सन के अनुसार वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था उन सभी लोगों के लिए रोजगार दिलाने में असफल रही है, जो कि काम करने के इच्छुक हैं। यह प्रणाली पूँजी प्रधान होती है, जिसमें श्रमिकों का बेकार रहना स्वाभाविक है। दूसरे–इस प्रणाली के चरित्र में व्यापार–चक्र प्रमुख है। मन्दी का आना स्वाभाविक है, जिसमें उत्पादन बन्द होने के कारण, श्रमिकों की छँटनी भी बेरोजगारों की लाइन लगा देती है। मूल्य यंत्र पर आधारित इस प्रणाली में जिन वस्तुओं की मांग समाप्त हो जाती है, उसमें लगे हुए साधन का बेरोजगार होना इस व्यवस्था की नियति ही है।

11. **असन्तुलित विकास** – इस प्रणाली में साधनों का प्रयोग निजी लाभ हेतु करने के उद्देश्य के कारण उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन होता है, जिनकी अर्थव्यवस्था में मांग होती है। इसी प्रकार उन्हीं क्षेत्रों में औद्योगीकरण होता है जहाँ कच्चा माल एवं यातायात के साधन विकसित होते हैं। इस प्रकार इस प्रणाली में अर्थव्यवस्था का विकास संतुलित नहीं हो पाता।

12. **अस्वस्थ प्रतियोगिता** – इस प्रणाली में यद्यपि प्रतियोगिता आर्थिक क्रियाओं के संचालन का आधार मानी जाती है, परन्तु व्यवहार में लाभ को अधिक करने की भावना से प्रतियोगिता के खर्चे से बचने के लिए प्रायः बड़े उत्पादक मिलकर औद्योगिक संघ तथा एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार प्रतियोगिता की स्थिति ही समाप्त हो जाती है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. चार पूँजीवादी देशों की सूची बनाएं।

   (i) (ii)

   (iii) (iv)

2. वे कौन से कारक थे जिनके कारण सामंतवाद का विघटन और पूँजीवाद का जन्म हुआ?

3. पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें?

4. पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के गुण एवं दोषों को स्पष्ट करें?

5. पूंजीवादी के संदर्भ में मार्क्स के विचारों का वर्णन करें?

6. निम्नलिखित कथन सही है या गलत।

(i) पूँजीवादी के अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होता है।

(ii) पूँजीवादी के अंतर्गत श्रम एक वस्तु हो जाता है।

(iii) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्रियाओं का निर्देशन लोगों की आवश्यकताओं के द्वारा नहीं बल्कि निजी लाभ के द्वारा होता है।

(iv) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के आकार और स्वरूप का निर्धारण कीमत प्रक्रिया द्वारा नहीं बल्कि राज्य के आयोजन द्वारा होता है।

(v) विकसित देशों में साझा फर्म प्रतिनिधि उत्पादन इकाई होती है।

(vi) आधुनिक निगम में स्वामित्व प्रबंध कार्य से पृथक होता है।

3.5 समाजवाद

(मार्क्स ने प्रो0 हीगल के विचारों को उद्धृत करते हुए कहा है कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और फिर उसका संयोजन होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूँजीवादी प्रणाली की प्रतिक्रियास्वरूप ही समाजवादी प्रणाली अस्तित्व में आयी। वास्तव में यह प्रणाली 19 वीं शताब्दी की परिस्थितियों की देन है। निजी सम्पत्ति के अधिकार एवं उसके निजी लाभ के लिए संचालन की स्वतन्त्रता ने धन का जो असमान वितरण करके समाज को अमीर और गरीब वर्गों में बाँट दिया था उसके फलस्वरूप विद्रोह की अभिव्यक्ति ही समाजवाद के रूप में परिलक्षित हुई। सामान्यतया आर्थिक क्रियाओं के संचालन की उस पद्धति को ही समाजवाद के नाम से जाना जाता है, जिसमें साधन व्यक्तिगत स्वामित्व में न होकर समूह या समाज के अधिकार में होते हैं और समाज ही एक केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत निर्णय लेता है कि क्या और कितना तथा किस विधि से अर्थव्यवस्था में समाज के हित में उत्पादन करना है। लेकिन समाजवाद के संबंध में इतने दृष्टिकोण हैं, इतना कुछ उसके सम्बन्ध में कहा और लिखा जा चुका है कि उसका वास्तविक स्वरूप ही अस्पष्ट हो गया, इसलिए कि उसको बहुत अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। प्रो0 जीड कहते भी है, संक्षेप में समाजवाद एक ऐसी टोपी है, जिसका रूप प्रत्येक व्यक्ति के पहनने के कारण बिगड़ गया है।' (Socialism in short is a cap which has lost it shape because everybody wears it.)

प्रो0 लुक्स एवं हूट के शब्दों में ''समाजवाद को बहुत सी वस्तुएँ कहा गया है, और बहुत–सी वस्तुओं को समाजवाद कहा गया है। ''परिणामस्वरूप समाजवाद एक आर्थिक प्रणाली के साथ–साथ एक शासन प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है। प्रो0 लुक्स एवं हूट के कथन की पुष्टि प्रो0 शेडवेल द्वारा समाजवाद के स्वरूप के सम्बन्ध में दिए गए कथन से भी होती है। 'शेडवेल के अनुसार ''यह सैद्धान्तिक तथा रचनात्मक, भौतिक, विस्तार एक कोरी भावना से लेकर एक ठोस रचनात्मक कार्यक्रम तक फैला हुआ है। इसके विभिन्न समर्थक इसे एक जीवन–दर्शन, एक प्रकार का धर्म, एक नैतिक नियम, एक आर्थिक प्रणाली, एक ऐतिहासिक पद्धति और एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह एक लोकप्रिय आन्दोलन तथा एक वैज्ञानिक विवेचन है। यह भूतकाल पर एक टिप्पणी और भविष्य का दिग्दर्शन है, यह प्रेम और सभ्यता का महाग्रन्थ है, और घृणा तथा लालच के विरूद्ध आन्दोलन है। यह मनुष्य की भावी आशा है, और सभ्यता का

अन्त है। यह एक अति आकर्षक भविष्य का प्रारम्भ है और भयपूंर्ण संकट की चेतावनी है। प्रो0 शेडवेल के उपरोक्त कथन इसकी अस्पष्टता और विभिन्न रूपों में की गयी व्याख्याओं के सन्दर्भ में अक्षरशः सत्य हैं। यह आज के युग में ऐसा जनप्रिय नारा है कि अधिकांश लोग अपने को समाजवादी मानते हैं और अपनी भावनाओं के अनुसार इसका स्वरूप भी बना लेते हैं। इसीलिए प्रो0 मार्शल इसको एक भावना के रूप में मानते है। उनके अनुसार ''प्रत्येक व्यक्ति 25 वर्ष की अवस्था के पहले समाजवादी होता है, और 25 वर्ष के बाद पूँजीवादी होता है।)

परन्तु समाजवाद के सम्बन्ध में ये भ्रान्तियाँ इसको एक प्रशासन प्रणाली मानने के कारण हैं। सत्य यह है कि मार्क्स के अनुसार यह एक वैज्ञानिक आर्थिक प्रणाली है। पूँजीवाद की सम्पूर्ण विशेषताओं को नकार कर यह उसके विपरीत विशेषताओं के साथ प्रतिष्ठित हुई है। अतः एक आर्थिक प्रणाली के रूप में समाजवाद की दी गयी परिभाषाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं हो सकता।

3.5.1 समाजवाद का निर्माण

पूँजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन सामंतवाद से पूँजीवाद में परिवर्तन की भाँति नहीं हुआ। आनुभविक प्रमाणों से पता चलता है कि सामंती संबंधों (feudal relation) के पूर्णतः नष्ट होने के पूर्व ही उत्पादन के पूँजीवादी संबंधों का विकास होने लगा था। परन्तु समाजवादी उत्पादन संबंधों की स्थापना तो पूँजीवादी उत्पादन संबंधों के नष्ट हो जाने के बाद ही की जा सकती है।

समाजवाद का विकास अपने आप ही नहीं हो सकता, इसे तो करना होता है। समाजवाद का आरम्भ समाजवादी क्रान्ति से होता है जिसके द्वारा राजनीतिक शक्ति को कुछ थोड़े से लोगों के हाथों से छीनकर समाज को दे दिया जाता है। इस क्रान्ति के होने के बाद ही आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी संबंधों को स्थापित किया जा सकता है।

मार्क्स और ऐंजिल्स जिन्होनें ऐतिहासिक भौतिकवाद (historical materialism) के सिद्धान्त (जो समाज के विकास को आनुक्रमिक रूप में मानता है) का प्रतिपादन किया था, उन्होंने यह आशा व्यक्त की थी कि समाजवाद पहले प्रौढ़ (mature) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ही आएगा परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हो पाया। कुछ पिछडे पूँजीवादी देशों की अर्थव्यवस्थाओं का परिवर्तन समाजवादी अर्थव्यवस्था के रूप में हो गया। आज सबसे बड़े समाजवादी देश हैं सोवियत संघ और चीन। इन दोनों ही देशों में जब समाजवादी क्रान्ति हुई तब ये पूँजीवादी विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही थे। समाजवाद के निर्माण की दृष्टि से यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसी अर्थव्यवस्था में समाजवादी निर्माण की समस्याओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **समाजवादी शक्ति के समेकन के लिए कमान क्षेत्र (Commanding heights) पर नियंत्रण –** चूँकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादक शक्तियों के विकास का स्तर निम्न होता है, अतः ऐसी अर्थव्यवस्था में आधुनिक विनिर्माण (manufacturing) क्षेत्रक तथा आधारिक संरचना (infrastructure) अत्यंत अविकसित होते हैं। फिर भी अर्थव्यवस्था को और अधिक विकसित करने में ये बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार उद्योग, परिवहन और वित्त जैसे क्षेत्रों को अर्थव्यवस्था की बागडोर या कमान क्षेत्र (commanding heights in economy) कहा जाता है। समाजवादी क्रान्ति को मजबूत बनाने तथा तेजी से आर्थिक परिवर्तन का आधार तैयार करने के लिए इन देशों के नेता इन कमान क्षेत्रों को शीघ्रातिशीघ्र समाजीकरण करने का प्रयास करते हैं।

2. **समाजवादी संचयन और प्रारम्भिक समाजवादी संचयन–** जब कोई पिछड़ी हुई पूँजीवादी अर्थव्यवस्था समाजवादी अर्थव्यवस्था बन जाती है, तब इसके विकास के लिए अर्थव्यवस्था में से ही संसाधनों का संचय करना होता है। इन संसाधनों का सृजन समाजवादी संचयन (Socialist accumulation) द्वारा किया जा सकता है या प्रारम्भिक समाजवादी संचयन (Primitive Socialist accumulation) द्वारा। संचयन की इन दो प्रणालियों के बीच अंतर के संबंध में विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि कोई समाजवादी अर्थव्यवस्था क्रान्ति के तुरन्त ही बाद उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण (socialization) नहीं कर देती। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि कोई न कोई गैर समाजवादी क्षेत्र (Non Socialist sector) बना ही रहता है, विशेषतः व्यापार और कृषि के क्षेत्र में।

समाजवादी संचयन से अभिप्राय होता है समाजवादी क्षेत्र के अंदर से ही संसाधनों का संचयन ताकि इस क्षेत्र का और विस्तार किया जा सके। इसके विपरीत प्रारम्भिक समाजवादी संचयन का अर्थ होता है अर्थव्यवस्था के गैर समाजवादी क्षेत्र में संचयन जिससे समाजवादी क्षेत्र का और विस्तार किया जा सके। समाजवादी अर्थव्यवस्था के पिछड़े होने के कारण इनके विकास के लिए आवश्यक धन जुटाना आवश्यक होता है और इस कार्य में समाजवादी संचयन की तुलना में गैर समाजवादी संचयन का अधिक महत्व हो जाता है।

3.5.2 समाजवाद की विशेषताएँ

समाजवादी आर्थिक प्राणाली पूँजीवादी की प्रतिक्रिया या उसके विरूद्ध एक जन आन्दोलन का परिणाम है। इसलिए इसकी सारी विशेषताएँ पूँजीवादी व्यवस्था की विशेषताओं के विपरीत हैं। एक की विशेषता निजी स्वामित्व है, तो दूसरे की विशेषता सामूहिक स्वामित्व। एक में निजी लाभ प्रधान है तो दूसरे में सामूहिक लाभ या कल्याण की भावना। एक प्रतियोगिता से युक्त है, तो दूसरी प्रतियोगिता विहीन नियोजित अर्थव्यवस्था है। संक्षेप में समाजवादी आर्थिक प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. **व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति, अर्थात् उत्पादन के साधनों पर सामाजिक अधिकार –** इस व्यवस्था में भूमि, खानों, वनों व यातायात के साधनों, संवाद, वाहन के साधन, बैंक, कारखानों, संक्षेप में उत्पादन के साधनों पर, व्यक्ति के स्थान पर समाज की प्रतिनिधि संस्था राज्य का अधिकार होता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति की अपनी कोई सम्पत्ति नहीं होती, इसलिए सम्पत्ति को बेचने या उत्तराधिकार में देने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है।

परन्तु उस सम्पत्ति पर समाजवादी व्यवस्था में भी व्यक्तिगत स्वामित्व बना रहता है, जिससे कोई आय नहीं प्राप्त होती। मकान, रेडियो, फर्नीचर, अन्य घरेलू उपयोग की वस्तुओं पर व्यक्ति का स्वामित्व बना रहता है। लुक्स एवं हूट इस प्रणाली के भी केवल बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले साधनों पर ही सामूहिक स्वामित्व मानते हैं, शेष साधनों को निजी स्वामित्व के अन्तर्गत ही रखतें हैं। अर्थशास्त्री हॉम तो इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि समाजवादी व्यवस्था में भी निजी उद्यम बने रहते हैं। हॉम के अनुसार, ''समाजवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत इकाइयों की वही स्थिति होती है जो पूँजीवादी व्यवस्था में सार्वजनिक स्वामित्व वाले निगमों की होती है।

2. **आर्थिक नियोजन –** केन्द्रीय नियोजन समाजवादी व्यवस्था की ऐसी अपरिहार्य विशेषता है कि प्रो0 पीगू के अनुसार, केन्द्रीकृत नियोजन के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में समाजवाद की कल्पना असम्भव हैं। ''इस प्रणाली में साधन

समाज के नियन्त्रण में होते हैं, अतः उनको रोजगार में लगाने का कार्य, राज्य की प्रतिनिधि संस्था सरकार द्वारा योजनाबद्ध ढंग से ही होता है। अर्थात् सरकार ही यह निर्णय करती है कि साधनों द्वारा किस वस्तु का उत्पादन हो, और कितनी मात्रा में हो। इसके लिए लक्ष्य तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण करती है और उनके एक निश्चित समय में प्राप्त करने के लिए योजनाएँ बनाकर साधनों का उपयोग करती है। पूँजीवाद में यह कार्य बाजार–यंत्र द्वारा सम्पादित होता है।

3. **निजी लाभ की समाप्ति अर्थात् सामाजिक कल्याण का उद्देश्य –** इस प्रणाली में सम्पत्ति पर निजी स्वामित्व नहीं होता इसलिए निजी लाभ का अस्तित्व भी नहीं होता। समाजवादी पद्धति में साधनों पर समाज का स्वामित्व होता है। समाज इनका उपयोग समाज के लाभ के उद्देश्य से करता है। इस व्यवस्था में उन वस्तुओं का ही उत्पादन होता हैं, जिसकी समाज के सदस्यों को आवश्यकता होती है। प्रो0 पीगू के अनुसार इस प्रणाली में समाजीकृत उद्योगों का संचालन सरकार द्वारा लाभ की भावना से न होकर उन सदस्यों की सेवा की भावना से होता है, जिनका वह प्रतिनिधित्व करती है।

4. **उत्पादन का समान वितरण –** पूँजीवादी व्यवस्था में साधनों पर निजी स्वामित्व होने के कारण उसका लाभ भी साधनों के स्वामी को ही प्राप्त होता है, जिससे धन या सम्पत्ति उन्हीं हाथों में ही केन्द्रित होती चली जाती है, जिनके पास साधन होता है। समाजवादी व्यवस्था में साधनों पर समाज का नियन्त्रण होता है, और उसके द्वारा उत्पादित सम्पत्ति या आय समाज की होती है। प्राप्त आय का वितरण समानता के आधार पर राज्य एक निश्चित योजना के अन्तर्गत, सदस्यों के कार्य और आवश्यकता को ध्यान में रखकर करता है।

5. **प्रतियोगिता की समाप्ति –** समाजवादी प्रणाली प्रतियोगिताविहीन प्रणाली होती है क्योंकि इस व्यवस्था में उत्पादन, मांग और पूर्ति की शक्तियों से नहीं निश्चित होता है, बल्कि समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर एक निश्चित योजना के अन्तर्गत सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा निश्चित किया जाता है। इस व्यवस्था में उत्पादक केवल सरकार होती है दूसरा नहीं, इसलिए प्रतियोगिता का प्रश्न ही नहीं उठता।

6. **व्यक्तिगत शोषण की समाप्ति –** समाजवादी व्यवस्था में निजी–लाभ के उद्देश्य के स्थान पर सामाजिक–कल्याण का उद्देश्य होता है। वस्तुओं का विक्रय लाभ के लिए नहीं बल्कि उन लोगों के लाभ के लिए होता है, जिनका कि सरकार प्रतिनिधित्व करती है। अतः यह पद्धति इस बात की आज्ञा नहीं देती कि व्यक्ति अपने लाभ के लिए कमजोर या साधनविहीन प्रणाली का शोषण करें। सम्पत्ति बढ़ाने के उद्देश्य से ही शोषण का जन्म होता है, इस प्रणाली में व्यक्तिगत सम्पत्ति होती ही नहीं, इसलिए शोषण का प्रादुर्भाव ही नहीं होता।

3.5.3 समाजवादी आर्थिक प्रणाली के गुण

समाजवादी आर्थिक प्रणाली के लाभों के कारण ही इसे आज विश्व में सर्वत्र मान्यता प्राप्त हो रही है। अपने गुणों से ही आज समाजवाद एक जनप्रिय आन्दोलन बन गया है। अनेक आर्थिक संगठन अपने को समाजवाद से जोड़कर अपनी सार्थकता सिद्ध करना चाहते हैं।

इस प्रणाली के लाभों ने पूँजीवादी व्यवस्था को झकझोर दिया। परिणामस्वरूप घोर पूँजीवादी देश भी इसकी विशेषताओं को अपनी अर्थव्यवस्था में अपनाने के लिए बाध्य हो गये। समाजवाद के प्रभाव से ही इन देशों की भी अर्थव्यवस्था में

राजनैतिक हस्तक्षेप बढ़ गया है, और आर्थिक विकास कार्यक्रम में नियोजन का स्थान महत्वपूर्ण होता जा रहा है। संक्षेप में समाजवादी व्यवस्था के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं–

1. **उत्पादन के साधनों का उचित प्रयोग** – इस प्रणाली में उत्पादन के सभी प्राप्त साधनों का आवंटन निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक सु–विचारित योजना के अन्तर्गत होने के कारण, उनका पूर्ण एवं सही दिशा में सदुपयोग होता है, जबकि पूँजीवादी व्यवस्था में जिन वस्तुओं की माँग कम होती है, उनको उत्पादित करने वाले साधनों का उपयोग नहीं हो पाता है।

2. **साधनों का मितव्ययितापूर्ण प्रयोग** – इस प्रणाली में काफी सोच–समझकर नियोजित रूप से साधनों का प्रयोग होता है, इसलिए उनका अपव्यय नहीं होता है। प्रतियोगिताविहीन अर्थव्यवस्था होने के कारण विज्ञापन पर कोई व्यय नहीं किया जाता, समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उत्पादन होता है, इसलिए सभी उत्पादन बिक जाता है। पूँजीवादी प्रणाली की तरह मांग के गलत अनुमान के कारण मांग से अधिक उत्पादित वस्तुओं में लगा हुआ धन व्यर्थ ही नहीं पड़ा रहता।

3. **प्राकृतिक साधनों का पूर्ण शोषण** – इस प्रणाली द्वारा राष्ट्र में प्राप्त सभी प्राकृतिक साधनों की खोज एवं उनका उपयोग एक निश्चित योजना के अन्तर्गत राज्य द्वारा प्राथमिकताओं को पूरा करने के लिए होता है। देश में जो साधन प्राप्त होते हैं, उनको रोजगार देने के उद्देश्य से ही उत्पादन की विधि अपनाई जाती है।

4. **राष्ट्रीय उत्पादन की अधिकता** – इस प्रणाली में किस वस्तु का उत्पादन किया जाना है और कितनी मात्रा में किया जाना है, इसका निर्णय समाज की प्रतिनिधि संस्था सरकार द्वारा होता है। उत्पादन का एक सुनियोजित लक्ष्य निर्धारित किया जाता है, और सरकार उस लक्ष्य को एक निश्चित समय के अन्तर्गत पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध होती है। प्रतिवर्ष यह लक्ष्य आगे बढ़ाकर ही निर्धारित होता है। इसलिए उत्पादन में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

5. **उपभोक्ता वस्तुओं की प्राप्ति** – इस प्रणाली में उपभोक्ताओं को उनकी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ इसलिए सुलभ होती हैं कि मांग देखकर उत्पादन नहीं होता, बल्कि अधिसंख्य व्यक्तियों की आवश्यक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उत्पादन होता है। पूंजीवादी व्यवस्था में उपभोक्ता कहने के लिए सम्राट् होता है, लेकिन उसे या तो वस्तुओं के उपभोग से वंचित रहना पड़ता है, या उन्हीं वस्तुओं का उपभोग करने के लिए बाध्य होना पड़ता है जो माँग देखकर उत्पादित हुई हैं।

6. **कम मूल्य** – पूँजीवादी प्रणाली की तरह मांग और पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन के साथ–साथ मूल्यों में इस प्रणाली में हमेशा उतार–चढ़ाव नहीं होता है। लाभ का उद्देश्य न होने से वस्तुओं का मूल्य लागत से अधिक निर्धारित नहीं होता। समाजवादी प्रणाली में समाजीकृत उत्पादन के मूल्य–निर्धारण में बाजार यंत्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वस्तुओं का मूल्य समाज की सेवा एवं लाभ के उद्देश्य से प्रायः लागत के बराबर निश्चित होता है, जो कि जनता की क्रयशक्ति के बराबर ही होता है।

7. **व्यापार–चक्र का अभाव** – समाजवादी आर्थिक प्रणाली में व्यापार चक्र की स्थिति नहीं बनती है, क्योंकि एक सुनियोजित व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन होने से अर्थव्यवस्था में न तो अति–उत्पादन की ही समस्या आती है और न न्यून

उत्पादन की। निर्धारित लक्ष्य हेतु आर्थिक क्रियाओं का संचालन होने से अर्थव्यवस्था उच्चावचन की समस्या से मुक्त होती है।

8. **आर्थिक समानता में वृद्धि** – इस प्रणाली में साधनों पर निजी स्वामित्व न होने के कारण सम्पत्ति का केन्द्रीकरण नहीं होता। सम्पत्ति समाज की है, इसलिए उसका लाभ समानता के आधार पर सबको प्राप्त होता है। समाज में साधनसम्पन्न और साधनविहीन प्रणाली की समस्या न होने के कारण अधिक धनी एवं अधिक निर्धन की समस्या नहीं होती। यद्यपि यह भेद पूर्णतया समाप्त नहीं होता पर अवसर पर समानता एवं न्यायपूर्ण वितरण के कारण यह भेद धीर–धीरे कम होता जाता है।

9. **वर्गवाद एवं वर्ग–संघर्ष की समाप्ति** – समाजवादी व्यवस्था समाज को अमीर एवं गरीब या पूँजीपति और श्रमिक में नहीं बाँटती क्योंकि निजी सम्पत्ति का अधिकार न होने से राष्ट्र के सभी नागरिक एक ही श्रेणी में होते हैं। निजी लाभ की समाप्ति के कारण व्यक्ति का शोषण नहीं होता, जिससे संघर्ष की स्थिति नहीं होती। न वर्ग होता है न वर्ग–संघर्ष। इस प्रकार पूँजीवादी प्रणाली की स्वतः निर्मित इन दोनों बुराइयों से यह अर्थव्यवस्था मुक्त होती है।

10. **अनुपार्जित आय–वर्ग की समाप्ति** – पूँजीवादी प्रणाली की तरह उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति के अधिकार पर बिना कोई कार्य किए जीने वाले प्रणाली का समाजवादी प्रणाली में कोई अस्तित्व नहीं होता । इस प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करना आवश्यक होता है। निजी सम्पत्ति न होने से बिना परिश्रम के जीवन–यापन का कोई आधार नहीं होता।

11. **सन्तुलित आर्थिक विकास** – समाजीकृत उत्पादन से क्षेत्रीय संतुलन के साथ–साथ अर्थव्यवस्था का भी संतुलित विकास होता है। योजना बनाते समय सरकार का यह उद्देश्य होता है कि जनता के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्राथमिकता के आधार पर अपनी ही अर्थव्यवस्था में उत्पादन किया जाय तथा राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र का विकास हो।

12. **रोजगार में वृद्धि** – समाजवादी प्रणाली में उत्पादन की उन्हीं विधियों को अपनाया जाता है जिससे राष्ट्र में प्राप्त सभी साधनों को रोजगार प्राप्त हो सके इसलिए साधन अधिक से अधिक रोजगार प्राप्त कर लेते हैं। श्रम को रोजगार देने के उद्देश्य से समाजवादी देशों में प्रायः श्रमप्रधान उत्पादन विधि अपनाई जाती है।

3.5.4 समाजवादी प्रणाली के दोष

आर्थिक समानता, समान अवसर एवं सामूहिक स्वामित्व के गुणों से युक्त होते हुए थी आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में यह प्रणाली भी आलोचना से मुक्त नहीं हैं स्वतन्त्रता मनुष्य को इतनी प्रिय होती है कि उसके बिना उसे कोई भी भौतिक उपलब्धि सुखी नहीं बना सकती। इसी प्रकार निजी सम्पत्ति रखने की भावना मनुष्य में नैसर्गिक है, वही उसे कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती है, जिसको कि इस व्यवस्था में समाप्त कर दिया जाता है। यह भी इसकी अलोचना का कारण बन जाती है। यह इस व्यवस्था के प्रमुख दोष, जो पूँजीवाद को जीवन प्रदान करते हैं, और उसकी जड़ को उखाड़ने की जगह उसे और नीचे जाने की राह दिखाते है। संक्षेप में इस प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं–

1. **आर्थिक प्रेरणा का अभाव** – इस प्रणाली में निजी सम्पत्ति रखने, उसमें वृद्धि करने एवं उत्तराधिकार में रखने का अधिकार नहीं होता। परिणामस्वरूप व्यक्ति में सम्पत्ति बढ़ाने और अपने पुत्रों को मृत्यु के बाद अधिक से अधिक सम्पत्ति

देकर जाने के लिए जो अधिक कार्य करने की प्रेरणा होती है, वह समाप्त हो जाती है। समाजवाद में केवल अपने लिए जीने भर को कार्य करने की ही प्रेरणा शेष रह जाती है, जिसका कुप्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन पर दिखाई पड़ता है। व्यक्ति इस व्यवस्था में केवल कर्मचारी होता है, स्वामी होने की बात केवल सैद्धान्तिक होती है।

2. **आर्थिक स्वतन्त्रता का अभाव** – समाजवादी प्रणाली में व्यक्ति को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता नहीं होती। वह सरकारी मशीनरी का एक अंग होता है, उसको केन्द्रीय सत्ता द्वारा जो कार्य दिया जाता है, उसकी इच्छा हो तो न इच्छा हो तो भी करना ही पड़ता है। इससे न तो राष्ट्रीय उत्पादन ही बढ़ता है, और न ही व्यक्ति सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार व्यक्ति इस अवस्था में सैद्धान्तिक रूप से स्वामी और व्यवहार में राज्य का दास होता है।

3. **राष्ट्रीय उत्पादन में कमी** – निजी सम्पत्ति के कारण आर्थिक प्रेरणा का अभाव एवं व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता न होने के कारण आर्थिक परतन्त्रता के कारण राष्ट्रीय उत्पादन कम होता है। व्यक्ति की यह भावना कि वह कार्य किसके लिए करे, उसे कठोर परिश्रम से विरत करती है। दूसरे उसकी इच्छानुरूप कार्य न मिलने से उसका लगाव भी कम हो जाता है।

4. **स्वयं संचालकता का अभाव** – उत्पादन बाजार यंत्र के आधार पर न होने के कारण इस व्यवस्था में स्वयं संचालन का गुण नहीं होता। पूँजीवाद में मूल्य यंत्र स्वयं निर्धारित करता है कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाय, और किसे स्थगित कर दिया जाय। इसी प्रकार वस्तु की मांग साधनों का आवंटन भी विभिन्न उत्पादनों में स्वयं कर देती है। जबकि समाजवादी प्रणाली में ऐसा कोई नहीं होता जो मांग की दशाओं का निर्धारण करके वस्तुओं का उत्पादन निश्चित कर सके। इस प्रकार यह प्रणाली नियोजन के आधार पर चलाई जाती है, स्वयं संचालित नहीं होती।

5. **उपभोक्ताओं की स्वतंत्रता का हनन** – समाजवादी प्रणाली में उपभोक्ताओं को वस्तुंओं का चुनाव करने की स्वतन्त्रता नहीं होती। उनको उन वस्तुओं का भी उपभोग करना पड़ता है, जो राज्य द्वारा उत्पादित होती हैं। वस्तुओं के उत्पादन में उनकी रूचि पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

6. **अपव्ययी प्रकृति** – सरकार स्वभावतः अपव्ययी होती है। अतः सरकार द्वारा योजनाओं को बनाने के ही समय और धन की बर्बादी होती है, पुनः कार्यान्वयन में अधिकारों के विकेन्द्रीकरण और अनुमोदन आदि की व्यवस्था के कारण साधनों का अपव्यय स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त निजी कार्य न होने के कारण अनुत्तरदायित्व की भावना भी इसका कारण है।

7. **आर्थिक समानता का गुण भी केवल सैद्धान्तिक है** – समाजवाद के पक्ष में इसके इस गुण का बड़ा प्रचार होता है लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि इसमें वर्ग वाद का केवल स्वरूप ही बदल पाता है इस प्रणाली में भी सार्वजनिक अधिकारी और श्रमिक दो वर्ग स्वतः बन जाते हैं। जहाँ एक ओर सत्ता में बैठे अधिकारी अपने अधिकारों के बल पर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, वहीं श्रमिक वर्ग अपने को परतन्त्र स्थिति में समझकर सामान्य जीवन बिताता है।

8. **नौकरशाही** – इस प्रणाली में सार्वजनिक अधिकारी ही वास्तव में स्वामी होते हैं। कार्य करने वाले वर्ग को वे गुलाम से अधिक नहीं समझते। परिणामस्वरूप लाल फीताशाही इस व्यवस्था में कार्य संचालन का अंग बन जाती है। नौकरशाही

में व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायित्व की भावना न होने से योजनाओं का संचालन सुचारू रूप में नहीं हो पाता। यह प्रणाली न तो तत्काल निर्णय की क्षमता रखती है, और न जोखिम उठाने की आवश्यकता का ही अनुभव करती हैं वास्तव में व्यक्तियों की सारी शक्ति उनके हाथ से निकल जाती है, और वे केवल कर्मचारी रह जाते हैं, दूसरी ओर सारी शक्ति नौकरशाही के हाथ में चली जाती है, और वे अधिकारी बन जाते हैं जिससे अर्थिक तानाशाही का उदय होना स्वाभाविक है।

उपरोक्त सब दोषों के होते हुए भी प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शुम्पीटर ने समाजवादी प्रणाली को पूँजीवादी प्रणाली से श्रेष्ठ होने के संदर्भ में समाजवाद के चार गुण बताए हैं–

(i) राज्य के प्रबन्ध में ही अधिक उत्पादकता निश्चित होती है (Increased productivity can be secured under state management).

(ii) कम विषमता के कारण अधिक आर्थिक कल्याण (Greater Welfare to less inequality).

(iii) एकाधिकारी व्यवहारों का अभाव (Absence of monopolistice practice).

(iv) व्यापार चक्रों की अनुपस्थिति (Absence of Business fluctuations).

3.5.5 समाजवादी अर्थव्यवस्था में नियोजन की भूमिका

''नियोजन समाजवादी आर्थिक प्रणाली का एक अभिन्न अंग है, एवं इसका उद्‌भव समाजवादी विचारकों के विचार से आरम्भ होता है। आज तक के सम्पूर्ण मानव समाज की आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को दो भागों में बाँट सकते हैं–

1. पूँजीवादी व्यवस्था (Capitalist System)
2. समाजवादी व्यवस्था (Socialist System)

Capitalist Exomony : To Remove Planning - Establish Market.

Socialist Ecomony : To Remove Market - Establish Planning

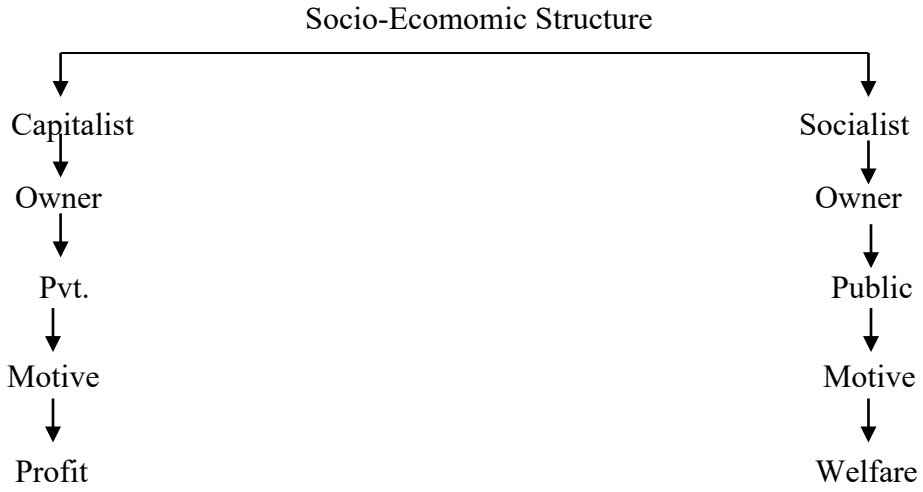

इस प्रकार नियोजन की विचारधारा का सर्वप्रथम उद्‌भव कार्ल मार्क्स एवं हीगेल के विचारों से आरम्भ होता है और इसको सबसे पहले मूर्त रूप में लेनिन द्वारा प्रदान किया जाता है।

जहाँ तक आर्थिक विचारधारा का सम्बन्ध है तो मोटे तौर पर सम्पूर्ण आर्थिक विचारधारा को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. **क्लैसिकल विचारधारा (Classical idea Approach)**
2. **कीन्सीय विचारधारा (Keynesian idea Approach)**

क्लैसिकल विचारधारा में सभी अर्थशास्त्री Adam Smith से पीगू तक मांग एवं पूर्ति की शक्तियों में विश्वास करते थे और उनकी मान्यता थी कि सरकार को आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए एवं आर्थिक क्रियाओं को बाजार के सहारे छोड़ देना चाहिए।

परन्तु यह विचारधारा तभी तक सत्य सिद्ध रही जब तक कि इसकी व्यावहारिकता का परीक्षण नहीं हुआ। 1930 की महान आर्थिक मंदी ने इसकी परीक्षा ली और सम्पूर्ण क्लैसिकल विचारधारा ध्वस्त हो गयी एवं इसी बीच जे0एम0 कीन्स ने आर्थिक मंदी का हवाला देकर सरकार की भूमिका एवं आर्थिक नियोजन का जोरदार समर्थन किया और कहा कि सरकारी हस्तक्षेप के अभाव में आर्थिक क्रियायें कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकती है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन को बाजार की असफलता का परिणाम मान सकते हैं।

सामान्य रूप से योजना से अभिप्राय यह होता है कि समन्वित ढंग से आर्थिक निर्णयों को लेने का कार्य केन्द्रीय योजना बोर्ड करता है इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था का कार्यचालन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से भिन्न होता है जिसमें निर्णय लेने के संबंध में व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। समाजवादी अर्थव्यवस्थओं में या तो केन्द्रीकृत आयोजन होता है या विकेन्द्रीकृत आयोजन (Decentralised planning) किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था के निम्नलिखित तीन स्तरों पर लिए निर्णयों के बीच के अंतर को समझने के बाद योजना की इन दो प्रणालियों के बीच के अंतर को समझना सरल हो जाएगा।

1. **समष्टि स्तर पर निर्णय (Decision at the macro level)** : समष्टि स्तर के निर्णय यह निर्धारित करते है कि आर्थिक विकास किन क्षेत्रों में किया जाना है। उदाहरणार्थ, इनका संबंध राष्ट्रीय उत्पादन की संवृद्धि दर, उपभोग और निवेश के बीच इसके वितरण और निवेश के क्षेत्रों के बीच वितरण के साथ होता हैं

2. **उद्यम स्तर पर निर्णय** : उदाहरणार्थ, ये निर्णय यह निर्धारित करते हैं कि कोई उद्यम (enterprise) किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन करेगा। किन उद्यमों में आगतों (inputs) को लेगा तथा किन उद्यमों को वह अपने उत्पादों को देगा।

3. **व्यक्ति स्तर पर निर्णय** : इस प्रकार निर्णयों के दृष्टांत हैं परिवार की आय के अनुसार परिवार का उपभोग और व्यवसाय का चुनाव। सभी समाजवादी अर्थव्यवस्था में समष्टि स्तर पर निर्णय केन्द्रीय योजना बोर्ड लेता है तथा व्यक्ति स्तर के निर्णय को व्यक्तियों के ऊपर छोड़ दिया जाता है। योजना केन्द्रीकृत है या विकेन्द्रीकृत, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उद्यम के स्तर पर निर्णय लेने का कार्य कौन करता है यदि केन्द्रीय योजना बोर्ड ये निर्णय लेता है तब योजना को केन्द्रीकृत माना जाता है। इसके विपरीत उद्यमों को यदि इस बात

की छूट दी जाती है कि वे उद्यम पर निर्णय लें तब उसे विकेन्द्रीकृत योजना कहा जाता है। सामान्यतः जब किसी प्रारम्भिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में समाजवादी परिवर्तन लाया जाता है तब केन्द्रीकृत योजना प्रणाली का आश्रय लिया जाता है। आशा की जाती है कि समय बीतने और समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास के साथ–साथ अर्थव्यवस्था में और अधिक विकेन्द्रीकरण होगा।

आर्थिक आयोजन (economic planning) केन्द्रीकृत हो या विकेन्द्रीकृत, परन्तु इसका मुख्य कार्य होता है अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्याओं का समाधान। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि पूँजीवाद के अंतर्गत कीमत तंत्र के ही समान समाजवाद के अंतर्गत योजना का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए, किस प्रकार किया जाए और किनके लिए किया जाय। योजना आयोग, जिसके जिम्मे यह कार्य होता है, एक ओर तो संसाधनों (भौतिक तथा मानवीय संसाधनों) की कुल प्राप्यता का अंदाजा लगाता है और दूसरी ओर वह यह निर्धारित करने का प्रयास करता है कि अर्थव्यवस्था में कुल कितनी विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता होगी। चूँकि अर्थव्यवस्था योजनाबद्ध होती है, अतः इन आवश्यकताओं का आधार प्राथमिकताओं का एक सेट होता है जिसका निर्धारण देश का राजनीतिक नेतृत्व करता है इन दोनों के संबंध में अनुमान जब लगा लिया जाता है तब आवश्कताओं और संसाधनों की प्राप्यता के बीच संतुलन लाने का प्रयास किया जाता है। यह संतुलन सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर लाया जाता है, निजी कल्याण को नहीं, जैसा कि पूँजीवाद के अंतर्गत होता है परन्तु निर्णय लेने के संबंध में समन्वय कार्य को बड़े पैमाने पर करना होता है कि किसी भी समय बिन्दु पर लाया गया संतुलन पूर्ण नहीं हो पाता। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि विभिन्न वस्तुओं की मांग और पूर्ति के बीच अंतर बना रहता है। आयोजन की तकनीकों को और उन्नत बनाकर इन अंतरों को कम किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 'ग'

1. चार प्रमुख समाजवादी देशों की सूची बनाएँ।

   (i) (ii)

   (iii) (iv)

2. समाजवाद की प्रमुख विशेषताएँ बताएँ?

3. समाजवाद आर्थिक प्रणाली में आयोजन की क्या भूमिका होती है?

7. समाजवाद पूँजीवाद से किन अर्थों में भिन्न है, स्पष्ट करें?

8. समाजवादी व्यवस्था में बाजार की भूमिका क्या होती है?

6. **निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।**

   (i) पूँजीवाद के पूर्णतः पतन के पूर्व ही समाजवाद का विकास होने लगता है।

   (ii) सोवियत संघ एक समाजवादी देश है।

   (iii) समाजवाद के अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है।

(iv) समाजवादी अर्थव्यवस्था में वर्ग–संघर्ष का अभाव होता है।

(v) पूँजीववाद की अपेक्षा समाजवाद के अंतर्गत आय का वितरण बहुत अधिक न्यायोचित होता है।

(vi) समाजवाद के अंतर्गत बाजार की भूमिका प्रमुख होती है।

(vii) समाजवाद के अंतर्गत उपभोग संबंधी निर्णय को व्यक्तियों के ऊपर ही छोड़ दिया जाता है।

(viii) केन्द्रीकृत आयोजन प्रणाली के अंतर्गत उद्यम स्तर पर निर्णय लेने का कार्य स्वयं उद्यम ही करते हैं।

3.6 साम्यवाद

साम्यवाद, मार्क्सवाद का उन्नत रूप है। मार्क्स ने अपने घोषणापत्र में समाजवाद के जिस रूप को अन्तिम स्थिति में प्राप्त करने की घोषणा की है, वह साम्यवाद ही है। मार्क्स के अनुसार समाजवाद एक बारी ही नहीं स्थापित हो जायेगा मार्क्स ने पूर्ण समाजवाद की स्थापना की चार अवस्थाएँ बताई हैं, 1 पूंजीवादी अवस्था 2. श्रम की तानाशाही 3. समाजवादी समाज 4. साम्यवादी समाज। इस प्रकार समाजवाद का अन्तिम रूप ही साम्यवाद होगा। अपने घोषणापत्र में मार्क्स ने साम्यवाद की जो रूपरेखा प्रस्तुत की है उसका सारांश इस प्रकार है– i) गाँव और नगर का भेद नहीं होगा, ii) शारीरिक और बौद्धिक कार्य में भेद नहीं होगा iii) योग्यतानुसार कार्य और इच्छानुसार वस्तुओं की प्राप्ति होगी, vi) राज्य का लोप हो जाएगा।

इस प्रकार साम्यवाद की प्रमुख विशेषता यह होगी कि इसमें राज्य का लोप हो जाएगा। अन्य विशेषताएँ तो समाजवाद के विकास की अन्य अवस्थाओं में भी होती हैं।

साम्यवाद का सिद्धान्त– साम्यवाद का उद्देश्य पूँजीपतियों का सम्पत्ति पर से अधिकार समाप्त करना होता है जो कि एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का शोषण करने का अधिकार देता है। इसका उद्देश्य किसी को सम्पत्ति के उपभोग से रोकने का नहीं, बल्कि सम्पत्ति के अधिकार रूपी उस शक्ति को छीनना है, जिसके कारण व्यक्ति दूसरे के श्रम का उपयोग करता है। एंजिल्स के अनुसार श्रमिक राज्य को समाप्त करके पूँजी को सार्वजनिक सम्पत्ति के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। इसके पश्चात् समाजीकृत उत्पादन की एक पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार संभावना बढ़ जाती है। ऐसी उत्पत्ति का विकास समाज के विभिन्न वर्गों के भेद को स्वयं मिटा देगा। जैसे–जैसे उत्पादन में सामाजिक विरोध समाप्त होता जाता है, वैसे–वैसे राज्य की राजनीतिक सत्ता मिटती जाती है। मनुष्य अन्त में अपने संगठन का स्वामी बनकर प्रकृति का भी स्वामी बन जाता है। वह स्वयं अपना स्वामी होता है– सर्व स्वतंत्र।

साम्यवाद की स्थिति प्राप्त करने की विधि– साम्यवाद को प्राप्त करने के लिए मार्क्स ने परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग उपाय बताए हैं। उद्देश्य साम्यवाद की प्राप्ति होगा, तरीका कुछ भी होगा, वह हिंसक भी होगा, आवश्यकता न हो तो अहिंसक या वैधानिक भी हो सकता है। परन्तु मार्क्स के अनुसार शोषण की आदत की शिकार पूँजीपति प्रणाली बिना हिंसक क्रान्ति के समाप्त नहीं होगी। लेनिन ने भी इस मत का समर्थन किया।

मार्क्स के अनुसार साम्यवाद आने के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवादी संगठन को शक्तिशाली बनाया जाये, जो हिंसक क्रान्ति द्वारा पूँजीपतियों के हाथ से सत्ता छीनकर श्रमजीवी वर्ग जिसके पास श्रम के अतिरिक्त जीवन यापन का कोई साधन नहीं होता–की सत्ता स्थापित करेगा। प्रारम्भ में श्रमिकों की तानाशाही स्थापित होगी, जो जाति, धर्म, रंग और राष्ट्रीयता के भेदों को समाप्त कर अन्तर्राट्रीय आधार पर प्रणालीवाद को समाप्त कर वर्गहीन समाज की स्थापना का कार्य करेगी। इस स्थिति के प्राप्त हो जाने पर राज्य शासन की आवश्यकता स्वयं समाप्त हो जाएगी। यह अंतिम स्थिति ही साम्यवाद की स्थिति होगी।

साम्यवाद की स्थिति में पारिवारिक जीवन में उपयुक्त स्वतंत्रता होगी, केवल दूसरे के पोषण पर जीवित रहने का अधिकार समाप्त हो जायेगा, इस प्रणाली के अन्तर्गत, भोजन, मकान रोजगार और चिकित्सा की गारन्टी राज्य की ओर से होगी, परन्तु योग्यतानुसार कार्य करना आवश्यक होगा।

3.7 मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था की प्रमुख तथा आधारभूत समस्या साधनों के आवंटन की होती है, और एक मात्र उद्देश्य अधिकतम भौतिक लाभ प्राप्त करना होता है। प्रश्न केवल एक है कि सीमित साधनों के विभिन्न उत्पादनों में आबंटन का कार्य कौन सम्पन्न करे? उत्पादन किस वस्तु का हो? कितनी मात्रा में हो? किस विधि से हो? वितरण किस प्रकार हो? इसको सम्पादित करने के दो ही माध्यम हो सकते हैं, (i) व्यक्ति, (ii) व्यक्तियों की प्रतिनिधि संस्था–राज्य। जब स्वतन्त्र उपक्रम के अन्तर्गत उपरोक्त समस्याओं से सम्बन्धित कार्य निजी साहस द्वारा सम्पादित होता है तो इसे पूँजीवादी प्रणाली और जब समाज की प्रतिनिधि संस्था सरकार द्वारा ये निर्णय लिये जाते हैं, तो इसे समाजवादी प्रणाली कहा जाता है। इस प्रकार वास्तव में अर्थव्यवस्था के संचालन की दो ही विधियाँ है, पूँजीवाद तथा समाजवाद। इन दो पद्धतियों के अतिरिक्त तीसरी कोई प्रणाली हो ही नहीं सकती। यदि कोई तीसरी आर्थिक प्रणाली हो सकती है तो उपरोक्त दोनों प्रणालियों की मिलीजुली प्रणाली हो सकती है। दोनों परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच समझौते के परिणामस्वरूप जो तीसरी आर्थिक प्रणाली विकसित हुई है, उसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहते हैं।

मिश्रित अर्थव्यवस्था का आशय– मिश्रित अर्थव्यवस्था ऐसी आर्थिक प्रणाली है, जिसमें पूँजीवाद और समाजवाद दोनों के ही अंश मिश्रित होते हैं। अर्थात् दोनों ही प्रणालियों के बीच का रास्ता अपनाने वाली अर्थव्यवस्था ही मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाती है।

सामान्यतया अर्थव्यवस्था में जब स्वतन्त्र उपक्रम और सरकारी हस्तक्षेप दोनों साथ–साथ होते हैं, तो उसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जाता है लेकिन यह पूर्णतया सत्य नहीं कहा जा सकता। सरकारी हस्तक्षेप भी दो प्रकार का होता है– अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप और प्रत्यक्ष हस्तक्षेप।

यदि अप्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप से युक्त अर्थव्यवस्था को ही मिश्रित अर्थव्यवस्था स्वीकार किया जाए, तो विश्व की तमाम पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में ही कार्यरत हैं जबकि इस प्रकार का हस्तक्षेप, जो

नियन्त्रण एवं अवरोध (Restriction) तक ही सीमित है, वास्तव में पूँजीवाद को और अधिक शक्तिशाली बनाने में सहायक होता है।

अतः वास्तविक रूप से वही अर्थव्यवस्था मिश्रित कही जाती है जिसमें स्वतन्त्र साहस के साथ–साथ सरकार का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप हो। अर्थात् सरकार उत्पादन क्रिया में प्रत्यक्ष रूप से सहभागी हो। मिश्रित आर्थिक प्रणाली में अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से दो भागों में बँटी होती है–

1. **लोक अथवा सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)**
2. **निजी अथवा व्यक्तिगत क्षेत्र (Private Sector)**

1. **लोक अथवा सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) –** इस क्षेत्र में निजी अथवा पूंजीपतियों द्वारा सम्पन्न की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है।

2. **निजी अथवा व्यक्तिगत क्षेत्र (Private Sector) –** इस क्षेत्र में निजी अथवा पूँजीपतियों द्वारा सम्पन्न की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इस क्षेत्र में भी सरकार का दिशा–निर्देश रहता है।

इन दोनों क्षेत्र के अतिरिक्त संयुक्त क्षेत्र होता है, जिसमें उत्पादन तथा वितरण कार्य व्यक्ति और सरकार दोनों के साझे में सम्पन्न होता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र का मिश्रण मात्र मिश्रित अर्थव्यवस्था का प्रतीक नहीं है। बल्कि इसका आशय ऐसी प्रणाली से है, जिसमें दोनों पद्धतियों अर्थात् पूँजीवाद और समाजवाद हो लेकिन, पूँजीवादी विशेषताओं के साथ संचालित निजी क्षेत्र की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य मात्र व्यक्तिगत लाभ न होकर, सामाजिक लाभ भी हो।

3.7.1 मिश्रित अर्थव्यवस्था का अभ्युदय

आर्थिक इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्रथम विश्व युद्ध के पहले अर्थव्यवस्थाओं का स्वरूप पूँजीवादी ही था। पूँजीवादी पद्धति ने स्वतंत्र व्यापार नीति के साथ औद्योगिक क्रान्ति एवं नवीन अन्वेषण में वृद्धि कर भौतिक रूप से अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परन्तु साथ–साथ पूँजीवाद से उत्पन्न बुराइयों ने विद्धानों को अर्थव्यवस्था के संचालन की दूसरी पद्धति के सम्बन्ध में भी सोचने को विवश कर दिया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1971 में रूस की राज्य क्रान्ति ने विश्व में एक नई प्रणाली समाजवाद को जन्म दिया। यह प्रणाली प्रतियोगिता एवं लाभ की भावना से विरत होकर कार्य करने लगी, जिसमें पूँजीवाद की बुराइयाँ नहीं दिखाई पड़ीं। जिन देशों ने समाजवादी प्रणाली को नहीं भी अपनाया उन देशों की सरकारों ने अर्थव्यवस्था में परोक्ष रूप से हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। तीसा की महान मन्दी ने घोर पूँजीवादी देशों की सरकारों को भी अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करने के लिए विवश कर दिया। अमेरिका की न्यू डी नीति इसका उदाहरण है। महान अर्थशास्त्री कीन्स ने मन्दी से अर्थव्यवस्था को उभारने के लिए सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक बताया।

इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध के पहले ही स्वतंत्र उपक्रम के साथ–साथ सरकार का नियंत्रण अर्थव्यवस्था का अंग बन गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपनिवेशवाद की समाप्ति से विश्व के अनेक देश स्वतन्त्र होने लगे। नवोदित स्वतन्त्र देशों के सम्मुख मुख्य समस्या अपनी अर्थव्यवस्थाओं के विकास की थी।

मुख्य समस्या थी कि आर्थिक क्रियाओं के संचालन की कौन–सी पद्धति अपनाई जाय। इस समय तक समाजवाद की कमियाँ भी स्पष्ट हो गई थीं। इस प्रकार दोनों पद्धतियों के गुण–दोष प्रकट हो गये थे।

पूँजीवादी पद्धति अपनाने से समाजवादी प्रणाली के गुणों से वंचित होना पड़ता, और समाजवादी पद्धति अपनाने से पूँजीवाद के लाभों से अर्थव्यवस्था वंचित रह जाती। अतः इन देशों ने दोनों ही प्रणालियों के गुणों से युक्त, और दोनों के दोषों से मुक्त एक नई आर्थिक पद्धति स्वीकार की, जिसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा गया। लगातार बढ़ते सरकारी हस्तक्षेप ने इसके लिए पहले ही पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी।

3.7.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषतायें

1. **निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों का सहअस्तित्व–** मिश्रित अर्थव्यवस्था में दोनों क्षेत्र पूँजीवाद की विशेषताओं से युक्त होते हैं जबकि सार्वजनिक क्षेत्र समाजवादी पद्धति की विशेषताओं से। सार्वजनिक क्षेत्र में वे उद्योग होते हैं जिनको निजी क्षेत्र में संचालन करने में कठिनाई होती है या जिनकों पूँजीपति संचालित करने में कोई लाभ न देखकर, रूचि नहीं लेते। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में वे उद्योग भी रखे जाते हैं जिनके निजी क्षेत्र में होने से जनता का शोषण होने की संभावना हो तथा वे उद्योग जिनका उत्पादन राष्ट्रीय हित में गोपनीय रखा जाना आवश्यक हो।

उपरोक्त उद्योगों के अतिरिक्त शेष उद्योग निजी क्षेत्र में होते हैं। परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था की तरह ये पूर्ण स्वतन्त्र नहीं होते, जनहित की दृष्टि से इन पर सरकारी नियंत्रण बना रहता है। अर्थव्यवस्था में दोनों क्षेत्रों का भाग कितना हो, इस संबंध में कोई निश्चित सार्वभौम सिद्धान्त नहीं है। यह देश, काल एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र का भाग अधिक हो या सार्वजनिक क्षेत्र का।

2. **नियोजित अर्थव्यवस्था–** समाजवादी प्रणाली की तरह मिश्रित अर्थव्यवस्था में भी नियोजन का महत्वपूर्ण स्थान है। सरकार का उद्देश्य योजनाबद्ध रीति से देश का आर्थिक विकास करना होता है।

योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था ही मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाएगी। इसके अभाव में सरकारी नियंत्रण एवं सार्वजनिक क्षेत्र होते हुए भी अर्थव्यवस्था मिश्रित नहीं कही जा सकती। सरकार द्वारा सम्पूर्ण देश के लिए एक ही योजना बनाई जाती है, जिसमें उत्पादन के लक्ष्य एवं प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती हैं निजी क्षेत्रों को भी इसी योग्यता के अन्तर्गत उत्पादन करना पड़ता है। निजी साहसियों को उत्पादन के साधन जुटाने, उनकी व्यवस्था करने तथा लाभ की स्वतन्त्रता रहती है।

3. **आर्थिक स्वतन्त्रता–** समाजवादी अर्थव्यवस्था का मुख्य दोष व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र का होना, व्यक्ति की आर्थिक स्वतन्त्रता का प्रमाण हैं। इस व्यवस्था में निजी सम्पत्ति का अधिकार बना रहता है, और व्यक्ति कोई भी व्यवस्था चुनकर अपनी स्थिति में अभिवृद्धि करने के लिए स्वतन्त्र होता है। लेकिन पूँजीवादी की तरह यह स्वतन्त्रता अनियन्त्रित नहीं होती, सरकार का इस पर नियंत्रण होता है, जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो सके।

4. **निजी लाभ एवं सार्वजनिक लाभ का सहअस्तित्व–** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का संचालन निजी लाभ के उद्देश्य से तथा समाजवादी व्यवस्था का संचालन सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से होता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में दोनों ही प्रकार के लाभ प्राप्त किये जाते हैं। निजी क्षेत्रों में संचालन का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ होता है, यद्यपि इस लाभ पर नियंत्रण होता है जिससे वह राष्ट्रीय हित में बाधक न हो। सार्वजनिक क्षेत्रों के संचालन का उद्देश्य लाभ न होकर सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना होता है।

संक्षेप में मिश्रित प्रणाली की विशेषता पूँजीवाद एवं समाजवाद के गुणों को देश के आर्थिक विकास हेतु एक साथ समन्वित करना है।

3.7.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था के गुण

मिश्रित अर्थव्यवस्था ने पूँजीवाद के दोषों को समाप्त कर दिया है। यही कारण है कि परोक्ष हस्तक्षेप के द्वारा पूँजीवादी देशों ने पूँजीवाद की बुराइयों को छोड़कर उसमें संशोधन कर उसे अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए किसी अंश तक इस व्यवस्था को स्वीकार किया है। इस प्रणाली ने समाजवाद के गुणों को अपनाकर तथा उसकी बुराइयों को छोड़कर समाजवादी देशों का भी पथ प्रदर्शन किया है, संक्षेप में इस प्रणाली के गुण निम्नलिखित हैं–

1. **अधिक राष्ट्रीय उत्पादन–** इस प्रणाली में प्रतियोगिता बनी रहती है, जो उत्पादन वृद्धि के लिए एक आवश्यक तत्व है। निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही एक दूसरे के सहयोगी होते हैं। दोनों ही क्षेत्र कम से कम लागत पर अधिक वस्तुओं का उत्पादन कर राष्ट्रीय आय में वृद्धि करते हैं। योजनाबद्ध विकास के अन्तर्गत उत्पादन का जो लक्ष्य दोनों क्षेत्रों के लिए एक निश्चित समय के अन्तर्गत प्राप्त करने हेतु निर्धारित किया जाता है, उसे प्राप्त करने के लिए दोनों ही प्रयत्नशील रहते हैं। यह लक्ष्य प्रत्येक योजना में बढ़ाकर रखा जाता है, जिससे प्रतिवर्ष उत्पादन में वृद्धि होती रहती है।

2. **आर्थिक प्रेरणा–** निजी क्षेत्र में निजी पूँजी के अधिकार एवं उसे उत्तराधिकार में देने का नियम बना रहता है, जिससे कार्य करने की आर्थिक प्रेरणा एवं उत्साह बना रहता है। व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की संवृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। समाजवाद में इस गुण का लोप हो जाता है, जबकि पूंजीवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था में यह गुण बना रहता है।

3. **आर्थिक स्वतन्त्रता–** पूँजीवाद का यह गुण भी मिश्रित अर्थव्यवस्था में बना रहता है। इस प्रणाली में व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का स्वामी होता है, अपने साधनों का प्रयोग करने, उत्पादन की किस्म एवं मात्रा निर्धारण करने तथा उत्पादन की विधि अपनाने की स्वतन्त्रता का गुण कुल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि में सहायक होता है।

4. **उपभोग की स्वतन्त्रता–** व्यक्ति निजी आय का किसी भी रूप में उपभोग करने के लिए स्वतन्त्र होता है। निजी क्षेत्र मांग को ध्यान में रखकर उत्पादन करते हैं, तथा सार्वजनिक क्षेत्र आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उत्पादन करते हैं। अतः अर्थव्यवस्था में आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं से लेकर फैशन एवं विलासिता तक की वस्तुएँ उपभोग हेतु प्राप्त होती हैं।

5. **वस्तुओं के मूल्य में कमी–** निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही अपने–अपने क्षेत्र में न्यूनतम लागत पर उत्पादन करने में एक दूसरे के स्वस्थ प्रतियोगी होते हैं, जिससे वस्तुओं का मूल्य कम होता है। सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादित वस्तुएँ न लाभ

न हानि' (No profit no loss) के सिद्धान्त पर बेची जाती हैं, और निजी क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं के मूल्य निर्धारण पर नियन्त्रण होता है।

6. **अर्थव्यवस्था में लोच का गुण–** देश की परिस्थितियों के अनुसार अर्थव्यवस्था के स्वरूप में परिवर्तन भी होता रहता है। आवश्यकतानुसार सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों का विस्तार एवं संकुचन भी संभव होता है।

7. **स्वयं संचालकता का गुण–** इस प्रणाली में निजी क्षेत्र की उपस्थिति के कारण मूल्य यन्त्र भी क्रियाशील रहता है, जिससे अर्थव्यवस्था में एक अंश तक स्वयं संचालकता का गुण भी बना रहता है। माँग वस्तुओं के उत्पादन का नियमन एवं पूर्ति उत्पादन के नियन्त्रण का कार्य स्वतः ही करती रहती है।

8. **व्यापार चक्र की अनुपस्थिति–** अर्थव्यवस्था का संचालन योजनाबद्ध ढंग से होता है, इसलिये पूँजीवाद की तरह निजी सम्पत्ति का अधिकार, निजी लाभ तथा प्रतियोगिता होते हुए भी न्यून या अति उत्पादन की समस्या नहीं हो पाती, क्योंकि निजी क्षेत्र पर नियन्त्रण होता है।

9. **आय वितरण की समानता–** सार्वजनिक क्षेत्र में व्यय का उद्देश्य राज्य के नागरिकों में आय के वितरण की समानता लाना होता है। निजी क्षेत्र पर भी प्रत्यक्ष करारोपण तथा अन्य नियन्त्रण लगाकर व्यक्तिगत सम्पत्ति की वृद्धि को नियन्त्रित किया जाता है। यद्यपि यह प्रणाली आय स्तर को समान करने का कभी दावा नहीं करती, परन्तु अन्तर को अवश्य ही कम करने का प्रबन्ध करती है।

10. **रोजगार में वृद्धि–** मिश्रित अर्थ प्रणाली में देश में उपलब्ध संसाधनों को रोजगार देने के उद्देश्य से योजनाएँ निर्मित की जाती हैं। सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों ही, साधनों का विभिन्न उत्पादनों में उचित आवंटन कर निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। पूँजीवाद की तरह अधिक उत्पादन का भय भी नहीं होता, जिससे रोजगार प्राप्त साधनों को बेरोजगार होने का भय भी नहीं होता है।

11. **प्रतियोगिता का गुण–** निजी क्षेत्र में सम्पत्ति का अधिकार अक्षुण्ण करने के कारण साहसियों में प्रतियोगिता की स्थिति बनी रहती है, जिसका परिणाम अधिक उत्पादन एवं कम राज्य में परिलक्षित होता है। इतना ही नहीं यह प्रतियोगिता निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में भी स्वस्थ रूप में देखी जाती है।

12. **समान अवसर–** इस प्रणाली में देश के नागरिकों को अपनी योग्यता में वृद्धि करने एवं योग्यतानुसार काम प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है। व्यक्ति में बिना भेद के अपनी आर्थिक उन्नति का अवसर प्रदान करना इस प्रणाली का प्रमुख गुण है।

3.7.4 मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष (Demerits of mixed economy)

निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों को एक साथ रखकर पूँजीवाद एवं समाजवाद दोनों के ही लाभ प्राप्त करने के एक रूप में मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाई गयी। परन्तु इस प्रयोग का अनुभव बताता है कि एक साथ ही दोनों प्रणालियों की बुराइयों का भी इस अर्थव्यवस्था में समावेश हो गया है। दोष तो थोडा भी दिखता है, लेकिन दोनों प्रणालियों के दोष जिस अर्थव्यवस्था में घर कर गये हो, उसको जितनी ही दोषपूर्ण प्रणाली कहा जाये, कम ही है। संक्षेप में इस प्रणाली के दोष निम्नलिखित हैं–

1. **विद्वेष की स्थिति–** सिद्धान्ततः इस प्रणाली में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों को, एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा न हो, सहयोगी बनकर राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मिल–जुलकर कार्य करना चाहिए। परन्तु व्यवहार में यह दिखाई पड़ता है कि दोनों में प्रतियोगिता की स्थिति बन जाती है। यह प्रतियोगिता इतनी निम्न कोटि की होती है कि वह विद्वेष में बदल जाती है और एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र के कार्य संचालन में बाधक बन जाता है।

2. **साधनों के आवंटन की समस्या–** दोनों ही क्षेत्र उत्पादन के साधनों को अपने क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं। यह खींचतान की स्थिति बनने का कारण साधनों की सीमित मात्रा में होना है। जो क्षेत्र सबल होता है (व्यवहार में सार्वजनिक क्षेत्र) वह अधिक से अधिक साधनों को खींच ले जाता है, जिससे दूसरे क्षेत्र के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति में कठिनाई होती है।

3. **राष्ट्रीय उत्पादन में कमी–** दोनों क्षेत्रों द्वारा आपस में तालमेंल न होने के कारण तथा साधनों की खीचतान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन को लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती। अनुभव बताता है कि जिन देशों ने इस प्रणाली काके अपनाया है, उत्पादन की कमी के कारण वे मुद्रा स्फीति की स्थिति का सामना कर रहे हैं।

4. **योजना–निर्माण में कठिनाई–** दोनों क्षेत्रों के लिए साधनों के आवंटन की समस्या इतनी कठिन होती है कि कभी–कभी तो योजनाओं का निर्माण ही खटाई में पड़ जाता है। साधन बिना प्रयोग हुए ही पड़े रह जाते हैं जिससे साधनों का अपव्यय होता है। योजनाओं के द्वारा ऐसे निर्णय भी हो जाते हैं कि एक क्षेत्र तो लाभान्वित होता है, और दूसरा क्षेत्र कठिनाई में या हानि की स्थिति में पहुँच जाता है।

5. **समानान्तर अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव–** निजी सम्पत्ति का अधिकार, और उस पर भी निजी लाभ के उद्देश्य से उसका इच्छानुसार प्रयोग करने का अधिकार देकर सरकार द्वारा जो नियन्त्रण लगाया जाता है, उससे एक समानान्तर व्यवस्था का निर्माण स्वतः ही हो जाता है। प्रत्यक्ष करो की अधिकता, उत्पादन की सीमा का निर्धारण आदि इस व्यवस्था के कारण बन जाते हैं।

6. **अर्थव्यवस्था में अस्थिरता–** निजी क्षेत्रों के विस्तार पर अंकुश लगाकर सार्वजनिक क्षेत्र का कभी विस्तार किया जाता है, तो कभी पूँजीपतियों के दबाव में आकर सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचित किया जाता है। दोनों की आपसी प्रतियोगिता के कारण भी यह आस्थिरता बढ़ती जाती है।

7. **मूल्य वृद्धि–** साधनों की दोनों क्षेत्रों द्वारा खींचतान अधिक होने के कारण उनके मूल्यों में वृद्धि होती जाती है जिससे वस्तुओं की उत्पादन–लागत में वृद्धि हो जाने से मूल्य बढ़ जाते हैं। निजी क्षेत्रों के निजी लाभ का उद्देश्य तथा उत्पादन के कम होने के कारण अर्थव्यवस्था में मूल्य बढ़ते जाते हैं, जिससे यह अर्थव्यवस्था मुद्रा स्फीति में पहुँच जाती है।

8. **लाल फीताशाही का उदय–** सरकारी क्षेत्रों की बहुलता होने के कारण सार्वजनिक अधिकारियों में तानाशाही की प्रवृत्ति उदित हो जाती है। वे अपने को स्वामी और कार्य करने वाले वर्ग को हीन समझते हैं, जिससे कमजोर वर्ग का शोषण होता है।

9. **भ्रष्टाचार में वृद्धि–** इस प्रणाली में आर्थिक भ्रष्टाचार बहुत अधिक बढ़ जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकारी इसका लाभ स्वयं लेने लगते हैं।

आर्थिक योजनाओं की निर्धारित राशि अधिकारियों की जेब में चली जाती है। इस व्यवस्था में भ्रष्टाचार की सूची नहीं बन सकती।

3.7.5 मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में तर्क

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं ने अनुभव किया कि वे उस पथ पर नहीं चल सकतीं जिसका अनुसरण आज के विकसित देश कर रहे हैं। उन्हें यह आभास हो गया कि बाजार विनियमित प्रणाली (market regulated systems) में उनके उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाती। परन्तु आर्थिक आयोजन को अपनाने से वे बाजार तंत्र की सीमाओं को पार कर सकती हैं।

बाजार विनियमित प्रणाली के साथ निम्नलिखित चार प्रमुख कठिनाइयाँ हैं–

1. बाजार निर्णयों में न्याय संगति (equity) की उपेक्षा कर देने की प्रवृत्ति होती है। यही कारण है कि पूँजीवादी देशों में उत्पादन के साधनों के मालिक अत्यन्त धनी होते हैं परन्तु श्रमिक गरीब होते हैं।

2. बाजार निर्णयों से संसाधनों का बँटवारा इस प्रकार नहीं हो पाता कि कम आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए संसाधनों को उपलब्ध कराने से पूर्व अति आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कर लिया जाए।

3. बाजार का निष्पादन इस प्रकार नहीं हो पाता कि समस्त मांग (Aaaggregate demand) सदा समस्त पूर्ति (Aaaggregate supply) के बराबर हो। इन दोनों के बीच के संतुलन के अभाव में निर्णय लेने के लिए कीमत प्रक्रिया की विश्वसनीय मापदंड नहीं बन सकती।

4. यदि बाजार की कार्यवाहियों के फलस्वरूप समस्त मांग और समस्त पूर्ति के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है तो इस प्रणाली के अंतर्गत ऐसी कोई शक्ति नही है जो अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार की स्थिति में बनाए रखे।

   वस्तुओं और मुद्रा पर नियंत्रण तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों के रूप में आर्थिक आयोजन द्वारा हस्तक्षेप करके राज्य बाजार प्रणाली का इस प्रकार प्रयोग कर सकता है कि अर्थव्यवस्था का कार्य सही ढंग से हो सके। इसके अतिरिक्त आर्थिक आयोजन का उपयोग अर्थव्यवस्था को निर्देशित करने के लिए भी किया जा सकता है। विकास की प्रक्रिया के दौरान यदि गरीबी, बेरोजगारी तथा आय असमानता की समस्याओं से निपटने की आवश्यकता पड़ती है तो समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों की भलाई के लिए सरकार बेरोजगारी तथा गरीबी दूर करने और न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति संबंधी विशेष कार्यक्रमों को भी चला सकती है।

3.7.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था की सीमाएँ

मिश्रित अर्थव्यवस्था ने चाहे निर्बाध बाजार अर्थव्यवस्था (free market ecomomy) की कुछ समस्याओं का समाधान किया है परन्तु यह भी सच है कि इस अर्थव्यवस्था में अनेक दोष भी हैं।

1. **मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं का अस्थिर ढाँचा –** सभी मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्र ही साथ–साथ चलते हैं और वे यदा–कदा ही एक–सा कार्यभाग अदा करते हैं। कभी–कभी एक ही देश में राजनीतिक

शक्तियों के पारस्परिक संबंधों में परिवर्तन के साथ–साथ उनके कार्यो में भी परिवर्तन आ जाता है। उदाहरणार्थ, भारतवर्ष में आर्थिक आयोजन की प्रारम्भिक अवस्था में सार्वजनिक क्षेत्रक को महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गए थे। ऐसा शायद इसलिए कि उस समय पूँजीपति वर्ग आज जैसा सशक्त नहीं था। तब से अब के बीच इन संबंधों में परिवर्तन आ गया है। अब पूँजीपति वर्ग, व्यापारी तथा बड़े कृषक काफी सशक्त हो गए हैं और वे सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को समाप्त करने के प्रयास में लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त उनकी ओर से सतत् रूप से पड़ने वाले दबाव के अधीन नियामक प्रणाली (regulatory system) भी नष्ट होती जा रही है। इससे स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत कम स्थिर प्रणाली है और राजनीतिक दबाव के कारण इसके स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है।

2. **आर्थिक शक्ति का संकेद्रण –** अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया को तेज करने के उद्देश्य से अहस्तक्षेप नीति वाली अर्थव्यवस्थाओं को रूप दिया जा रहा है। लेकिन इस संवृद्धि प्रक्रिया के फलस्वरूप बड़े–बड़े निगमों की स्थापना होती है और आर्थिक शक्ति संकेद्रण होता है। परिवहन सुविधाओं, ऊर्जा क्षेत्र तथा प्रबंध और टेक्नालॉजी में प्रशिक्षण देने वाली व्यावसायिक संस्थाओं (Professional institutes) के विकास और सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजीगत उपस्कर तथा मूल उद्योगों की स्थापना से संगठित निजी कंपनी क्षेत्र को बहुत बड़े पैमाने पर कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। निजी क्षेत्र में पूँजीवादी विकास का नियम चलता है और कुछ समय के दौरान बड़ी फर्में बाजार से छोटी फर्मों को समाप्त कर देती है। बड़ी फर्मों के पास बहुत अधिक एकाधिकारी शक्ति होती है और वे छोटी फर्मों को अपनी शर्तें मानने को बाध्य कर देती हैं। उपभोक्ताओं को भी सदा घाटा ही उठाना पड़ता है। अधिकाधिक आर्थिक शक्ति प्राप्त करने के प्रयास में बड़ी कंपनियों को केवल बड़े पैमाने की किफायतों (Ecomnomics of large scale) से ही सहायता नहीं मिलती है बल्कि छोटे उत्पादको की तुलना में उनकी स्वयं की पूँजी इकटठा करने की क्षमता भी सहायक होती है। कभी–कभी सरकार की लाइसेंस नीति भी उनके विस्तार कार्यों में सहायक सिद्ध होती है। भारत के दृष्टांत से स्पष्ट हो जाता हैं कि एकाधिकारों (Monopolies) के और बढ़ने देने पर सरकार रोक तो लगाना चाहती हे लेकिन मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्वनिर्मित प्रणाली (In-built system) के कारण आर्थिक शक्ति का और भी संकेद्रण होता जा रहा है।

3. **नौकरशाही वर्ग, अकुशलता और भ्रष्टाचार –** सार्वजनिक उद्यमों में कार्यकुशलता का स्तर प्रायः निम्न होता है और राजकीय क्षेत्र (State sector) के संबध में भ्रष्टाचार की शिकायत आम बात है। अनेक अल्पविकसित देशों के सार्वजनिक क्षेत्र में विशेषतः प्रबंध स्तर पर कार्यकुशलता के कम होने का यह परिणाम है कि इस क्षेत्र के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित प्रबंध संप्रणाली (Managerial cadre) नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंध का कार्य सामान्य प्रशासकों को सौंपा जाता है हालाँकि उनके पास इसके लिए क्षमता नहीं भी हो सकती है मिश्रित अर्थव्यवस्था में विवेकशील नियंत्रण (Discretionary controls) के प्रयोग के फलस्वरूप भ्रष्टाचार की गुंजाइश हो जाती है इसके कारण निर्णय लेने का कार्य दोषपूर्ण हो जाता है और विभिन्न स्तरों पर निर्णयों का कार्य निष्पादन नहीं हो पाता। भ्रष्ट अधिकारी अपने अधिकार का दुरूपयोग व्यक्तिगत

लाभ के लिए करते हैं जिससे सार्वजनिक उद्यम की कार्यकुशलता पर बुरा असर पड़ता है।

4. **सामाजिक न्यास वंचन –** मिश्रित अर्थव्यवस्था में आय असमानताओं और गरीबी को कम करने की क्षमता अधिक नहीं होती। ऐसी अर्थव्यवस्था में जब उत्पादन के साधनों पर निजी क्षेत्र का संयोजन हो जाता है तब आर्थिक असामानता ओर भी बढ़ने लगती है। ऐसे समाज में गरीबों को न्याय नहीं मिल पाता। चूँकि मिश्रित अर्थव्यवस्था में अमीर और गरीब दोनों ही वर्गों के लोग रहते हैं और राज्य की शक्ति अमीरों के हाथ में होती है, अतः आर्थिक शक्ति के संकेद्रण की प्रवृत्ति को रोकने में सरकार अपने को असमर्थ पाती है।

5. **पश्चगामी सन्निहित प्रवृत्ति (Built-in tendency to slide back) –** कुछ अर्थशात्रियों ने ठीक ही कहा है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था पूँजीवाद का ही भिन्न रूप (Variant) है। उनकी दलील यह है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र जब अपना कार्य कर लेता है, तब उसके बने रहने को अनावश्यक समझा जाता है और अर्थव्यवस्था में बाजार प्रधान अर्थव्यवस्था की ओर लौट जाने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। ऐसी स्थिति में आर्थिक आयोजन की भूमिका को क्षति पहुँचती है और आर्थिक क्रियाओं को निजी क्षेत्र में लेने के लिए दबाव पड़ने लगता है।

बोध प्रश्न 'घ'

1. ''समाजवाद की पराकाष्ठा ही साम्यवाद है।'' स्पष्ट करें?
2. मिश्रित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ बताएँ।
3. 'उत्पादन की विधि' एवं 'उत्पादन के सम्बन्ध' से आप क्या समझते है?
4. मिश्रित अर्थव्यवस्था पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से किस रूप में भिन्न होती है ?
5. मिश्रित अर्थव्यवस्था और समाजवादी अर्थव्यवस्था में क्या भेद है ?
6. मिश्रित अर्थव्यवस्था की क्या सीमाएँ हैं ?
7. निम्नलिखित में कौन सही है और कौन गलत ?
   - **(i)** मिश्रित अर्थव्यवस्था वास्तव में पूँजीवाद का ही भिन्न रूप है।
   - **(ii)** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत निजी क्षेत्र का अस्तित्व नहीं होता।
   - **(iii)** मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक आयोजन की भूमिका निर्णायक होती है।
   - **(iv)** बाजार प्रक्रिया न्याय संगति (equity) को सुनिश्चित नहीं करती।
   - **(v)** बाजार तंत्र अर्थव्यवस्था को सदा ही पूर्ण रोजगार की स्थिति की ओर ले जाता हैं।
   - **(vi)** मिश्रित अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप आर्थिक शक्ति का संकेद्रण होता है।

3.8 सारांश

किसी समाज में आर्थिक प्रणाली का रूप क्या है? वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके अंतर्गत उत्पादन शक्तियों और प्रमुख उत्पादन संबंधों के बीच संयोजन किस प्रकार का है। इससे अभिप्राय यह है कि किसी समय बिंदु पर किसी समाज की आर्थिक प्रणाली का निर्धारण मुख्य रूप से इस आधार पर होता है कि उत्पादन के साधनों का स्वामी कौन है तथा श्रम शक्ति की पूर्ति कौन करता है। आर्थिक प्रणाली के चुनाव के संबंध में लोगों को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होती। आर्थिक प्रणाली का विकास या उसकी स्थापना आनुक्रमिक रूप में हुई है। यह अनुक्रम इस प्रकार है–

(1) आदिम समाज

(2) दासप्रथा

(3) सामंतवाद

(4) पूँजीवाद और

(5) समाजवाद।

पूँजीवाद से अभिप्राय उस आर्थिक प्रणाली से है जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है तथा उत्पादन कार्य बाजार के लिए किए जाते हैं। श्रम शक्ति एक वस्तु का रूप धारण करती है, अतः विनिमय की अन्य किसी भी वस्तु के ही समान उसका भी क्रय–विक्रय किया जा सकता है। पूँजीवाद का आविर्भाव सामंतवाद से हुआ और उसके विकास में जिन कारकों का योगदान रहा वे इस प्रकार हैं:

(1) व्यापार और वाणिज्य में तेजी से विस्तार

(2) उद्योग में घरेलू उत्पादन प्रणाली और

(3) कृषि में बाड़ाबंदी आंदोलन।

पूँजीवाद अर्थव्यवसस्था की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

(1) उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व

(2) वस्तु उत्पादन

(3) श्रम शक्ति का एक वस्तु का रूप धारण करना

(4) कीमत प्रक्रिया की प्रमुख भूमिका

(5) सतत् पूँजी संचयन और आर्थिक संकट

(6) वर्ग विरोध।

पूँजीवाद अर्थव्यवस्था में कीमत प्रक्रिया की भूमिका निर्णायक होती है। इससे आशय यह होता है कि उत्पादन, उपभोक्ता एवं साधन सेवाओं के प्रतिकर्त्ता की हैसियत से लोग अपनी तुष्टि या आय को अधिकतम करने के उद्देश्य से प्रचलित

कीमतों के आधार पर आर्थिक निर्णय लेने का प्रयास करते हैं। आज के पूँजीवाद में निगम (कंपनी) प्रतिनिधि इकाई होता है।

समाजवाद उस आर्थिक प्रणाली को कहा जाता है जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर संयुक्त स्वामित्व होता है तथा उत्पादन और वितरण क्रियाएँ सरकारी योजना के अनुसार की जाती है। समाजवाद का आविर्भाव पूँजीवाद से नहीं होता। समाजवाद क्रान्ति के सफल हो जाने के बाद इसका निर्माण करना होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है :

(1) उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व

(2) वर्ग संघर्ष का अभाव

(3) आय का न्यायोचित वितरण

(4) आर्थिक आयोजन और बाजार की सीमित भूमिका और

(5) उपभोग और व्यवसाय के संबंध में चयन की स्वतंत्रता

आर्थिक आयोजन किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था की अनिवार्य विशेषता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था पूँजीवाद का ही रूप भेद (variant) है और उसकी विशेषता यह है कि उसके अंतर्गत सार्वजनिक और निजी ये दोनों ही क्षेत्र साथ साथ चलते रहते है। उसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है :

(1) उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और लाभ निर्देशित उत्पादन

(2) बाजार प्रक्रिया की निर्णायक भूमिका

(3) सार्वजनिक क्षेत्र और

(4) आर्थिक आयोजन

मिश्रित अर्थव्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता किसी अर्थव्यवस्था के विफल हो जाने के कारण होती है जो कि आर्थिक निर्णयों के लिए पूर्णतया बाजार पर आश्रित होती है। बाजार तंत्र संबंधी दोषों को प्रायः किसी न किसी रूप में आर्थिक आयोजन का आश्रय लेकर तथा भौतिक एवं मौद्रिक नियंत्रणों की सहायता से दूर किया जाता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष इस प्रकार हैं :

(1) ढ़ाँचे की अस्थिरता

(2) आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण

(3) नौकरशाही अकुशलता और भ्रष्टाचार

(4) सामाजिक न्याय वंचन और

(5) पश्चगामी सन्निहित प्रकृति।

3.9 उपयोगी शब्दावली

- **पूँजीवाद (Capitalism) :** वह आर्थिक प्रणाली है जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व होता है और उत्पादन बाजार के लिए किया जाता है।

- **वर्ग संघर्ष (Class Conflict) :** दो वर्गों के बीच संघर्ष, जैसे श्रमिकों और पूँजीपतियों के बीच।

- **आर्थिक आयोजन (Economic Planning) :** राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं के बारे में समन्वित ढ़ंग से निर्णय लेना और उन निर्णयों को कार्यान्वित करना।

- **आर्थिक प्रणाली (Economic System) :** उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के कुछ निश्चित स्वरूपों पर आधारित उत्पादन के संबंधों के साथ उत्पादन की शक्तियों का संयोजन।

- **सामंतवाद (Feudalism) :** वह आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पादन के मुख्य साधन भूमि पर सम्राट्, सामंत और अमीर वर्ग का स्वामित्व होता था तथा वास्तविक कृषि कार्य कृषिदासों (serfs) के द्वारा होता था जो भूमिहीन होते थे।

- **अहस्तक्षेप नीति (Laissez Faire) :** सरकार की ओर से बिना किसी प्रकार के नियंत्रण के आर्थिक क्रियाओं को होने देने की नीति।

- **बाजार तंत्र (Market Mechanism) :** वस्तुओं और साधन सेवाओं के क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच की पारस्परिक क्रियाओं की प्रणाली।

- **मिश्रित्र अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) :** वह आर्थिक प्रणाली जिसके अंतर्गत निजी और सार्वजनिक इन दोनों ही क्षेत्र का सह अस्तित्व होता है।

- **योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned Economy) :** वह अर्थव्यवस्था जिसमे निर्णायक भूमिका बाजार की नहीं बल्कि आर्थिक आयोजन की होती है।

- **प्रारंभिक समाजवादी संचयन (Primitive Socialist Accumulation) :** समाजवादी क्षेत्र को और अधिक विस्तृत करने के लिए अर्थव्यवस्था के गैर समाजवादी क्षेत्र में संचयन।

- **आदिम समाज (Primitive Society) :** मानव द्वारा विकसित सर्व प्राचीन संगठन जो आज से लगभग 6–7 हजार वर्ष पहने समाप्त हो गया।

- **निजी क्षेत्र (Private Sector) :** वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है और उत्पादन कार्य लाभ के लिए किया जाता है।

- **उत्पादक का प्रभुत्व (Producer's Sovereignty) :** इससे अभिप्राय यह होता है कि विज्ञापन का आश्रय लेकर उत्पादक अपनी किसी भी उत्पादित वस्तु को बेच सकता है।

- **उत्पादक शक्तियाँ (Productive Forces) :** उत्पादन के साधन और श्रम शक्ति अपनी पारस्परिक क्रिया में।

- **लाभ अभिप्रेरण (Profit Motive) :** लाभ अर्जन का उद्देश्य जो निजी क्षेत्र के उत्पादक को उत्पादन कार्य करने को प्रेरित करता है।

- **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) :** वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है और उत्पादन कार्य अधिकाधिक जनता के हित के लिए किया जाता है।

- **घरेलू उत्पादन प्रणाली (Putting-out System) :** वह प्रणाली जिसके अंतर्गत व्यापारी पूँजीपति शिल्पकारों को वस्तुओं के निर्माण के लिए कच्चा माल देते थे और ये शिल्पकार पारिश्रमिक के बदले में अपनी सेवाएँ उपलब्ध कराते थे।

- **उत्पादन संबंध (Relation of Production) :** उत्पादन की प्रक्रिया के अंतर्गत लोगों के बीच होने वाला संबंध।

- **समाजवाद संचयन (Socialist Accumulation) :** समाजवादी क्षेत्र के अंतर्गत संसाधनों का संचयन ताकि इस क्षेत्र का और विस्तार किया जा सके।

- **बेशी मूल्य (Surplus Value) :** श्रमिक द्वारा उत्पादित अतिरिक्त मूल्य जो मजदूरी के रूप में उसकी प्राप्ति के बाद भी बचा हुआ अंश होता है और जो पूँजीपति को जाता है।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) 4 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) सही v) सही
vi) सही vii) गलत viii) गलत

ख) 3 i) गलत ii) सही iii) सही iv) गलत v) गलत vi) सही

ग) 3 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) सही v) सही vi) गलत vii) सही viii) गलत

घ) 5 i) सही ii) गलत iii) गलत iv) सही v) गलत vii) सही

11. महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझाते हैं? विभिन्न आर्थिक प्रणालियों के संबंध में उनके आनुक्रमिक क्रम में चर्चा करें।

प्रश्न–2 पूँजीवाद की विशेषताएँ बताएँ। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत प्रक्रिया की क्या भूमिका होती है, स्पष्ट करें।

प्रश्न–3 समाजवाद की विशेषताएँ बताएँ। समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक आयोजन की क्या भूमिका होती है, स्पष्ट करें।

प्रश्न–4 पूँजीवाद और समाजवाद के बीच क्या अंतर है? आपके मत से इन दोनों आर्थिक प्रणालियों में कौनसी श्रेष्ठ है, स्पष्ट बताएँ।

प्रश्न–5 मिश्रित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? यह पूँजीवाद से किस रूप मे भिन्न होता है?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डा0 एच0एल0 आहूजा : उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0, 2008)
- एस0 के0 मिश्र : आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र (प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली, 1988)
- प्रो0 एस0 एन0 लाल : अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- डा0 एच0एल0 आहूजा : व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- एस0सी0 बरला : उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- लक्ष्मी नारायण नाथूरामका : व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)
- पी0ए0 सैम्युलसन : अर्थशास्त्र दसवाँ संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस, 1982)
- डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैन : मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- एन0सी0ई0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र : एक परिचय, कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014

****

B.Com-103

आर्थिक सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड–द्वितीय

उपभोक्ता व्यवहार तथा माँग का सिद्धान्त

इकाई–4 129–148
सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम तथा समसीमांत उपयोगिता नियम
इकाई–5 149–158
तटस्थता वक्र विश्लेंषण
इकाई–6 159–168
माँग का विश्लेंषण
इकाई–7 169–180
माँग की लोच

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ. ज्ञान प्रकाश यादव, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक :– डॉ. आर.पी.एस. यादव, निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनुवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रूफ रीडर

2020 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN-978-93-83328-78-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई : 4 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम तथा समसीमांत उपयोगिता नियम

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उपयोगिता

4.3 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम

4.4 मुद्रा की सीमांत उपयोगिता

4.5 ह्रास मान सीमांत उपयोगिता और वस्तु की माँग

4.5.1 माँग अनुसूची की संकल्पना

4.5.2 माँग वक्र की संकल्पना

4.6 कुल उपयोगिता; औसत उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता

4.7 समसीमांत उपयोगिता नियम

4.8 उपभोक्ता अतिरेक

4.9 सारांश

4.10 उपयोगी शब्दावली

4.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- उपयोगिता की संकल्पना को समझने सकें,
- ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम और उसकी सीमाओं की विवेचना कर सकें,
- मुद्रा की सीमांत उपयोगिता की अवधारणा जान सकें तथा
- कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता का विष्लेषणात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में उपभोक्ता के व्यवहार और माँग के सिद्धान्त के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला जायेगा। इसके अन्तर्गत आर्थिक तर्क एवं अध्ययन के क्षेत्रों से

सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। वस्तुओं की कीमतों के निर्धारण एवं उनमें होने वाले परिवर्तनों का उन वस्तुओं की माँग एवं पूर्ति के साथ स्पष्ट संबंध होता है। अतः इन तीनों (माँग, पूर्ति और कीमत) के मध्य परस्पर क्रिया सदैव चलती रहती है। इस क्रिया के दौरान ये तीनों ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं।

वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण एवं उनमें होने वाला परिवर्तन सदैव ही अर्थशास्त्रियों के लिये कौतुहल का विषय रहा है। इसकी परिणति सामान्यतः कुछ सरल एवं छोटे प्रश्नों से होती है। इन प्रश्नों में वस्तु की कीमत का निर्धारण एवं उसके में परिवर्तन कैसे होता है, सम्मिलित किये जाते हैं। इन प्रश्नों के विश्लेषण एवं अध्ययन की विधि को कीमतों के विस्तृत क्षेत्र पर प्रतिस्थापित किया जाता है।

किसी वस्तु को एक क्रेता क्यों क्रय करता है? उसके सम्मुख ऐसी क्या परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं कि वह उस वस्तु के बगैर नहीं रह पाता एवं उसकी कीमत अदा करने को तत्पर हो उठता है? इस प्रकार को प्रश्नों का उत्तर सामान्य क्रेता का माँग व्यवहार कहा जाता है। इस इकाई के अन्तर्गत माँग व्यवहार का सरलतम रूप में आपके सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि आप जानते हैं कि उपभोक्ता को जहाँ एक ओर कुछ लाभ प्राप्त होते हैं वहीं दूसरी ओर अपने द्वारा दी हुई कीमत के रूप में वह कुछ उपयोगिता खो देता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कोई उपभोक्ता किसी वस्तु को तभी तक खरीदेगा जब तक कि कीमत के रूप में भुगतान की गई उपयोगिता उसे प्राप्त वस्तु की उपयोगिता के बराबर अथवा कम हो। इस प्रकार किसी वस्तु की उपयोगिता कम होने पर क्रेता उसकी कम मात्रा खरीदेगा। उसी प्रकार कीमत में वृद्धि होने पर भी वस्तु की कम मात्रा खरीदी जाएगी।

4.2 उपयोगिता (Utility)

किसी वस्तु की उपयोगिता का आशय–व्यक्ति की आवश्यकता को पूरा करने की उसकी शक्ति से है। अतः यदि कोई वस्तु उपभोक्ता की आवश्यकताओं को पूरा करती है तो वह उसके लिए उपयोगी होगी। किसी वस्तु की उपयोगिता का प्रतिनिधित्व उस तुष्टि से होता है जिसकी प्राप्ति अभी उपभोक्ता को नहीं हुई है। तुष्टि के प्रत्याशित होने के कारण उसमें अनिश्चितता पायी जाती है। इस प्रकार तुष्टि एवं उपयोगिता समानार्थक नहीं है। जहाँ उपयोगिता प्रत्याशित तुष्टि होती है वहीं वस्तु को खरीदने का निर्णय उपयोगिता पर होता है तुष्टि पर नहीं। उपयोगिता अर्थात प्रत्याशित तुष्टि ही वस्तु को प्राप्त करने एवं उसकी कीमत देने के लिए प्रेरित करती है। किसी वस्तु की उपयोगिता के सम्बन्ध में उपभोक्ता पूर्णतः अनुमान पर निर्भर होता है। यह अनुमान उसके पूर्व के अनुभवों, विक्रेताओं द्वारा अपनायी जाने वाली प्रचार एवं विक्रय सम्बन्धी विधियों, अन्य क्रेताओं के अनुभवों आदि पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक पर्यावरण प्रमुख घटकों का प्रयोग सामाजिक, आर्थिक अनुमान लगाने में होता है। उपरोक्त सभी घटकों से उपभोक्ता वस्तु की उपयोगिता के सम्बन्ध में अनुमान लगाता है।

किसी वस्तु की उपयोगिता सदैव स्थिर नहीं रहती है। यह विभिन्न उपभोक्ताओं के लिए भिन्न–भिन्न होती है एवं एक ही उपभोक्ता के लिए यह विभिन्न स्थितियों एवं समयों में भिन्न–भिन्न होती है–

1. उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु की उपयोगिता उसकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है जो उसे तुष्टि प्रदान करती है। सामान्यतः यह देखा जाता है कि सभी उपभोक्ता एक ही आवश्यकता को समान तीव्रता से महसूस नहीं करते हैं। जैसे प्रातःकाल चाय की आवश्यकता सभी उपभोक्ताओ को समान रूप से नहीं महसूस होती है।

2. किसी वस्तु की उपयोगिता यह बताती है कि उपभोक्ता उसके उपयोग से कितनी तुष्टि की उम्मीद करता है। विभिन्न उपभोक्ताओं के अनुमान इस सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। उपभोक्ता द्वारा उपयोगिता के सम्बन्ध में लगाया गया अनुमान परिस्थितियों के यथार्थ आंकलन पर निर्भर करता हैं। यद्यपि इस प्रकार के निर्णय एवं इसे मात्रात्मक रूप देने के लिए कोई मानक विधि नहीं है। सम्मुख परिस्थितियों को एक ही उपभोक्ता विभिन्न प्रकार से देख सकता है।

3. यह आवश्यक नहीं कि किसी वस्तु के सम्बन्ध में सभी उपभोक्ताओं की पसन्द एक जैसी हो। अन्य चीजों के समान रहने पर अंडो की उपयोगिता उस व्यक्ति के लिए अधिक होगी जो उसे पसन्द करता है तथा उसके लिए कम होगी जो उसे कम पसन्द करता है।

4. उपभोक्ता की परिस्थितियाँ सदैव बदलती रहती हैं। मौसम, निवास स्थान तथा अन्य स्थितियों में परिर्वतन के कारण उपभोक्ता की आवश्यकता में परिर्वतन होता रहता है। इस प्रकार वस्तु की उपयोगिता में परिर्वतन होता रहता है।

5. आवश्यकता को पूरा करने के लिए वस्तु का लगातार प्रयोग किया जाता है। जिससे उसकी आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है। इस प्रकार उपयोग में आने वाली वस्तु की अतिरिक्त इकाईयों से मिलने वाली तुष्टि घटती जाती है। अतः उपयोगिता भी घट जाती है।

उपयोगिता की माप अर्थशास्त्र की अत्यन्त महत्वपूर्ण संकल्पना है। मापन का अधार मूल इकाईयों लम्बाई, परिमण, वजन, समय एवं अन्य के मापन से आप परिचित हैं। अर्थशास्त्र में उपयोगिता के महत्व को देखते हुए इसके मापन की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होती है परन्तु उपयोगिता का मानसिक मूल्यांकन का मापन उपरोक्त इकाइयो में नहीं किया जा सकता है क्यों कि उपयोगिता की माप निरपेक्ष या गणनांक शब्दों में करना सम्भव नहीं है। अधिक से अधिक उपभोक्ता दो वस्तुओं की तुलना द्वारा यह कह सकता है कि किसकी उपयोगिता अधिक है एवं किसकी कम है।

किसी वस्तु का उपभोक्ता के लिए उपयोगी होने का यह अर्थ नही होता कि वह उसके लिए लाभकारी है। उपभोक्ता के लिए कोई वस्तु तब तक उपयोगी है जब तक वह समझता है कि अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह उसका उपयोग कर सकता है। कुछ नशीली दवाएँ भी सेवन करने वालों के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक मानी जाती हैं, परन्तु उन नसेबाजो के लिए उनकी उपयोगिता होती है धूम्रपान करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट कि उपयोगिता की संकल्पना का कोई नैतिक आयाम नहीं होता है।

4.3 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम

एक उपभोक्ता की उत्पन्न आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया के दौरान उस प्रक्रिया को रोका नही जाता है तो आवश्यकता की पूर्णतः पूर्ति की जा सकती है।

अन्य बातों के समान रहने पर यदि किसी व्यक्ति को वस्तु की एक के बाद एक इकाइयॉ प्राप्त होती हैं तो उसकी आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आवश्यकता के पूरा होने से जो तुष्टि मिलती है, उसकी मात्रा घटती है जाती है। उपयोग की गई प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से जितनी तुष्टि मिलने की उम्मीद की जाती है, क्रमशः पूर्व की इकाई से कम होती जाती है। अतः कहा जा सकता है जैसे–जैसे वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ प्राप्त होती हैं वैसे–वैसे उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता कम हो जाती है।

इसे सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम या ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम या तृप्य आवश्यकता नियम के रूप में बताया जाता है। इस नियम के अनुसार यदि अन्य बातें समान रहें तो व्यक्ति जैसे जैसे किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों का उपभोग करता है अतिरिक्त इकाइयों से उसे पहले की इकाइयों की अपेक्षा कम संतुष्टि मिलती है।

कम संतुष्टि अथवा सीमांत उपयोगिता में गिरावट एक समान दर से हो यह आवश्यक नहीं है। समान्यतः पहले की इकाइयों के लिए सीमान्त दर तेजी से गिरती है तथा बाद में इकाइयों के लिए गिरावट धीरे–धीरे होती है। परन्तु सदैव ऐसा होना आवश्यक नहीं है। इसके अतरिक्त वस्तु की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाने पर सीमांत उपयोगिता शून्य या ऋणात्मक हो सकती है। यह नियम हमारे जीवन के एक मूल तथ्य और सामान्य अनुभव को व्यक्त करता है। जैसे एक अत्यन्त प्यासे व्यक्ति को पानी दिया जाये तो दूसरे गिलास की अपेक्षा पहले गिलास से अधिक तृप्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार प्यास के बुझ जाने पर पानी की उपयोगिता शून्य होने के पश्चात् यदि पानी पीने को कहा जायेगा तब अनुपयोगिता की स्थिति आ जाती है।

ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम के अर्न्तगत किसी विशेष वस्तु का उपयोग किन्हीं एक या दो आवश्यकताओं की ही पूर्ति कर सकता है। एक ही वस्तु के उपयोग से सभी आवश्यकताओ को पूरा करना संभव नहीं है।

4.3.1 सीमाएँ–

हासमान सीमांत उपयोगिता नियम की कुछ सीमाए होती हैं अर्थात् उन स्थितियों में यह नियम लागू नहीं होता है। कुछ ऐसे सामान्य कारण जिनके फलस्वरूप आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रक्रिया के दौरान ही उनकी तीव्रता में वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार वस्तु की सीमांत उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है। इस नियम की कुछ प्रमुख सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. **समय कारक :–** किसी वस्तु की दो इकाइयों के उपयोग के बीच यदि समयान्तराल अधिक हो तो आवश्यकता की पुनरावृत्ति हो सकती है या उसकी तीव्रता बढ़ सकती है। किसी व्यक्ति को दूसरी रोटी यदि कुछ घण्टों पश्चात् दी जाय तो उससे अधिक उपयोगिता मिल सकती है। इन स्थितियों में ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम को लागू नहीं किया जा सकता है।

2. **वस्तु की प्रत्याशित उपलब्धि :–** यदि भविष्य में किसी वस्तु की उपलब्धता कम होने की सम्भावना होती है तो वस्तु की सीमांत उपयोगिता बढ़ जाती है। जैसे यदि कोई प्यासा व्यक्ति एक गिलास पानी पीने के बाद यदि सोचता है कि उसे अगले कुछ दिनों तक पानी नहीं मिलेगा तो उसके लिए दूसरे गिलास की सीमान्त उपयोगिता बढ़ जायेगी।

3. **रुचि, फैशन एवं आय :–** समय के साथ–साथ इनमें परिवर्तन होता रहता है। अतः वह आवश्यकता की तीव्रता को बदल देता है। यह आवश्यक नहीं है कि ये आवश्यकता की तीव्रता ही करें वरन ये तीव्रता को कम भी कर सकते हैं। हम यह जानते हैं कि फैशन में परिवर्तन आ जाता है जिससे वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है एवं अधिकांश लोग एक बड़ी मात्रा में इसको चाहने लगते हैं। इसके विपरीत कुछ वस्तुओं की फैषन से बाहर होने के पश्चात् उपयोगिता कम हो जाती है। अतः कह सकते हैं कि व्यक्ति की रुचि में बदलाव आ जाता है। उपभोक्ता की आय किसी वस्तु की उपयोगिता को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक है। सामान्यतः कुछ वस्तुओं का उपयोग ज्यादातर निर्धन व्यक्ति करते हैं जैसे सस्ते कपड़े, मोटे अनाज इत्यादि। इस कारण इनको ''गरीब लोगों की वस्तुएँ'' कहते हैं। इन गरीब व्यक्तियों की यदि आय बढ़ जाये तो वे इन वस्तुओं का उपयोग छोड़कर बढ़िया वस्तुओं का प्रयोग करना प्रारम्भ कर देते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आय में परिवर्तन वस्तु की उपयोगिता में परिवर्तन लाता है।

4. **दुर्लभ वस्तुओं का संग्रह :–** दुर्लभ वस्तुएं जैसे – चित्र, बहुमूल्य सिक्के इत्यादि वस्तुओं का संग्रह, संग्रहकर्ता को अत्यधिक आनंद प्रदान करता है। वह इन वस्तुओं का जितना अधिक संग्रह करता है, उतना अधिक आनन्द प्राप्त करता है। इस स्थिति में सीमांत उपयोगिता नियम लागू नहीं होता है।

5. **किसी वस्तु के उपयोग की क्षमता :–** प्रायः ऐसा होता है कि किसी वस्तु के उपयोग के दौरान व्यक्ति के उपयोग क्षमता में परिवर्तन आ जाता है। जैसे एक विशेष प्रकार का संगीत सुन रहा व्यक्ति दूसरी एवं तीसरी बार सुनने में अधिक आनन्द प्राप्त करता है। इस स्थिति में ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम लागू नहीं होता है।

6. **पूरक वस्तुओं की उपलब्धता :–** एक दूसरे से सम्बन्धित वस्तुएँ पूरक कही जाती हैं। किसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु इन विशेष प्रकार की वस्तुओं का एक साथ होना आवश्यक होता है। इस स्थिति में एक वस्तु का उपलब्ध होना व्यर्थ होता है लेकिन इसे उपलब्ध होने से पूरक वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। जैसे पेन एवं स्याही की अलग–अलग उपलब्धता व्यर्थ है। इसी प्रकार पेन की उपलब्धता स्याही की उपयोगिता को बढ़ा देती है।

स्थानापन्न वस्तुएँ पूरक वस्तुओं के विपरीत होती हैं। इनका प्रयोग उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता है। जैसे भूख मिटाने के लिए एक खाद्य पदार्थ के स्थान पर दूसरे खाद्य पदार्थ का उपयोग। अतः जब कोई वस्तु अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है तब उसकी स्थानापन्न वस्तु की क्षमता कम हो जाती है।

4.4 मुद्रा की सीमांत उपयोगिता

ह्रासमान सीमांत उपयोगिता का नियम मुद्रा पर लागू होगा अथवा नहीं इस सम्बन्ध में मतभेद है। सामान्यतः मुद्रा क्रय शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है एवं बाजार में बिक्री हेतु उपलब्ध वस्तुओं को खरीदने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जब व्यक्ति के पास बड़ी मात्रा में मुद्रा है तो उसकी सीमांत उपयोगिता में कमी क्यों होती है? विचारकों ने दिन–प्रतिदिन के आम अनुभव का हवाला देते हुए बताया कि मुद्रा में वृद्धि के साथ–साथ उसकी सीमांत उपयोगिता गिर जाती है। उदाहरण के रूप में उनका कहना है कि जिस व्यक्ति के पास बहुत अधिक मुद्रा होती है वह एक सिक्के के खो जाने की परवाह नहीं करता परन्तु जिसके पास कम मुद्रा है वह उस सिक्के के खोने से दुःखी होगा एवं उसको खोजने का प्रयास करेगा। इस प्रकार ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम मुद्रा पर लागू होता है।

4.5 ह्रासमान सीमांत उपयोगिता और वस्तु की माँग

नवक्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने उपभोक्ता के वस्तु की माँग के संदर्भ में गणनात्मक तुष्टिगुण विश्लेषण प्रस्तुत किया। माँग का गणनावाचक विश्लेषण इस धारणा पर चलता है कि किसी वस्तु या सेवा के उपभोग से आवश्यकता की तृप्ति होती है अर्थात संतुष्टि प्राप्त होती है। तथा इस संतुष्टि के प्राच्य स्तर का मापन संभव है व इसके लिये मापन की कल्पित इकाई 'यूटिलस' का मार्शल आदि नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उपयोग करते हैं।

यदि उपभोक्ता एक केले से प्राप्त तुष्टि को 4 यूटिल व एक आम से प्राप्त तुष्टि को 8 यूटिल समझता है तो इसका तात्पर्य एक आम से प्राप्त उपयोगिता केले से प्राप्त उपयोगिता का दुगना है। परन्तु व्यक्तिपरक धारणा होने के कारण जैसे–जैसे उत्तरोत्तर इकाइयों का उपयोग उपभोक्ता करता जाता है, उसे प्राप्त वस्तु की आवश्यकता में कमी आती जाती है क्योंकि उसकी संतुष्टि तृप्त होती जाती है और परिणामस्वरूप उसकी उपयोगिता में ह्रासमान वृद्धि होती है इसे ही ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त कहते हैं। इस नियम को गोसन का प्रथम नियम भी कहते हैं। अतः जब उपभोक्ता एक वस्तु की अधिक इकाइयों को प्राप्त करता है तो वस्तु की अतिरिक्त इकाई से प्राप्त संतुष्टि गिरती/घटती जाता है। ह्रासमान सीमांत उपयोगिता के स्पष्टीकरण हेतु इसकी मान्यतायें समझना आवश्यक है–

(क) मान्यतायें–

1. उपयोगिता मापनीय है, यूटिल आदि में।
2. उपयोगिता को मुद्रा द्वारा मापा जाता है।
3. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर है।
4. उपभोक्ता विवेकसील है।
5. बाजार का पूर्ण ज्ञान।
6. वस्तुओं के स्थानापन्न नहीं पाये जाते।

(ख) स्पष्टीकरण–

वस्तु की माँग – किसी वस्तु की माँग वह मात्रा है जिसे एक दी हुई समयावधि में उपभोक्ता विभिन्न कीमतों पर क्रय करने के लिये तैयार रहता है।

ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता को स्पष्ट करने हेतु एक वस्तु अनुसूची तालिका पर विचार करना होगा।

उपयोगिता तालिका

उपभोग इकाई सेब (मात्रा)	कुल उपयोगिता TU	सीमान्त उपयोगिता MU
1	16	16
2	60	14
3	40	10
4	46	6
5	48	2
6	48	0
7	44	−4

उपरोक्त तालिका में सेब के उपयोग से प्राप्त कुल व सीमान्त उपयोगिता को व्यक्त किया गया है। सेब की प्रथम इकाई उसे सर्वाधिक संतुष्टि प्रदान करेगी अर्थात 16 यूटिल। प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से उसकी कुल उपयोगिता में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त उपयोगिता कहते हैं तथा विभिन्न इकाइयों के उपभोग से प्राप्त इकाइयों का योग कुल उपयोगिता कहलाता है। तालिका से स्पष्ट है कि प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के उपयोग से उसका सीमान्त तुष्टिगुण घटता जाता है तथा कुल उपयोगिता छठी इकाई के उपयोग पर अधिकतम होती है। इसके बाद उपभोग से व्यक्ति की तबियत बिगड़ सकती है। अतः सातवीं इकाई से ऋणात्मक सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है और कुल उपयोगिता में कमी आ जाती है।

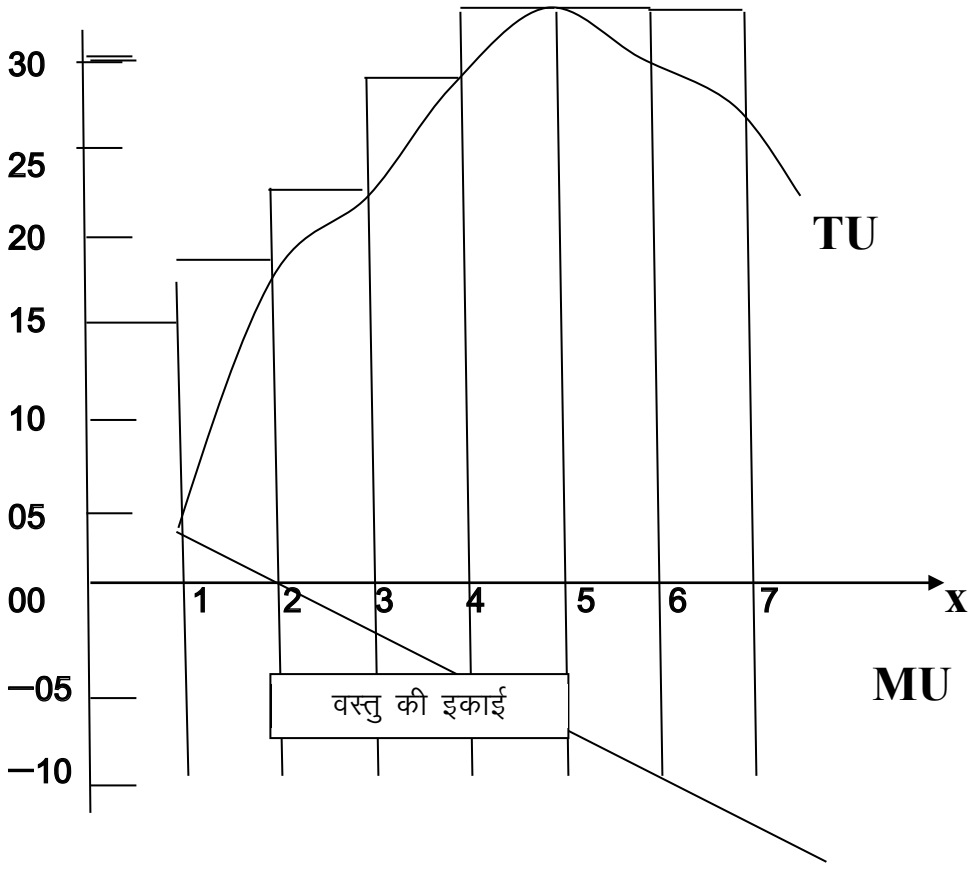

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण x अक्ष पर उपयोग की इकाई तथा y अक्ष पर उपयोगिता को दिखाया गया है। प्रथम इकाई से प्राप्त कुल उपयोगिता को आयत द्वारा दिखाया गया है जो कि 6ठीं इकाई तक बढ़ता है। इसके बाद कुल उपयोगिता घटती है वक्र लगातार ह्रासमान है। अतः कुल उपयोगिता में घटते दर से वृद्धि हो रही है तथा 7वीं इकाई के उपयोग से ऋणात्मक उपयोगिता अर्थात अनुपयोगिता का सृजन हो रहा है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वस्तु की माँग ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त पर कार्य करता है।

4.5.1 माँग अनुसूची की संकल्पना :–

माँग अनुसूची के अन्तर्गत सामान्यतः उपभोक्ता के व्यवहार को प्रदर्शित किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रथम कालम में उपभोक्ता वस्तु की कीमत एवं दूसरे कालम में उपभोक्ता द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा को प्रदर्शित किया जायेगा।

प्रति इकाई कीमत	अनार की माँग
10	4
9	5
8	6
7	8
6	11
5	12
4	15
3	17
2	24
1	30

प्रतिरूपी माँग अनुसूची द्वारा यह स्पष्ट है कि वस्तुओं के कीमत के कम होने पर माँग बढ़ती जाती है तथा कीमत बढ़ने पर वस्तु की माँग घटती जाती है।

4.5.2 माँग वक्र

माँग वक्र किसी वस्तु के माँग की मात्रा व उसकी कीमतों के मध्य संबंध पर सृजित होता है जबकि माँग को प्रभावित करने वाले अन्य कारणों को स्थिर माना गया हो।

$D = f(p)$ D: माँग की मात्रा

P: वस्तु की कीमत

यह दी गयी कीमतों पर वस्तु की खरीदी गयी मात्रा को दिखाता है। ध्यातव्य है कि किसी वस्तु की कीमत जैसे–जैसे बढ़ती जाती है वस्तु की माँग मात्रा वैसे–वैसे

कम होती जाती है। अतः माँग और कीमत के मध्य ऋणात्मक अर्थात् विपरीत संबंध पाया जाता है।

मांग वक्र का निर्माण माँग अनुसूची के बिन्दु संयोग को मिलाने पर प्राप्त बिन्दु पथ से होता है।

कीमत (रूपये)	मात्रा (इकाई)
10	10
8	20
6	30
4	40
2	50

उपरोक्त माँग सूची तालिका को ग्राफ पर निरूपित करने पर माँग वक्र का निर्माण होगा। इसके लिये x अक्ष पर उपभोग इकाई और y अक्ष पर सदैव कीमतों को दिखाया जाता है।

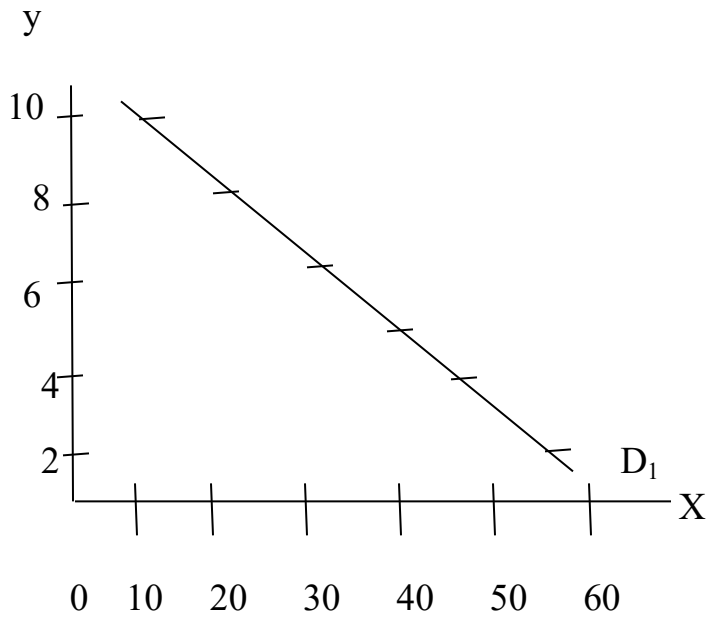

रेखा चित्र पर माँग अनुसूची का मान अंकित कर बना बिन्दु पथ DD_1 माँग वक्र है, जोकि दायें और गिरता हुआ है जो कि कीमत व माँग के मध्य

ऋणात्मक संबंध को दिखाता है। ध्यातव्य है कि दाहिने ओर गिरता माँग वक्र सामान्य वस्तुओं के संदर्भ में होता है।

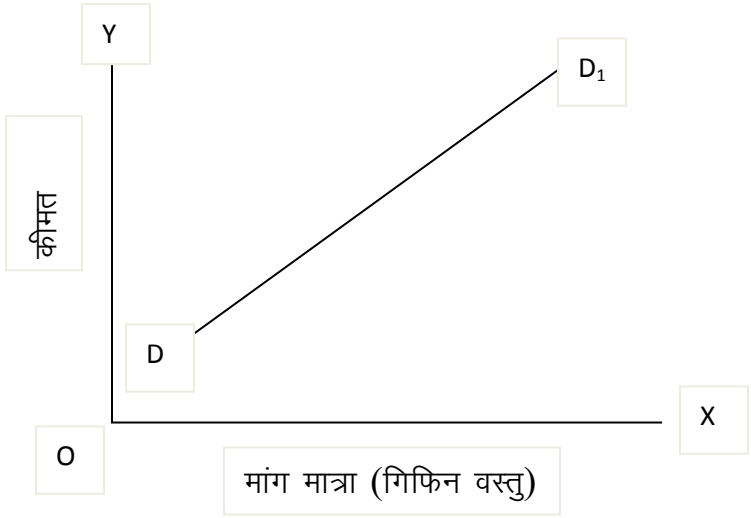

गिफिन वस्तुओं के संदर्भ में कीमत व माँग मात्रा के मध्य धनात्मक संबंध होता है। अतः माँग वक्र दाहिने ओर चढ़ता हुआ प्राप्त होता है। अतः माँग वक्र की प्रवृत्ति वस्तु पर निर्भर करती है।

4.6 कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता

अन्य बातों के समान रहने पर किसी उपभोक्ता अतीक्ष द्वारा आयों के निरन्तर प्रयोग की उपयोगिता को तालिका में दिखाया गया है इस तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम आय में 35 उपयोगिता है द्वितीय में 24 इकाई। इसी प्रकार घटते हुए पॉचवें से 4 एवं 6वें से शून्य उपयोगिता तथा सातवें से ऋणात्मक उपयोगिता या अनुपयोगिता प्राप्त होती है। इस प्रकार किसी उपभोक्ता द्वारा प्राप्त किसी वस्तु की अंतिम इकाई की उपयोगिता को सीमांत उपयोगिता कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता का पता लगाते समय यह देखा जाता है कि उपभोक्ता ने वह वस्तु कितनी मात्रा में प्राप्त की है।

उपभोक्ता अतीक्ष के लिए आय की उपयोगिता

वस्तु	सीमांत उपयोगिता	औसत उपयोगिता	कुल उपयोगिता
पहला	35	35	35
दूसरा	24	29.5	59
तीसरा	16	25	75
चौथा	9	21	84
पांचवा	4	17.60	88
छठा	0	14.66	88
सातवां	–3	12.14	85

उपभोक्ता द्वारा प्राप्त किसी वस्तु की सभी इकाइयों की उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहा जाता है। क्रमागत सीमांत उपयोगिताओं का योग कुल

उपयोगिता है एवं सीमांत उपयोगिता का अर्थ वस्तु की अंतिम इकाई को प्राप्त करने के फलस्वरूप कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि है।

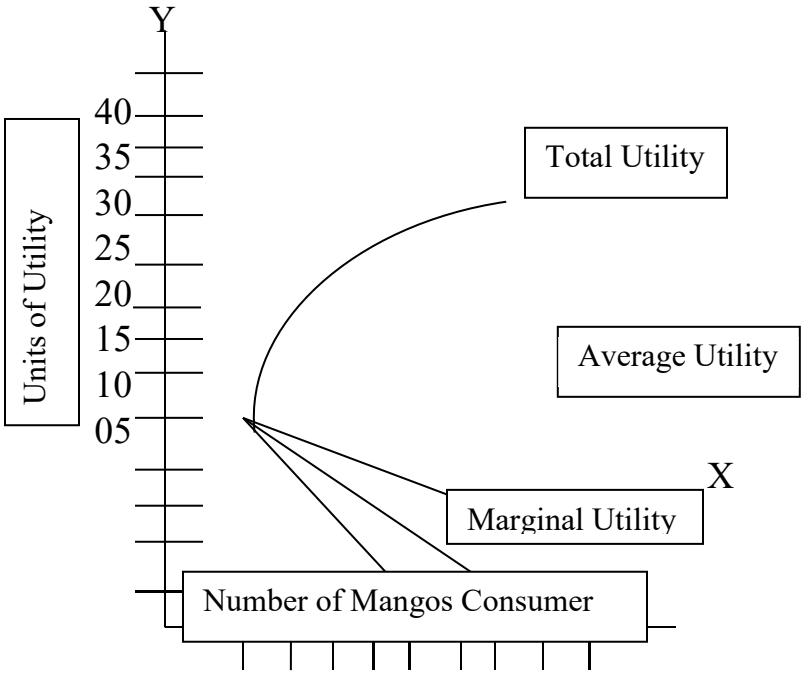

किसी वस्तु की कुल संख्या से मिलने वाली उपयोगिता को उस संख्या से भाग देने पर औसत उपयोगिता प्राप्त होती है स्पष्ट है कि सीमांत उपयोगिता की अपेक्षा औसत उपयोगिता में कम परिवर्तन होता है या अधिक से अधिक बराबर होता है। ऐसा सीमांत उपयोगिता के कारण कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि उस वस्तु की समस्त इकाइयों के बीच बँट जाने के कारण होती है।

किसी वस्तु की प्रथम इकाई को प्राप्त करने की स्थिति में उपयोगिता संबंधी तीनों माप बराबर होती है। उपरोक्त उदाहरण में यह 35 इकाईयाँ हैं। उपरोक्त चित्र में उपभोग किये गये आय की संख्याओं को X अक्ष पर तथा उपयोगिता की इकाइयों की माप Y अक्ष पर किया गया है। उपयोगिता के सभी तीनों वक्रों का प्रारम्भ एक बिन्दु से होता है। जहाँ औसत और सीमांत उपयोगिता के वक्रों में लगातार गिरावट होती है वहीं कुल उपयोगिता धनात्मक एवं वक्र X अक्ष के ऊपर रहता है। सीमांत उपयोगिता वक्र द्वारा X अक्ष को काटने के साथ कुल उपयोगिता वक्र का ऊपर उठना रुक जाता है एवं सीमांत उपयोगिता वक्र के अक्ष के नीचे जाते ही कुल उपयोगिता वक्र गिरने लगता है।

4.7 समसीमांत उपयोगिता

प्रत्येक उपभोक्ता के सामने सबसे प्रमुख समस्या अपने सीमित साधनों को विभिन्न प्रयोगों या वस्तुओं के क्रय के संबंध में इस प्रकार की होती है जिससे उसे अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति प्राप्त हो सके । यह अधिकतम संतुष्टि की स्थिति

प्रयोग करने ही उपभोक्ता की संस्थिति की स्थिति होगी। मार्शल ने उपयोगिता के संख्यात्मक माप पर आधारित समसीमांत उपयोगिता नियम का प्रतिपादन किया। परन्तु उपभोग के इस सिद्धान्त की सर्वप्रथम व्याख्या गॉसेन ने की इसलिए इसे गॉसेन का दूसरा नियम (Gossen's Second Law) कहते है। परन्तु इसका अधिक परिष्कृत और वैज्ञानिक विश्लेषण प्रो0 मार्शल ने किया इसलिए इसके प्रतिपादक को कहलाते हैं।

गणनावाचक तुष्टिगुण विश्लेषण में समसीमांत उपयोगिता नियम का महत्वपूर्ण स्थान है; इसकी सहायता से ही उपभोक्ता के संतुलन को समझा जा सकता है। माना कि एक उपभोक्ता है जो अपनी निश्चित आय को केवल दो वस्तुओं तथा पर व्यय करना चाहता है। उपभोक्ता का व्यवहार दो बातों से प्रभावित होगा, एक तो वस्तुओं से प्राप्त सीमांत तुष्टिगुण तथा दूसरा वस्तुओं की कीमत। वस्तुओं की कीमतें निश्चित हैं। यह नियम बताता है कि उपभोक्ता अपनी मौद्रिक आय को विभिन्न वस्तुओं में इस प्रकार वितरित करेगा कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय किये गये अन्तिम रूपये से प्राप्त तुष्टिगुण समान हो। अथवा ''उपभोक्ता अपनी मौद्रिक आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार से व्यय करेगा कि विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत तुष्टिगुणों तथा उनकी कीमतों के अनुपात में समानता हो। अतः उपभोक्ता उस समय संतुलन में होता है।

$$\frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y}$$

अब प्रश्न यह उठता है कि उपभोक्ता दोनो वस्तुओं को कितनी मात्राओं में क्रय करेगा। यह उसकी मौद्रिक आय की मात्रा पर निर्भर करेगा। एक निश्चित आय दी हुई होने पर उपभोक्ता तब तक वस्तुओं का क्रय करता रहेगा जब तक प्रत्येक वस्तु से प्राप्त मुद्रा–व्यय का सीमांत तुष्टिगुण समान नहीं हो जाता।–

नीचे दी हुई सारणी की सहायता से हम समसीमांत उपयोगिता नियम की व्याख्या कर सकते हैं।

$$\frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y} = MU_n$$

माना दो वस्तु x व y है। x की कीमत 2 रुपये तथा y की कीमत 3 रुपये है। x वस्तु के सीमांत तुष्टिगुणों को 2 से तथा वस्तु के सीमांत तुष्टिगुणों को 3 विभाजित करके सारणी 1.2 प्राप्त करेगे।

सारिणी 1.1

वस्तुओं से प्राप्त कीमत तुष्टिगुण

Unit इकाइयाँ	MU_x इकाईयां	MU_y इकाईयां
1	20	24
2	18	21
3	16	18
4	14	15
5	12	12
6	10	9

सारणी 1.2

मुद्रा से प्राप्त सीमांत तुष्टिगुण

Unit इकाईयां	$\frac{MU_x}{P_x}$	$\frac{MU_y}{P_y}$
1	10	8
2	9	7
3	8	6
4	7	5
5	6	4
6	5	3

अब माना कि उपभोक्ता के पास 24 रुपये हैं। सारणी से यह स्पष्ट है कि वस्तु x की 6 इकाइयाँ उपभोक्ता खरीदता है तो $\frac{MU_y}{P_y} = \frac{10}{2} = 5$ यूट्ल्स तथा y वस्तु की चार इकाइयाँ खरीदने पर $\frac{MU_y}{P_y} = \frac{15}{3} = 5$

इस प्रकार जब उपभोक्ता वस्तु x की 6 इकाइयाँ तथा वस्तु y की 4 इकाईयों को क्रय करता है तो वह संतुलन मे होगा।

समसीमांत तुष्टिगुण नियम पर परिसीमाएँ

1. कई अर्थशास्त्रियों का मत है कि उपभोक्ता द्वारा सीमांत तुष्टिगुणों की गणना करना सम्भव नहीं।
2. उपभोक्ता द्वारा तुष्टिगुण का गुणनावाचक रूप में माप करना संभव नहीं है।
3. अविभाज्य वस्तुओं की दशा में इसका पालन करना सम्भव नहीं है।

4.8 उपभोक्ता अतिरेक

उपभोक्ता की बचत की विचारधारा प्रो. मार्शल द्वारा प्रतिपादित कल्याणकारी आर्थिक विश्लेषण में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सर्वप्रथम इस विचारधारा की व्याख्या 1844 में फ्रांस के इन्जीनियर अर्थशास्त्री डयूपिट (Dupit) ने की परन्तु प्रो. मार्शल ने इसे वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप प्रदान किया इसलिए इन्हे इस सिद्धान्त का जन्मदाता कहते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्री हिक्स ने इसको अनधिमान वक्र की सहायता से प्रदर्शित कर नई दिशा दी। इस सिद्धान्त की व्याख्या दो रूपों में की जा सकती है:–

1. मार्शल का दृष्टिकोण– ये वस्तु की उपयोगिता की संख्यात्मक माप पर आधारित है।

2. हिक्स का दृष्टिकोण– ये वस्तु की उपयोगिता के क्रमवाचक माप पर आधारित है।

(क) मार्शल का दृष्टिकोण–

दैनिक जीवन के अनुभव से मार्शल ने कहा कि प्रायः जब हमें किसी वस्तु के उपयोग की तीव्र इच्छा रहती है अथवा जब कोई वस्तु सीमित मात्रा में उपलब्ध रहती है तो हम उस वस्तु को क्रय करने के लिए उससे अधिक पैसा देने को तत्पर हो जाते हैं जितने मूल्य में वह वस्तु हमें मिल जाती है इन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता अतिरेक है। मार्शल के अनुसार; वस्तु से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता वस्तु के लिए जो कीमत देने को तैयार रहता है तथा जो मूल्य वास्तव में देता है उन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत या अतिरेक है।

उदाहरण के लिए मान लेते हैं कि एक व्यक्ति को बहुत प्यास लगी है और वो एक बोतल पानी के लिए 25 रुपये तक देने के लिए तैयार हैं, पर उसी समय यदि यह बोतल 15 रुपये में मिल जाये तो 25 रुपये जो देने को तैयार थे तथा 15 रुपये जो व्यक्ति देता है इन दोनों का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत है।

उपभोक्ता की बचत = एक उपभोक्ता कितना भुगतान करने के लिए तैयार है – वह वास्तव में कितना भुगतान करता है।

एक वस्तु के लिए व्यक्ति मुद्रा की जो मात्रा भुगतान करने के लिए तैयार होता है वह उस वस्तु से उसे प्राप्त होने वाली उपयोगिता या तुष्टिगुण की मात्रा को व्यक्त करती है। जितनी अधिक मुद्रा की मात्रा वह भुगतान करने के लिए इच्छुक रहता है उससे प्राप्त होने वाला तुष्टिगुण अथवा संतोष उसे उतना ही अधिक होगा। इसलिए वस्तु की एक इकाई का सीमांत तुष्टिगुण उस कीमत को निर्धारित करता है जो कि एक उपभोक्ता इस इकाई के लिए भुगतान करने को तैयार होगा। एक व्यक्ति जो कुल तुष्टिगुण प्राप्त करेगा वह वस्तु की खरीदी गयी इकाइयों के सीमांत तुष्टिगुण का योगफल (EMU) होगा तथा कुल कीमत जो वह वास्तव में भुग्तान करेगा वह प्रति इकाई कीमत तथा खरीदी गयी इकाइयों की संख्या के गुणा के बराबर है। इस प्रकार

उपभोक्ता की बचत= एक उपभोक्ता जितना भुगतान करने को तैयार होता – वास्तव में जितना भुगतान करता है

या = सीमांत तुष्टिगुणों का योगफल – (कीमत × खरीदी गयी इकाईयों की संख्या)

= EMU – (Price × No. of Units Purchased)

उपभोक्ता की बचत का विचार ह्रासमान तुष्टिगुण के नियम से व्युत्पादित किया गया है जैसे ही हम एक वस्तु की अधिक इकाइयों खरीदते हैं उसका सीमांत तुष्टिगुण कम हो जाता है। उपभोक्ता तब संतुलन में होता है जबकि दी हुई कीमत सीमांत तुष्टिगुण के बराबर हो जाती है। मान लीजिए एक उपभोक्ता

जिसे भूख लगी है केला खरीदना चाहता है। माना केले का प्रति इकाई मूल्य 2 रुपया है तथा मूल्य स्थिर है। अब माना कि उपभोक्ता के पास केले की एक भी इकाई नहीं है इसलिए केला उसके लिए बहुत उपयोगी है, माना कि केले की सीमांत उपयोगिता 15 है। उपभोक्ता केले की एक इकाई के लिए 15 रूपये देने को तैयार है परन्तु केले का मूल्य 2 रूपये ही है इसलिए 15 − 2 = 13 रूपये या उसके बराबर की सीमांत उपयोगिता उपभोक्ता की बचत है। माना केले की दूसरी इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता 12 है तो इस इकाई के उपयोग पर भी उपभोक्ता को 12 − 2 = 10 के बराबर सीमांत उपयोगिता की बचत होगी। उपभोक्ता केला तब तक क्रय करेगा और उसे बचत प्राप्त होगी जब तक कि इसकी सीमांत उपयोगिता मूल्य के बराबर न हो जाये जैसा कि सारणी में प्रस्तुत है :–

सारणी

केले की इकाइयां	केले की सीमांत उपयोगिता	केले का वास्तविक मूल्य	उपभोक्ता की बचत
1	15	2	13
2	12	2	10
3	8	2	6
4	5	2	3
5	2	2	0
कुल योग	42	10	32

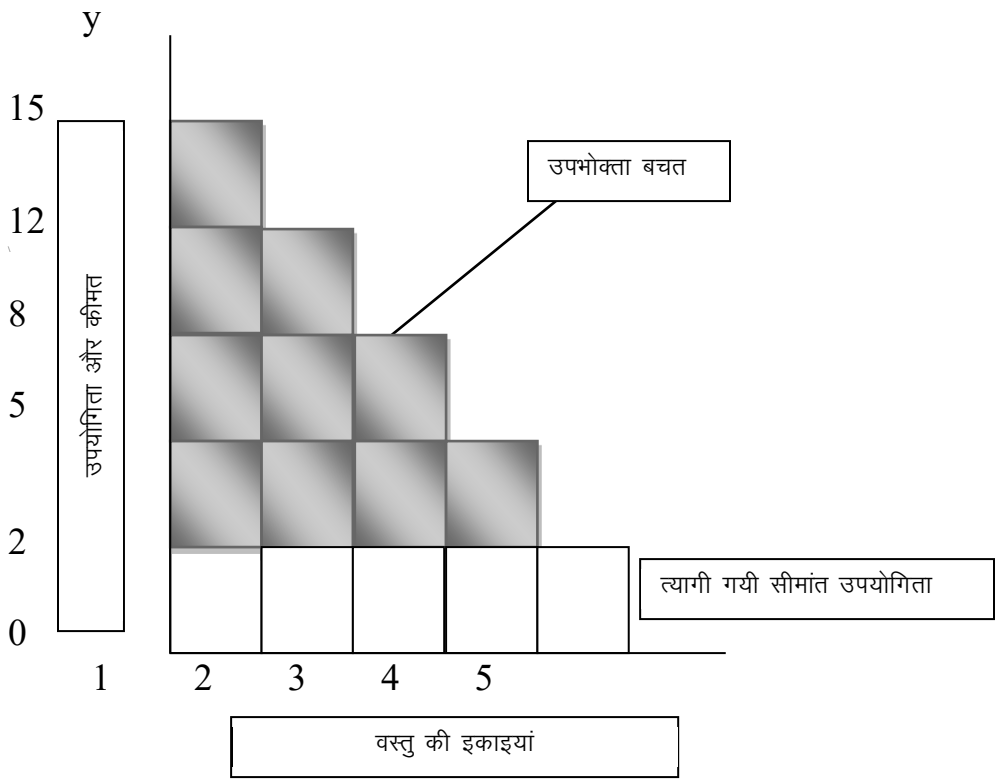

प्रस्तुत चित्र में छायांकित क्षेत्र उपभोक्ता की कुल उपयोगिता को प्रदर्शित करता है।

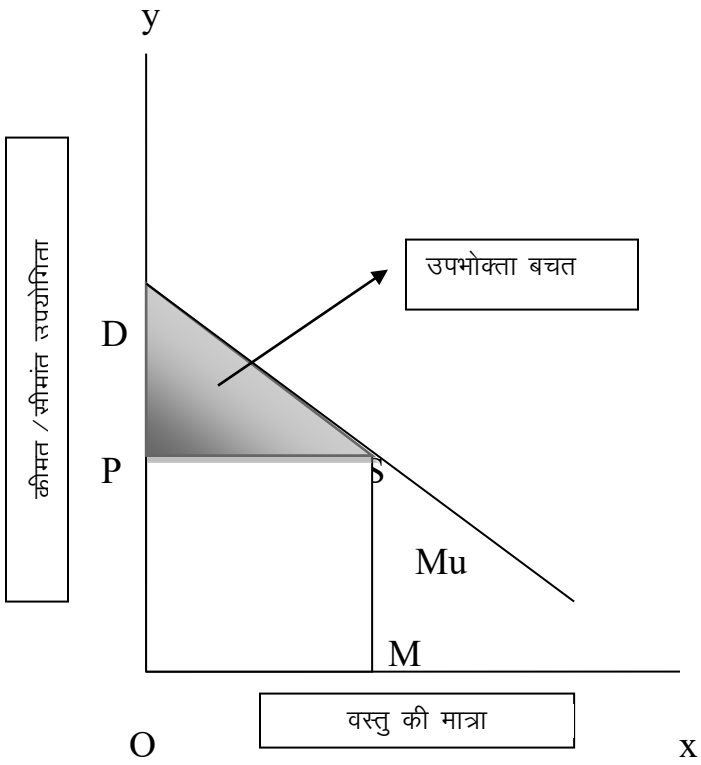

उपभोक्ता की बचत को माँग वक्र की सहायता से रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया है। जिससे X अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा Y अक्ष पर वस्तु की कीमत तथा सीमांत उपयोगिता है। OP वस्तु की कीमत है। वस्तु की OM इकाइयों के लिए उपभोक्ता ODSM रूपयों के बराबर धनराशि भुगतान करने को तैयार होगा। परन्तु OP दी हुई कीमत होने पर OM इकाइयों के लिए उपभोक्ता वास्तव में OPSM के बराबर की धनराशि भुगतान करेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपभोक्ता ODSM – OPSM = DPS के बराबर बचत प्राप्त करेगा।

(ख) हिक्स का दृष्टिकोण

ये उपयोगिता के क्रमवाचक माप पर आधारित है। हिक्स के अनुसार ,''उपभोक्ता की बचत मुद्रा की वह मात्रा है जो उसकी आर्थिक दशा में कुछ परिवर्तन के बाद या तो उपभोक्ता को दी जानी चाहिये अथवा उससे ले ली जानी चाहिये जिससे उपभोक्ता या तो ऊपर उठ जाये अथवा नीचे आ जाये तथा उसी अनधिमान वक्र पर बना रहे जिस पर वह इस प्रकार के परिवर्तन के पहले था।'' जैसे माना कोई व्यक्ति बाजार मूल्य के ज्ञान के पूर्व यह सोचता है कि कोई वस्तु उसे 20 रुपये में प्राप्त हो जायेगी परन्तु बाजार जाने पर वही वस्तु उसे 15 रुपये में प्राप्त हो जाती है तो 20–15 = 5 रुपये मुद्रा के रूप में उपभोक्ता की बचत है।

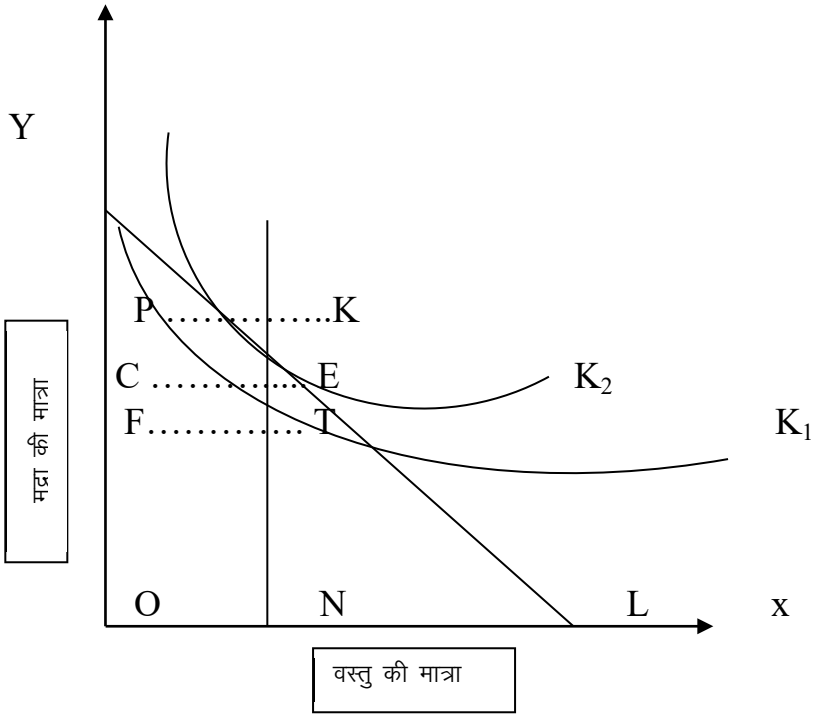

प्रस्तुत चित्र में X अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा Y अक्ष पर मुद्रा की मात्रा है। उपभोक्ता K_1 के T बिन्दु पर है। K_1 वक्र वह वक्र है जो बाजार मूल्य के ज्ञान के पूर्व का है। उपभोक्ता ON वस्तु के लिए PF या TK मुद्रा देने को तैयार है। PL बजट रेखा है। उपभोक्ता K_2 के E बिन्दु पर है जहाँ बजट रेखा K_2 वक्र को स्पर्श करती है। E बिन्दु पर ON वस्तु का बाजार मूल्य PC है। अतः उपभोक्ता ON वस्तु के लिए PC मूल्य देता है। इस प्रकार PF – PC = CF उपभोक्ता की बचत है।

आलोचना :–

1. मार्शल के अनुसार वस्तु की उपयोगिता को मापा जा सकता है परन्तु उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक विचार है। इसे मुद्रा के द्वारा मापना सम्भव नहीं है।
2. मार्शल ने मान्यता रखी कि वस्तुयें प्रतिस्थापित नहीं की जा सकती पर व्यावहारिक जीवन में ऐसा नहीं मिलता है।
3. उपभोक्ताओं की आय तथा रूचियों में भिन्नता होती है।
4. जीवन रक्षक परम्परागत तथा प्रतिष्ठात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में उपभोक्ता की बचत का माप सम्भव नहीं।

उपभोक्ता की बचत की गणितीय विधि :–

उपभोक्ता की बचत = कुल तुष्टिगुण – कुल कीमत

= सीमांत तुष्टिगुण फलन का समाकल – वस्तु की प्रति इकाई कीमत

X उपभोग इकाईयों की संख्या

कुल तुष्टिगुण = माँग फलन का समाकलन

$= \int_0^{x_0} f(x)dx$

कुल कीमत = P_oX_0

माना कि $P = f(x)$ एक वस्तु का माँग फलन है। उपभोक्त वस्तु की X_0 मात्रा को P_0 कीमत $P0 = f(x_0)$ पर क्रय करता है।

अतः उपभोक्त का क्रय $= P_oX_0$

ऐसे उपभोक्ता है जो P_o से अधिक कीमत देने को तैयार हैं। x मात्रा का क्रय कर चुके ये उपभोक्ता और अधिक मात्रा dx को कीमत $f(x)$ पर क्रय करने को तैयार होंगे। अतः व्यय $f(x)dx$ होगा। अतः कुल व्यय जो वे मात्रा के लिए देने को तैयार होंगे

$$\int_0^{x_0} f(x)dx$$

इसलिए उपभोक्ता अतिरेक है–

$$= \int_0^{x_0} f(x)dx - P_0 x_0$$

उपभोक्ता की बचत $= \int_0^{x_0} f(x)dx - P_0 x_0$

4.9 सारांश

उपयोगिता एक व्यक्ति की आवश्यकता को पूरा करने की उसकी शक्ति को कहते हैं। उपभोक्ता को जहाँ एक ओर कुछ लाभ प्राप्त होते हैं वहीं दूसरी ओर अपने द्वारा दी हुई कीमत के रूप में वह कुछ उपयोगिता खो देता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कोई उपभोक्ता किसी वस्तु को तभी तक खरीदेगा जब तक कि कीमत के रुप में भुगतान की गई उपयोगिता उसे प्राप्त वस्तु की उपयोगिता के बराबर अथवा कम हो। इस प्रकार किसी वस्तु की उपयोगिता कम होने पर क्रेता उसकी कम मात्रा खरीदेगा। उसी प्रकार कीमत में वृद्धि होने पर भी वस्तु की कम मात्रा खरीदी जाएगी। आवश्यकता के पूरा होने से जो तुष्टि मिलती है उसकी मात्रा घटती जाती है। उपयोग की गई प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से जितनी तुष्टि मिलने की उम्मीद की जाती है, क्रमशः पूर्व की इकाई से कम होती जाती है। इसे ही सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम कहते हैं। मुद्रा में वृद्धि के साथ–साथ उसकी सीमांत उपयोगिता गिर जाती है। इस प्रकार मुद्रा पर सीमांत उपयोगिता नियम लागू होता है। जैसे–जैसे उत्तरोत्तर इकाइयों का उपयोग उपभोक्ता करता जाता है उसे प्राप्त वस्तु की आवश्यकता में कमी आती जाती है क्योंकि उसकी संतुष्टि तृप्त होती जाती है और परिणामस्वरूप उसकी उपयोगिता में ह्रासमान वृद्धि होती है इसे ही ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त कहते है। माँग अनुसूची की संकल्पना एवं माँग वक्र की संकल्पना भी इसी सिद्वान्त पर कार्य करता है। उपभोक्ता अपनी मौद्रिक आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार से व्यय करेगा कि विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत तुष्टिगुणों तथा उनकी कीमतों के अनुपात में समानता हो। अतः उपभोक्ता उस समय संतुलन में होता है। वस्तु से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता वस्तु के लिए जो कीमत देने को तैयार रहता है तथा जो मूल्य वास्तव में देता है उन दोनो का अन्तर ही उपभोक्ता की बचत या अतिरेक है।

4.10 उपयोगी शब्दावली

- उपयोग, अतिरेक, मांग अनुसूची, सीमान्त उपयोगिता
- उपयोगिता– व्यक्ति की आवश्यकता को पूरा करने की शक्ति
- अतिरेक – वस्तु के वास्तविक मूल्य एवं उपभोक्ता द्वारा दिये गये मूल्य के अंतर को अतिरेक कहते हैं।
- माँग अनुसूची– वस्तु की कीमत एवं खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा को प्रदर्शित करने वाली टेबल
- समसीमान्त उपयोगिता– उपभोक्ता द्वारा व्यय इस प्रकार करना कि विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत तुष्टिगुणों एवं उनकी कीमतों के अनुपात में समानता हो।

4.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न 1. ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम और उसकी सीमाओं को समझाइये।

प्रश्न 2. उपभोक्ता अतिरेक से सम्बन्धित मार्शल का दृष्टिकोण क्या है?

प्रश्न 3. ह्रासमान सीमांत उपयोगिता और वस्तु की माँग को स्पष्ट करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S Chand & Company Ltd., 2001.
3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1947

****

इकाई : 5 तटस्थता वक्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 तटस्थता वक्र

5.2.1 तटस्थता वक्रों की विशेषताएं

5.2.2 परिभाषाएँ

5.2.3 तटस्थता मानचित्र

5.2.4 तटस्थता चक्र

5.2.5 तटस्थता मानचित्र

5.3 सारांश

5.4 उपयोगी शब्दावली

5.5 महत्वपूर्ण प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :–

- तटस्थता वक्र का अर्थ समझ सकें,
- तटस्थता वक्रों की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकें,
- ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम की व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियमों का विश्लेषण कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

माँग के नियम तथा मांग की लोच के अध्ययन एवं विश्लेषण को और अधिक स्पष्ट करने के लिए तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता लिया जाती है। इसके अनुसार उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदते समय केवल उपयोगिता क्रम को ही ध्यान में नहीं रखता है। उसके लिए वस्तु संयोग अधिक महत्व का होता है। अतः उपभोक्ता उस संयोग को ऊँचा क्रम देता है जो उसके लिए अधिक महत्व का होता है और कम महत्व के संयोग को नीचा क्रम प्रदान करता है। तटस्थता अथवा उदासीनता वक्र विश्लेषण ह्रासमान सीमान्त प्रतिस्थापन दर के नियम की मान्यता पर आधारित होता है। इसके अन्तर्गत एक उपभोक्ता अपने सन्तोष को समान

रखने के लिए एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है तो दूसरी वस्तु के उपभोग को घटाता है।

5.2 तटस्थता वक्र

तटस्थता वक्र वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगों का बिन्दु पथ है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है और इसलिए इसे तटस्थता वक्र कहते हैं। तटस्थता वक्र विश्लेषण का प्रारम्भ 1881 ई0 में अंग्रेज अर्थशास्त्री एजवर्थ (Edgeworth) ने किया था। बाद में 1906 में इटेलियन अर्थशास्त्री पेरेटो (Pareto) ने एजवर्थ की रीति को अपनाकर माँग की विवेचना की। पेरेटो ऐसा प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने उपयोगिता को एक मानसिक तत्व स्वीकार किया जिसे केवल वस्तु का उपभोग करने वाला व्यक्ति ही महसूस कर सकता है। यह स्थिर नहीं रहता फलस्वरूप इसका संख्यात्मक माप भी नहीं हो सकता है।

रूसी अर्थशास्त्री स्लूट्स्की (Slutsky) ने 1915 में पेरेटो की इस विधि की व्याख्या की थी, परन्तु रूसी भाग में होने तथा प्रथम विश्व युद्ध की उथल–पुथल के कारण उस व्याख्या को विशेष महत्व नहीं मिल पाया। प्रो0 हिक्स ने 1939 में अपनी पुस्तक **Value and Capital** में तटस्थता विश्लेषण की विस्तार से व्याख्या दी। इसमें प्रो0 हिक्स ने 'सीमान्त उपयोगिता' के स्थान पर 'स्थानापन्न दर' शब्दावली का प्रयोग किया। उनके अनुसार सीमान्त उपयोगिता का कोई निश्चित अर्थ नहीं है। प्रो0 हिक्स के अनुसार–उपयोगिता ह्रास नियम के स्थान पर प्रतिस्थापन की घटती सीमान्त दर का सिद्धान्त प्रयोग करना केवल भाषान्तर नहीं वरन् इस सिद्धान्त की नींव में एक धनात्मक या ठोस परिवर्तन है।

5.2.1 तटस्थता अर्थत् उदासीनता वक्र की परिभाषाएँ

तटस्थता वक्र की परिभाषा अनेक विद्वानों द्वारा दी गई है। कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

(क) जे0 के0 ईस्थम (J.K. Eastham) के अनुसार – यह वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगों का बिन्दुपथ है जिसके बीच व्यक्ति तटस्थ रहता हैं। और इसलिए इसे तटस्थता वक्र कहते हैं।

(ख) के0 ई0 बोल्डिंग (K.E. Boulding) के अनुसार – "समान अनुराग दिखाने वाली वक्र रेखाएँ तटस्थ वक्र कहलाती हैं, क्योंकि वे वस्तुओं के ऐसे संयोगों को व्यक्त करती हैं जो एक–दूसरे से न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे।"

(ग) ए0 एल0 मेयर्स (A.L. Meyers) के अनुसार–"अधिमान सारिणी वह तालिका है जो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को बताती है जिनसे किसी व्यक्ति को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यदि हम इसे एक वक्र के रूप में प्रदर्षित करें, तो हमें अधिमान वक्र प्राप्त हो जायेगा।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि तटस्थता वक्र उपभोक्ता की ऐसी स्थिति है जिसमें वह तटस्थ रहता है तथा उपभोग के लिए वस्तुओं के ऐसे संयोगों को चुनता है जिनसे उसे समान संतोष प्राप्त होता है।

5.2.2 तटस्था तालिका

तटस्थता तालिका का निर्माण वस्तुओं के अनेक संयोगों से होता है। प्रत्येक संयोग से समान महत्व की उपयोगिता मिलती है अतः तालिका में निहित संयोगों में चुनाव के प्रति उपभोक्ता सदैव उदासीन रहता है। **मेयर्स** के शब्दों में, "तटस्थता तालिका दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों की सूची होती है जो किसी व्यक्ति को समान रूप से सन्तोषजनक प्रतीत होते हैं।"

प्रो0 हिक्स के अनुसार, "यदि उपभोक्ता की माँग स्थिर रहती है तथा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन नहीं हो पा रहा है, तो एक वस्तु का उपभोग बढ़ाने के लिए उपभोक्ता को दूसरे वस्तु के उपभोग का त्याग करना पड़ेगा। "तालिका संख्या 1 में ग तथा ल वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दिखाया गया है जिनसे उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।

तालिका–1

तटस्थता तालिका

संयोग की मात्रा	x वस्तु की मात्रा	y वस्तु कुल उपयोगिता दर	संयोग से प्राप्त	प्रतिस्थापन
I	1	6	$A_{}$	x=3y
II	2	3	$A_{}$	x=1y
III	3	2	$A_{}$	
IV	4	1.5	A }	x=5y

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता के लिए पहले सयोंग में x वस्तु की एक इकाई तथा y वस्तु की 6 इकाइयाँ हैं। इससे उपभोक्ता को A के बराबर कुल उपयोगिता प्राप्त होती है इसके पश्चात् वह x वस्तु की मात्रा बढ़ाना चाहता है तथा कुल उपयोगिता को भी A के बराबर ही रखना चाहता है तो उसे y वस्तु की कुछ इकाइयाँ इस प्रकार त्यागनी पड़ेगी कि x वस्तु के समान उपयोगिता प्राप्त हो। अतः इस रेखा का हर बिन्दु तटस्थता वक का एक अभिन्न हिस्सा है।

5.2.3 तटस्थता मानचित्र

तटस्थता वक्र पर ग तथा ल वस्तु के ऐसे अनेक संयोग होते हैं जिनसे उपभोक्ता को समान संतोष प्राप्त होता है। इसके पश्चात् यदि ग तथा ल वस्तु के ऐसे विभिन्न संयोग लिये जायें जिनकी उपयोगिता पिछले संयोगों से कम या अधिक हो

तो उनके लिए दूसरे तटस्थता वक्रों का निर्माण करना पड़ेगा। अतः विभिन्न संयोग होने से विभिन्न तालिकाएं और उनके फलस्वरूप विभिन्न तटस्थता वक्र बनेंगे। ऐसा रेखाचित्र जो एक से अधिक तटस्थता वक्रों को प्रदर्शित करता है तटस्थता मानचित्र कहलाता है।

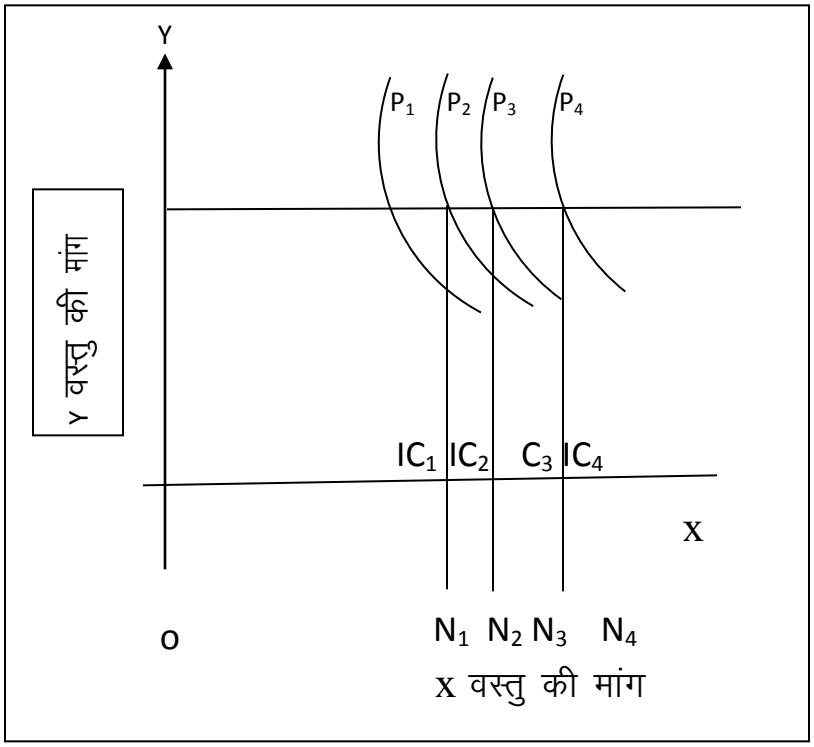

इस चित्र में x अक्ष पर x तथा y अक्ष पर y वस्तु को रखा गया है। IC_1, IC_2, IC_3, तथा IC_4तटस्थता रेखाएं विभिन्न प्रकार की संतुष्टियों के क्रम को व्यक्त करती है। इसमें Y की मात्रा को स्थितर रखते हुए X की मात्रा को लगातार बढ़ाया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पहले संयोगक की अपेक्षा दूसरे, तीसरे और चौथे संयोग से बढ़ती दर पर उपयोगिता मिलती है। इसी कारण प्रत्येक दाईं ओर बनने वाला तटस्थता वक्र बाएं वक्र से अधिक संतोष प्रदान करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो तटस्थता वक्र मूल बिन्दु से जितनी दूर होगा उससे प्राप्त संतुष्टि उतनी अधिक होगी। तटस्थता वक्र मानचित्र का प्रयोग उपभोक्ता के साम्य स्थिति के निर्धारण के लिए किया जाता है। इसके द्वारा यह स्पष्ट है कि जो तटस्थता वक्र मूल बिन्दु से जितनी अधिक दूरी पर स्थित होगा उसका प्रत्येक संयोग शेष वक्रों के संयोग से अधिक संतुष्टि देने वाला होगा। चित्र में पहले तटस्थता वक्र की अपेक्षा दूसरे, दूसरे से तीसरा व तीसरे से चौथा वक्र अधिक संतुष्टि स्तर को प्रदर्शित करता है। इसका कारण है कि जैसे–जैसे उपभोक्ता ऊँचे तटस्थता वक्र पर पहुंचता है, वैसे–वैसे तटस्थता वक्र पर पहुचता

है, वैसे–वैसे दो वस्तुओं की मात्राओं में वृद्धि होती जाती हैं जिसके कारण उपभोक्ता का संतुलन स्तर भी बढ़ता है।

बढ़ने से जितनी उपयोगिता की प्राप्ति हो उतनी ही उपयोगिता की हानि 4 की इकाइयाँ घटाने से हो। इस उदाहरण में दूसरा संयोग x वस्तु की 2 इकाइयों o y- वस्तु की 3 इकाइयों का है। इसकी कुल उपयोगिता A के बराबर है। इन वस्तुओं के अन्य संयोग 3x, 2y तथा 4x, 1.5y हैं। चूँकि इन संयोगों से उपभोक्ता को कुल एक सी उपयोगिता प्राप्त हो रही है इसलिए इनमें से किसी एक के चुनाव के बारें में उपभोक्ता उदासीन या बेफिक्र हो जाता है। इसलिए यह तटस्थता तालिका कहलाती है।

5.2.4 तटस्थता वक्र

तटस्थता वक्र की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि यह वस्तुओं की मात्राओं के विभिन्न संयोगों का बिन्दु–पथ है जिनसे समान उपयोगिता प्राप्त होती है, अतः उपभोक्ता उनके बीच चुनाव करने में तटस्थ रहता है। इस प्रकार तटस्थता तालिका में प्रदर्षित विभिन्न संयोगों में ग व ल की मात्राओं को ग्राफ पेपर पर अंकित करके एक तटस्ता वक्र बनाया जा सकता है।

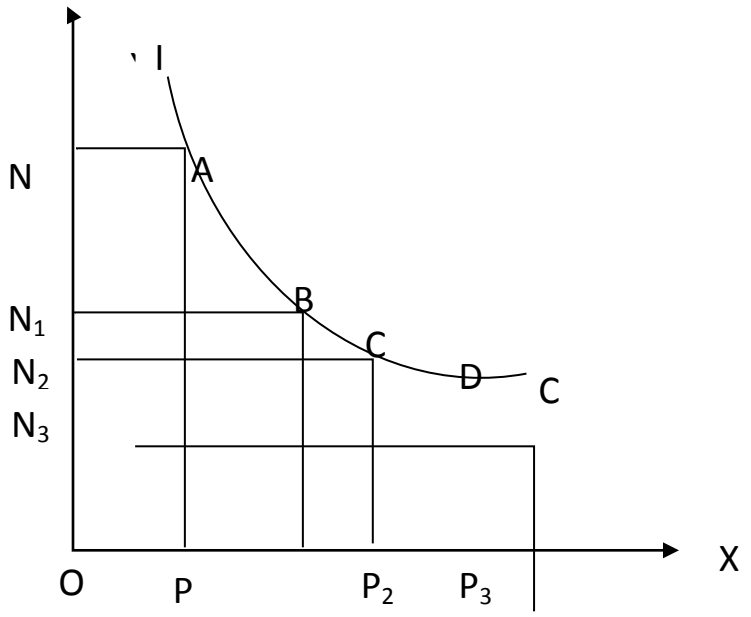

चित्र में x अक्ष पर x वस्तु को तथा y अक्ष पर y वस्तु को दिखाया गया है। IC वक्र इन दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दिखाने वाला तटस्थता वक्र है जिससे उपभोक्ता को समान उपयोगिता प्राप्त होती है। इन वस्तुओं के संयोगों को A, B, C तथा D बिन्दुओं द्वारा दिखाया गया है, जिनमें x तथा y वस्तुओं की मात्राएं क्रमशः ON+OP अर्थात् (1X+6Y), ON_1++OP_1 अर्थात् (2X+3Y), OP_2+ON_2 अर्थात् (3X+2Y) तथा OP_3+ON_3 अर्थात् (4X+1.5Y) है।

इस वक्र पर इन चार बिन्दुओं से ही उपभोक्ता को समान उपयोगिता प्राप्त नहीं होती वरन् इस रेखा पर बन सकने वाले सभी बिन्दुओं से निर्मित वस्तुओं के हर संयोग से भी कुल उपयोगिता समान रहती है। चित्र में प्रत्येक तटस्थता

वक्र पर P, P1, P_2 तथा P_3 बिन्दु दिखाए गये हैं तथा इनके समकक्ष Y-अक्ष पर N, N_1, N_2, तथा N3 बिन्दु दिखाये गये हैं। ये बिन्दु X तथा Y वस्तुओं के संयोगों को व्यक्त करते हैं। A बिन्दु IC पर स्थित है जो OP मात्रा में Y तथा ON मात्रा में x वस्तु के संयोग को प्रदर्षित करता है। इसी प्रकार IC वक्र पर B बिन्दु OP_1(Y) तथा ON_1(X) की मात्रा को बताता है। IC पर बिन्दु C बिन्दु OP_2(Y) और ON_2 (X) की मात्रा को बताता है। IC वक्र पर D बिन्दु में OP_3 (Y) तथा ON_3 (X) की मात्रा का संयोग है।

5.2.5 तटस्थता वक्रों की विशेषताएँ (Characteristics of indifference curves)

तटस्थता वक्रों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं।

1.तटस्थता वक्र बाईं से दाईं ओर गिरता है– तटस्थता वक्र की आकृति लगभग माँग वक्र से मिलती–जुलती है जिसका ढाल ऋणात्मक होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब उपभोक्ता एक वस्तु की मात्रा में कमी करता है तब दूसरी वस्तु की मात्रा को बढ़ाता है क्योंकि यह शर्त समान संतुष्टि के लिए आवश्यक है।

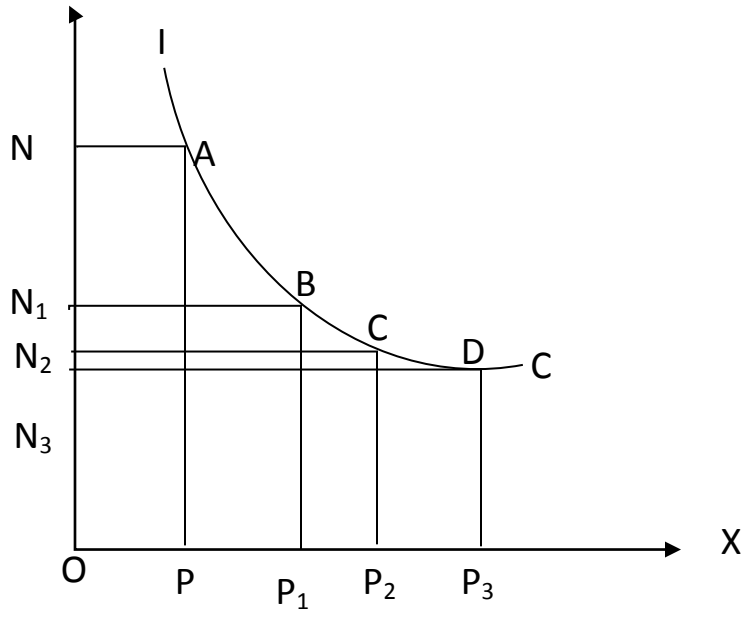

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि जब तटस्थता वक्र पर A तथा B दो संयोगों की ओर बढ़ता है तब वह Y वस्तु की मात्रा में P_1P के बाराबर कमी करे X वस्तु की NN_1 मात्रा में वृद्धि कर देता है। A बिन्दु A तथा B दोनों एक ही तटस्थता वक्र पर स्थित हैं जिनके कारण उपभोक्ता को दोनों संयोगों से समान संतुष्टि मिलती है।

तटस्थता वक्र की इस विशेषता से यह प्रकट होता है कि एक सामान्य तटस्थता वक्र–

(i) ऊपर उठता हुआ नहीं हो सकता है।

(ii) तटस्थता वक्र लम्बवत् नहीं हो सकता है।

(iii) तटस्थता वक्र क्षैतिजीय नहीं हो सकता है।

2. तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता है–

तटस्थता वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होता है। इसका प्रमुख कारण प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर है। उपभोक्ता जैसे–जैसे किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों को क्रय करता है वैसे–वैसे उसे दूसरी वस्तु की कम इकाइयों का त्याग करना पड़ता है।

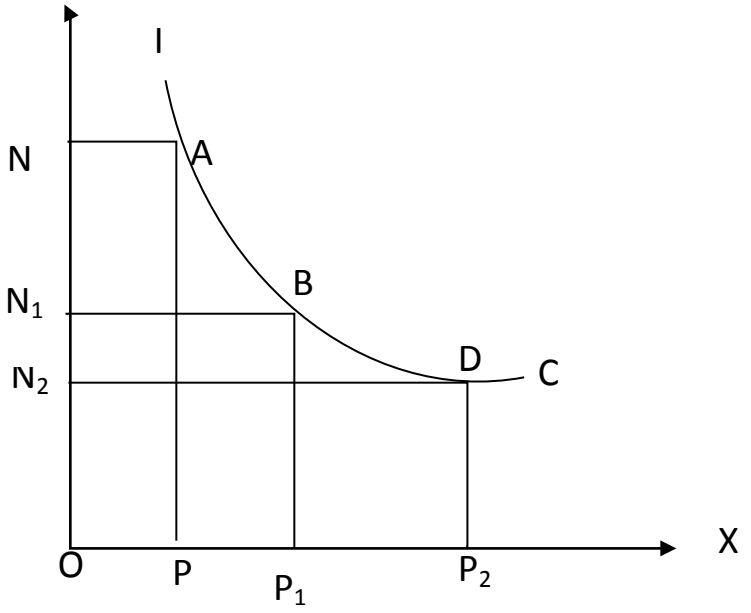

Ic एक तटस्थता वक्र है जिसमें X तथा Y वस्तुओं के विभिन्न संयोग निहित है, इसमें प्रत्येक संयोग समान उपयेगिता व्यक्त करता है। इस वक्र पर चार संयोग A_1, A_2, A_3 और A_4 है। जब उपभोक्ता A_1संयोग से A_2 पर, A_2 से A_3पर तथा A_3से A_4 पर आता है, तब X वस्तु की वृद्धि बढ़ी हुई दरों से की जाती है, Y की A_1B मात्रा को त्यागने पर x की BA_2 मात्रा को लिया जाता है, फिर Y वस्तु की A_2B_2 मात्रा त्यागी गई है और इसके बदले में X वस्तु की B_3A_4 मात्रा का प्रतिस्थापन किया गया है। अब चूंकि X वस्तु की बढ़ाई गयी मात्रा हर परिवर्तन पर एक जैसी है, इसलिये Y वस्तु की घटाई गई मात्रा उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। इस प्रकार प्रतिस्थापन दर कम होती चली जा रही है। इस कारण से तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है।

उपरोक्त विशेषता को स्वीकार करने के पश्चात् स्वाभाविक तौर पर यह कहा जा सकता है कि तटस्थता वक्र न तो एक सीधी रेखा में हो सकता है और न ही मूल बिन्दु के प्रति नतोदर हो सकता है।

3. तटस्थता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते–

प्रत्येक तटस्थता वक्र संतुष्टि के अलग स्तर को प्रकट करता है अतः किन्हीं दो तटस्थता रेखाओं का एक–दूसरे को काटना सम्भव नहीं है। इसे स्पष्ट करने के लिए चित्र में दो तटस्थता वक्रों IC_1o IC_2 को एक–दूसरे को P बिन्दु पर काटते हुए दिखाया गया है।

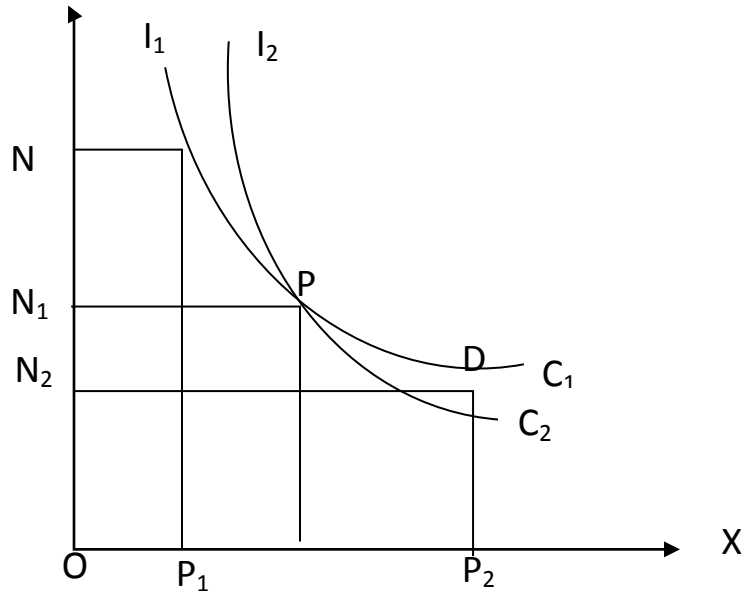

चित्र में IC_1 तटस्थता वक्र पर P तथा P_1बिन्दु समान संतोष को प्रकट कर रहे हैं अर्थात् संतोष की दृष्टि से बिन्दु P = बिन्दु P_1इसी प्रकार IC_2 तटस्थता वक्र पर बिन्दु P= बिन्दु P_2A इस प्रकार यदि P= P_1तथा P=P_2 है तो P_1= P_2 होना चाहिए, परन्तु यह सम्भव नहीं है। P_1तथा P_2बिन्दुओं पर X वस्तु की मात्रा तो ON_1 के रूप में समान है लेकिन P_1पर P_2 की अपेक्षा Y वस्तु की मात्रा अधिक है। अतः OE OE_2 के बराबर न होने से इनका संतोष भी बराबर नहीं हो सकता। वास्तव में तटस्थतस वक्रों के काटने के कारण ही यह निष्कर्ष निकलता है कि OE_1तथा OE_2 बिन्दुओं की संतुष्टि बराबर है, जबकि Y वस्तु की मात्रा के अन्तर के कारण OE_2 से संतोष से अधिक होगा।

iv. विभिन्न तटस्थता वक्रों का समानान्तर होना आवश्यक नहीं – तटस्थता वक्र एक दूसरे के समानान्तर हो सकते हैं अथवा नहीं भी हो सकते हैं। यह बात तटस्थता मानचित्र पर दर्शाए गए तटस्थता वक्रों की सीमान्त प्रतिस्थापन दर पर निर्भर करती है। दो तटस्थता वक्रों के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होने पर वे एक–दूसरे के समानान्तर होंगे। जबकि इस दर के असमान होने पर वे एक–दूसरे के समानान्तर नहीं होंगे।

v. **ऊँचा तटस्थता वक्र अधिक संतोष देगा –** कोई तटस्थता मानचित्र जितना ही ऊँचा होगा वह उतना ही अधिक संतोष प्रदान करेगा।

vi. **तटस्थता वक्र अक्षांशों को नहीं छूते –** इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि तटस्थता वक्र किसी भी अक्षांष को छुएगा तो वहां यह मान्यता समाप्त हो जायेगी कि तटस्थता वक्र पर प्रत्येक बिन्दु दो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को प्रकट करते हैं। इस स्थिति को चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

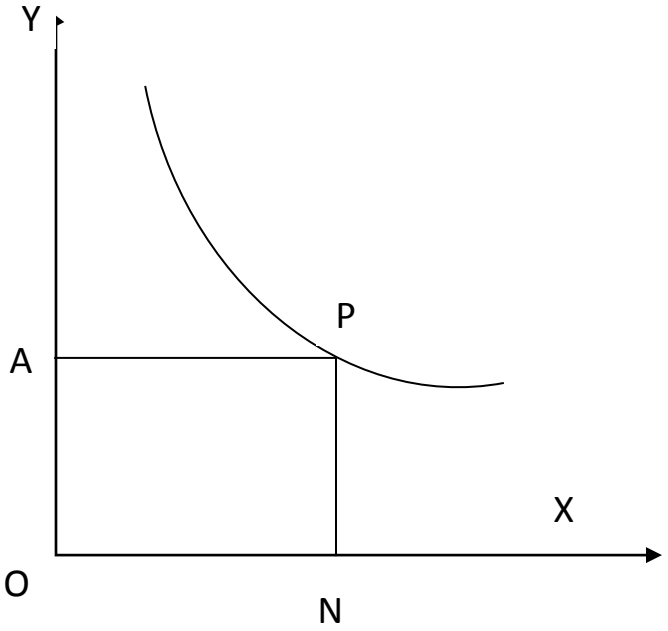

जिसमें तटस्थता वक्र द्वारा Y- अक्षांष के A बिन्दु पर Y वस्तु की OA मात्रा तथा X- वस्तु की शून्य मात्रा है अतः यहाँ दो वस्तु का संयोग नहीं बना है। P बिन्दु एक संयोग को प्रकट करता है जिसमें X- वस्तु की ON तथा Y की OP मात्रा है।

5.3 सारांश

तटस्थता वक्र वस्तुओं की मात्राओं के उन संभागों का बिन्दुपथ है जिनके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है और इसलिए इसको तटस्थता या उदासीनता वक्र कहते हैं। वस्तु ओं के अनेक संयोगों से तटस्थता तालिका निर्माण होता है। यह तालिका दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों की सूची होती है जो किसी व्यक्ति को समान रूप से संतुष्टि प्रदान करती है। एक से अधिक तटस्थता वक्रों को प्रदर्षित करने वाला रेखाचित्र तटस्थता मानचित्र कहलाता है। तटस्थता वक्रों की अनेक विशेषताएँ पायी जाती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं के अन्तमर्गत यह वक्र बाईं से दायीं ओर गिरता है, यह मूल बिन्दू की ओर उन्नतोदर होता है, तटस्थता वक्र एक–दूसरे को नहीं काटते हैं, तटस्थता वक्रों का समान्तर होना आवश्यक नहीं होता, ऊँचा तटस्थता वक्र अधिक संतोष देता है तथा तटस्थता वक्र अंक्षाषों को नहीं छूते हैं।

5.4 उपयोगी शब्दावली

तटस्थता – वस्तुओं की मात्राओं के उन संयोगों का बिन्दुपथ जिसके बीच व्यक्ति उदासीन रहता है।

स्थानापन्न – किसी वस्तु या वस्तु के स्थान की पूर्ति दूसरे वस्तु या व्यक्ति से किया जाय।

5.5 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 तटस्थता वक्र का आषय स्पष्ट करें तथा इसकी मान्यताओं का वर्णन करें।

प्रश्न–2 तटस्थता वक्रों की विशेषताओं को समझाइये।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S Chand &Company Ltd. 2001.
3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पबिल्केशन्स प्रा0 लि0, 1947

****

इकाई : 6 माँग का विश्लेषण

इकाई की सरंचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 माँग की विश्लेषण

- 6.2.1 माँग का नियम
- 6.2.2 मार्शल का माँग का नियम
- 6.2.3 माँग की सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र
- 6.2.4 माँग वक्र का स्वरूप
- 6.2.5 बाजार माँग वक्र

6.3 आड़ी माँग या त्रिर्यक माँग

6.4 माँग के प्रकार

6.5 माँग में परिवर्तन

6.6 सारांश

6.7 उपयोगी शब्दावली

6.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि,

- माँग के नियम का विश्लेषण कर सकेंगे,
- माँग सारणी एवं माँग वक्र के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे,
- माँग के प्रकारों को जान सकेंगे तथा
- माँग में परिवर्तन के कारणों को विस्तार से समझ सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आपने माँग की प्रकृति एवं उसके नियम का अध्ययन किया। इस इकाई में माँग के नियम का विश्लेषण एवं उससे सम्बन्धित अन्य पहलुओं का अध्ययन किया जायेगा। माँग के विश्लेषण के अन्तर्गत माँग का नियम क्यों इस तरह कार्य करता है तथा कौन से ऐसे तत्व हैं जो माँग के नियम को प्रभावित करते हैं तथा माँग वक्र का क्या स्वरूप होगा? इस बात का अध्ययन

किया जायेगा। माँग के नियम के अनुसार जब वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं तो उनकी माँग घट जाती है तथा जब मूल्य घट जाते हैं तो उनकी माँग बढ़ जाती है। इस नियम को माँग –विश्लेषण के अन्तर्गत विश्लेषित कर वास्तविक एवं उचित कारणों को तलाशा जाता है। इस प्रकार इस इकाई के अन्तर्गत माँग से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन किया जायेगा।

6.2 माँग–विश्लेषण

जब कोई उपभोक्ता किसी दिये हुए समय एवं मूल्य पर, बाजार में किसी वस्तु की जो मात्रा क्रय करता है, उसे उस वस्तु की माँग कहते हैं। मूल्य के उल्लेख के बिना माँग का कोई अर्थ नहीं होता है। अतः माँग के साथ मूल्य का उल्लेख आवश्यक होता है। इसका कारण यह है कि भिन्न–भिन्न मात्राएँ माँगी जायेंगी तथा मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव माँग पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त किसी दिये गये समय में मूल्य ही वह तत्व है जो माँग को उस वस्तु की इच्छा तथा उस वस्तु की आवश्यकता से अलग कर देता है। यद्यपि अनेक अर्थशास्त्री प्रभावोत्पादक इच्छा को ही माँग कहते हैं पर वस्तु स्थिति यह है कि प्रभावोत्पादक इच्छा, आवश्यकता होती हैं। जब आवश्यकता अथवा प्रभावोत्पादक इच्छा का अध्ययन किसी निश्चित समय में तथा निश्चित मूल्य पर किया जाता है तो यह माँग कहलाती है। बेन्हम (Benham) ने माँग को परिभाषित करते हुए कहा–किसी दिये हुए मूल्य पर किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की वह मात्रा है जो उस मूल्य पर एक निश्चित समय में खरीदी जायेगी।

6.2.1 माँग का नियम

किसी वस्तु की माँग तथा उसके निर्धारक तत्वों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध का व्याख्या माँग के नियम के नाम से जानी जाती है। किसी वस्तु की माँग उस वस्तु के मूल्य, अन्य वस्तुओं के मूल्य जिससे माँग प्रभावित हो सकती है, उपभोक्ता की आय तथा उपभोक्ता की पसंद पर निर्भर करती है। अतः माँग के नियम का उद्देश्य वस्तु की माँग तथा उपरोक्त निर्धारक तत्वों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध का अध्ययन है। माँग के नियम को फलनात्मक सम्बन्ध के रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

$D_X = f(P_X, P_o, Y, T)$

जहां D_X= किसी वस्तु के सम्बन्ध में उपभोक्ता की माँग है।

P_X= इस वस्तु का मूल्य

P_o वस्तु x के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं के मूल्य

Y= उपभोक्ता की आय तथा

T= उसकी रुचि व्यक्त करता है।

इस समीकरण का अर्थ यह हुआ कि माँग का नियम यह स्पष्ट करता है कि यदि वस्तु के मूल्य, उपभोक्ता की आय, उसकी रुचि तथा उस वस्तु की स्थानापन्न का पूरक वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन हो तो उसका प्रभाव उस वस्तु की माँग पर पड़ेगा। परन्तु एक साथ इन सभी चरों में परिवर्तन करके इनका माँग के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन एवं विश्लेषण अत्यन्त ही कठिन कार्य होगा तथा माँग के नियम की सरल रूप में व्याख्या सम्भव नहीं हो पायेगी। अतः दिये गये सभी चरों में से वस्तु के मूल्य को छोड़कर शेष सभी चरों को स्थिर मान लिया

जाता है। इस प्रकार माँग का नियम माँगी गयी वस्तु की मात्रा तथा उसके मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध के रूप में जाना जाता है। यह इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$D_X=f(P_X)$ (अन्य तत्त्वों के समान रहने पर)

उपभोक्ता के व्यवहार अथवा किसी वस्तु के सम्बन्ध में उसकी माँग की व्याख्या के लिए तथा माँग के नियम के स्पष्टीकरण के लिए मार्शल से लेकर अब तक समय–समय पर अनेक सिद्धान्तों ने योगदान किया है। सर्वप्रथम माँग के नियम का प्रतिपादन प्रो0 मार्शल ने किसी वस्तु से मिलने वाली मापनीय सीमान्त उपयोगिता के आधार पर किया तथा यह बताया कि किसी वस्तु की माँग (D_X) तथा वस्तु के मूल्य (P_X) में विलोम सम्बन्ध पाया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है जैसे–जैसे किसी वस्तु का मूल्य बढ़ता जायेगा उसकी माँग कम होती जायेगी तथा इसके विपरीत यदि वस्तु का मूल्य गिरता जायेगा तो उसकी माँग बढ़ती जायेगी।

6.2.2 मार्शल का मांग का नियम

वस्तु के स्टॉक में वृद्धि के साथ उसकी सीमान्त उपयोगिता में कमी होती जाती है, पर उपयोग के दौरान मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है, मार्शल ने माँग के नियम का प्रतिपादन करते हुए कहा कि वस्तु की माँगी हुई मात्रा तथा उस वस्तु के मूल्य के बीच विलोम सम्बन्ध पाया जाता है तथा जैसे–जैसे किसी वस्तु का मूल्य गिरता जाता है उसकी माँग बढ़ती जाती है तथा इसके विपरीत जैसे–जैसे किसी वस्तु का मूल्य बढ़ता जाता है उसकी माँग गिरती है। मार्शल के शब्दों में –"माँग का एक सामान्य नियम है–किसी वस्तु की अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसके अधिक क्रेता मिल सकें। दूसरे शब्दों में मूल्य के बढ़ने से माँग घटती है और मूल्य के गिरने से माँग बढ़ती है। अतः मार्शल के अनुसार D_X तथा P_X के बीच विपरीत फलनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् मूल्य (P_X) में वृद्धि होने पर माँग (D_X) में कमी हो जायेगी। इस विपरीत सम्बन्ध के कारण ही मूल्य माँग सम्बन्ध ऋणात्मक होता है। मूल्य में होने वाला परिवर्तन माँग में विपरीत परिवर्तन लाता है। परन्तु दोनों में परिवर्तन एक निश्चित अनुपात में हो, यह आवश्यक नहीं है। इस प्रकार मार्शल का माँग से सम्बन्धित दृष्टिकोण ही माँग का नियम कहलाता है।

6.2.3 माँग की सारिणी तथा व्यक्तिगत माँग वक्र

वस्तु की विभिन्न मात्राओं की सूची जो विभिन्न मूल्य पर माँगी या क्रय की जाती है, माँग सारिणी कहलाती है। वस्तु के मूल्य तथा माँग में विलोम फलनात्मक सम्बन्ध के कारण जब किसी वस्तु का मूल्य अधिक होता है तो वस्तु की कम मात्रा माँगी जाती है तथा इसके विपरीत जब वस्तु का मूल्य कम रहता है तो अधिक वस्तुएँ माँगी जाती हैं। माँग की सारणी दो प्रकार की होती है–व्यक्तिगत माँग की सारणी तथा सामूहिक माँग की सारिणी। किसी व्यक्ति द्वारा किसी मूल्य पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची व्यक्तिगत माँग की सारिणी कहते हैं। जब विभिन्न व्यक्तियों की माँग की सारणियों को मिला देते हैं तो सामूहिक माँग की सारणी बन जाती है।

सारिणी

मूल्य प्रति इकाई रू0	वस्तु की माँगी गई इकाइयाँ संख्या
20	20
15	30
10	40
5	60

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि जैसे–जैसे वस्तु का मूल्य घटता गया है माँगी गई वस्तु की मात्रा बढ़ती गयी है अथवा जैसे–जैसे मूल्य बढ़ता गया है माँगी गई वस्तु की मात्रा घटती गई है।

सारणी द्वारा प्रदर्शित मूल्य तथा वस्तु की मात्रा के सम्बन्ध को रेखाचित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।

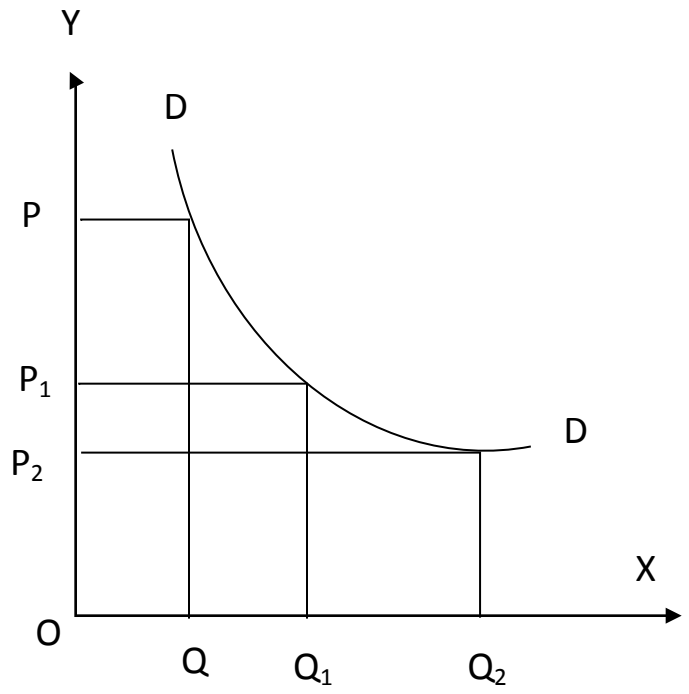

रेखाचित्र में प्रदर्शित DD माँग वक्र है जो दायें गिरता हुआ है। रेखाचित्र से स्पष्ट है जब मूल्य OP है तो माँग OQ जब मूल्य घटकर OP_1 हो जाता है तो माँग बढ़कर OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार मूल्य OP_2 होने की स्थिति में माँग बढ़कर OQ_1 हो जाती है। इसी प्रकार मूल्य OP_2 होने की स्थिति में माँग बढ़कर OQ_2 हो गयी है।

नियम की मान्यतायें

माँग का नियम कुछ मान्यताओं पर आधारित है। अतः माँग के नियम की चर्चा करते समय यह उल्लेख किया गया कि नियम तभी सत्य होगा जब अन्य बातें समान रहें। ये मान्यताएँ निम्नलिखित हैं :–

1. लोगों की आय स्थिर रहे।
2. अन्य वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि न हो।
3. लोगों की रुचि बनी रहे।
4. स्थानापन्न वस्तुओं का प्रयोग न हो।
5. वस्तु के मूल्य में होने वाला परिवर्तन इस आशा को जन्म न दे कि भविष्य में मूल्य और बढ़ेगा अथवा घटेगा।
6. वस्तु ऐसी न हो कि मूल्य में वृद्धि के कारण लोग इसे प्रतिष्ठा सूचक मान कर अधिक क्रय करने लगें।

यदि उपर्युक्त मान्यतायें रहें तो माँगी सारिणी वही बनी रहेगी और माँग वक्र वही बना रहेगा। परन्तु यदि इन मान्यताओं में परिवर्तन हो जाय तो माँग की मूल सारिणी ही परिवर्तित हो जायेगी। परिणामस्वरूप मांग वक्र दूसरा बन जायेगा। इस स्थिति में यह सम्भव है कि उसी मूल्य पर पहले से अधिक अथवा कम वस्तुएँ माँगी जायें।

6.2.4 माँग वक्र का स्वरूप–

माँग वक्र की प्रारम्भिक व्याख्या से यह स्पष्ट है कि माँग वक्र सामान्यतया नीचे की ओर झुकेगा। यहां हम उन कारणों का उल्लेख करेंगे जिनके कारण माँग वक्र नीचे दाहिने ओर गिरता हुआ पाया जाता है। ये कारण निम्नलिखित हैं–

1. **सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम** – इस नियम के अनुसार कोई उपभोक्ता जैसे–जैसे किसी वस्तु की अधिक इकाइयाँ क्रय करता जायेगा उससे मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जायेगी। अतः उपयोगिता की कमी होने के कारण कोई भी उपभोक्ता किसी भी वस्तु की अधिक मात्रा तभी क्रय करेगा जब उस वस्तु के मूल्य में कमी हो। इसके विपरीत यदि किसी कारण से उपभोक्ता को उस वस्तु की कम मात्रा उपलब्ध हो तो उस वस्तु की उपयोगिता अधिक होगी और वह उसके लिए अधि मूल्य देने के लिए तत्पर हो जायेगा। ऐसा वह इसलिए करेगा क्योंकि मूल्य के रूप में उसे उपयोगिता का त्याग करना पड़ता है और यह त्याग अधिक मूल्य पर अधिक तथा कम मूल्य पर कम होगा। परन्तु कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु का मूल्य उससे मिलने वाली उपयोगिता से अधिक नहीं देगा।

संस्थिति की स्थिति में वस्तु से मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता के साथ संस्थिति के लिए यह आवश्यक है कि सीमान्त उपयोगिता में कम आये और कमी तभी सम्भव है जबकि वस्तु की मात्रा में वृद्धि लायी जाय।

2. **समसीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की संस्थिति** – मार्षल के अनुसार उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि या संस्थिति की स्थिति में वहां होगा, जहां

Mux/Px= Mum अर्थात् वस्तु की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य का अनुपात मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता (जो स्थिर है) के बराबर हो जाय। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि Mux=Mum, Px होगा। अतएव Mum के स्थिर रहने की स्थिति में, Px की गिरावट के साथ Mux का गिरना आवश्यक है, और यह तभी गिरेगा जब x वस्तु की अधिक मात्रा उपभोग में लायी जाये।

3. **प्रतिस्थापन प्रभाव** – यदि किसी वस्तु का मूल्य गिरता है और स्थानापन्न वस्तु का मूल्य स्थिर बना रहता है तो उपभोक्ता महँगी वस्तु के स्थान पर सस्ती वस्तुओं को प्रतिस्थापित करता है। इस प्रकार अधिक सस्ती वस्तु का प्रयोग बढ़ जाता है। इस प्रकार माँग में होने वाली वृद्धि प्रतिस्थापन प्रभाव कहलाती है।

4. **आय प्रभाव** – किसी वस्तु की कीमत में गिरावट के कारण, उस वस्तु के रूप में उपभोक्ता की वास्तविक आय बढ़ जाती है। वास्तविक आय में परिवर्तन के फलस्वरूप माँग में होने वाला परिवर्तन आय प्रभाव कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि चीनी की कीमत 20रू0 किलोग्राम से घटकर 10 रू0 प्रति किलोग्राम हो जाए तो ऐसी स्थिति में उपभोक्ता उतने ही व्यय से 2 किलोग्राम चीनी खरीद सकता है। स्पष्ट है कि उसकी आय में 10 रू0 की वृद्धि हो गयी है जिसका कुछ भाग वह चीनी की अतिरिक्त मात्रा खरीदने पर व्यय कर सकता है, तथा आय का शेष भाग अन्य वस्तुओं पर व्यय कर सकता है। वास्तव में इसे ही आय प्रभाव कहते हैं।

6.2.5 बाजार माँग वक्र

किसी विशिष्ट समयावधि में अन्य बातों के समान रहने पर किसी वस्तु की कुल मात्रा जो सभी उपभोक्ता किसी मूल्य पर क्रय करने के लिए इच्छुक हैं, वह उस वस्तु की बाजार माँग होगी। उदाहरण के लिए यदि P_1 मूल्य पर X वस्तु के विभिन्न उपभोक्ताओं की माँग $d_1, d_2, d_3, ...d_n$) होगी।

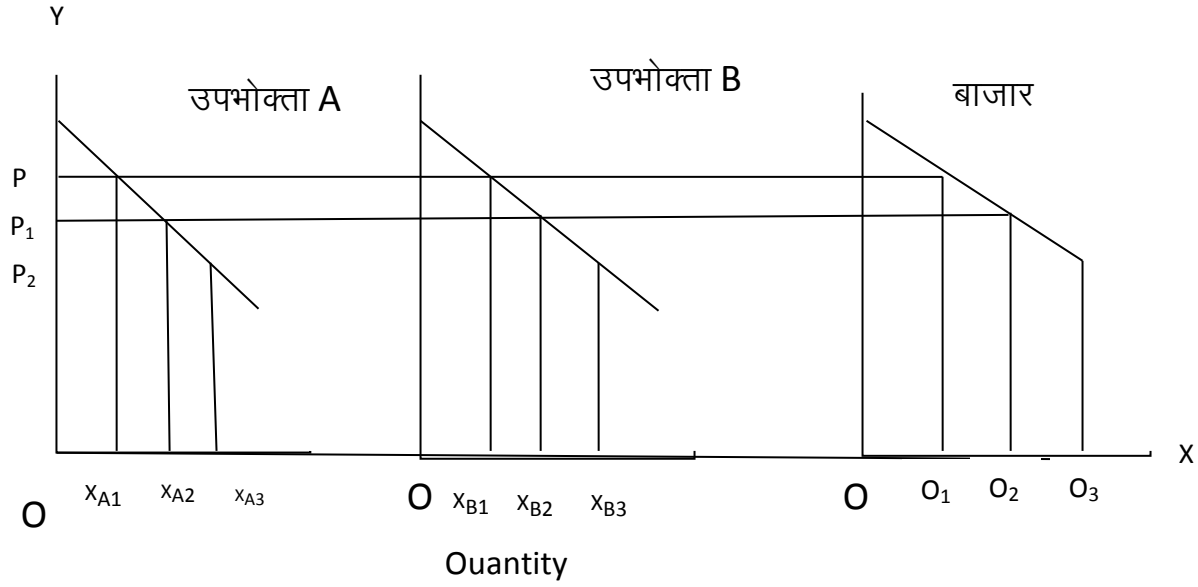

6.3 आड़ी माँग या तिर्यक माँग

किसी वस्तु के मूल्य तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य के बीच दो प्रकार सम्बन्ध पाये जाते हैं।

(क) यदि किसी के मूल्य में कभी दूसरी वस्तु की माँग में कमी ला दे तो ऐसी वस्तुएँ परस्पर स्थानापन्न कहलायेंगी। x तथा y वस्तुएँ उस समय स्थानापन्न कहलाएगी जबकि y वस्तु के मूल्य में कमी होने पर उपभोक्ता x वस्तु की माँग घटा दे तथा इसी प्रकार y वस्तु के मूल्य में वृद्धि होने पर उपभोकता x वस्तु की माँग बढ़ा दे। अतः स्पष्ट है कि एक वस्तु के मूल्य एवं उसकी स्थानापन्न वस्तु की मात्रा में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

इस रेखाचित्र में DD माँग वक्र दो स्थानापन्न वस्तुओं x तथा y के क्रमशः माँग तथा मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। इस प्रकार DD वक्र $DX=f(P_o)$ को प्रदर्शित करता है। DD वक्र से स्पष्ट है कि जब y का मूल्य बढ़कर OP से OP_1 हो जाता है तो स्थानापन्न X वस्तु की माँग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

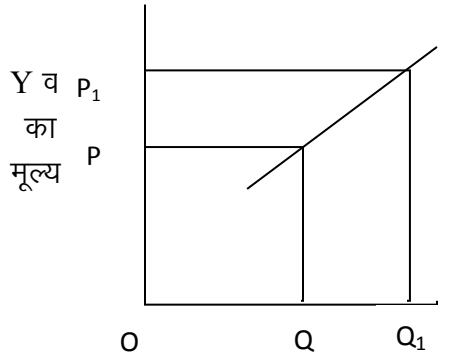

X वस्तु की मांग

(ख) जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की माँग में वृद्धि ला दे तो ऐसी वस्तुयें पूरक वस्तुयें कहलायेंगी।

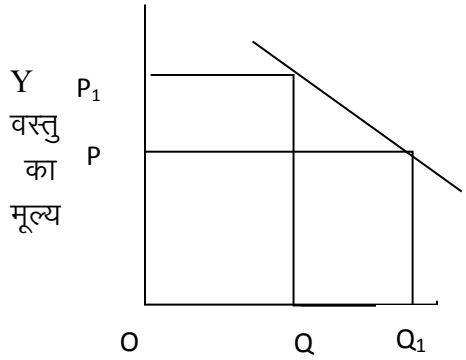

X वस्तु की माँग

x तथा y वस्तुयें परस्पर पूरक कहलायेंगी जबकि Y वस्तु के मूल्य में कमी x वस्तु की माँग में वृद्धि ला दे।

इस रेखाचित्र में DD वक्र y वस्तु के मूल्य या ग वस्तु की माँग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध व्यक्त करता है। यह वक्र DX- $f(P_o)$ सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। वक्र से स्पष्ट है कि जब y का मूल्य Op_1 से घटाकर OP हो जाता है तो X वस्तु की माँग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

आय माँग –उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की माँग के बीच फलनात्मक सम्बन्ध [Dx=f(Y)] है। यह आय माँग कहलाता है। आय माँग से अभिप्राय वस्तु की उन मात्राओं से है, जिन्हें अन्य बातों के स्थिर रहने पर, उपभोक्ता एक निश्चित समय में आय के विभिन्न स्तरों पर क्रय करता है। वस्तुयें सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं– उत्तम किस्म तथा निम्न की। जहाँ उत्त किस्म, की वस्तुओं की माँग आय के बढ़ने पर बढ़ती है, वहीं निम्न कोटि किस्म की वस्तुओं की माँग आय बढ़ने पर घटती है।

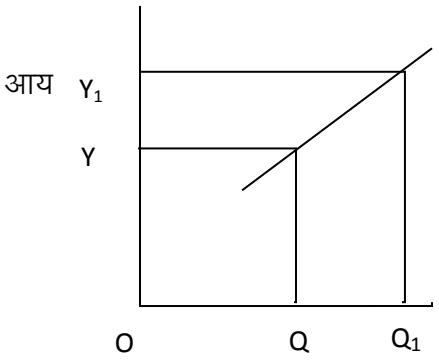

चित्र–1

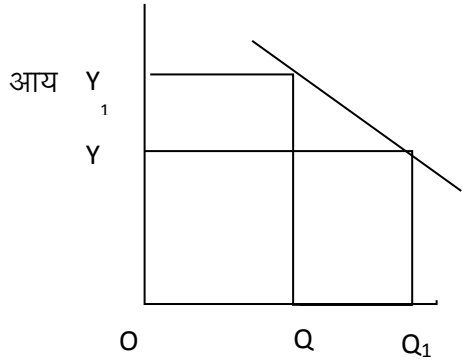

चित्र–2

चित्र–1 में क्क श्रेष्ठ वस्तु का माँग वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है जब आय OY से बढ़कर OY_1 हो जाती है तो x वस्तु की माँगी गयी मात्रा OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

चित्र–2 में DD निम्न कोटि की वस्तु का माँग वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि आय OY से बढ़कर OY_1होने पर x वस्तु की माँग OQ_1 से घटकर OQ हो जाती है।

6.4 माँग के प्रकार

माँग का नियम सामान्यतः माँगी गयी वस्तु की मात्रा तथा उसके, अन्य वस्तुओं के मूल्य, उपभोक्ता की आय तथा रुचि के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या करता है, अर्थात् Dx=f(Px,Po, Y, T) A पूर्व की व्याख्या में माँगी गयी मात्रा के अतिरिक्त अन्य चरों को स्थिर माना गया है। अस्तु इसी प्रकार फलनात्मक सम्बन्ध अन्य वस्तुओं के मूल्य (po) तथा आय (Y) के साथ भी किया

जा सकता हे। इस प्रकार फलनात्मक सम्बन्ध के आधार पर माँग को तीन रूपों में व्यक्त किया जा सकता हैः–

1. माँग तथा उसी वस्तु के मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या [Dx=f(Px)] है। जिसे माँग मूल्य कहते हैं। अब तक की व्याख्या इसी से सम्बन्धित थी।

2. माँग तथा उसके वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या [Dx=f(Po)] है। जिसे आड़ी माँग अथवा तिर्यक माँग कहते हैं।

1. माँग तथा उपभोक्ता की आय के बीच फलनात्मक सम्बन्ध की व्याख्या [Dx=f(Y)] है, जिसे आय माँग कहते हैं।

6.5 माँग में परिवर्तन

माँग में होने वाले परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं–

(क) माँग में विस्तार तथा संकुचन

अन्य बातों के समान रहने पर जब मूल्य में कमी के कारण माँग बढ़ जाती है तो इसे माँग का विस्तार कहते हैं, और जब मूल्य में वृद्धि के कारण माँग कम हो जाती हैं तो इसे माँग का संकुचन कहते हैं। इस प्रकार एक ही माँग वक्र पर चलने की क्रिया माँग में विस्तार या संकुचन कहलाती है। माँग वक्र पर दाहिनी ओर चलना माँग में विस्तार तथा बायीं ओर चलना संकुचन कहलाता है। इस प्रकार के परिवर्तनों में माँग की सारणी वही रहती है तथा एक ही माँग रेखा होती है।

वस्तु की विभिन्न मात्राओं की सूची जो विभिन्न मूल्य पर माँगी या क्रय की जाती है माँग की सारणी कहलाती है। माँग का नियम कुछ निश्चित मान्यताओं पर कार्य करता है। माँग वक्र समान्यतया दाहिने नीचे की ओर झुकता है। माँग वक्र का स्वरूप निर्धारित करने में सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, समसीमान्त उपयोगिता नियम तथा उपभोक्ता की संस्थिति, प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। माँग मुख्यतः तीन प्रकार की होती है– मूल्य माँग, आय माँग तथा तिर्यक माँग।

(ख) माँग वक्र का विवर्तन–प्रकर्षण अथवा विकर्षण

यदि माँग के अन्य निर्धारक तत्वों में परिवर्तन के कारण एक ही मूल्य पर माँग अपेक्षाकृत अधिक हो जाये तो माँग की वृद्धि या प्रकर्षण कहा जाता है। इसके विपरीत जब एक ही मूल्य पर माँग पहले की अपेक्षा कम हो, जाये तो इसे माँग में कमी या विकर्षण कहेंगे। इस प्रकार के परिवर्तन में माँग की सारणी में परिवर्तन हो जाता है। परिणामस्वरूप माँग वक्र दूसरा बनता है।

प्रकर्षण तथा विकर्षण को इस रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में मूल्य OP तथा माँग D_1 D_1 है। यदि मूल्य OP तथा माँग D_1 D_1ही रहेगी परन्तु इसके अतिरिक्त किसी अन्य कारण से माँग D_2D_2 हो जाय अर्थात् माँगी गयी मात्रा OQ_1 से बढ़कर OQ_2 हो जाय तो इसे माँग का प्रकर्षण कहा जायेगा।

इसके विपरीत यदि माँग D_2D_2 से D_1D_1 हो जाये तो माँगी गयी मात्रा QQ_2 से घटकर OQ_1 हो जायेगी जिसे माँग का विकर्षण कहा जायेगा।

6.6 सारांश

किसी उपभोक्ता द्वारा किसी समय एवं मूल्य पर बाजार से क्रय की गयी वस्तु की मात्रा को माँग कहते हैं। माँग का नियम कहता है कि जैसे–जैसे वस्तु का मूल्य घटता है उसकी माँग बढ़ती है। मार्शल के अनुसार माँग का एक सामान्य नियम है–किसी वस्तु की अधिक मात्राओं में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए, ताकि उसको अधिक क्रेता मिल सकें।

6.7 उपयोगी शब्दावली

संकुचन– किसी वस्तु अथवा मात्रा में कमी होना

माँगवक्र– मूल्य के सापेक्ष मात्रा के बिन्दुओं को मिलाने वाला वक्र मांगवक्र कहलाता है।

बाजार मांग– वस्तु की कुल मात्रा जो सभी उपभोक्ता किसी मूल्य पर क्रय करने के लिए इच्छुक है, वह उस वस्तु की बाजार मांग होगी।

आय प्रभाव– वास्तविक आय में परिवर्तन के फलस्वरुप मांग में होने वाला परिवर्तन आय प्रभाव कहलाता है।

6.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 माँग के नियम से आप क्या समझते है?

प्रश्न–2 माँग वक्र के स्वरूप को निर्धारित करने वाले तत्त्वों का वर्णन करें।

प्रश्न–3 माँग के प्रकारों का वर्णन करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S Chand &Company Ltd. 2001.
3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पबिल्केशन्स प्रा0 लि0, 1947

****

इकाई : 7 माँग की लोच

इकाई की संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 माँग की लोच

7.2.1 माँग की मूल्य लोच

7.2.1.1 पूर्णतया लोचदार माँग

7.2.1.2 पूर्णतया बेलोचदार माँग

7.2.1.3 समलोच माँग

7.2.1.4 अधिक लोचदार माँग

7.2.1.5 बेलोच माँग

7.2.1.6 माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

7.2.1.7 माँग की लोच का महत्व

7.2.2 माँग की आय लोच

7.2.3 माँग की आड़ी लोच

7.3 सारांश

7.4 उपयोगी शब्दावली

7.5 महत्वपूर्ण प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- माँग की लोच का अर्थ समझ सकें,
- माँग की मूल्य लोच को मापने में सहायक होंगे,
- माँग की आय लोच की जानने में सक्षम होंगे,
- माँग की आड़ी लोच को समझ सकें तथा
- माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों को पहचान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व माँग के नियम के अन्तर्गत आपने देखा है कि किसी वस्तु के मूल्य में वृद्धि अथवा कमी किस प्रकार माँग में कमी या वृद्धि करती है यह

नियम माँग में हुई कमी या वृद्धि की निश्चित मात्रा को बताने में असमर्थ रहता है। किसी वस्तु के मूल्य में एक निश्चित वृद्धि या कमी होने पर उसकी माँग में निष्चित रूप से होने वाली कमी या वृद्धि को माँग की लोच कहते हैं। माँग की लोच का अध्ययन मुख्यतः माँग की मूल्य लोच, माँग की आय लोच तथा माँग की आड़ी लोच रूप में किया जाता है। अनेक ऐसे तत्वों का अध्ययन भी इस इकाई के अन्तर्गत किया जायेगा जो माँग की लोच को प्रभावित करते हैं। माँग की लोच के महत्व का अध्ययन भी इसी इकाई के अन्तर्गत किया जायेगा।

7.2 माँग की लोच (Elasticity of Demand)

मूल्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में किस दिशा में तथा कितना परिवर्तन होगा, यह विभिन्न मूल्यों पर माँग के बदलने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस क्षमता को ही माँग की मूल्य लोच कहते हैं। यह क्षमता या सापेक्षित अनुक्रिया (Relative responsiveness) माँग तथा उपभोक्ता की आय एवं तथा अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच भी होती है। अतः कहा जा सकता है कि माँग की लोच के तीन प्रकार होते है।, माँग की मूल्य लोच, माँग की आय लोच तथा माँग की आड़ी या तिर्यक लोच।

7.2.1 माँग की मूल्य लोच (Price Elasticity of Demand)

किसी वस्तु की माँग तथा वस्तु के मूल्य के बीच परिवर्तन का अनुपात या दर एक विशिष्ट सम्बन्ध है जिसे माँग की मूल्य लोच कहते हैं। जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "माँग की लोच किसी मूल्य अवि किसी विशेष उत्पादन पर खरीदी गई वस्तु की मात्रा का वह आनुपतिक परिवर्तन है। जो मूल्य के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होगा है। सूत्र के रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

माँग की मूल्य लोच (Edp)= माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन/मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन

माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन = माँग में परिवर्तन/पूर्व माँग की मात्रा

मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन = मूल्य में परिवर्तन/पूर्व मूल्य की मात्रा

यदि माँग को ुए मूल्य को Δच तथा माँग परिवर्तन को Δु एवं मूल्य परिवर्तन को Δच के द्वारा व्यक्त करें तो।

$$Ed_p = \Delta q/q + \Delta p/p = \Delta q/q \times p/\Delta p$$

$$Ed_p = (\Delta q/\Delta p \times p/q)$$

विपरीत सम्बन्ध होने के कारण Δq तथा Δp में से किसी एक का मूल्य ऋणात्मक होगा तथा माँग की लोच का मान धनात्मक होगा। वस्तु के मूल्य में होने वाले

परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन की सोपक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है।

7.2.1.1 पूर्णतया लोचदार माँग (Perfectley Elastic Demand)

जब किसी वस्तु के मूल्य में अल्पवृद्धि होने से उस वस्तु की माँग शून्य हो जाये अथवा मूल्य में कमी उसकी माँग में अपरिमित वृद्धि ला दे तो उसके उस वस्तु की पूर्णतया लोचदार माँग कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण रेखाचित्र में किया गया है।

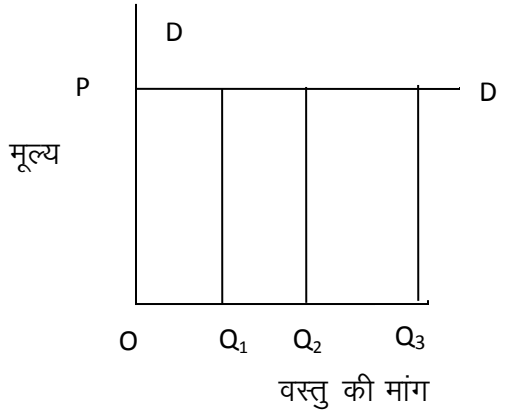

इस रेखाचित्र द्वारा माँग –वक्र DD आधार OX के समानान्तर या समतल आकार में प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि OP से अधिक मूल्य होने पर वस्तु की माँग शून्य होगी मूल्य में बिना कमी के ही वस्तु की माँग में परिवर्तन हो रहा है। किन्तु पूर्णतया लोचदार माँग की लोच का उदाहरण व्यावहारिक जीवन में नहीं मिलता है परन्तु यह माँग की लोच की ऊपरी सीमा अवश्य निश्चित करता है।

7.2.1.2 पूर्णतया बेलोचदार माँग (Perfectley Elastic Demand)

जब किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के बाद भी उसकी माँग स्थिर बनी रहती है तथा उसमें किसी प्रकार परिवर्तन नहीं होता है तो उसकी माँग को पूर्णतया बेलोच माँग कहते हैं। यह माँग भी केवल एक सैद्धान्तिक सत्य है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता है। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की माँग बेलोच तो होती है परन्तु पूर्णतया बेलोच नहीं होती है। यह माँग भी केवल एक सैद्धान्तिक सत्य है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नहीं मिलता है। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं कभी माँग बेलोच तो होती है परन्तु पूर्णतया बेलोच नहीं होती है। इस प्रकार की माँग को निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जासकता है–

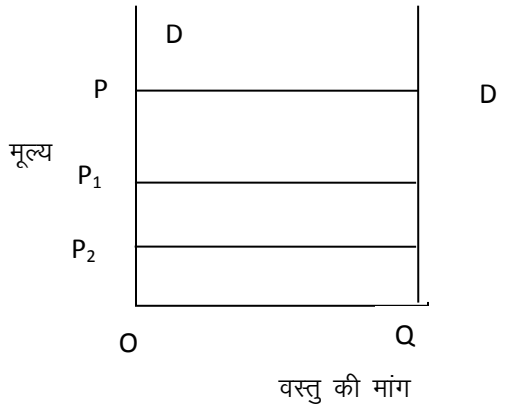

इस रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट है कि वस्तु का मूल्य OP से चाहे OP_1 हो जाये अथवा OP_o वस्तु की माँग OQ ही रहेगी जिसे आधार अक्ष पर दिखाया गया है। इस रेखाचित्र में लम्ब अक्ष पर मूल्य प्रदर्शित है।

7.2.1.3 समलोच माँग या इकाई माँग की लोच

जब किसी वस्तु के मूल्य में सापेक्षिक परिवर्तन उस वस्तु की माँग में सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर हो तो उस वस्तु की माँग को समलोच माँग कहते हैं। जैसे–किसी वस्तु के मूल्य में 10: की वृद्धि हो और उसकी माँग में कमी भी 10% हो।

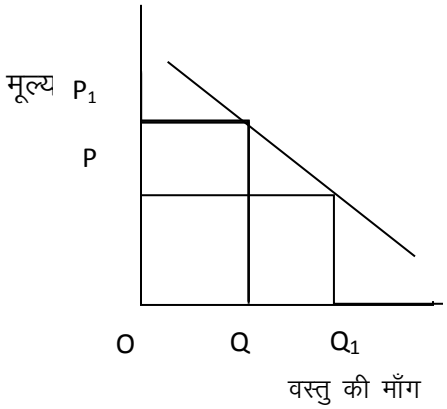

इस रेखाचित्र में DD माँग वक्र है जो यह दिखाता है कि यदि मूल्य में वृद्धि PP_1 के बराबर हो तो वस्तु की माँग घटकर OQ हो जायेगी। मूल्य तथा माँग में परिवर्तन आनुपातिक है क्योंकि जब मूल्य में दुगुनी वृद्धि होती है और यह OP से बढ़कर OP_1 हो जाता है तो वस्तु की मात्रा घटकर आधी रह जाती है। जैसे रेखाचित्र में प्रदर्शित हैं। $OQ=\underline{1/2}\ OQ_1$

7.2.1.4 अधिक लोचदार माँग

जब किसी वस्तु की माँग में होने वाला सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से अधिक हो तो उस वस्तु की माँग अधिक लोचदार मानी जाती है। जैसे किसी वस्तु के मूल्य में 5% की वृद्धि के कारण वस्तु की माँग में 15% की कमी आ जाये।

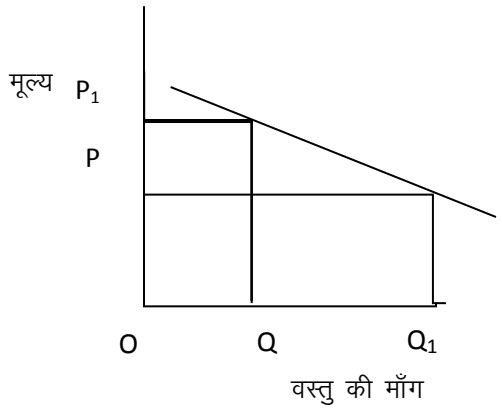

इस रेखाचित्र में DD माँग वक्र है जो यह प्रदर्शित करता है कि जब OP से घटकर OP_o हो जाता है तो वस्तु की माँग OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है इस प्रकार माँग में वृद्धि मूल्य में कमी से अधिक होती है।

7..2.1.5 बेलोच माँग

-Edp>0< 1जब किसी वस्तु की माँग में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परविर्तन से कम हों तो उस वस्तु की माँग बेलोच कही जायेगी जैसे मूल्य में 10% की कमी माँग में 5% की वृद्धि लाये।

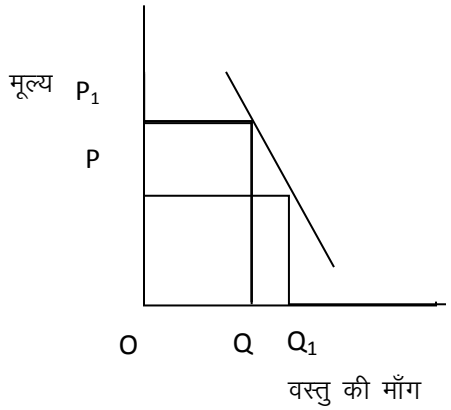

इस रेखाचित्र में माँग वक्र DD है जो यह दिखाता है कि जब मूल्य में कमी PP_0 के बराबर होती है तो माँग में वृद्धि QQ_1के बराबर होती हैं। पदार्थ के मूल्य में जिस अनुपात में कमी हुई है उससे कम अनुपात में पदार्थ की माँगी गयी मात्रा में वृद्धि हुयी है।

7.2.1.6 माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

किसी वस्तु की माँग की लोच को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व पाये जाते हैं। इनमें से कुछ की प्रकृति आर्थिक तथा कुछ की अनार्थिक है। इनमें से कुछ प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

i. **वस्तु की प्रकृति –** सामान्यतः तीन प्रकार की वस्तुएँ–अनिवार्य आवश्यकता की, आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएँ पायी जाती है। अनिवार्य आवश्यकता की वे वस्तुएँ होती हैं जिनके बिना व्यक्ति का काम नहीं चल सकता है, इसलिए इनकी माँग बेलोच होती है। आराम सम्बन्धी वस्तुओं की माँग न तो अधिक लोचदार और न बेलोच होती है क्योंकि इनके उपभोग को रोका जा सकता है परन्तु विलासिता की वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है।

ii. **वस्तु के विभिन्न उपयोग –** प्रो0 मार्शल ने कहा है कि यदि किसी वस्तु के अनेक प्रयोग होते हैं तो उनकी माँग लोचदार होगी। अनेक उपयोग होने के कारण वस्तु का लोग कई जगह पर प्रयोग करते है।

iii. **वस्तु के उपभोग को स्थगित करना –** ऐसी वस्तुएँ जिनके उपभोग को स्थागित किया जा सकता है तो उनकी माँग की लोच कम होगी परन्तु यदि वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उपभोग स्थगित नही किया जा सके तो उसकी माँग बेलोच होगी।

iv. **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि –** यदि किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध हैं तो उस वस्तु की माँग की लोच अधिक होगी परन्तु जिन वस्तुओं की कोई स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं होती है तो उनकी माँग की लोच कम होगी। उदाहरण के लिए चाय तथा काफी। यदि चाय के दाम बढ़ जायें तो लोग चाय छोड़कर काफी का प्रयोग करने लगेंगे। अतः ऐसी वस्तु की माँग की लोच अधिक होगी।

v. **उपभोक्ता की आय –** उपभोक्ता की आय का माँग की लोच पर प्रभाव पड़ता है। किसी एक ही वस्तु की माँग की लोच अधिक आय तथा कम आय वाले व्यक्ति के लिए अलग–अलग होती है। मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम होने के कारण धनी व्यक्ति मूल्य के बढ़ने पर अधिक रुपया खर्च करते हैं। उनके लिए वस्तु की माँग बेलोच होती है पर निर्धन व्यक्ति की माँग अधिक लोचदार होती है।

vi. **वस्तु पर व्यय किया जाने वाला आय का भाग –** यदि किसी वस्तु के उपभोग पर आय का अधिकांश भाग व्यय होता है तो उस वस्तु की माँग लोचदार होगी परन्तु यदि आय का अल्प भाग ही व्यय हो रहा हो तो उस वस्तु की माँग बेलोच होगी।

vii. **समाज में आय का वितरण –** समाज में धन का असमान वितरण होने पर माँग बेलोच होती है तथा आय के समान वितरण होने पर माँग की लोच अधिक होती है। आय के समान वितरण की स्थिति में मध्यम वर्ग के लोगों की प्रधानता

होती है जिससे वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है। आय के असमान वितरण की स्थिति में कम आय वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है जिससे वस्तुओं की माँग की लोच कम होती है।

viii. **वस्तु के प्रयोग के सम्बन्ध में आदतें तथा रीति–रिवाज –** ऐसी वस्तुएँ जिनके प्रयोग की उपभोक्ता को आदत पड़ गयी हो जैसे–सिगरेट, शराब आदि तो उसकी माँग बेलोच होती है। इसी प्रकार रीति–रिवाज के कारण अनेक वस्तुएँ पारिवारिक आय–व्यय बजट का एक अभिन्न अंग बन जाती हैं तो उनकी माँग भी बेलोच कहलाती है।

ix. **समय का प्रभाव –** प्रो0 मार्शल के अनुसार समय का प्रभाव माँग की लोच पर पड़ता है। अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घकाल में वस्तु की माँग अधिक लोचदार होती है। इसके कई कारण होते हैं जिनमें से मूल्य में परिवर्तन होने के बाद अल्पकाल में उपभोक्ता अपने उपभोग तुरन्त कम नहीं कर पाता। उपभोक्ता को मूल्य परितर्वन का ज्ञान नहीं हो पाता तथा यदि उपभोक्ता यह उम्मीद करे कि भविष्य में उस वस्तु का मूल्य कम हो जायेगा तो वह उस वस्तु का क्रय करना स्थगित कर देगा।

x. **मूल्य स्तर –** सामान्यतः महँगे मूल्य पर माँग बेलोच तथा सस्ते मूल्य पर अधिक लोचदार होती है।

xi. **संयुक्त माँग की वस्तुएँ –** ऐसी वस्तुएँ जिनकी माँग संयुक्त होती है अर्थात् जो एक–दूसरे की पूरक हैं जैसे कलम और स्याही उसकी माँग बेलोच होती है।

xii. **वस्तु के उपभोक्ताओं का वर्ग –** किसी वस्तु का उपभोग करने वाले लोग यदि धनी वर्ग के हैं तो माँग की लोच अधिक होगी अन्यथा कम होगी।

xiii. **सरकार द्वारा राशनिंग –** यदि किसी वस्तु के वितरण पर सरकारी नियन्त्रण हो तो उसकी माँग बेलोच होगी, इसके विपरीत खुले बाजार में मिलने वाली वस्तु की माँग की लोच अधिक होती है।

7.2.1.7 माँग की लोच का महत्व

अर्थशास्त्र की अनेक समस्याओं के समाधान में माँग की लोच का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। लार्ड कीन्स के अनुसार –प्रो0 मार्शल की सबसे महत्वपूर्ण देने माँग की लोच का सिद्धान्त है तथा इसके अध्ययन के अभाव में मूल्य तथा वितरण के सिद्धान्तों की व्याख्या सम्भव नहीं है। इसके मतलब को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :–

(i) मूल्य निर्धारण में – किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की माँग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य के बढ़ने तथा घटने पर पूर्ति में कितना परिवर्तन होगा, यह माँग की लोच पर निर्भर करेगा। यदि माँग बेलोच हुई तो मूल्य में परिवर्तन से पूर्ति की मात्रा में कम परिवर्तन होगा परन्तु माँग अधिक लोचदार होने की स्थिति में परिवर्तन अधिक होगा।

एकाधिकार में मूल्य निर्धारण वस्तु की माँग की लोच के अनुसार इस प्रकार किया जाता है कि लाभ अधिकतम हो। एकाधिकारी बेलोच माँग की वस्तु का मूल्य

अधिक तथा अधिक लोचदार वस्तु का मूल्य कम रखता है क्योंकि बेलोच माँग के कारण यदि उसके मूल्य में वृद्धि हो जाये तब भी ग्राहक सामान खरीदेंगे। परन्तु वह यदि अधिक लोचदार वस्तु की कीमत बढ़ा दे तो ग्राहक उस वस्तु को नहीं खरीदेंगे। इस प्रकार उसका लाभ कम हो जायेगा। मूल्य विभेद करते समय भी एकाधिकारी माँग की लोच की सहायता लेता है। इसी प्रकार राशिपतन (Dumping) के सम्बन्ध में भी माँग की लोच सहायक हो सकती है।

(ii) उत्पादन के साधनों के परिश्रमिक–निर्धारण में – माँग की लोच का महत्व उत्पादन के साधनों के परिश्रमिक–निर्धारण के अन्तर्गत वितरण के सन्दर्भ में देखा जाता है। किसी साधन की माँग बेलोच होने पर अधिक मूल्य देना पड़ता है। जैसे–यदि श्रमिकों की माँग बेलोच है तो श्रमिक को अधिक मजदूरी देनी पड़ती है।

(iii) सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में – माँग की लोच का सरकार की नीतियों के निर्धारण में भी बहुत अधिक महत्व होता है। माँग की लोच द्वारा सरकार अपनी नीतियाँ निर्धारित करती है तथा यह भी निर्णय लेती है कि किन उद्योगों को सार्वजनिक क्रियाओं के रूप में घोषित करें तथा किनका नियन्त्रण अपने हाथ में ले। बेलोच वस्तुओं के सन्दर्भ में यह उचित होगा कि वह उन्हें अपने हाथ में ले लें।

सरकार की कर–नीति के निर्धारण में भी माँग की लोच का अत्यधिक महत्व है। माँग की लोच की सहायता से कर नीति की दो प्रमुख समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। पहली समस्या अधिक से अधिक आय प्राप्त करने की होती जिसके लिए सरकार को बेलोच माँग वाली वस्तुओं पर कर लगाने चाहिए क्योंकि लोचदार वस्तओं पर कर लगाया जायेगा तो उपभोक्ता उन वस्तुओं का उपभोग कम कर देगा फलस्वरूप सरकार को आय नहीं मिल पायेगी। कर के भार का निर्धारण दूसरी समस्या है सरकार द्वारा लगाये गये कर का भार किसके ऊपर पड़ता है इसका ज्ञान माँग की लोच के द्वारा हो सकता है। बेलोच माँग वाली वस्तु की स्थिति में कर का भार उपभोक्ता पर पड़ेगा क्योंकि उत्पादक वस्तु का मूल्य बढ़ा देगा। जबकि लोचदार वस्तु पर का भार उत्पादक पर ही पड़ेगा । इस प्रकार वस्तु की माँग की लोच अधिक होने की दशा में वस्तु पर कर का भार विक्रेता पर पड़ेगा।

7.2.2 माँगी आय लोच (Income Elasticity of Demand)

किसी माँग की उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले सापेक्ष परिवर्तन की माप या क्षमता ही माँग की आय लोच है, जबकि वस्तु का मूल्य अपरिवर्तित रहे। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यदि मूल्य तथा अन्य कारक तत्व स्थिर रहें, तो मौद्रिक आय में आनुपतिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में जो आनुपतिक परिवर्तन होगा है, या माँग में आनुपातिक परिवर्तन को मौद्रिक आय में आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर जो गुणांक आता है उसे ही माँग की आय लोच कहते हैं।

किसी वस्तु की माँग आय लोच (Edy) = वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन

उपभोक्ता की आय में आनुपातिक परिवर्तन अर्थात्

$$Ed_y = \frac{\Delta q}{q} + \frac{\Delta y}{y}$$

अथवा $Ed_y = \frac{\Delta q}{\Delta y} + \frac{y}{q}$

Ed_y = माँग की आय लोच

जहा¡ q= माँग में होने वाला परिवर्तन

y = आय में होने वाला परिवर्तन

q = पूर्व माँग

y = पूर्व आय

सामान्यतया किसी वस्तु की माँग की आय लोच धनात्मक होती है अर्थात् उपभोक्ता की आय में वृद्धि वस्तु की माँग में वृद्धि करती है तथा उसकी आय में कमी, माँग में कमी करती हैं इस प्रकार आय तथा माँग में होने वाले परिवर्तन ही दिशा में होते हैं। अतः Ed_y का मान धनात्मक होता है। परन्तु कुछ ऐसी स्थितियाँ ऐसी भी होती हैं जिसमें माँग एवं आय के परिवर्तन विपरीत दिशा में होते हैं। इसमें आय में वृद्धि के बाद उपभोक्ता इन वस्तुओं की कम माँग करता है अथवा इन वस्तुओं पर कम व्यय करता है।

माँग की आय लोच भी पाँच प्रकार की होती है–

(क) माँग की शून्य आय लोच – जब किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद भी किसी वस्तु की क्रय की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता हैं तब माँग की आय लोच शून्य होती है।

(ख) माँग की ऋणात्मक आय लोच – यदि किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि होने के बाद किसी वस्तु की माँग में कमी आये तब माँग की आय लोच ऋणात्मक होगी।

(ग) माँग की इकाई आय लोच – जब किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय का अनुपात जो वह किसी वस्तु पर व्यय करता है, आय की वृद्धि के बाद भी वही बना रहे जो आय की वृद्धि के पहले था तो उसे माँग की इकाई आय लोच कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति अपनी आय का 20% किसी वस्तु पर व्यय करता था तथा आय में वृद्धि के बाद भी वह 20% ही उस वस्तु पर खर्च करता है तो माँग की आय लोच इकाई के बराबर होगी।

(ङ) इकाई से कम माँग की आय लोच – जब उपभोक्ता मौद्रिक आय में वृद्धि के बाद अपनी मौद्रिक आय का कम अनुपात किसी वस्तु के ऊपर व्यय करता है तब माँग की आय लोच इकाई से कम होगी।

7.2.3 माँग की आड़ी लोच

सामान्यतः दो प्रकार की वस्तुएँ पायी जाती हैं– अनाश्रित तथा आश्रित वस्तुएँ। आश्रित वस्तुओं को पूरक अथवा स्थानापन्न में विभाजित किया जाता है। किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण दूसरी वस्तु की माँग परिवर्तित होती है तो वस्तुएँ परस्पर सम्बन्धित होती हैं। सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं– स्थानापन्न व पूरक। यदि किसी वस्तु का मूल्य बढ़ने (घटने) पर किसी अन्य वस्तु की माँग बढ़ती (घटती) है तो वस्तुएँ एक–दूसरे की स्थानापन्न होंगी। इस प्रकार किसी वस्तु के मूल्य तथा स्थानापन्न वस्तु की माँग में धनात्मक सम्बन्ध होता है।

इसके विपरीत यदि किसी वस्तु का मूल्य घटने–बढ़ने पर किसी अन्य वस्तु की माँग बढ़ती–घटती है तो वस्तुएँ परस्पर पूरक कहलायेंगी। किसी वस्तु के मूल्य एवं इसकी पूरक वस्तु की माँग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। माँग की आड़ी लोच इस प्रकार की वस्तुओं की सापेक्षिक सम्बद्धता की माप है।

किसी सम्बन्धित वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप किसी दी हुई दूसरी वस्तु की माँगी गई मात्रा में जो सापेक्षिक परिवर्तन होता है, उसकी माप ही माँग की आड़ी लोच है। इस प्रकार

माँग की आड़ी लोच (Ed_{AB}) = $\frac{\text{A वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{B वस्तु के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta qA}{\Delta A} + \frac{\Delta pB}{pB}$$

$$Ed_{AB} = \frac{\Delta qA}{\Delta pA} \times \frac{\Delta pB}{pB}$$

माँग मूल्य लोच की तरह इसके सम्बन्ध में भी औसत विधि का प्रयोग किया जाता है। इस स्थिति में माँग की आड़ी लोच का सूत्र इस प्रकार होगा।

$$Ed_{AB} = \frac{(q2-q1)}{2} \div \frac{(q2+q1)}{2} + \frac{(P2_P1)}{2} \div \frac{(p2+p1)}{2}$$

$$= \frac{(q2-q1)}{(q2+q1)} \times \frac{(p2+p1)}{(p2-p1)}$$

$$= \frac{(q2-q1)}{(p2-p1)} \times \frac{(p2+p1)}{(q2+q1)}$$

$$= \frac{(\Delta q)}{(\Delta p)} \times \frac{(p2+p1)}{(q2+q1)}$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि A तथा B दोनों परस्पर स्थानापन्न हैं तो माँग की आड़ी लोच धनात्मक होगी। परन्तु यदि A तथा B एक दूसरे की पूरक वस्तुएँ हैं तो माँग की आड़ी लोच ऋणात्मक होगी।

माँग की आड़ी लोच से निम्न निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं :–

i. यदि माँग की आड़ी लोच का मान शून्य है अर्थात् ($Ed_{AB}=0$) तो इस स्थिति में वस्तुएं न तो पूरक होगीं और न स्थानापन्न बल्कि अनाश्रित या स्वतंत्र होंगी।

ii. यदि माँग की आड़ी लोच का मान ऋणात्मक हो अर्थात् ($Ed_{AB}<0$) तो दोनों वस्तुएँ परस्पर पूरक वस्तुएँ होगीं।

iii. यदि माँग की आड़ी लोच का मान धनात्मक हो तो $Ed_{AB}>0$, तो दोनों वस्तुएँ स्थानापन्न होंगी।

iv इसी प्रकार यदि Ed_{AB} का मान बहुत अधिक धनात्मक हो तो दोनों वस्तुएँ परस्पर निकटतम स्थानापन्न होंगी और यदि आड़ी लोच कम धनात्मक हुई तो परस्पर कम स्थानानपन्न होंगी।

7.3 सारांश

माँग के नियम के अनुसार मूल्य में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन कितना एवं किस अनुपात में होगा, यह विभिन्न मूल्यां पर माँग के बदलने की क्षमता पर निर्भर कता है। यह क्षमता ही माँग की मूल्य लोच है। इसी प्रकार की क्षमता माँग तथा उपभोक्ता की आय, तथा माँग एवं अन्य वस्तुओं के मूल्यों के बीच होती है। इस प्रकार माँग की लोच तीन प्रकार की होती है–मूल्य माँग की लोच, माँग की आय लोच तथा माँग की आड़ी लोच। वस्तु के मूल्य में होने वाले परविर्तन के फलस्वरूप वस्तु की माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है। इसी प्रकार माँग की आय लोच के भी पाँच प्रकार होते हैं। माँग की आय लोच के अन्तर्गत उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के फलस्वरूप माँग में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है जबकि माँग की आड़ी लोच के अन्तर्गत किसी एक वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप किसी दूसरी वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाल सापेक्षिक परिवर्तन की माप की जाती है माँग की लोच का महत्व मूल्य निर्धारण, उत्पादन के साधनों के पारिश्रमिक निर्धारण तथा सरकार की आर्थिक तथा वित्तीय नीतियों के निर्धारण में होता है।

7.4 उपयोगी शब्दावली

- लोचदार मांग– मूल्य के परिवर्तन के फलस्वरुप मांग में परिवर्तन लोचदार मांग कहलाती है।
- बेलोच मांग– जब किसी वस्तु की मांग में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन उसके मूल्य के सापेक्षिक परिवर्तन से कम हों।
- आड़ी लोच– किसी सम्बन्धित वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरुप किसी दी हुई दूसरी वस्तु की मांगी गयी मात्रा में जो सापेक्षिक परिवर्तन होता है। उसे लोच कहते हैं।
- इकाई लोच– जब किसी वस्तु के मूल्य में सापेक्षिक परिवर्तन की मांग में सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर हो।

7.5 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1. माँग की लोच से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न–2. माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों को बताइये।

प्रश्न–3. माँग की आय लोच को विश्लेषित करें

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जे0सी0 पंत, व्यष्टि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2005
2. Ahuja, H.L.; Advanced Economic Theory, S Chand & Company Ltd. 2001.
3. एम0 एल0 झिंगन, उच्च आर्थिक सिद्धान्त, वृंदा पबिल्केशन्स प्रा0 लि0, 1947

B.Com-103

आर्थिक सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड–तृतीय

उत्पादन के सिद्धान्त

इकाई–8 उत्पादन फलन - I	183–200
इकाई–9 उत्पादन फलन - II	201–224
इकाई–10 पूर्ति का नियम और पूर्ति की लोच	225–242
इकाई–11 लागत सिद्धांत तथा लागत वक्र विश्लेषण	243–270

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्उ मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ. अमितेन्द्र सिंह सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, पं. दीन दयाल उपाध्याय महिला पी.जी. कालेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सम्पादक :– डॉ. आर.पी.एस. यादव, निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनुवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– **डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।**

प्रूफ रीडर

2020 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN-978-93-83328-78-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई : 8 उत्पादन फलन - I

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 उत्पादन का आशय

8.3 उत्पादन का सिद्धांत

8.3.1 उत्पादन के सिद्धांत की प्रासंगिकता

8.3.2 उत्पादन फलन

8.3.3 उत्पादन फलन की विशेषताएं

8.3.4 स्थिर और परिवर्तनशील आगतें

8.3.5 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन अवधारणा

8.4 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

8.4.1 परिवर्तनशील अनुपात नियममान्यताएं

8.4.2 कुल, औसत और सीमांत उत्पाद

8.4.3 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ

8.4.4 परिवर्तनशील अनुपात नियम की व्यावहारिकता

8.4.5 परिवर्तनशील अनुपात नियम का महत्व

8.5 सारांश

8.6 उपयोगी शब्दावली

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि :–

- उत्पादन फलन की अवधारणा समझ सकेंगे,
- उत्पादन के नियमों का विवेचन कर सकेंगे,
- परिवर्तनशील अनुपात नियम की व्याख्या कर सकेंगें,
- परिवर्तनशील अनुपात के नियमों की तीनों अवस्थाओं से अवगत हो पायेंगे,

- परिवर्तनशील अनुपात के नियम लागू होने के कारण को समझ सकेंगे, तथा
- परिवर्तनशील साधन लागतों को कैसे प्रभावित करते है यह भी जान पायेंगे।

8.1 प्रस्तावना

एक उत्पादक का उद्देश्य अपने उत्पादन से अधिकतम लाभ कमाना होता है। इस दृष्टिकोण से वह आगतों का श्रेष्ठतम व अनुकूलतम तरीके से प्रयोग करके अधिकतम निर्गत प्राप्त करना चाहता है। वह आगतों का विभिन्न संयोगों में प्रयोग कर सकता है। आगतों के संयोगों में यदि परिवर्तन किया जाता है तो उसका निर्गत की मात्रा पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यह आगत–निर्गत के बीच के प्रावधिक सम्बंध उत्पादक के लिए सदैव रोचक विषय सामग्री होते हैं। इस इकाई में हम इसी आगत–निर्गत सम्बंध का विश्लेषण करेंगे तथा उत्पादन के नियमों का अध्ययन करेंगे।

प्रस्तुत इकाई में एक परिवर्तनशील साधन का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जायेगा, साथ ही परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीनों अवस्थाओं का विश्लेषण तालिका व चित्र द्वारा किया जायेगा। नियम के महत्व पर भी प्रकाश डाला जायेगा।इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान जायेंगे, कि एक परिवर्तनशील साधन उत्पादन को किस प्रकार प्रभावित करता है।

8.2 उत्पादन का आशय

परम्परागत अर्थशास्त्री उत्पादन को भौतिक वस्तुओं का निर्माण मानते थे। जिसे आगें चल कर उपयोगिता का सृजन कहा जाने लगा। आधुनिक दृष्टिकोण में उपयोगिता में वृद्वि के स्थान पर मूल्य वृद्वि को उत्पादन मानना अधिक उचित है। क्योंकि उत्पादन के लिए उपयोगिता का सृजन के साथ–साथ मूल्य वृद्वि का होना आवश्यक है। यदि किसी वस्तु के उपयोगिता में वृद्वि होने के साथ विनिमय मूल्य में वृद्वि नहीं होती तो इस कार्य को उत्पादन नहीं कहा जाता है।उत्पादन के लिए वस्तु के प्रयोग मूल्य (उपयोगिता मूल्य) और विनिमय मूल्य दोनो में वृद्वि आवश्यक है।इस प्रकार उत्पादनउपयोगिता सृजन और मूल्य सृजन की सम्मिलित प्रक्रिया है।

8.3 उत्पादन का सिद्धांत

उत्पादन के साधनो के विभिन्न रूप में प्रयोग के द्वारा आगतों का सृजन किया जाता है।उत्पादन प्रक्रिया में इन उत्पादन के साधनों को एक निश्चित अनुपात में दी गई उत्पादन की तकनीक के अनुसार अनुसार मिलाते है तो जो आगत प्राप्त होती है, उसे हम उत्पादन के नाम से पुकारते है।साधनों तथा उत्पादन में ये भौतिक अथवा तकनीकी संबंध ही उत्पादन के सिद्धांत का विषय है।उत्पादन का सिद्धान्त एक दी हुई तकनीक में निश्चित उत्पादन मात्रा के लिए विभिन्न साधनों के संयोागें की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। उत्पादन सिद्धान्त, उत्पादन मात्रा तथा लागत में परस्पर सम्बन्ध का आधार है। साथ ही यह फर्म, फर्म के साधनों तथा उसके मांग का भी विश्लेषण करता है। एक फर्म के साधनों

तथा उसके उत्पादन के बीच तकनीकी सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है। उत्पादन फलन आगतों तथा निर्गतों की मात्राओं के फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। यह एक दिये हुए समय के लिए 'उत्पादन की मात्रा' तथा 'उत्पत्ति' में भौतिक सम्बन्ध को बताता है।

8.3.1 उत्पादन के सिद्धांत की प्रासंगिकता

उत्पादन सिद्धान्त व्यष्टि और समष्टि दोनों ही स्तर पर यह प्रासंगिक है।विशेष रूप में कीमत सिद्धान्त, फर्म का सिद्धान्त , कारकों का मॉग सिद्धान्त और वितरण के सिद्धान्त में यह प्रासंगिक सिद्ध हुआ होता है।

8.3.2 उत्पादन फलन

उत्पादन के सिद्धान्त का प्रथम सीढ़ी उत्पादन फलन है। उत्पादन विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के सामूहिक प्रयास का परिणाम है। उत्पत्ति के पाँच आधारभूत साधन–भूमि, पूंजी, श्रम, संगठन एवं उद्यमी परस्पर विभिन्न अनुपात में एकत्रित एवं कार्यशील होकर उत्पादन करते हैं। उत्पादन फलन एक तकनीकी सम्बंध है जो यह बताता है कि आगतों (साधनों) की निश्चित मात्राओं का प्रयोग कर के निर्गत (उत्पादन) की अधिकतम कितनी मात्रा उत्पन्न की जा सकती है। अन्य शब्दों में उत्पादन फलन यह भी बताता है कि निर्गत (उत्पादन) की दी हुई मात्रा को उत्पादित करने के लिए आगतों (साधनों) की कितनी मात्राओं की जरूरत होगी। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा इसकी विवेचना निम्नवत हैः–

- **प्रो0 वाटसन** के अनुसार, किसी फर्म की भौतिक आगतो तथा उपज की भौतिक मात्रा के बीच के सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है।

- **प्रो0 सेल्यूलसन** ने उत्पादन फलन की परिभाषित करते हुए कहा कि ''उत्पादन फलन वह प्राविधिक अथवा तकनीकी सम्बंध है जो यह बताता है कि आगतों के प्रत्येक वि"ाष समूह से निर्गत अथवा उत्पादन कितनी मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है।''

- **प्रो0 वालसन** के अनुसार ''किसी फर्म के भौतिक आगतों एवं भौतिक उत्पादन के बीच के सम्बंध को प्रायः उत्पादन फलन कहते हैं।''

- **प्रो0 स्टिगलर** के अनुसार; 'उत्पादन फलन उत्पादकीय सेवाओं की आगत की दरों और वस्तु के उत्पादन की दर के बीच संबंध को दिया गया नाम है। यह अर्थ"ाास्त्री के तकनीकी ज्ञान का सारां"ा है।'

- **प्रो0 लेफ्टवीच** के अनुसार; उत्पादन–फलन शब्द उस भौतिक सम्बन्ध के लिए प्रयोग किया जाता है, जो एक फर्म के साधनों की इकाईयों (पड़तो) और प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं (उत्पादों) के बीच पाया जाता है।

इस प्रकार उत्पादन फलन एक दी हुई तकनीकी में उत्पादन में प्रयोग की गई आगतों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त उत्पादन की मात्रा को दर्शाता है। मान लें श्रम को L, पूँजी को K, उद्यमी को E, मैनेजमेंट या संगठन M तथा भूमि को N तथा उत्पादन (निर्गत) को Q से व्यक्त करें तो उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा–

$$Q = f\ (L, K, E, M, N)$$

उपरोक्त उत्पादन फलन यह व्यक्त करता है कि यदि आगतों श्रम की L, पूंजी की K, उद्यमी को E, मैनेजमेंट या संगठन M तथा भूमि की N मात्रा का प्रयोग किया जाए तो अधिकतम निर्गत (उत्पादन) Q प्राप्त किया जा सकता है। यदि इसी उत्पादन फलन को अन्य शब्दों में व्यक्त करें तो निर्गत अर्थात उत्पादन की Q मात्रा प्राप्त करने के लिए श्रम की न्यूनतम L, पूंजी की K, उद्यमी को E,मैनेजमेंट या संगठन M, तथा भूमि की N मात्रा की आवश्यकता होगी।उपयुक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उत्पादन फलन साधनों एवं उत्पादन के मध्य का एक तकनीकी सम्बंध है। स्पष्टतया यदि साधनों की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो उत्पादन की मात्रा में भी परिवर्तन होगा। मान लें कि एक उत्पादन फलन निम्नवत दिया है –

$$Q = f\ (L, K, T, M)$$

जहां L श्रम, K पूंजी, T तकनीकी, M उद्यम एवं Q उत्पादन की मात्रा को प्रदर्शित कर रहा है। अब मान लें कि साधनों की मात्रा में C गुना वृद्धि की जाती है जिसके परिणाम स्वरूप उत्पादन के D गुना वृद्धि हो जाती है। ऐसे में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाएगा।

$$DQ = f\,C\ (L, K, T, M)$$

उत्पादन के नियम के अन्तर्गत D तथा C के मध्य के सम्बंध का अध्ययन किया जाता है।

1. यदि D > C है तो इसका अर्थ है कि साधन का C गुना बढ़ाने पर उत्पादन में C गुना से अधिक वृद्धि हुई। इसे वृद्धमान अथवा बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति अथवा ह्रासमान लागत की स्थिति कहा जाएगा।

2. यfn D < C है तो इसका अर्थ है कि साधनों में C गुना वृद्धि होने पर उत्पादन में उससे C से कम मात्रा में वृद्धि होगी। इसे ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति अथवा वर्द्धमान लागतों की स्थिति कहा जाएगा।

उत्पादन के नियम के अध्ययन की विधियां

आगतों में वृद्धि का उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन उत्पादन के नियम के अन्तर्गत होता है। इन आगतों की मात्रा को निम्न दो प्रकार से बढ़ाया जा सकता है –

प्रथम विधि के अन्तर्गत हम उत्पादन फलन में स्थिति सब साधनों को स्थिर रखते हुए मात्र एक साधन को बढ़ाकर उसका उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन को **परिवर्तनशील अनुपात नियम** कहते हैं। उदाहरण उपरोक्त वर्णित उत्पादन फलन $Q = f\,A\ (L, K, T, M)$ में यदि हम K, T व M की मात्रा को स्थिर रखते हुए मात्र L की मात्रा को बढ़ाकर इसका उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करें तो इसे अनुपात में परिवर्तन की संज्ञा दी जाएगी। ऐसे में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त करेगा –

$$Q = f(L, K, T, M)$$

जहां पूंजी K, तकनीक T एवं उद्यम M की मात्रा को स्थिर मानते हुए श्रम L की मात्रा में परिवर्तन का उत्पादन Q पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाएगा। इसे अनुपातों में परिवर्तन की संज्ञा दिया जाता है तथा इसका अध्ययन परिवर्तनशील अनुपात नियम में होगा।

उत्पादन के नियम के अध्ययन की दूसरी विधि यह है कि उत्पादन फलन में स्थित समस्त आगतों में एक साथ परिवर्तन किया जाए। इसे पैमाने में परिवर्तन की संज्ञा दिया जाता है। यह अध्ययन **पैमाने के प्रतिफल नियम** में होता है। जो कि अगले इकाई की विषय सामग्री है।

8.3.3 उत्पादन फलन की विशेषताएंः– उत्पादन फलन की निम्नवत विशेषताएं हैं। आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करेंः–

1. उत्पादन फलन उत्पत्ति के साधनों की मात्रा एवं उत्पादित वस्तु की मात्रा के भौतिक सम्बंधों को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार उत्पादन फलन शुद्धतः एक तकनीकी अथवा अभियन्त्रिक धारणा है।

2. उत्पादन फलन का सम्बंध उत्पत्ति साधनों की कीमतों एवं उत्पादित वस्तुओं की कीमतों से नहीं बल्कि साधनों एवं उत्पादन की मात्रा से है।

3. उत्पादन फलन का सम्बंध समयावधि से है अर्थात उत्पादन की समयावधि के अनुसार उत्पादन फलन का स्वरूप बदलता रहता है।

4. उत्पादन फलन में साधनों से स्थानापन्नता का गुण विद्यमान होता है अर्थात एक ही उत्पादन फलन के लिए एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का कम अथवा अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। वस्तुतः एक ही उत्पादन मात्रा को प्राप्त करने के लिए परिवर्तनशील साधनों के कई संयोगों को प्रयोग किया जा सकता है।

8.3.4 स्थिर और परिवर्तनशील आगतें

उत्पादन प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि साधनों (आगतों) का वर्गीकरण स्थिर और परिवर्तनशील आगते के मध्य किया जाए। स्थिरआगत जिसकी मात्रा मे तत्काल परिवर्तन करना संभव नहीं है।परन्तु कोई आगत हमेशा के लिए स्थिर नहीं रहती। भूमि, मशीनें और प्रबन्ध आदि कुछ आगतें है जिनमें शीघ्रता से कमी या वृद्वि करना संभव नहीं हो सकता।

जबकि परिवर्तनशील आगतें वह है जिनमें आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन संभव है, अकुशल श्रम एवं कच्चा माल परिवर्तनशील आगत के अन्तर्गत आतें हैं।

8.3.5 अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन अवधारणा

उत्पादन के नियम की एक विशेषता और भी है कि ये नियम अल्पकाल व दीर्घकाल में भिन्न प्रकारसे क्रियान्वित होता है। अल्पकाल में चूंकि अधिकतर साधन स्थिर होते हैं अतः मात्र कुछ साधनों में ही परिवर्तन सम्भव होता है। अतः यह कहा जाता है कि अल्पकाल में मात्र साधनों के अनुपात में ही परिवर्तन सम्भव है। लेकिन दीर्घकाल में समस्त साधनों, प्लाण्ट के आकार इत्यादि परिवर्तन सम्भव है

अर्थात दीर्घकाल में उत्पादन के पैमाने में परिवर्तन हो जाता है। इसे परिवर्तनशील पैमाना नियम में अध्ययन किया जाता है।

बोध प्रश्न अ

1. **उत्पादन से आप क्या समझते हैं ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. **उत्पादन फलन को स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

3. **उत्पादन की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन अवधारणा को समझाइये ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

4. **सही उत्तर का चुनाव कीजिये :–**

I. उत्पादन फलन से अभिप्राय है–

(क) उत्पादन के बढ़ने के तरीके

(ख) साधन व उत्पादन की मात्रा के मध्य सम्बन्ध

(ग) उत्पत्ति के साधनों का विस्तार

(घ) सीमान्त उपयोगिता का ह्रास

II. उत्पादन फलन है–

(क) एक भौतिक सम्बंध (ख) एक मौद्रिक सम्बंध

(ग) एक तकनीकी सम्बंध (घ) कोई नहीं

III. अल्पकालीन उत्पादन फलन में बदलता है साधनों का–

(क) पैमाना (ख) अनुपात

(ग) दोनों (घ) कोई नहीं

IV. दीर्घकालीन उत्पादन फलन में बदलता है–

(क) पैमाना (ख) अनुपात

(ग) दोनों (घ) कोई नही

V. उत्पादन फलन का सम्बन्ध है –

(क) लागतों का (ख) उत्पत्ति के साधनों का

(ग) लाभ का (घ) कीमतों का

VI. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम कहलाता है–

(क) अल्पकालीन उत्पादन फलन (ख) दीर्घकालीन उत्पादन करना

(ग) पैमाने के प्रतिफल (घ) कोई नहीं।

8.4 परिवर्तनशील अनुपातों का नियम

परिवर्तनशील अनुपात के नियम का आर्थिक उत्पादन सिद्धान्त में विशेष महत्व है। यह नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन का विश्लेषणयुक्त व्याख्या करता है जिसमें कुछ साधन को स्थिर रख कर एक या एक से अधिक साधनों में परिवर्तन किया जाता है। जिससे स्थिर व परिवर्तनशील साधन का अनुपात परिवर्तित हो जाता है। इसी कारण इसे परिवर्तन अनुपात का नियम कहते है। इसकों अन्य नामों परिवर्तशील अनुपात का ह्रासमान प्रतिफल का नियम या ह्रासमान सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम भी कहा जाता है। परन्तु यह सही नहीं हैं क्योंकि यह नियम तो परिवर्तनशील अनुपात के नियम की केवल द्वितीय अवस्था को व्यक्त करते है। एक परिवर्तनशील साधन के प्रतिफल के धारणा अल्पकाल से सम्बन्धित है, क्योंकि पूंजी, मशीने, तथा भूमि स्थिर रहते है और उत्पादन वृद्धि हेतु श्रम व कच्चेमाल की मात्र को ही बढ़ाया जा सकता है। अल्पकालीन उत्पादन फलन को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$Q = f\,(L.\,K)$$

यहां पर Q उत्पादन मात्रा को, L श्रम की मात्रा तथा K पूंजी की स्थिर मात्रा को व्यक्त करते है। जिससे पूंजी की मात्रा स्थिर रखते हुए श्रम का अधिक प्रयोग करने से उत्पादन की मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है। परिवर्तनशील अनुपात के नियमों को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने निम्न रूप से परिभाषित किया है–

- **सैमूल्यसन के अनुसार :–** स्थिर साधनों की तुलना में कुछ साधनों में वृद्धि करने से उत्पादन में वृद्धि होगी, परन्तु एक बिन्दु के बाद साधनों की समान वृद्धियों से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन उत्तरोत्तर कम होता जाएगा।

- **स्टिगलर के अनुसार** – 'जब किसी साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात बढ़ाया जाता है, तो एक सीमा के प"चात् पहले उस साधन का सीमान्त उत्पादन और फिर औसत उत्पादन घट जायेंगे।'

- **मार्शल** ने कृषि के सम्बन्ध में घटते प्रतिफल का विवेचन इस प्रकार किया – भूमि की खेती में पूंजी और श्रम की मात्रा बढ़ने से उत्पादन मात्रा में

सामान्यतः आनुपातिक वृद्धि से कम वृद्धि होता है। ब"र्ते कृषि तकनीक में कोई सुधार न हुआ हों।

- **प्रो0 बोल्डिंग के अनुसार** – जब कुछ साधन की स्थिर मात्रा के साथ किसी अन्य साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो परिवर्तन"ील साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता अन्ततः अव"य ही घट जाएगी।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए एक साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो परिवर्तनशील साधन को सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन अन्ततः घट जायेगें।

8.4.1 परिवर्तनशील अनुपात नियमकी मान्यताएं :–

यह नियम निम्न मान्यताओं पर आधारित है, आइये इन्हें क्रमषः समझने का प्रयास करें :–

- परिवर्तनशील साधनों की सब इकाइयां समरूप होती है।
- तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता यदि उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन हो जाता है, तो उत्पादन वक्र उसी के अनुसार सरक जाएंगे।
- उत्पादन के साधनों के संयोग के अनुपातों में परिवर्तन करना सम्भव है।
- उत्पादन के किसी एक साधन में परिवर्तनशील होता है, जबकि अन्य साधन स्थिर रखे जाते है।
- यह नियम अल्पकालीन स्थिति की विवेचना करता है क्योंकि दीर्घकालीन में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।
- वस्तु को भौतिक इकाइयों में मापन की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। यदि वस्तु को मुद्रा में मापा जाए तो कीमत बढ़ जाने पर उत्पादन में कमी होने पर भी घटते प्रतिफल की अपेक्षा बढ़ते प्रतिफल होंगे।
- परिवर्तनशील साधन की सभी इकाईयाँ एक समान रूप में कार्यकुशल है।
- परिवर्तनशील साधन को छोटी–छोटी इकाईयों में अलग किया जा सकता है।

8.4.2 कुल, औसत और सीमांत उत्पाद

यदि एक आगत परिवर्तनशील हो और अन्य सब आगत स्थिर, तो फर्म का उत्पादन फलन परिवर्तनशील अनुपात के नियम को व्यक्त करता है। यदि अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक परिवर्तनशील साधन की संख्या बढ़ादी जाए, तो उत्पादन किस प्रकार परिवर्तित होता है यही इस नियम का विषय वस्तु का विश्लेषण है। मान लीजिए कि भूमि, प्लांट और उपकरण स्थिर साधन हैं और श्रम परिवर्तनशील साधन। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए श्रम की संख्या लगातार बढ़ाई जाती है, तो स्थिर और परिवर्तनशील साधनों में अनुपात बदलता जाता है और परिवर्तनशील अनुपात का नियम लागू होने लगता है। नियम यह है, ''अन्य आगतों की मात्रा को स्थिर रखकर जब एक परिवर्तनशील आगत की मात्रा

को समान मात्रा में लगातार बढ़ाया जाता है, तो कुल उत्पादन बढ़ता है, परन्तु एक निश्चित सीमा के बाद घटती दर पर। दूसरे शब्दों में अपरिवर्तनशील साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तन साधनों की और अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, तो एक ऐसा बिन्दु आता है जिसके बाद पहले सीमान्त उत्पादन, फिर औसत उत्पादन और अन्त में कुल उत्पादन घटने लगता है।''

8.4.3 परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ

हम निम्न तालिका की सहायता से नियम की तीनों अवस्थाएँ को स्पष्ट कर सकते हैं, जहां स्थिर साधन 1 एकड़ भूमि पर परिवर्तनशील साधन श्रम की इकाइयां लगातार बढ़ाई जाती हैं और परिवर्तित उत्पादन प्राप्त किया जाता है। उत्पादन फलन की पहले दो स्तम्भों में दिखाया गया है। कुल उत्पादन के स्तम्भ से औसत उत्पादन और सीमान्त उत्पादन निकाला गया है। स्तम्भ (3) को स्तम्भ (2) से विभाजित करके प्रति श्रमिक औसत उत्पादन प्राप्त होता है। सीमान्त उत्पादन एक अतिरिक्त श्रमिक लगाने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि है। 3 श्रमिक 36 इकाइयों का उत्पादन करते हैं और 4 श्रमिक 48 का इस प्रकार सीमान्त उत्पादन 12 इकाई होगा।

तालिका से स्पष्ट है कि पहले कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन लगातार बढ़ते हैं, फिर एक बिन्दु पर अधिकतम हो जाते हैं और अन्त में घटने आरम्भ कर देते हैं। कुल उत्पादन तब अधिकतम होता है जब श्रम की 7 इकाइयों का प्रयोग किया जाता है और इसके बाद घटना आरम्भ हो जाता है। औसत उत्पादन चौथी इकाई तकलगातार बढ़ता जाता है जबकि सीमान्त उत्पादन श्रम की तीसरी इकाई पर अधिकतम है और इसके बाद वो भी गिरने आरम्भ हो जाता है।

तालिका 8.1 परिवर्तनशील अनुपात नियम

भूमि (स्थिर साधन) 1	श्रमिकों की संख्या (परिवर्तनशील साधन) 2	कुल उत्पादन (TP) 3	औसत उत्पादन (AP) 4	सीमान्त उत्पादन (MP) 5	उत्पादनकी अवस्था (Stage)
1	1	8	8	8	I (वृद्धमान प्रतिफल)
1	2	20	10	12	
1	3	36	12	16	
1	4	48	12	12	II (स्थिर प्रतिफल)
1	5	55	11	7	
1	6	60	10	5	
1	7	60	8.57	0	III (ह्रासमान प्रतिफल)
1	8	56	7	–4	

स्पष्ट रूप में घटते उत्पादन का बिन्दु, कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन के लिए एक ही नहीं होता। सीमान्त उत्पादन पहले घटने लगता है, औसत उत्पादन उसके बाद और अन्त में कुल उत्पादन घटता है। इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि घटते प्रतिफल की प्रवृत्ति अन्ततः तीनों उत्पादकता सिद्धान्तों में पाई जाती है।परिवर्तनशील अनुपात के नियम को चित्र 8.1 में दर्शाया गया है। पहले TP वक्र बढ़ती दर से बिन्दु A तक ऊपर की ओर बढ़ता है, जहां इसकी ढलान सबसे अधिक रहती है। बिन्दु A के बाद कुल उत्पादन घटती दर से बढ़ता है, जब तक कि यह उच्चतम बिन्दु C तक नहीं पहुंच जाता है, और फिर यह से यह गिरना

शुरू कर देता है। TP वक्र पर स्थित बिन्दु A को मोड बिन्दु कहते है जहॉ तक कुल उत्पादन में बढती दर से वृद्धि होती है और इस बिन्दु के पश्चात यह घटती दर से वृद्धि करना आरम्भ कर देता है। TP के साथ सीमान्त उत्पादन MP तथा औसत लागत उत्पादन AP वक्र भी लगातार बढते है जब TP की ढाल A बिन्दु पर अधिकतम होती है तो MP वक्र भी अपने अधिकतम बिन्दु D पर पहुॅच जाता है और उसके बाद गिरना आरम्भ करते है। AP वक्र पर अधिकतम बिन्दु E है जहॉ यह MP वक्र कटाता है। जब TP वक्र अपने अधिकतम बिन्दु C पर पहुंच जाता है तो बिन्दु F पर MP शून्य हो जाता है, और जब TP गिरना आरम्भ कर देता है अबMP ऋणात्मक हो जाता है।

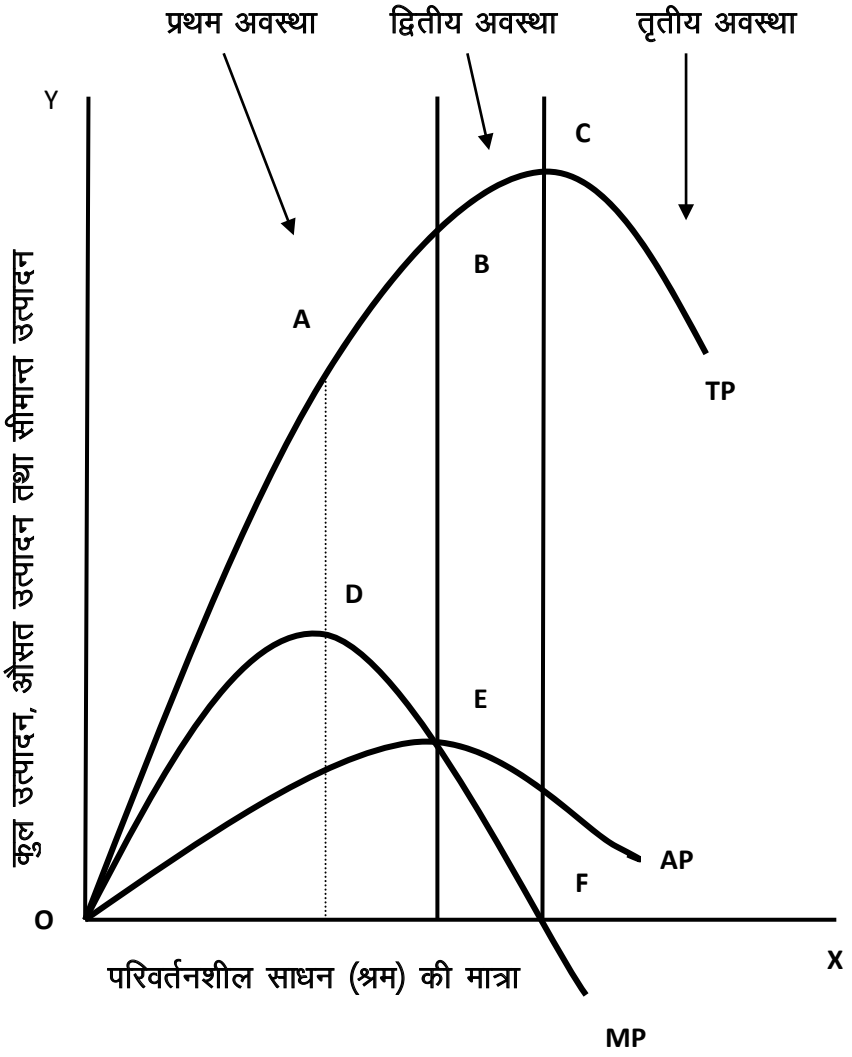

चित्र (8.1) परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीन अवस्थाएँ

कुल, औसत और सीमान्त उत्पादन के बढ़ते घटते और ऋणात्मक पक्ष वास्तव में परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन अवस्थाएँ व्यक्त करते हैं। बढ़ते प्रतिफल की अवस्था अथवा पहली अवस्था में, औसत उत्पादन अधिकतम और सीमान्त उत्पादन के बराबर पहुंच जाता है।

इस अवस्था को चित्र में मूल बिन्दु O से E बिन्दु तक व्यक्त किया गया है, जहां MP और AP वक्र मिलते हैं। इसमें TP वक्र भी तेजी से बढ़ता है। इस प्रकार इस अवस्था का सम्बंध बढ़ते प्रतिफल की अवस्था से है। यहां लगाए गए श्रमिकों के अनुपात में भूमि बहुत अधिक है इसलिए इस अवस्था में भूमि पर खेती करना लाभदायक नहीं है।

1. **प्रथम अवस्था (बढ़ते प्रतिफल की अवस्था) :–** प्रारम्भ में जब श्रम की इकाईयों को बढाया जाता है तो स्थिर साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग होने लगता है। क्योंकि परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन (भूमि) की मात्रा अधिक होती है। जिससे परिवर्तनशील साधन (श्रम) की मात्रा बढ़ाने से स्थिर साधनों का गहन तथा पूर्व प्रयोग होता है। जैसे–जैसे परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाईयाँ जोड़ी जाती है स्थिर साधन की कार्यक्षमता भी बढ़ती जाती है और MP बढ़ता है जिससे TP बढती दर से बढ़ता है अतः प्रारम्भ में TP, AP तथा MP तीनों बढ़ते है जैसे तालिका में श्रम की तीसरी इकाई के प्रयोग से TP, MP तथा MP में वृद्धि दर्शाई गयी है। TPO से F बिन्दु तक MP में वृद्धि के कारण तेजी से बढ़ता है। जबकि F बिन्दु के बाद MP में गिरावट के कारण यह दर कम हो जाती है। F बिन्दु सेTP वक्र घटती दर से बढ़ाना शुरू हो जाता है। इसीलिए इसे मोड बिन्दु ¼Inflection Point½ कहते है। इस बिन्दु के ठीक नीचे MP अधिकतम होता है। प्रथम अवस्था तब समाप्त होती है जब AP वक्र उच्चतम बिन्दु पर होता है ओर जहां पर MP = AP होता है। रेखाचित्र में इस स्थिति को E बिन्दु द्वारा व्यक्त किया गया है। इस अवस्था को बढ़ते हुए औसत उत्पादन अवस्था या बढ़ते प्रतिफल का नियम कहा जाता है।इस नियम की प्रथम अवस्था में बढ़ते हुए प्रतिफल का मुख्य कारण यह है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की अपेक्षा स्थिर साधन की मात्रा अधिक होती है। जब स्थिर साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयों को लगाया जाता है तो स्थिर साधनों का अधिक गहन प्रयोग होता है जिससे उत्पादन तेजी से बढ़ता है इसी तथ्य को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है कि प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की पर्याप्त इकाइयां न लगने से स्थिर साधन का अधिकतम प्रयोग नहीं होता परन्तु जब परिवर्तनशील साधन की उचित मात्रा में इकाइयां लगाई जाती है। तो श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के कारण प्रति इकाई उत्पादन में वृद्धि होती है और बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू होता है। बढ़ते प्रतिफल का एक कारण यह भी होता है कि स्थिर साधन अविभाज्य होता है जिसका अभिप्राय यह है कि वह एक निश्चित न्यूनतम आकार में अवश्य प्रयोग किया जाए। जब ऐसे स्थिर साधन पर परिवर्तनशील साधन की अधिक इकाइयां लगाई जाती है, तो उत्पादन अनुपात से अधिक बढ़ता है। ये कारण बढ़ते प्रतिफल के नियम की ओर संकेत करते हैं।

2. **द्वितीय अवस्था (घटते प्रतिफलकी अवस्था) :–** इसके पश्चात प्रथम अवस्था के समाप्त होते होते स्थिर साधन अपनी पूर्ण क्षमता पर कार्य करने लगते हैं। इसके उपरांत अब जब परिवर्तनशील साधन अर्थात श्रम में पुनः बढ़ाया जाता है तो स्थिर साधन की उत्पादकता स्थिर होने के कारण मात्र लागत बढ़ती जाती है और प्रतिफल घटने लगते हैं। जिससे MP तथा AP दोनों घटने लगते है लेकिन धनात्मक रहते है। जिस कारण TP घटती दर से बढ़ता है तालिका में चौथी से छठी इकाई तक इसी स्थिति को दर्शाया गया है। चित्र में TP के C बिन्दु तथा MP के F बिन्दु तक यही स्थिति है। जब C बिन्दु पर TP अधिकतम तथा F बिन्दु पर MP शून्य हो जाता है। एक उत्पादक के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इस अवस्था में रह कर ही उत्पादक को उत्पादन करना होता

है। इस अवस्था को 'घटते प्रतिफल की अवस्था' या 'घटती सीमान्त व औसत उत्पादन की अवस्था' कहा जाता है। क्योंकि इसमें MP तथा AP दोनों घटते है।

3. तृतीय अवस्था (ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था) :– जब अन्य साधनों को स्थिर रखते हुए परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा में और वृद्वि की जाती है तो एक ऐसी अवस्था आती है। जब TP घटने लगता है और MP ऋणात्मक हो जाता है। इस अवस्था में परिवर्तनशील साधन की इकाईयां स्थिर साधन की तुलना में अधिक हो जाती है जिससे वह एक–दूसरे के काम में बाधा डालने लगती है। जिसके फलस्वरूप TP बढ़ने के स्थान पर घटने लगता है। तालिका में सातवीं तथा आठवीं श्रम इकाई के प्रयोग से सही स्थिति उत्पन्न हो गई है। जिससे TP नीचे की और झुकता है और MP X अक्ष के नीचे जाकर ऋणात्मक हो गया है। इस अवस्था को 'ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था' कहा जाता है। क्योंकि इसमें परिवर्तनशील साधन का सीमान्त उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। इसलिए एक विवेकशील उत्पादक इस अवस्था में उत्पादन करना पसन्द नहीं करेगा।

एक उत्पादक किस अवस्था में उत्पादन कार्य करेगा ? कोई भी उत्पादक प्रथम अवस्था में उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि इस स्थिति में परिवर्तनशील साधन श्रम का TP, AP तथा MP घनात्मक है, परन्तु स्थिर साधन का MP ऋणात्मक होता है। जिसकारण उत्पादक इस अवस्था को पसन्द नहीं करता। इसी प्रकार तृतीय अवस्था में परिवर्तनशील साधनश्रम का MP ऋणात्मक होने के कारण उत्पादक इसका भी चुनाव नही करेगा इस प्रकार उत्पादक प्रथम तथा तृतीय अवस्था को पसन्द नहीं करेगा।

वास्तव में एक विवेकशील उत्पादन द्वितीय अवस्था में उत्पादन करना पसन्द करेगा जिसमें MP धनात्मक है। जबकि MP और AP घट रहें है। क्योंकि इस अवस्था में स्थिर तथा परिवर्तनशील साधन की MP धनात्मक है। वास्तव में उत्पादक द्वितीय अवस्था के किस बिन्दु पर उत्पादन करने का निर्णय लेगा यह साधन की कीमतों पर निर्भर करता है। अतः द्वितीय अवस्था विवेकशील उत्पादक के निर्णय के क्षेत्र में व्यक्त करती है।

⟹**परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के कारण :–** परिवर्तनशील अनुपात के नियम के लागू होने के मुख्य कारण इस प्रकार है–

1. जब अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक परिवर्तनशील साधन श्रम की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो उत्पादन के साधनों के बीच का अनुकूलतम संयोग भंग हो जाता है जिस कारण कुल उत्पादन,औसतउत्पादन, तथा सीमांत उत्पादन घटने लगता है और परिवर्तनशील साधन में अधिक वृद्धि करने पर उसका सीमांत उत्पादन ऋणात्मक भी हो जाता है।

2. उत्पादन के एकसाधन को दूसरेसाधन के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। अर्थात् उत्पादन के सभी साधन एक दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते। इसीलिए किसी एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर एक – सीमा तक ही प्रयोग में लाया जा सकता है। इसी कारण से एक अवस्था के बाद उत्पादन घटने लगता है।

3. प्रायः स्थिर साधन अविभाज्य स्वरूप के होते है। जिनकी एक निश्चित मात्रा का प्रयोग किया जाता है। प्रथम अवस्था में जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा बढाई जाती है, तो अविभाज्य स्थिर साधन का पूर्ण उपयोग होता

है जिसकारण उत्पादन तीव्र गति से बढ़ता है और यह वृद्धि इन साधन के अधिकतम उपयोग तक जारी रहती है। इसके बाद उत्पादन घटने लगता है क्यों अविभाज्य साधन का अनुकूलतम् अधिकतम प्रयोग किया जा चुका होता है।

8.4.4 परिवर्तनशील अनुपात नियम का महत्व

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम इस तथ्य की व्याख्या करते है कि सीमान्त भौतिक उत्पादन यदि प्रारम्भ में बढ़ भी रहा हो तो अन्ततः घटता है। मार्शल के समय यह समझा जाता था कि उत्पादन के बढ़ते प्रतिफल, स्थिर–प्रतिफल तथा घटते पूर्णतया भिन्न अथवा एक दूसरे से अलग–अलग नियम होते है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि बढ़ते स्थिर तथा घटते प्रतिफल अलग–अलग न होकर ''परिवर्तनशील अनुपातों के नियम'' की ही तीन अवस्थाएँ है। मार्शल का यह भी मानना था कि स्थिर एवं बढ़ते प्रतिफल विनिर्माण उद्योग में लागू होते है जबकि घटते प्रफिल कृषि क्षेत्र में लागू होता है। लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों विशेषकर श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार परिवर्तनशील अनुपात के नियम सभी क्षेत्रों पर लागू होते है। एक उत्पादक की दृष्टि से द्वितीय अवस्था अर्थात घटते प्रतिफल की अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए इस नियम की व्यावहारिकता ने अर्थशास्त्र को विज्ञान के क्षेत्र में पहुँचा दिया है। विक्स्टीड के अनुसार घटते प्रतिफल का नियम उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम। यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है। जो अर्थशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों का आधार है।माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त बताता है, कि जनसंख्या खाद्यानों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है। क्योंकि घटते प्रतिफल के नियम की क्रियाशीलता के कारण खाद्यान धीमी गति से बढ़ते है। इसी प्रकार उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती हुई होती है।

- **रिकार्डों का लगान सिद्धान्त** भी इसी नियम पर आधारित है। क्योंकि इस नियम की क्रिया"ीलता के कारण ही भूमिपति घटिया भूमि का प्रयोग प्रारम्भ करता है। जिससे लागत बढ़ती है। गहन खेती में भी भूमि की नि"चत मात्रा पर अधिक श्रम व पूंजी की मात्राओं को लगाने से उत्पादन उसी अनुपात में नहीं बढ़ता क्योंकि घटते प्रतिफल प्राप्त होने लगते है।

यह नियम मात्र कृषि पर ही लागू नहीं होता बल्कि खनन, महती पालन, मकान निर्माण इत्यादि सभी उत्पादन क्षेत्रों में लागू होता है। अतः इसे एक सार्वभौमिक नियम कहा जाता है। घटते प्रतिफल के नियम अल्पविकसित देशों की समस्याओं को समझने में सहायक है। ऐसे देशों में मुख्य व्यवसाय कृषि है। लेकिन जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि में अधिकाधिक लोग काम करते है। जबकि भूमि की मात्रा स्थिर रहती है। जिसमें श्रम की सीमान्त उत्पादकता घट जाती है और यदि यह प्रक्रिया जारी रहे तो श्रम की MP शून्य या ऋणात्मक भी हो जाती है।घटते प्रतिफल के नियम बहुत से अविष्कारों के लिए उत्तरदायी है। क्योंकि इस नियम को क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए ही उत्पादन की नयी–नयी विधियों की खोज की गई है और आज भी इस नियम की क्रियाशीलता को लम्बे समय तक रोकने के लिए नयी–नयी खोज की जा रही है।

इस प्रकार हम देखते है कि एक उत्पादक को उत्पादन प्रक्रिया के दौरान तीन महत्वपूर्ण अवस्था का सामना करना पड़ सकता है और एक कुशल उत्पादक का

यह प्रयास रहता है कि वह द्वितीय अवस्था में रहते हुए उत्पादन कार्य सम्पन्न करें।

बोध प्रश्न ब

1. **परिवर्तनशील अनुपात के नियम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. **परिवर्तनशील अनुपात के नियम की द्वितीय अवस्था से आप क्या समझते है ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

3. **परिवर्तनशील अनुपात नियम की व्यावहारिकता को स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

4. **परिवर्तनशील अनुपात नियम के महत्व को समझाइये ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

5. **निम्नलिखित में सही और गलत का चुनाव कीजिए।**

I. जब औसत उत्पादन अधिकतम होता है तो सीमान्त उत्पादन के बराबर होता है।

II. प्रो0 मार्शल के अनुसार उत्पादन ह्रास नियम केवल कृषि क्षेत्र में लागू होता है ।

III. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की प्रथम अवस्था वहाँ समाप्त होती है जहाँ TP अधिकतम होता है।

IV. ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था में परिवर्तनशील साधन की MP ऋणात्मक होती है।

V. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की तीसरी अवस्था में AP ऋणात्मक होता है।

VI. प्रथम अवस्था में मोड बिन्दु के बाद TP वक X अक्ष के प्रति अवनतोदर (अवतल) हो जाता है।

VII. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम केवल बढ़ते प्रतिफल को प्रदर्शित करता है।

VIII. परिवर्तनशील अनुपात के नियम का सम्बंध अल्पकाल से है।

IX. ह्रासमान प्रतिफल के नियम के अनुसार परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि करने के साथ–साथ उत्पादन में वृद्धि होना बन्द हो जाता है ।

X. परिवर्तनशील अनुपात का नियम हमें उस स्थित के बारे में बताता है जब उत्पादन की मात्रा में वृद्धि केवल परिवर्तनशील साधनों की मात्रा बढ़ाकर की जाती है।

XI. उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने का मुख्य कारण साधनों की अविभाज्यकता है।

XII. वर्तमान प्रतिफल की अवस्था का अर्थ है घटती हुई लागतों का पाया जाना है।

8.5 सारांश

उत्पादनउपयोगिता सृजन और मूल्य सृजन की सम्मिलित प्रक्रिया है।उत्पादन प्रक्रिया में इन उत्पादन के साधनों को एक निश्चित अनुपात में दी गई उत्पादन की तकनीक के अनुसार अनुसार मिलाते है तो जो आगत प्राप्त होती है, उसे हम उत्पादन के नाम से पुकारते है।साधनों तथा उत्पादन में ये भौतिक अथवा तकनीकी संबंध ही उत्पादन के सिद्धांत का विषय है।उत्पादन का सिद्धान्त एक दी हुई तकनीक में निश्चित उत्पादन मात्रा के लिए विभिन्न साधनों के संयोागें की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। साथ ही यह फर्म, फर्म के साधनों तथा उसके मांग का भी विश्लेषण करता है। एक फर्म के साधनों तथा उसके उत्पादन के बीच तकनीकी सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते है। उत्पादन फलन आगतो तथा निर्गतों की मात्राओं के फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। उत्पादन फलन यह भी बताता है कि निर्गत (उत्पादन) की दी हुई मात्रा को उत्पादित करने के लिए आगतों (साधनों) की कितनी मात्राओं की जरूरत होगी। यह एक दिये हुए समय के लिए उत्पादन की मात्रा तथा उत्पत्ति के साधनों में भौतिक सम्बन्ध में बताता है। जब उत्पादन में वृद्धि करनी हो तो उत्पादन के साधनों में वृद्धि करनी पड़ती है। जब एक परिवतर्नशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है। तो उसका उत्पादन पर जो प्रभाव पड़ता है उसे परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के नाम से जाना जाता है। परिवर्तनशील अनुपात का नियम यह है, ''अन्य आगतों की मात्रा को स्थिर रखकर जब एक परिवर्तनशील आगत की मात्रा को समान मात्रा में

लगातार बढ़ाया जाता है, तो कुल उत्पादन बढ़ता है, परन्तु एक निश्चित सीमा के बाद घटती दर पर। दूसरे शब्दों में अपरिवर्तनशील साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए जब परिवर्तन साधनों की और अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, तो एक ऐसा बिन्दु आता है जिसके बाद पहले सीमान्त उत्पादन, फिर औसत उत्पादन और अन्त में कुल उत्पादन घटने लगता है।'' इसलिए इस प्रथम अवस्था का बढ़ते औसत उत्पादन या बढ़ते प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है। इसके बाद, जब और उत्पादन किया जाता है तो औसत उत्पादन गिरने लगता है, और कुल उत्पादन भी घटती दर से बढ़ता है। सीमांत उत्पादन पहले ही घटने लगता है। इस अवस्था को 'घटते प्रतिफल की अवस्था' या 'घटती सीमान्त व औसत उत्पादन की अवस्था' कहा जाता है। क्योंकि इसमें सीमांत उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों घटते है।अब अगर श्रम की और इकाईयों का प्रयोग किया जाता है तो कुल उत्पादन भी गिरने लगता है और सीमांत उत्पादन ऋणात्मक हो जाता है। यह अवस्था घटते कुल उत्पादन या ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था कहलाती है। इस प्रकार हम देखते है कि एक उत्पादक को उत्पादन प्रक्रिया के दौरान तीन महत्वपूर्ण अवस्था का सामना करना पड़ सकता है और एक कुशल उत्पादक का यह प्रयास रहता है कि वह द्वितीय अवस्था में रहते हुए उत्पादन कार्य सम्पन्न करें।

यह अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम है जो माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त, रिकार्डो के लगान सिद्धान्त, वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त तथा अनेक अविष्कारों का आधार है।

8.6 उपयोगी शब्दावली

- **कुल उत्पाद** :– किसी परिवर्तनशील साधन के एक निश्चित इकाईयों के प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है। उसे कुल उत्पादन कहते है।
- **सीमान्त उत्पाद** :– साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन होने वाली वृद्धि।
- **औसत उत्पाद** :–कुल उत्पादन में परिवर्तनशील साधन की कुछ इकाईयों से भाग देने से प्राप्त होता है।
- **उत्पादन फलन**:–आगत और निर्गत के मध्य का तकनीकी सम्बंध।
- **अनुपात में परिवर्तन**:– उत्पादन फलन में एक साधन परिवर्तनशील परन्तु अन्य सभी साधन स्थिर।
- **पैमाने में परिवर्तन**:–उत्पादन फलन में सभी साधन परिवर्तनशील।
- **मोड़ का बिन्दु** :–वह बिन्दु जहां से सीमान्त लागत घटने लगती है।
- **साधन की अविभाज्यता** :– ऐसे साधन जिन्हें छोटी – छोटी इकाईयों (हिस्सों) में बाँटा नहीं जा सकता।
- **स्थानापन्न** :– एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का प्रयोग जैसे हल के स्थान पर टैक्टर का प्रयोग।

- **गहन खेती** :– गहन या सघन खेती, खाद्यान्न उत्पादन की वह विधि है। जिसमें सीमित भूमि पर अधिकाधिक श्रम और पूंजी की इकाईयाँ लगाकर उत्पादन बढाया जाता है।

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न अ

प्रश्न 4 I-उत्तर : ख II-उत्तर : ग III-उत्तर : ख

IV-उत्तर : क V-उत्तर : ख VI-उत्तरः क

बोध प्रश्न ब

प्रश्न 5. I-उत्तर : सही II-उत्तर : सही III-उत्तर : गलत

IV-उत्तर : सही V-उत्तर : गलत VI-उत्तर : गलत

VII-उत्तर : गलत VIII-उत्तर : सही IX-उत्तर : गलत

X-उत्तर : सही XI-उत्तर : सही XII-उत्तरः सही

8.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 उत्पादन फलन क्या है? इसकी सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न–2 उत्पादन फलन क्या है ? जब एक साधन के अनुपात में वृद्धि की जाती है, तो एक बिन्दु के बाद साधन की उत्पादकता कम हो जाती है, इस कथन की विवेचना कीजियें।

प्रश्न–3 उत्पत्ति ह्रास नियम परिवर्तनशील अनुपातों के नियम से किस प्रकार सम्बन्धित है ? व्याख्या और इसके महत्व पर प्रकाश डालियें।

प्रश्न–4 परिवर्तनशील अनुपात के नियम की विभिन्न अवस्थाएं कौन–कौन सी है? एक रेखाचित्र की सहायता से समझाए। इन अवस्थाओं के लागू होने के कारण बताइए।

प्रश्न–5 अनुपात एवं पैमाने में परिवर्तन के मध्य क्या अन्तर है? उत्पादन फलन के दृष्टिकोण से व्याख्या करें।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आहूजा, एच0 एल0, (2018),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. झिंगन, एम0 एल0 (2018), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, मयूर विहार, नई दिल्ली।
3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आगरा।

4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

5. सेठ, एम0 एल0 (2018) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

6. Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.

7. Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.

8. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

9. स्टोनियर एण्ड हेग,(2011)''ए टेक्सट बुक ऑफ इकोनोमिक आक्सफोर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

10. सेन, ए (1999), माइक्रोइकोनॉमिक्स, थियरी एण्ड अप्लीकेशन्स, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

11. लॉयरड, पी0आर0जी0 एण्ड, ए, डब्ल्यू0 वालटरस (1978) माइक्रो इकोनॉमिक थियरी मैग्राहिल, नई दिल्ली।

इकाई : 09 उत्पादन फलन-II

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 समोत्पाद वक्र–अर्थ एवं परिभाषा

9.2.1 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

9.2.2 समोत्पाद वक्र की मान्यताएं

9.2.3 समोत्पाद वक्र की विशेषताएं

9.2.4 समोत्पाद वक्र मानचित्र

9.3 सम–लागत अथवा समान लागत रेखा

9.4 साधनों का अनुकूलतम संयोग

9.5 पैमाने के प्रतिफल का नियम

9.5.1 पैमाने का बढ़ता प्रतिफल

9.5.2 पैमाने का स्थिर प्रतिफल

9.5.3 पैमाने का घटता प्रतिफल

9.5.4 पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के कारण

9.6 पैमाने की बचतें

9.7 पैमाने की हानियॉ

9.8 सारांश

9.9 उपयोगी शब्दावली

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि :–

- समोत्पाद वक्र की धारणा क्या है।
- समोत्पाद वक्र की विशेषताओं से अवगत हो पायेंगे।
- सम लागत वक्र को जान पायेंगे।

- तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर को जान सकेंगे।
- साधनों के न्यूनतम लागत संयोग के सिद्धान्त की विवेचना कर सकेंगे।
- पैमाने में परिवर्तन से कैसे प्रतिफल प्राप्त होते हैं।
- पैमाने के प्रतिफल की तीन अवस्थाओं को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व की इकाई में आप उत्पादन,उत्पादन फलन औरउत्पादन के सिद्वांत से सम्बंधित विभिन्न धारणाओं का अध्ययन कर चुके हैं। आपने देखा कि उत्पादन फलन एक तकनीकी धारणा है जो आगतों व निर्गत के मध्य के भौतिक सम्बन्धों को व्यक्त करता है। अल्पकाल में उत्पादन फलन में स्थित सभी साधनों में एक साथ परिवर्तन सम्भव नहीं होता। वस्तुतः अल्पकाल में कुछ साधन स्थिर रहते हैं तथा कुछ में ही परिवर्तित होते हैं। अर्थशास्त्री इसे साधनों के अनुपातों में परिवर्तन की संज्ञा देते हैं। परन्तु दीर्घकाल में समय पर्याप्त होता है तथा उत्पादन फलन में उपस्थित सभी साधनों को एक साथ बढ़ाया या घटाया जा सकता है। इसे अर्थशास्त्री पैमाने में परिवर्तन की संज्ञा देते हैं।

प्रस्तुत इकाई में दो परिवर्तनशील साधनों का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण सम–उत्पादन वक्रों की सहायता से किया जायेगा। साथ ही सम–उत्पादन वक्रों की विशेषताओं, तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर सहित पैमाने में परिवर्तन का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करेंगे। पैमाने के प्रतिफलों का अध्ययन करने के लिए हमें कुछ नए आर्थिक उपकरणों जैसे समोत्पाद वक्र मानरेखाचित्र ,सम–लागत अथवा समान लागत रेखा ,साधनों का अनुकूलतम संयोग, विस्तार पथ इत्यादि की आवश्यकता होगी। अतः अध्याय के प्रारम्भ में हम इन धारणाओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

9.2 समोत्पाद वक्र –अर्थ एवं परिभाषा

समोत्पाद वक्र मांग सिद्धान्त के अनधिमान वक्र की भांति होता है। जिस प्रकार अनधिमान वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, ठीक उसी प्रकार ''समोत्पाद वक्र उत्पत्ति के किन्हीं दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिनसे उत्पादन की एक समान मात्रा प्राप्त की जा सकती है।'' समान उत्पादन प्राप्ति के कारण उत्पादक संयोगों के चुनाव के प्रति उदासीन रहता है इसलिए समोत्पादन वक्रों को उत्पादन तटस्थता वक्र कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे Iso-Product Curves तथा Equal Product Curves भी कहते है।

- **प्रो0 कोहन एवं सीयर्ट के अनुसार** – एक सम उत्पाद वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्त दर स्थिर होती है।
- **प्रो0 कीरस्टेड के अनुसार** – 'सम – उत्पाद' वक्र दो साधनों के उन सभी सम्भावी संयोगों को व्यक्त करते हैं जिनसे एक–समान कुल उत्पादन प्राप्त होता है।

समोत्पादन वक्रों की धारणा को तालिका 9.1 द्वारा भली भांति समझा जा सकता है। यह मान लिया गया है कि किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए दो साधनों X साधन (श्रम) तथा Y साधन (पूंजी) का प्रयोग होता है। जो वस्तु की 100 इकाईयों का उत्पादन करती है। प्रारम्भ में संयोग A] जो श्रम की 1 तथा पूंजी की 17 इकाईयों से बना है संयोग A के द्वारा वस्तु की 100 इकाईयाँ उत्पादित होती है। तालिक के संयोग B, C, D, E तथा F भी समान उत्पादन अर्थात् 100 इकाइयाँ उत्पादित करते है।

तालिका 9.1 समोत्पादन तालिका

संयोग	X साधन (श्रम)	Y साधन (पूंजी)	कुल उत्पादन
A	**1**	**17**	**1 x + 17 y = 100**
B	**2**	**12**	**2 x + 12 y = 100**
C	**3**	**8**	**3 x + 8 y = 100**
D	**4**	**5**	**4 x + 5 y = 100**

अब यदि इन संयोगों को एक रेखारेखाचित्र के माध्यम से व्यक्त करें तो हमें समोत्पाद वक्र प्राप्त होगा।रेखारेखाचित्र (9.1) में एक सम–उत्पादन वक्र (IP) है। जो A, B, C, D, E तथा F संयोगों से मिलकर बना है। जो एक समान कुल उत्पादन को प्रदर्शित करते है।अब यदि इन संयोगों को एक रेखारेखाचित्र के माध्यम से व्यक्त करें तो हमें समोत्पाद वक्र प्राप्त होगा। Y

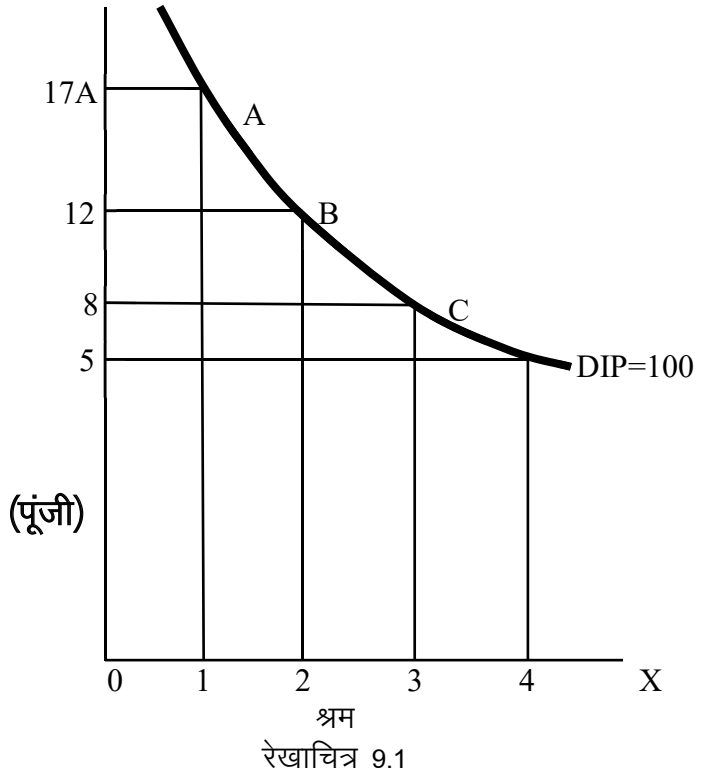

रेखाचित्र 9.1

रेखाचित्र में OX अक्ष पर श्रम की इकाइयां और OY अक्ष पर पूंजी की इकाइयां प्रदर्शित की गई है। A, B, C, D बिन्दु पूंजी और श्रम के विभिन्न समान उत्पादन

संयोगों को व्यक्त करते हैं। A बिन्दु पर उत्पादक 1 श्रमिक तथा पूंजी की 17 इकाइयों से जितना उत्पादन (100 क्विंटल गेहूँ) प्राप्त करता है, उतना ही उत्पादन B बिन्दु पर दो श्रमिक व पूंजी की 12 इकाइयों से प्राप्त करता है अथवा उतना ही उत्पादन उसे C बिन्दु पर 3 श्रमिक व पूंजी की 8 इकाइयों अथवा D बिन्दु पर 4 श्रमिक व पूंजी की 5 इकाइयों से मिलेगा। यदि हम A, B, C, D बिन्दुओं को जोड़ दें तो हमें एक समोत्पाद वक्र (IP=100) मिल जाता है। इसका प्रत्येक बिन्दु उत्पादक को समान उत्पादन देता है। इसलिए उत्पादक विभिन्न संयोगों के प्रति उदासीन रहता है। अतः इसे उत्पादन की उदासीनता रेखा भी कह सकते हैं। अतः समोत्पादक वक्र दो उत्पत्ति के साधनों के अविभिन्न संयोग को प्रदर्शित करते हैं जो कि एक समान मात्रा का उत्पादन प्रदान करते हैं।

उपादन में वृद्धि हेतु जब उत्पादन के दो साधन परिवर्तनशील होते है। इसके अध्ययन के लिए समोत्पादन वक्र तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार दो परिवर्तनशील साधनों वाले उत्पादन फलन के समोत्पादन वक्रों के एक परिवार द्वारा दिखाया जा सकता है। समोत्पादन वक्र मांग सिद्धान्त के अनधिमान वक्र की तरह ही है। सम–उत्पादन या समोत्पादन वक्र विश्लेषण का विकास करने तथा उसका उत्पादन के क्षेत्र में प्रयोग करने का श्रेय प्रो0 फ्रिश, स्नीडर, हिक्स, कार्लसनं तथा बोल्डिंग को दिया जाता है।

जब एक रेखाचित्र में एक से अधिक समोत्पादन वक्रों को प्रदर्शित किया जाता है, तो उसे समोत्पादन मानरेखाचित्र कहते है। यह मानरेखाचित्र इस बात को स्पष्ट करता है कि दांये ओर का समोत्पादन वक्र बांये ओर के वक्र की तुलना में उत्पादन के ऊँचे स्तर को बताता है। जैसे रेखाचित्र (9.2) में प्रदर्शित किया गया है। जिसमें तीन समोत्पादन वक्र IP_1, IP_2, तथा IP_3, दर्शायें गये है जो क्रमशः 100, 200 तथा 300 इकाइयों के उत्पादन को दर्शाते है।

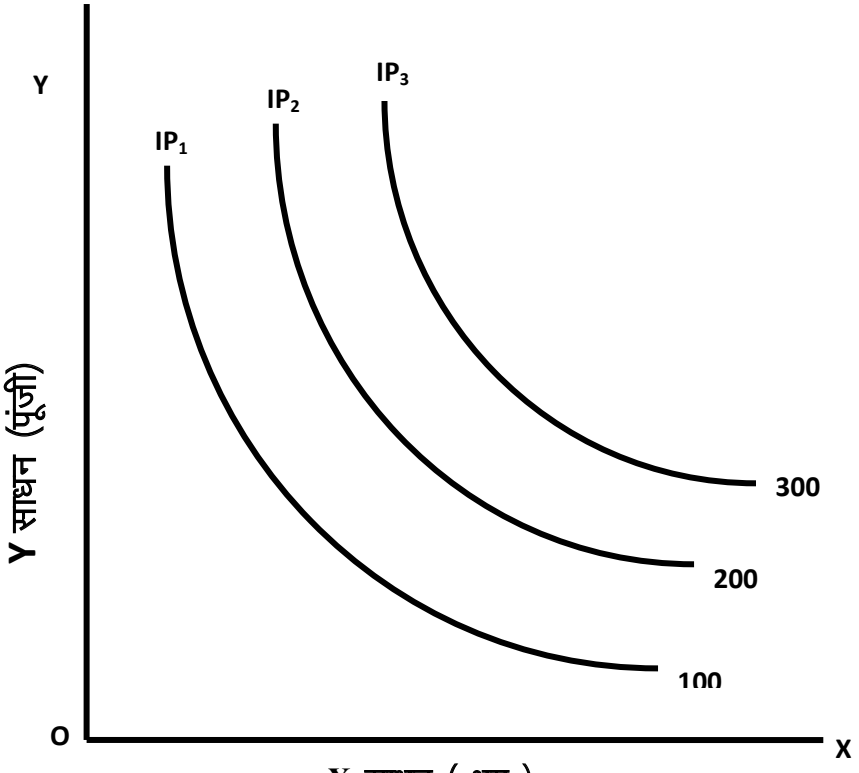

रेखाचित्र (9.2) समोत्पादन मानरेखाचित्र

9.2.1 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

उत्पादन सिद्धान्त के आधुनिक स्वरूप में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। उत्पादन की मात्रा कोई परिवर्तन नहीं होने की स्थिति में उत्पादन के किसी साधन विशेष को दूसरे साधन को प्रतिस्थापित करने की दर को तकनीकी प्रतिस्थापन दर कहते हैं। इसको प्रकार परिभाषित कर सकते हैं– ''साधन X की साधन Y के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का अर्थ है कि साधन X की एक अतिरिक्त इकाई साधन Y की कितनी इकाइयों को प्रतिस्थापित कर सकती है जिससे उत्पादन मात्रा पूर्ववत् रहे।'' सामान्यतया दो साधनों X और Y के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की दर की प्रवृति ह्रासमान होती है। इस सिद्धान्त का कथन इस प्रकार दिया जा सकता है– ''दो साधनों X तथा Y के संयोग में यदि एक साधन X की मात्रा बढ़ाई जाती है तो दूसरे साधन Y की मात्रा को घटाना पड़ेगा, ताकि कुल उत्पादन समान बना रहे। ऐसी स्थिति में साधन X की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को साधन Y की घटती हुई मात्राओं द्वारा प्रतिस्थापित किया जायेगा। इसको X की Y के तकनीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई अथवा ह्रासमान सीमान्त दर का सिद्धान्त कहा जाता है।''दो साधनों Y (पूंजी) तथा X (श्रम) में तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर ¼MRTS xy) वह दर है जिस का उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन किये बिना वस्तु उत्पादन में Y साधन के स्थान पर X साधन को प्रतिस्थापित किया जा सकता है। जिससे उत्पादन की मात्र समान बनी रहती है। इसे तालिका (9.2) से समझा जा सकता है।

तालिका (9.2) तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर

संयोग	X साधन (श्रम)	Y साधन (पूंजी)	कुल उत्पादन	MRTS xy
A	**1**	**15**	**1 x + 15 y = 100**	**-**
B	**2**	**10**	**2 x + 10 y = 100**	**5:1**
C	**3**	**6**	**3 x + 6 y = 100**	**4:1**
D	**4**	**3**	**4 x + 3 y = 100**	**3:1**
E	**5**	**1**	**5 x + 1 y = 100**	**2:1**

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के विषय में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि जैसे–जैसे पूंजी के लिए श्रम का प्रतिस्थापन किया जाता है, वैसे–वैसे श्रम की पूंजी के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर $\Delta Y/\Delta X$ घटती जाती है। अन्य शब्दों में, जैसे–जैसे Y साधन (पूंजी) के स्थान पर X साधन (श्रम) का उपयोग बढ़ाया जाता है तो Y साधन की इकाइयों की संख्या (जिनकी जगह पर X साधन की एक इकाई का प्रयोग हो सकता है) घटती जायेगी। तालिका से स्पष्ट है कि श्रम की पूंजी के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन दर क्रमशः 5:1, 4:1, 3:1 व 2:1 है अर्थात् श्रम की मात्रा के बढ़ने पर कम पूंजी का परित्याग किया जाता है। इसे 'तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त ह्रासमान दर का सिद्धान्त' कहते हैं।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है &X के लिए Y की तकनीकी प्रतिस्थापना की सीमान्त दर =

$$\frac{\text{Y साधन की मात्रा में परिवर्तन (कमी)}}{\text{X साधन की मात्रा में परिवर्तन (वृद्धि)}}$$

अथवा

$$\textbf{MRTSxy} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$$ जहां Δ = परिवर्तन की दर

जैसे – जैसे उत्पादक द्वारा साधन Y के स्थान पर साधन X का अधिक प्रयोग किया जाता । वैसे–वैसे Y साधन की इकाईयों की संख्या, जिसके स्थान पर X साधन की एक इकाई का प्रयोग हो सकता है, घटती जाती है। इसे ही घटती तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर का नियम कहते है।

9.2.2 समोत्पाद वक्रों की मान्यताएं

समोत्पाद रेखाओं की मुख्य मान्यताएं निम्नवत हैं :

1. इन रेखाओं को व्यक्त करते समय सरलता के लिए यह मान लिया जाता है कि मात्र दो साधन ही किसी वस्तु का उत्पादन करने में सक्षम हैं।
2. उत्पादन तकनीक की पहले से ही जानकारी है तथा वह अपरिवर्तनशील रहती है।
3. साधन को छोटे–छोटे भागों में विभाज्यशील है।
4. व्यक्त तकनीक के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों का अधिकतम कुशलता पूर्वक प्रयोग किया जाता है।

9.2.3 समोत्पाद वक्रों की विशेषताएं

समोत्पाद वक्र की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं :

1. समोत्पाद वक्र के सभी बिन्दु समान उत्पादन प्रदान करने वाली वस्तुओं के संयोगों को प्रदर्शित करते हैं। जैसा कि रेखारेखाचित्र (9.1) में स्पष्ट होता है।
2. समोत्पाद वक्र दायीं ओरनीचे झुका अर्थात ऋणात्मक ढाल वाला होता है। क्योंकि यदि साधन X श्रम की मात्रा बढ़ाई जाती है तो उत्पादन मात्रा स्थिर रखने के लिए Y साधन पूंजी की मात्रा घटानी पड़ती है। जैसा कि रेखारेखाचित्र (9.3) में स्पष्ट होता है।

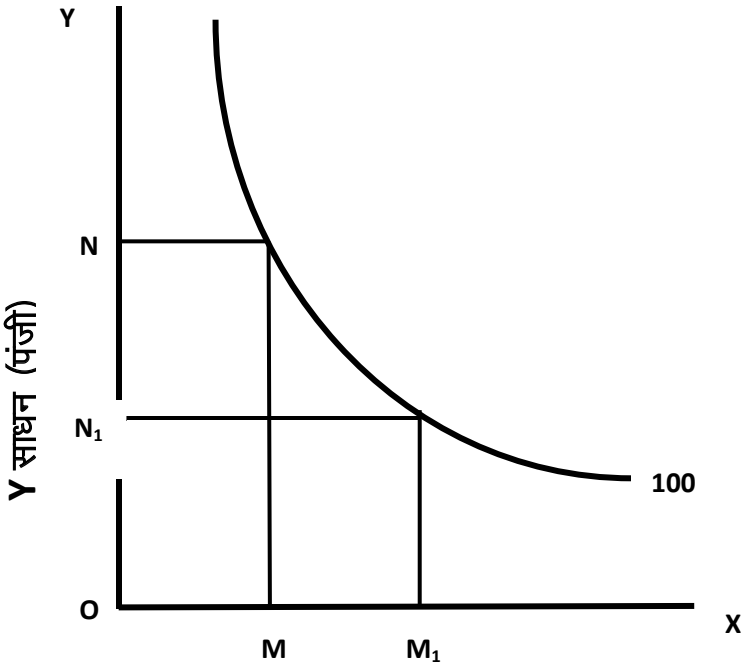

चित्र (9.3)समोत्पादन वक्र का ऋणात्मकढाल

3. समोत्पाद वक्र का ढाल बायें से दायें नीचे की ओर होता है अर्थात ऋणात्मक होता है। इसका आशय यह है कि एक फर्म यदि एक समान उत्पादन रखते हुए एक साधन का क्रय बढ़ाती है तो उसे दूसरे साधन की कम इकाइयों का प्रयोग करना पड़ेगा। जैसा कि रेखारेखाचित्र (9.4) में स्पष्ट होता है।

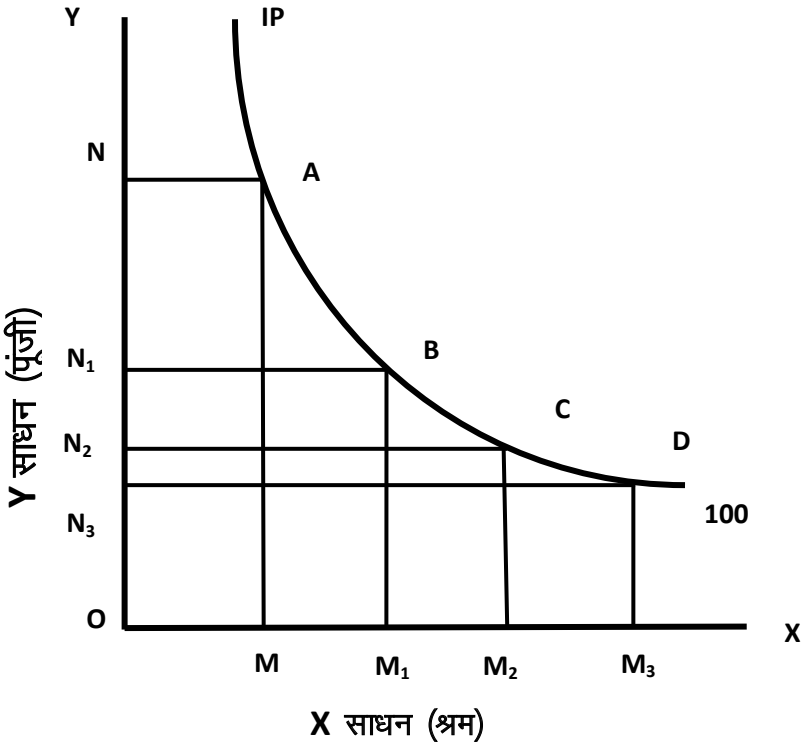

रेखाचित्र **9.4** समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर

4. समोत्पादन वक्र मूल बिन्दु से जितना दूर होता है अर्थात् दायीं ओर हटता जाता है वह उतनी अधिक उत्पादन मात्रा को प्रदर्शित करता है। जैसा रेखाचित्र (9.4) में प्रदर्शित किया गया है कि IP_2 IP_1 की तुलना में ऊँचे उत्पादन स्तर को दर्शाता है।

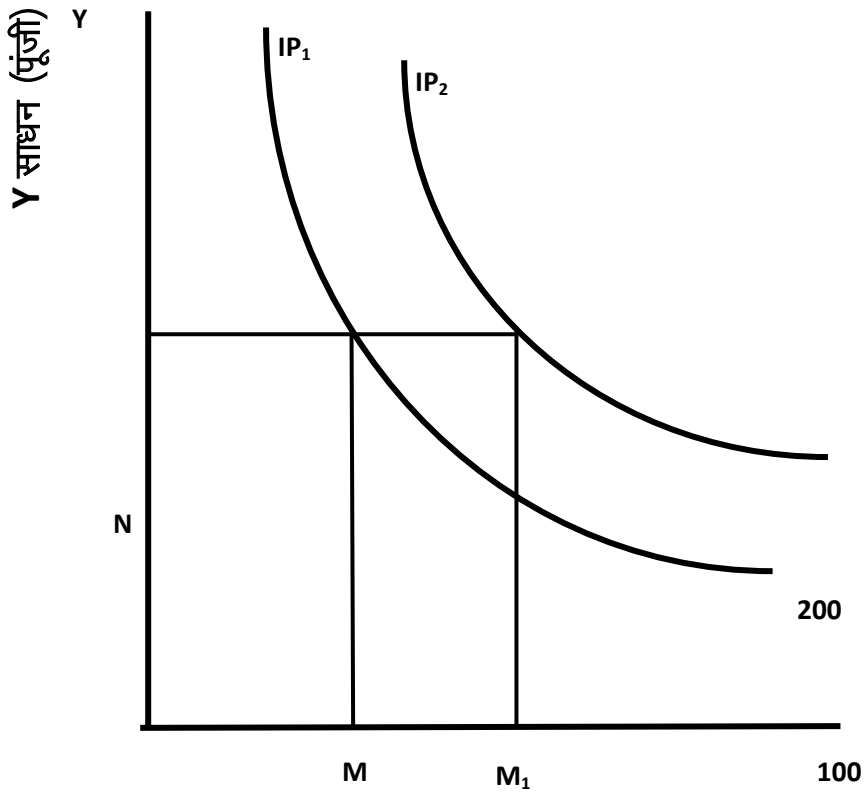

रेखाचित्र (9.4)दायीं ओर के समोत्पादन वक्र पर अधिक उत्पादन

6. **कोई दो समोत्पादन वक्र एक–दूसरों को काट नहीं सकते**– अलग– अलग समोत्पाद वक्र अलग– अलग उत्पादन के स्तर को प्रदर्शित करते हैं। सबसे नीचे का वक्र सबसे कम और सबसे ऊपर का वक्र सबसे अधिक उत्पादन प्रदान करने वाला होता है। यदि एक वक्र दूसरे वक्र को काटता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक ऊंचे समोत्पाद वक्र तथा एक नीचे समोत्पाद वक्र द्वारा एक समान उत्पादन मिलता है परन्तु यह सम्भव नहीं है।जैसा कि रेखाचित्र (9.6) में दिखाया गया है।

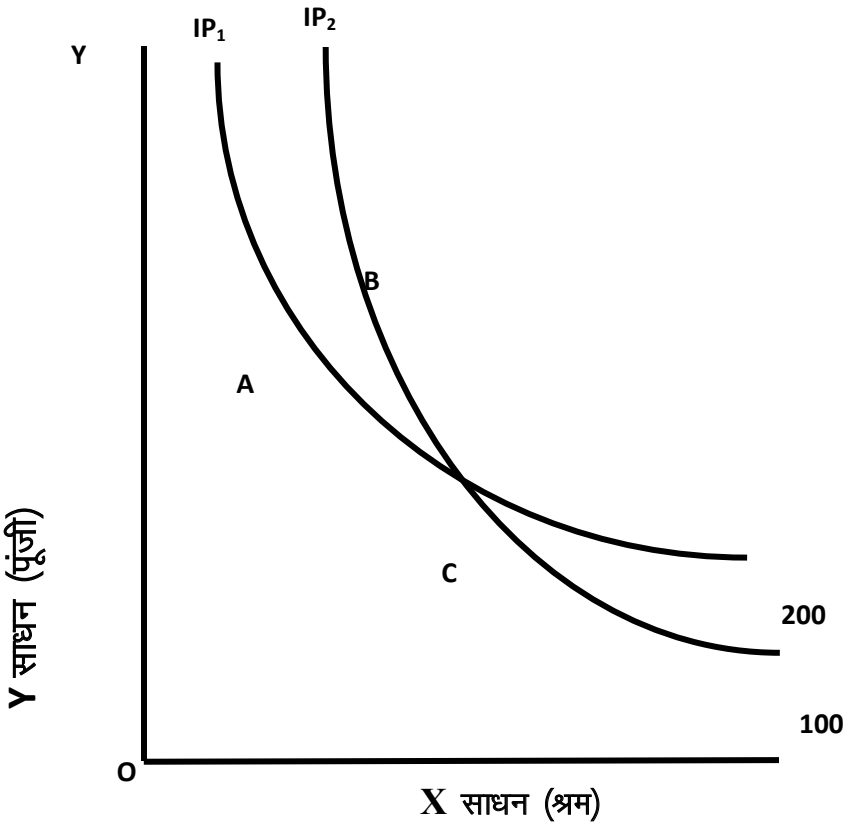

रेखाचित्र **(9.6)** समोत्पादन वक्र एक–दूसरों को काट नहीं सकते

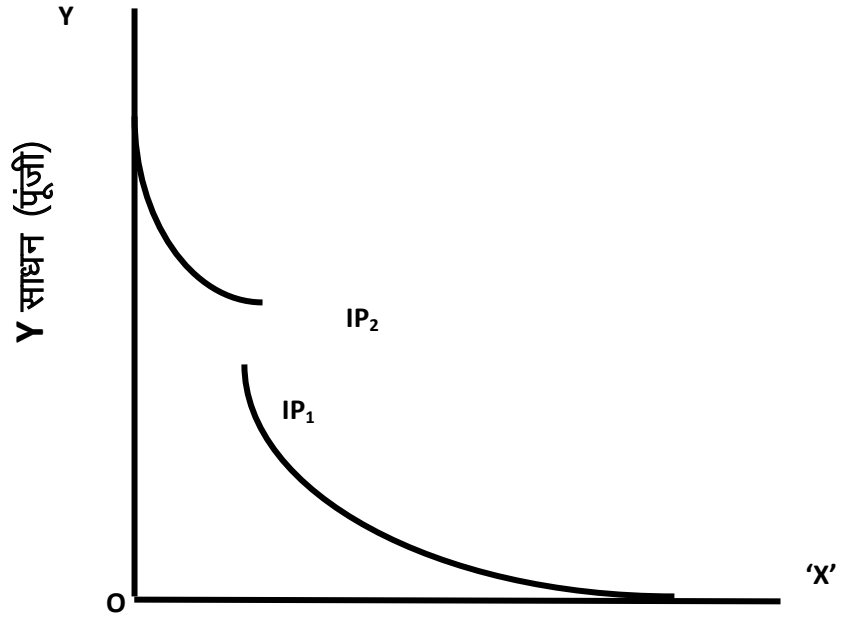

रेखाचित्र **(9.7)** समोत्पादन वक्र अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकता

7. **दो समोत्पाद वक्रों के बीच में अनेक समोत्पाद वक्र हो सकते हैं–** विभिन्न समोत्पाद वक्र (उत्पादन) के उन विभिन्न स्तरों को जो साधनों के विभिन्न संयोगों से प्राप्त होते हैं, प्रदर्शित करते हैं। दो समोत्पाद वक्रों 100 तथा 200 के बीच कई समोत्पाद वक्र हो सकते हैं, जैसे– 110, 115, 120, 135, 175, 180 इत्यादि।

8. **समोत्पाद वक्रों पर दिखाई गई उत्पादन इकाइयां कल्पित होती हैं–** समोत्पाद वक्रों पर उत्पादन की 100, 150, 200 इत्यादि इकाइयां कल्पित होती हैं।

9. **समोत्पादन वक्र रिज रेखाओं को अंकित करने में सहायक होते है–** समोत्पादन वक्र द्वारा फर्म के लिए उपयुक्त उत्पादन क्षेत्र का सीमांकन किया जा सकता है, अर्थात् उन सीमाओं का निर्धारण किया जा सकता है जिसमें उत्पादन करना फर्म के लिए लाभदायक होगा।

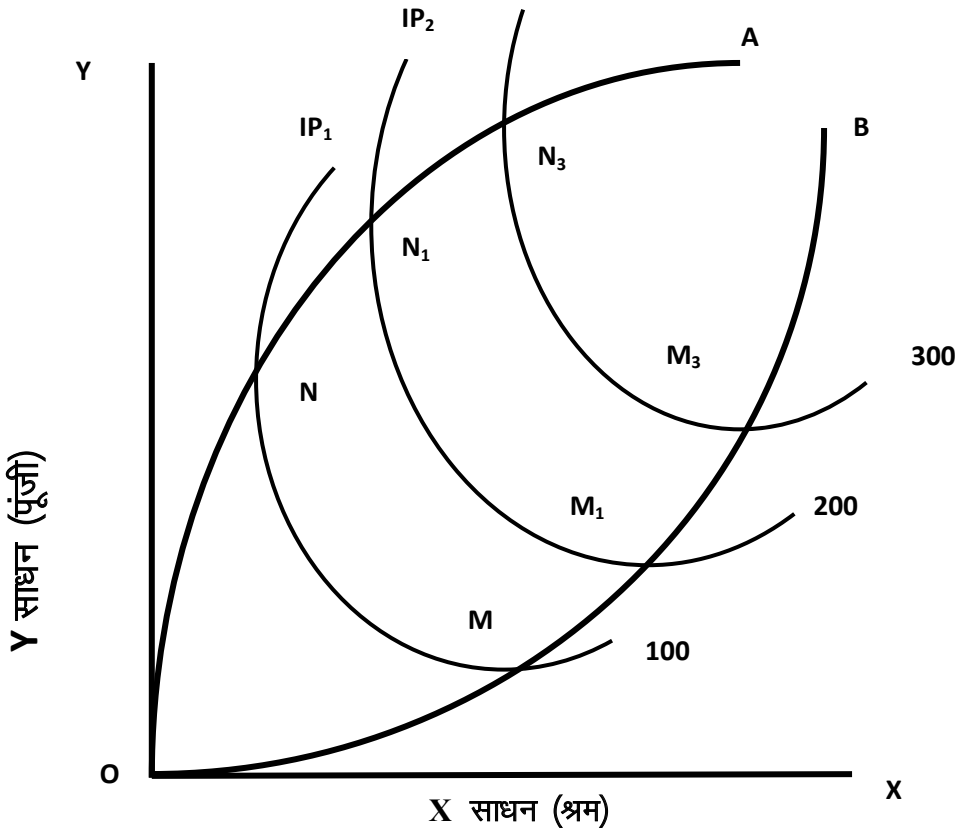

रेखाचित्र (9.8) समोत्पादन वक्र रिज रेखायें

जब उत्पादक आवश्यकता से अधिक श्रम या पूंजी या दोनों का प्रयोग करता है तो अन्त में कुल उत्पादन घट जाता है। जिससे समोत्पादन वक का आकार अण्डाकर हो जाता है। इस अण्डाकार वक्र का वह भाग जो मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है। वह कूट या रिज़ रेखाओं के बीच में स्थित होता है। वह उत्पादन का मितव्ययी क्षेत्र होता है। जैसा रेखाचित्र (9.8) में दर्शाया गया है। OA तथा OB रिज रेखाओं के भीतर का भाग समोत्पादन वक्र के उन्नतोदर हिस्सों के दर्शाता है और एक उत्पादक का उत्पादन क्षेत्र है, क्योंकि इस क्षेत्र में श्रम तथा पूंजी का सीमान्त उत्पादन धनात्मक है।

9.2.4 समोत्पाद–मानचित्र

जब एक उत्पादक के लिए एक नहीं बल्कि कई समोत्पाद वक्र दियें हो जैसे– 100 इकाई, 200 इकाई, 300 इकाई आदि। तो इन समोत्पाद वक्रों को एक ही रेखाचित्र के द्वारा व्यक्त किया जाता है, तब हम इसे समोत्पाद मानचित्र कहते हैं। समोत्पाद मानचित्र को रेखाचित्र 9.9 में दर्शाया गया है।

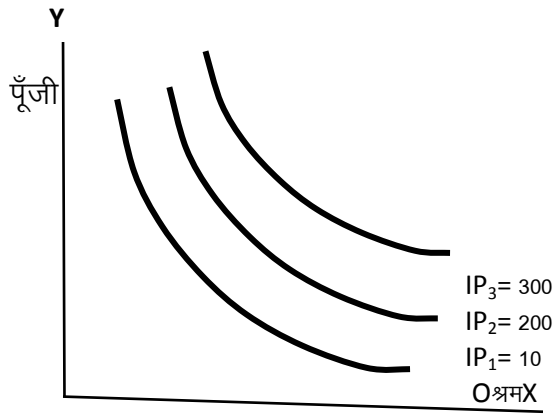

रेखाचित्र 9.9

9.3 सम–लागत अथवा समान लागत रेखा

समान लागत रेखा अथवा सम–लागत रेखा उत्पादन साधनों की कीमतों तथा कुल उपलब्ध मुद्रा जिसको उत्पादक साधन खरीदने पर व्यय करना चाहता है, के आधार पर व्यक्त की जाती है। मान लीजिए की उत्पादक 80 रू0 दो साधनों श्रम व पूँजी पर व्यय करना चाहता है और मान ले, श्रम की कीमत 1 रू0 और पूँजी की कीमत 2 रू0 प्रति इकाई है तो ऐसी स्थिति में उत्पादक के समक्ष उपलब्ध सम्भावनाओं को निम्न सारणी से स्पष्ट कर सकते हैं। :

तालिका 9.3 सम्भावित क्रय संयोग

संयोग	श्रमिक	पूँजी	कुल व्यय (लागत) श्रमिक + पूँजी
A	80	0	80 + 0 = 80
B	40	20	40 + 40 = 80
C	20	30	20 + 60 = 80
D	10	35	10 + 70 = 80
E	0	40	0 + 80 = 80

तालिका में दी गई वैकल्पिक सम्भावनाओं को रेखारेखाचित्र 9.10 में स्पष्ट किया गया है। AE रेखा समान लागत रेखा हे जो 80 रू0 की लागत द्वारा खरीदी जाने वाली श्रम और पूँजी के विभिन्न संयोगो को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिए, इस रेखा पर D बिन्दु यह बताता है कि दी हुई कीमतों पर उत्पादक 35 इकाई पूँजी व 10 श्रमिक खरीद सकता है अथवा C बिन्दु के अनुसार वह 30 इकाई पूँजी व 20 श्रमिक खरीद सकता है। समलागत रेखा एक उत्पादक की उपलब्ध मुद्रा राशि को दो साधनो पर व्यय करने की सम्भावनाओं को प्रदर्शित करती है। सम–लागत रेखा को कई अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जैसे साधन कीमत रेखा, व्यय रेखा अथवा फर्म की बजट रेखा।

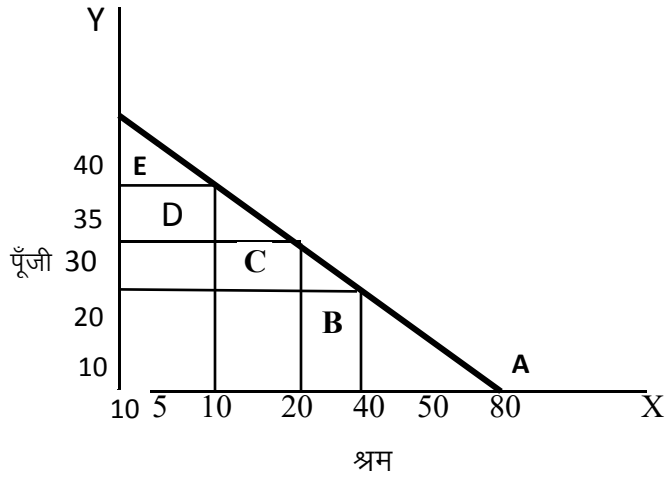

रेखाचित्र 9.10

एक सम लागत रेखा का ढ़ाल दोनों साधनों की कीमत अनुपात को व्यक्त करता है अर्थात् यहाँ पर इस रेखा का ढाल श्रमिको एवं पूँजी के अनुपात को व्यक्त करता है।सम–लागत रेखा का ढाल ऋणात्मक होता है। इसका कारण यह है कि यदि फर्म एक साधन को अधिक खरीदना चाहती है तो उसे दूसरे साधनों की कम मात्रा खरीदनी पड़ेगी।

9.4 साधनों का अनुकूलतम (न्यूनतम लागत) संयोग

उत्पादक का उद्देश्य साधनों के अनुकूलतम संयोग का चयन करना जिससे वह अपना लाभ अधिकतम प्रदान कर सके। अधिकतम लाभ अर्जित करने के लिए वह वस्तु का अधिकतम मात्रा का उत्पादन न्यूनतम लागत पर करना चाहता है। अथवा दूसरे शब्दों में वह साधनों के अनुकूलतम संयोग का चयन करना चाहेगा जो उसे अधिकतम लाभ प्रदान कर सके। एक उत्पादक के संतुलन को तीन मुख्य **शर्ते** होती है।

1. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र सम–लागत रेखा को स्पर्श करता है।
2. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र का ढ़ाल सम–लागत रेखा के ढाल के बराबर होता है।
3. सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पादन वक्र उन्नतोदर आकार का होना चाहिए।

उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए अनुकूलतम साधन संयोग हेतु दो स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। प्रथम, एक दिए हुए उत्पादन के लिए लागत को न्यूनतम करना और द्वितीय, एक दी हुई लागत के लिए उत्पादन को अधिकतम् करना।

1.लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई हो– जब उत्पादन की मात्रा दी रहती है तो उत्पादक उत्पादन को न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादित करने के लिए प्रयास करता है। इसी तथ्य को रेखाचित्र 9.11 की सहायता से समझाने का प्रयत्न किया गया है।

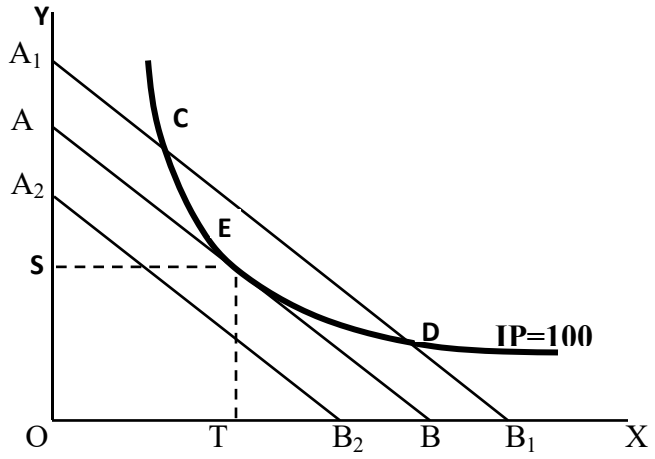

रेखाचित्र 9.11

रेखाचित्र में समोत्पाद वक्र IP उत्पादन की 100 इकाइयों के उत्पादनको व्यक्त करती है। वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन समोत्पाद वक्र IP पर स्थित किसी भी साधन संयोग, जैसे–C,E,D आदि किसी संयोग द्वारा किया जा सकता है। परन्तु संयोगE पर ही उत्पादनकर्ता का न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त होगा क्योंकि इस बिन्दु पर IPसमोत्पाद वक्र न्यूनतम सम्भावित सम–लागत वक्र AB को स्पर्श करता है। जबकि IPसमोत्पाद वक्र अन्य संयोग जैसे&C अथवा D का चुनाव करता है तो वस्तु की 100 इकाई का उत्पादन करने के लिए उस अधिक राशि व्यय करनी पड़ती। अतः कोई भी विवेकशील उत्पादक इन संयोगों का चुनाव नहीं करता। अतः E बिन्दु ही संतुलन का बिन्दु होगा,जहॉ एक उत्पादक को साधनों का न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त होता है।

2.उत्पादन अधिकतम करना, जबकि लागत व्यय दिया हुआ हो– एक उत्पादक का लागत व्यय दिए होने पर उसके सामने यह समस्या होती है कि इस दिये हुए लागत व्यय के अन्तर्गत वह अधिकतम उत्पादन कैसे प्राप्त करें। इस स्थिति में उत्पादक के लिए श्रम और पूंजी का सबसे अनुकूलतम संयोग उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ पर समलागत वक्र उच्चतम समउत्पाद वक्र को स्पर्श करता जैसाकि रेखाचित्र 9.12 में OX अक्ष पर श्रम को तथा OY अक्ष पर पूँजी को दिखाया गया है।

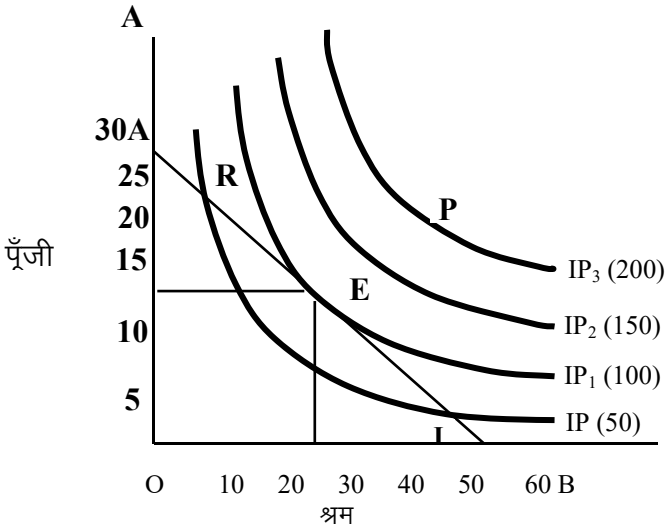

रेखाचित्र 9.11

एक उत्पादक वस्तु की 100 इकाइयां उत्पादित करना चाहता है जिसे वह IP_1समोत्पाद वक्र पर अंकित श्रम तथा पूंजी के संयोग के द्वारा प्राप्त कर सकता है। रेखाचित्र में AB सम–लागत रेखा है जिसेIP_1समोत्पाद वक्र E बिन्दु पर स्पर्श करता है। यह बिन्दु साधनों के अनुकूलतम संयोग का या उत्पादक का संतुलन बिन्दु है। संतुलन बिन्दु पर पूंजी की 15 इकाइयों और श्रम की 30 इकाइयों का उपयोग करके उत्पादक वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन कर लेता है। इस प्रकार उत्पादक का सन्तुलन बिन्दु E है।

बोध प्रश्न अ

5. **समोत्पाद वक्र से आप क्या समझतें हैं ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

6. **समोत्पाद वक्रों की विशेषताएँ को स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

7. **सम–लागत रेखा अवधारणा को समझाइये ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

8. **समोत्पाद–मानचित्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

9. **साधनों का अनुकूलतम संयोगको स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....

.....

.....

.....

.....

10. निम्नलिखित में सही और गलत का चुनाव कीजिए :–

a. समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है, जिनसे समान उत्पादन मिलता है।

b. समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोदर होते हैं। समोत्पाद वक्र की यह तकनीकी प्रतिस्थापन की ह्रासमान दर पर विशेषता आधारित है।

c. समोत्पाद वक्र का ढाल सदैव धनात्मक होता है।

d. समोत्पाद वक्र की तकनीकी प्रतिस्थापन दर होती है:– $MRTS_{xy} = \frac{\Delta x}{\Delta y}$.

e. समलागत वक्र उत्पादक की क्रय सीमा का प्रदर्शित करती है।

9.5 पैमाने के प्रतिफल का नियम

पैमाने के प्रतिफल का नियम दीर्घकालीन निर्गतों और आगतों के मापन के सम्बंध का विश्लेषण करता है जबकि सभी आगतों में समान अनुपात में वृद्वि की जाएं। पैमाने के प्रतिफल का नियम निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

1. सब साधन में परिवर्तनशील सम्भव है।
2. एक श्रमिक दिये हुए औजार और उपकरणों से काम करता है।
3. कोई तकनीकी परिवर्तन नहीं होता है।
4. पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान है।
5. वस्तु का मापन मात्राओं में किया जाता है, मुद्रा में नहीं।

इन मान्यताओं के आधार पर उत्पादन में पैमाने का विस्तार किया जाता है, अर्थात जब सभी साधनों को समान अनुपात में बढ़ाया जाता है, तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा या प्रतिफल की तीन अवस्था प्राप्त हो सकती है जिन्हें समोत्पादन वक्रों की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल
2. पैमाने के स्थिर प्रतिफल
3. पैमाने के घटते प्रतिफल

पैमाने के घटते प्रतिफल प्रथम, बढ़ते प्रतिफल की स्थिति क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि सब आगतों में वृद्धि के अनुपात से अधिक होती है। तत्पश्चात पैमाने का स्थिर प्रतिफल प्राप्त होता है, क्योंकि कुल उत्पादन में वृद्धि आगतों में वृद्धि से ठीक समान अनुपात में होती है। अन्त में, पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति जिसमें कुल उत्पादन में वृद्धि सब आगतों में वृद्धि से कम होती है। पैमाने के

प्रतिफल का यह नियम नीचे तालिका और रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट रूप में समझाया जा सकता है।

तालिका– 9.4 उत्पादन का प्रतिफल

इकाई	उत्पादन का पैमाना	कुल प्रतिफल	सीमान्त प्रतिफल	अवस्था
1	1श्रमिक + 2 एकड़ भूमि	8	8	प्रथम
2	2श्रमिक + 4 एकड़ भूमि	17	9	
3	3श्रमिक + 6 एकड़ भूमि	27	10	
4	4श्रमिक + 8 एकड़ भूमि	38	11	द्वितीय
5	5श्रमिक + 10 एकड़ भूमि	49	11	
6	6श्रमिक + 12 एकड़ भूमि	59	10	तृतीय
7	7श्रमिक + 14 एकड़ भूमि	68	9	
8	8श्रमिक + 16 एकड़ भू	76	8	

यह तालिका स्पष्ट करती है कि शुरू में पैमाने का प्रतिफल पहले बढ़ता, फिर स्थिर और अन्त में घटता है। जिसकी विवेचना निम्नवत हैः–

9.5.1 पैमाने का बढ़ता प्रतिफल

उत्पादन के साधनों की अविभाज्यता के कारण पैमाने का प्रतिफल बढ़ता है। जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक अनुपात से वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल कहते है।

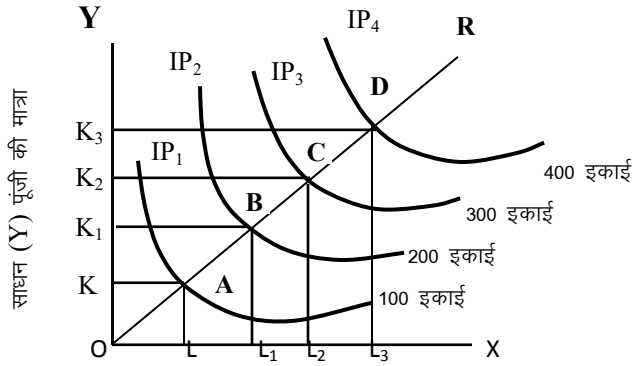

साधन–X (श्रम की मात्रा)

रेखाचित्र 9.13

पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल को रेखाचित्र 9.13 की सहायता से स्पष्ट किया गया है। रेखाचित्र में IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 समोत्पाद रेखाएं हैं जो क्रमशः 100, 200, 300 तथा 400 इकाइयों के उत्पादन को व्यक्त करती है।रेखाचित्र में विभिन्न समोत्पाद रेखाएं पैमाने की रेखा OR को विभिन्न भागों में विभाजित करती है। जो दोनों साधनों (श्रम और पूंजी) की एक निश्चित मात्रा को व्यक्त करती है। रेखाचित्र में पैमाने की रेखा पर प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई कम होती है अर्थात् OA=AB=BC=CD जो यह व्यक्त करती है कि साधनों की कम मात्राओं के प्रयोग से भी उत्पादन में एक समान वृद्धि (100 इकाइयों के बराबर) प्राप्त हो जाती है। अतः इस स्थिति को पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है।

9.5.2 पैमाने का स्थिर प्रतिफल–

जब उत्पादन के सभी साधनों अर्थात पैमाने की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' कहते है। पैमाने के स्थिर प्रतिफल का सिद्धान्त एक रेखीय उत्पादन–फलन को प्रदर्शित करता है।

रेखाचित्र 9.14 में OR एक पैमाने की रेखा है। समोत्पाद रेखाएं IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 पैमाने की रेखा OR को समान टुकड़ों (OA = AB = BC = CD) में विभाजित करती है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि उत्पादन के दोनों साधनों– श्रम तथा पूंजी की क्रमशःएक सामान मात्राओं के प्रयोग से उत्पादन एक में एक समान (अर्थात 100 इकाइयां) वृद्धि प्राप्त की जाती है। इस अवस्थाको पैमाने के स्थिर या समता प्रतिफल की अवस्था कहते हैं।

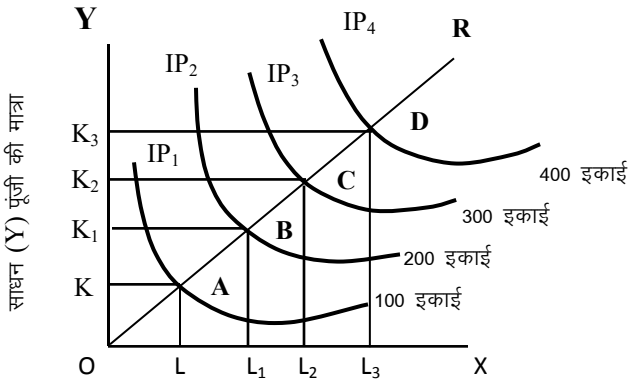

रेखाचित्र 9.14

9.5.3 पैमाने का घटता प्रतिफल–जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के घटते प्रतिफल कहते है।

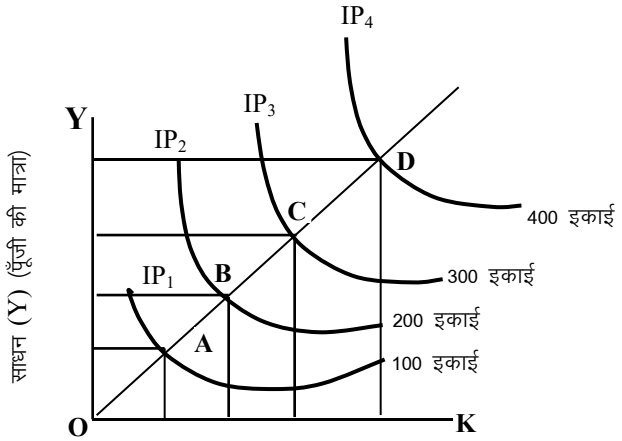

साधन-X (श्रम की मात्रा)

रेखाचित्र–9.15

रेखाचित्र 9.15 में समोत्पाद रेखाएं IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 क्रमशः उत्पादन की 100,200,300 तथा 400 इकाइयों को व्यक्त करती है अर्थात् प्रत्येक समोत्पाद वक्र पर उत्पादन की मात्रा में एक समान 100 इकाइयों की वृद्धि होती जाती है। ये विभिन्न समोत्पाद रेखाएं पैमाने की रेखा OR को जैसे–OA, AB, BC तथा CD में विभाजित करती है, प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई बढ़ती जाती है अर्थात् OA < AB < BC < CDA इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक अतिरिक्त 100 इकाइयों का उत्पादन करने के लिए साधन श्रम एवं पूंजी की अधिकाधिक मात्राओं का उपयोग किया जाता है। अतः इस स्थिति को पैमाने के घटते हुए प्रतिफल की अवस्था कहा जाता है।

9.5.4 पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के कारण

जब उत्पादन के सभी साधनों में वृद्धि की जाती है, तो उसे उत्पादक को पैमाने के बढते, स्थिर तथा घटते प्रतिफल प्राप्त होते है। निम्न कारणों से पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थायें लागू होती है :–

- जब उत्पादन के पैमाने को बढ़ाया जाता है तो उत्पादक को कुछ आन्तरिक तथ बाह्य बचतें प्राप्त होती है,जो पैमाने के बढ़ते प्रतिफल की अवस्था उत्पन्न करती हैं। जबकि एक सीमा के बाद उत्पादन की अमितव्ययिताओं के कारण पैमाने के घटते प्रतिफल लागू होने लगते है।

- प्रो0 चैम्बरलिन के अनुसार पैमाने के प्रतिफल का लागू होने का मुख्य कारण श्रम–विभाजन एवं विशिष्टीकरण है।

- उत्पादन के साधन सामान्यतः अविभाज्य होते है अर्थात् उनका एक निम्नतम आकार होता है। जिससे उन्हें उससे अधिक छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित नहीं किया जा सकता है।

- प्रो0 बॉमोल के अनुसार पैमाने के बढ़ते हुए प्रतिफल के लागू होने का मुख्य कारण आकार की कुशलता है क्योंकि आकार विस्तार से भी कुशलता बढ़ती है।

- उत्पादन का पैमाने बढ़ाने पर उन्नत तकनीकी मशीनों का प्रयोग सम्भव होता है क्योंकि अधिक पूंजी निवेश के कारण उन्नत तकनीक सुलभ हो जाती है। जिससे पैमाने के बढता हुआ प्रतिफल लागू होने लगता है। लेकिन एक सीमा के बाद मशीनों में ह्रास प्रारम्भ हो जाता है जिससे पैमाने के घटते प्रतिफल स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

9.6 पैमाने की बचतें

दीर्घकाल में उत्पादक को उत्पादन आकार के विस्तृत होने के कारण, संगठन तथा उत्पादन तकनीक में सुधार होने के कारण बचतें प्राप्त होती है, जिन्हें दो प्रकारसे वर्गीकृत किया जा सकता है –

(1) आन्तरिक बचतें

(2) बाह्य बचतें।

आन्तरिक बचतें वह हैं जो किसी व्यक्तिगत फर्म के विस्तार के कारण उत्पन्न होती हैं। जैसे–जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती जाती है आन्तरिक बचतें फर्म के अन्दर ही उपस्थित होती है।आन्तरिक बचतों को निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **श्रम विभाजन एंव विशिष्टीकरण की बचतें**
2. **प्रौद्योगिकी बचतें जैसेः**–प्लाण्ट का अनुकूलतम प्रयोग, अविभाज्य साधनों का पूर्ण उपयोग, उत्पादन प्रक्रिया में बचे पदार्थ का प्रयोग करके आदि।
3. **प्रबन्धकीय बचतें जैसे** :–कार्यकुशलता में वृद्धि हेतु प्रोत्साहन देकर, कार्यात्मक विशिष्टीकरण करके।
4. **विपणन की बचतें**
5. **वित्तीय बचतें**
6. **जोखिम सम्बन्धी बचतें** – एक साथ कई वस्तुओं का उत्पादन करके हानि की सम्भावना को न्यूनतम करना।

बाह्य बचतें वे बचतें हैं जो उद्योग के विस्तार के कारण उपस्थित होती हैं तथा जिनका लाभ एक या दो फर्मों तक केन्द्रित न होकर उद्योग की सभी फर्मों के लिए समान रूप से प्राप्त होता है। बाह्य बचतें उद्योग के आकार का फलन होती है। अन्य शब्दों में, कहा जा सकता है कि जब उत्पादन मात्रा में वृद्धि की जाती है तो बाह्य बचतों के कारण प्रत्येक फर्म का लागत वक्र नीचे स्थानान्तरित हो जाता है।

बाहरी बचतों को निम्नवत रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. उत्पादकों के मध्य प्रतियोगिता कम होने योग्य श्रमिकों को सस्ती दर पर उपलब्ध होता है।
2. परिवहन तथा संचार के साधनों के विकास होने से यातायात लागत न्यूनतम हो जाती है।

3. वित्तीय संस्थाओं के विकास के कारण– सस्ती दर पर साख उपलब्धता।

4. एक क्षेत्र में अनेक उद्योगों का विकास कच्चे माल की सहज उपलब्धता।

5. उचित प्रशिक्षण द्वारा श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

6. अनुसन्धान एवं व्यावसायिक पत्रिकाओं से सूचना सम्बन्धी बचतों की प्राप्ति होती है।

9.7 पैमाने की हानियां

एक सीमा के बाद जब उत्पादन मात्रा में वृद्धि की जाती है तोहानियां प्राप्त होती है। पैमाने की हानियां दो प्रकार की होती हैं :–

1. आन्तरिक हानियां
2. बाह्य हानियां

आन्तरिक हानियों के उपस्थिति का मुख्य कारण है उत्पादन का विस्तार होना है तो विस्तृत उत्पादन के कारण संगठन को नियन्त्रण में रखना कठिन हो जाता है। इकाइयों में सामंजस्यता स्थापित करना प्रबन्ध तन्त्र के लिए असम्भव होने लगता हैं, निरीक्षण कार्य अवरूद्ध हो जाता है, जिसके कारण उत्पादन लागत बढ़ने लगती है।

बाह्य हानियां मुख्यतः उद्योग के विस्तार के कारण विभिन्न साधनों की बढ़ती हुई मांग के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है। जब उद्योग का विस्तार होता है तब कुछ उत्पादन के साधनों की मांग बढ़ जाने के कारण वे दुर्लभ हो जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उनकी कीमतों में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार यह कह सकते है कि उत्पादन के एक सीमा के बाद विस्तार से आन्तरिक एवं बाह्य हानियां उत्पन्न होती है जिसके सम्मिलित प्रभाव से दीर्घकालीन औसत लागत बढ़ने लगती है।

बोध प्रश्न 'ब'

1. **पैमाने के बढ़ते प्रतिफल को स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. **पैमाने के घटते प्रतिफल को स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

3. **पैमाने के स्थिर प्रतिफल से आप क्या समझतें है स्पष्ट कीजिए ?**

.....

.....

.....

.....

.....

4. **पैमाने के प्रतिफल के लागू होने के कारणोंपर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. **साधनों का अनुकूलतम संयोगको स्पष्ट कीजिए।**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6. **निम्नलिखित में सही और गलत का चुनाव कीजिए।**

a. पैमाने के प्रतिफल में सभी साधनों की मात्रा में एक ही अनुपात में परिवर्तन होता है।

b. पैमाने के प्रतिफल का सम्बंध अल्पकाल से होता है।

c. पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल लागू होने के प्रमुख कारण हैं–आकार की कुशलता, अविभाज्यकत और विशिष्टीकरण है।

d. पैमाने को बढ़ाने के लिए उत्पत्ति के साधनों की मात्रा बढ़ायी जाती है, साधनों का अनुपात बदल जाता है।

e. आन्तरिक एवं बाहरी बचतों के कारण पैमाने का प्रतिफल उत्पन्न होता है।

14.8 सारांश

समोत्पाद वक्र दो साधनों के उन संयोगों को प्रदर्शित करते हैं जो उत्पादक को बराबर का उत्पादन स्तर प्रदान करते हैं। समोत्पाद वक्र सदैव ऋणात्मक ढाल के होते हैं तथा ये कभी एक दूसरे को काट नहीं सकते। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटने के कारण समोत्पादन वक्र उन्नतोदर होते है। समोत्पादन वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है, बायीं ओर की तुलना में दायीं ओर

का समोत्पादन वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करता है ,समोत्पादन वक्र रिज रेखाओं को अंकित करने में सहायक होते है।सम लागत वक्र साधनों के उन संयोगों को प्रदर्शित करता है जिसे उत्पादक अपनी व्यय क्षमता से खरीद सकता है।विस्तार पथ वह पथ है जिस पर चलकर उत्पादन का विस्तार किया जा सकता है।

समोत्पादन वक्रों की सहायता से पैमाने के प्रतिफल के नियमों की व्याख्या की जा सकती है जो पैमाने के बढ़ते प्रतिफल, पैमाने के स्थिर प्रतिफल तथा पैमाने के घटते प्रतिफल को स्पष्ट रू‍ में व्यक्त करता है।जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में अधिक मात्रा में अनुपात रूप से वृद्धि होती है तो इसे पैमाने के बढ़ते प्रतिफल कहते है। जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने पर उत्पादन में ठीक उसी अनुपात में वृद्धि होती है तो इसे 'पैमाने के स्थिर प्रतिफल' कहते है जब उत्पादन के सभी साधनों (पैमाने) की मात्रा में वृद्धि करने से उत्पादन में उससे कम अनुपात में वृद्धि होती है तो उसे पैमाने के घटते प्रतिफल कहते है।श्रम–विभाजन एवं विशिष्टिकरणआकार की कुशलता, साधनों की अविभाज्यता, उत्पादन की मिव्ययिताएँ अथवा अमितव्ययिताएँ, तथाउन्नत मशीनों के प्रयोग की सम्भावना के कारणों से पैमाने के प्रतिफल की तीनों अवस्थायें लागू होती है। इस प्रकार यह कह सकते है कि उत्पादन के एक सीमा के बाद विस्तार से आन्तरिक एवं बाह्य हानियां उत्पन्न होती है जिसके सम्मिलित प्रभाव से दीर्घकालीन औसत लागत बढ़ने लगती है।

9.9 उपयोगी शब्दावली

- **समोत्पाद वक्र** – दो साधन के विभिन्न संयोगों से प्राप्त समान उत्पादन की मात्रा को प्रदर्"ात करने वाला वक्र।
- **समलागत वक्र** – दी व्यय क्षमता पर साधनों के क्रय की सम्भावनाओं को प्रदर्"ात करने वाला वक्र।
- **तकनीकी प्रतिस्थापन दर** – साधन की एक अतरिक्त इकाई को बढ़ाने पर दूसरे साधन की घटाए जाने वाली मात्रा।
- **सहजातीय उत्पादन फलन** – साधनों को एकरूपता से बढ़ाने पर प्राप्त होने वाला उत्पादन फलन ।
- **शिष्ट उत्पादन फलन** – साधनों में निर्"चत अनुपात में यदि वृद्धि हो और उत्पादन भी उतने ही अनुपात में बढ़ जाए।
- **प्रतिस्थापन** – स्थानापन्नता अर्थात एक साधन के स्थान पर दूसरे के प्रतिस्थापित या प्रयोग करना।
- **अविभाज्यता** – ऐसा साधन जिसे छोटे–छोटे भाग में न बांटा जान सके।
- **साधनों की पूरकता** – ऐसे साधन जो एक दूसरे के पूरक हो अर्थात् एक के साथ दूसरा का प्रयोग आव"यक हो जैसे कार के साथ पेट्रोल, म"ाीन के साथ बिजली।

- **श्रम विभाजन** – जब श्रमिकों के बीच उनकी रूचि और योग्यता के अनुसार कार्य विभाजित किया जाता है।

9.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न अ

प्रश्न 6 a. उत्तर : सही b. उत्तर : सही C. उत्तर : गलत

d. उत्तर : गलत e. उत्तर : सही

बोध प्रश्न ब

प्रश्न 6. a. उत्तर : सही b. उत्तर : गलत c. उत्तर : सही

d. उत्तर : गलत e. उत्तर : सही

9.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 समोत्पाद वक्र क्या होती है? समोत्पाद वक्र की विशेषताओं का वर्णन करें।

प्रश्न–2 समउत्पाद वक्र की सहायता से दर्शाइए कि एक उत्पादक दिए हुए उत्पादन स्तर को प्राप्त करने के लिए न्यूनतम लागत साधन संयोग का चुनाव किस प्रकार करता है?

प्रश्न–3 तकनीकी प्रतिस्थापन दर क्या है? ह्रासमान तकनीकी प्रतिस्थापन दर नियम की व्याख्या करें।

प्रश्न–4 पैमाने के प्रतिफल से आप क्या समझते हैं? वर्द्धमान प्रतिफल एवं ह्रासमान प्रतिफल के मध्य अन्तर समझाएं।

प्रश्न–5 पैमाने तथा अनुपात के विचारों में अन्तर स्पष्ट करें। पैमाने के घटते प्रतिफलों की व्याख्या करें।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आहूजा, एच0 एल0, (2018),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. झिंगन, एम0 एल0 (2018), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, मयूर विहार, नई दिल्ली।
3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आगरा।
4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. सेठ, एम0 एल0 (2018) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

6. Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.

7. Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.

8. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

9. स्टोनियर एण्ड हेग,(2011)''ए टेक्सट बुक ऑफ इकोनोमिक आक्सफोर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

10. सेन, ए (1999), माइक्रोइकोनॉमिक्स, थियरी एण्ड अप्लीकेशन्स, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

11. लॉयरड, पी0आर0जी0 एण्ड, ए, डब्ल्यू0 वालटरस (1978) माइक्रो इकोनॉमिक थियरी मैग्राहिल, नई दिल्ली।

इकाई : 10 पूर्ति का नियम और पूर्ति की लोच

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पूर्ति का नियम

10.3 पूर्ति के नियम मान्यताएँ

10.4 पूर्ति के नियम के अपवादं

10.5 पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक

10.6 पूर्ति की लोच

10.7 पूर्ति की लोच की श्रेणियां

10.8 पूर्ति की लोच मापने की रीतियां

10.9 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व

10.10 सारांश

10.11 उपयोगी शब्दावली

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि :–

- पूर्ति के नियम की अवधारणा जान सकेंगे,
- पूर्ति के नियम मान्यताओं को बता सकेंगे,
- पूर्ति के नियम के अपवाद की व्याख्या कर सकेंगे,
- समझा सकेंगे कि पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक कौन कौन से है,
- पूर्ति के महत्व को विश्लेषित सकेंगे ।
- पूर्ति के विभिन्न प्रकारों का विशद् विश्लेषण भी कर सकेगें तथा
- पूर्ति की लोच, प्रकार, मापन की रीतियां और इसको प्रभावित करने वाले तत्वों को स्पष्ट कर सकेगें।

10.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र के सिद्धांत से सम्बन्धित यह पाचवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि उपयोगिता का अर्थ क्या है? तथा सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम–सीमान्त उपयोगिता नियम को कैसे ज्ञात किया जाता है।

कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग तथा पूर्ति में होने वाले गुणात्मक परिवर्तन को माँग एवं पूर्ति के नियम में ज्ञात करेंगे। माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारको का विश्लेषण माँग एवं पूर्ति के नियम के संदर्भ में करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कीमत में परिवर्तन के कारण माँग तथा पूर्ति में होने वाले परिवर्तन को ही नही समझा सकेंगे बल्कि माँग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का विशद् विश्लेषण भी कर सकेंगे।

10.2 पूर्ति का नियम

पूर्ति का नियम कीमत तथा बेची जाने वाली वस्तु मे सीधे सम्बन्ध को बताता है। अन्य बातों में कोई परिवर्तन न हो तो किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी पूर्ति में भी वृद्धि होती है तथा कीमत में कमी होने पर उसकी पूर्ति में भी कमी होती है। जबकि माँग का नियम कीमत तथा माँग में उल्टे सम्बन्ध को बताता है,वही पूर्ति का नियम कीमत तथा पूर्ति में सीधे सम्बन्ध को बताता है। पूर्ति का नियम, माँग के नियम की भाँति, एक गुणात्मक कथन है, न कि परिमाणात्मक कथन; अर्थात् यह पूर्ति में केवल परिवर्तन की दिशा को बताता है न कि पूर्ति में परिवर्तन के परिमाण को; यह इस बात को नहीं बताता है कि पूर्ति कितनी मात्रा में कम या अधिक होगी। संक्षिप्त रूप में, पूर्ति का नियम बताता है कि पूर्ति और कीमत एक ही दिशा में बदलते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ति का परिवर्तन कीमत के आनुपातिक हो। पूर्ति में कीमतों के साथ –साथ बदलने की जो प्रवृत्ति है, इसी को पूर्ति का नियम कहते है।

तालिका 10.1 पूर्ति तालिका

मूल्य प्रति इकाई रू.	वस्तु की माँगी गई इकाईयां
05 Q_2	20 P_2
10 P	50 Q
15 P_1	60 Q_1

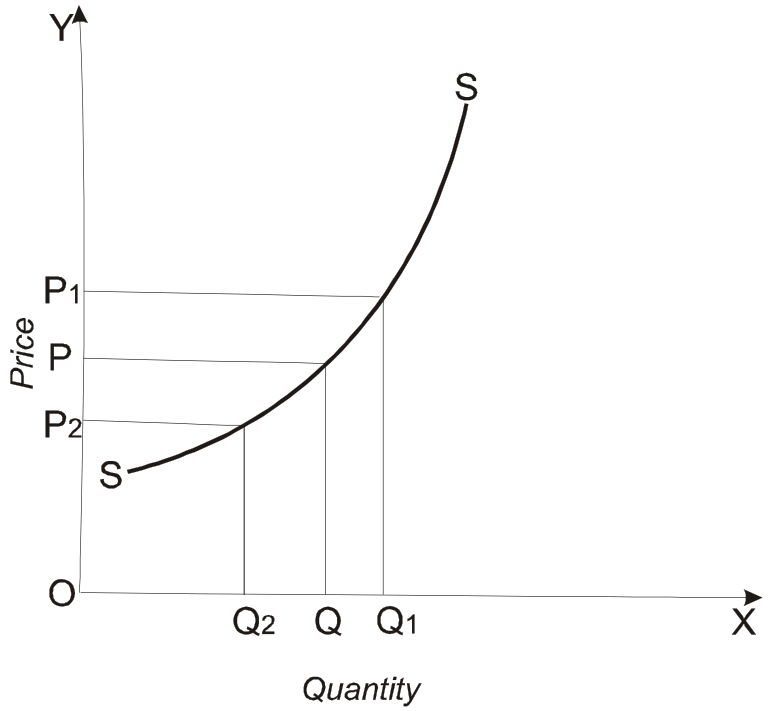

रेखाचित्र 10.1– पूर्ति वक्र

तालिका 10.1 एवं रेखाचित्र 10.1 से यह स्पष्ट है कि कीमत OP(10) से बढकर $OP_1(15)$ हो जाती है तो पूर्ति OQ(50) से बढकर $OQ_1(60)$ हो जाती है। इसी प्रकार यदि कीमत OP(10) से घटकर $OP_2(05)$ हो जाती है तो पूर्ति OQ(50) से घटकर $OQ_2(20)$ हो जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि पूर्ति के नियम के अर्न्तगत कीमत तथा बेची जाने वाली मात्रा के बीच सीधा सम्बन्ध पाया जाता है। इसलिए जब पूर्ति नियम को रेखा द्वारा व्यक्त करते हैं तो पूर्ति रेखा बाये से दायें ऊपर की ओर चढ़ती हुई होती है। कीमत बढ़ने पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत घटने पर पूर्ति घटती है, इसके कारणो की विवेचना निम्नवत हैं–

1. कीमत में बढ़ने पर विक्रेताओं के लाभ में बढ़ते है और अधिक लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से वे अपनी वस्तु की पूर्ति बढ़ाते हैं। पूर्ति बढ़ाने की विधि में **समय के अनुसार विभिन्न**परिवर्तन होता है–

   (i) यदि अति अल्पकालीन समय है तो विक्रेता या उत्पादक स्टॉक में से अधिक माल निकाल कर बेचने लगते हैं, परन्तु स्टॉक में रखे हुए माल से अधिक वे पूर्ति में वृद्वि नहीं कर पातें है।

   (ii) यदि अल्पकाल है तो विक्रेता या उत्पादक वर्तमान उत्पत्ति के साधनों की मदद से पूर्ति बढ़ाते हैं, परन्तु समय इतना नहीं होता कि नये साधनों की मदद से पूर्ति वृद्वि कर सकें।

   (iii) अब यदि दीर्घकालीन समय है तो वे वर्तमान उत्पत्ति के साधनों के अतिरिक्त नये उत्पत्ति के साधनों की सहयता से भी पूर्ति में वृद्वि कर अधिक लाभ प्राप्तकर सकते हैं।

2. कीमत में कमी होने से विक्रेताओं या उत्पादकों को कम लाभ प्राप्त होगा। अतः कम लाभ होने के कारण हो रहें नुकसान से बचने के लिए वे पूर्ति में कमी करते है। **समय के अनुसार** वे पूर्ति को निम्न प्रकार से कमी की जा सकती है–

   (i) यदि समय अति अल्पकालीन है और वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली नहीं है तो विक्रेता अपने स्टॉक से कम माल को विक्रय के लिए निकालेंगे तथा बाजार सें भी वस्तु की कुछ मात्रा वापस कर स्टॉक में रखने का प्रयास करेगें।

   (ii) यदि अल्पकालीन समय है तो उत्पादक उत्पादन को कमी कर देंता है।

   (iii) अब यदि दीर्घकालीन समय है तो कुछ उत्पादक उत्पादन बिल्कुल बन्द कर देते है और किसी दूसरे उद्योग में जा कर उत्पादन शुरू कर देते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कीमत में वृद्धि या कमी से लाभ में वृद्धि या कमी होती है और इसके परिणाम स्वरूप विक्रेता पूर्ति में भी वृद्धि या कमी होती हैं।

10.3 पूर्ति के नियम की मान्यताएँ

पूर्ति के नियम के कथन में 'अन्य बातें' यथावत रहें' इस नियम के मान्यताओं या सीमाओं को स्पष्ट करता है। पूर्ति के नियम के लागू होने के लिए निम्नवत प्रमुख मान्यताएँ पूरी होनी चाहिए–

- क्रेताओं तथा विक्रेताओं की आय में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
- क्रेताओं तथा विक्रेताओं की रूचि तथा पसन्द में भी किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए
- उत्पत्ति के साधनों की कीमतों में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।
- उत्पादकों या विक्रेताओं के प्रौद्योगिकी जानकारी मे कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
- कीमत में थोड़े से परिवर्तन के परिणामस्वरूप भी पूर्ति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

10.4 पूर्ति के नियम के अपवाद

पूर्ति के नियम के अपवाद की विवेचना निम्नवत हैः–

1. **भविष्य में कीमत में अधिक कमी या वृद्धि की दशाओं में पूर्ति का नियम लागू नहीं होगा।** क्योंकि जब वस्तु की कीमत कम हो जाती है, तो उत्पादक निकट भविष्य में और कमकीमत होनें के ड़र से वस्तु की कममात्रा की जगह अधिक मात्रा बेचेंगे। इसी प्रकार जब वस्तु की कीमत

अधिक हो जाती है, तो उत्पादक निकट भविष्य में और अधिक कीमत होने के डर से वस्तु की अधिकमात्रा की जगह कम मात्रा बेचेंगे ताकिभविष्य में अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

2. **कुछ दशाओं में यह नियम कृषि–उत्पादित वस्तुओं पर लागू नहीं होता है।** यदि कृषि की वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती है तो कभी–कभी उनकी वृद्धि नहीं की जा सकती है क्योंकि कृषि उत्पादन प्रकृति पर निर्भर करता है, तथा कीमतों के ऊँचे होने पर भी पूर्ति को निधारित समय पूर्व नहीं बढ़ाया जा सकता है।

3. **कुछ कलात्मक वस्तुओं के सन्दर्भ में** भी पूर्ति का नियम लागू नहीं होता।

4. **इसी प्रकार नीलाम की वस्तुओं की पूर्ति** सीमित होती है, जिसकी पूर्ति को बढाया घटाया नहीं जा सकता इसलिए उसकी कीमतों में वृद्धि या कमी उसकी पूर्ति को प्रभावित नहीं कर पाती है। इस कारण पूर्ति का नियम यहॉ लागू नहीं होता है।

5. **अविकसित तथा पिछड़े देशों में** श्रमिकों का जीवन स्तर बहुत नीचा होता है और उनकी आवश्यकताएँ बहुत कम होती हैं। यदि इन श्रमिकों की मजदूरियाँ बढ़ा दी जाती हैं तो श्रमिकों अपनी थोड़ी सी आवश्यकताआ को कम कार्य करके पूरा कर लेते है, और श्रमिकों की पूर्ति में कोई वृद्वि नहीं होती ।

10.5 पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक

वास्तविक जीवन में पूर्ति बहुत से परिवर्तनशील तत्त्वों से प्रभावित करते है। पूर्ति को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्वो की विवेचना निम्नवत हैः–

1. यदि अन्य बातें समान रहती हैं तो वस्तु की ऊँची कीमत पर अधिक पूर्ति होगी तथा कम कीमत पर कम पूर्ति होगी।

2. यदि अन्य वस्तुओं की कीमत में वृद्धि हो जाती है जबकि वस्तु विशेष की कीमत उतनी ही रहती है तो ऐसी स्थिति में उत्पादकों को वस्तु विशेष के उत्पादन में कम आकर्षण रह जायेगा क्योंकि यह वस्तु अन्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती रहती है। इस प्रकार वस्तु की पूर्ति कम हो जायेगी। इसके विपरीत यदि अन्य वस्तुओं की कीमतों में कमी हो जाती है तो उत्पादक इस वस्तु को पूर्ति बढ़ाने के लिए आकर्षित होंगे।

3. यदि उत्पादन के साधनों की कीमतें बढ़ जाती हैं तो वस्तु की उत्पादन लागत में वृद्वि होगी, परिणामस्वरूप उत्पादन कम किया जायेगा और पूर्ति में कमी होगी। इसके विपरीत यदि उत्पादन के साधनों की कीमतें कम होती हैं तो वस्तु की लागत कम होगी और उनकी पूर्ति में वृद्वि होगी।

4. प्रौद्योगिकीज्ञान में विस्तार होने के परिणामस्वरूप किसी वस्तु के उत्पादन करने में और अधिक कुशल रीति का प्रयोग होने लगता है, इससे लागत घटती है और वस्तु की पूर्ति में वृद्वि होती है।

5. प्राकृतिक तत्त्व जैसे पर्याप्त वर्षा, सिंचाई की उचित सुविधाएँ, अच्छी खाद, अच्छे बीज, इत्यादि कृषि वस्तुओं की पूर्ति में वृद्वि करते हैं। वही इसके

विपरीत कीटों का प्रकोप, अति वर्षा या सूखा, इत्यादि उनकी पूर्ति में कमी लातें हैं।

6. परिवहन तथा संचार आदि की अच्छी और विकसित सुविधाओं के मौजूद होने से विदेशों से किसी भी वस्तु के आयातों में अधिक सुविधा के परिणामस्वरूप उसकी पूर्ति में वृद्वि होती है। इसके विपरीत यदि इन साधनों का प्रयोग किसी वस्तु के अधिक निर्यात के लिए किया जाता है तो उसकी उपलब्धता कम होने से देश के अन्दर पूर्ति कम रह जायेंगी।

7. युद्ध छिड़ जाने से या राजनैतिक अस्थिरता होने से कुछ वस्तुओं की कमी देश विशेष में हो जाती है।

8. सरकार की कर नीति भी वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करती है। यदि सरकार किसी वस्तु पर अधिक कर लगाती है तो वह वस्तु महँगी पड़ेगी और उसकी पूर्ति कम होगी।परन्तु यदि सरकार किसी वस्तु पर कम कर या कर न लगायें तो वह वस्तु सस्ती होगी और उसकी पूर्ति में वृद्वि होगी।

9. किसी वस्तु के बड़े उत्पादक आपस में मिलकर कार्टेल का निर्माण कर अधिक लाभ के कमाने की दृष्टि से उस वस्तु की कुल पूर्ति कम कर सकते हैं।

बोध प्रश्न अ

11. पूर्ति के नियम की मान्यताओं समझाए ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12. पूर्ति के नियम को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13. पूर्ति के नियम के अपवाद को स्पष्ट रूप में समझाए ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14. पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारको को समझाइये ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.6 पूर्ति की लोच

माँग के नियम की तरह पूर्ति का नियम भी एक गुणात्मक कथन है अर्थात् यह नियम पूर्ति में होने वाले परिवर्तन की दिशा को व्यक्त करता है न कि मात्रा को। इस नियम के अनुसार जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्वि (कमी) होगी, तो उस वस्तु की मात्रा कितना अधिक बढ़ेगी (घटेगी) यह नियम नहीं बताता। इसकी माप के लिए हम पूर्ति की लोच का प्रयोग करते हैं।

पूर्ति की लोच का विचार यह स्पष्ट करता है कि कीमत में वृद्धि या कमी होने पर पूर्ति की मात्रा में कितनी या किस गति से वृद्धि या कमी होगी। पूर्ति की लोच (e_s) कीमत में थोड़े से परिवर्तन के फलस्वरूप पूर्ति की मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसे जानने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है–

$$e_S = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

यहाँ e_s पूर्ति की लोच को बताता है।

10.7 पूर्ति की लोच की श्रेणियां

कीमत में परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं की पूर्ति पर एकसामान प्रभाव नहीं होता, अर्थात् कुछ वस्तुओं की लोच कम होती है तथा कुछ वस्तुओं की अधिक। पूर्ति की लोच निम्न पांच श्रेणियाँ मे विभक्त किया जाता है:

1. **पूर्णतया लोचदार पूर्ति :–** जब मूल्य में परिवर्तन नहीं होने पर भी या अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन होने पर पूर्ति में बहुत अधिक परिवर्तन (कमी या वृद्धि) हो जाती है तब वस्तु की पूर्ति पूर्णयता लोचदार कही जाती है।पूर्णतया लोचदार पूर्ति की स्थिति में पूर्ति–वक्र X-अक्ष के समानान्तर होता है अर्थात् कीमत में अल्प परिवर्तन होने पर पूर्ति की मात्रा घटकर शून्य हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक निश्चित कीमत पर कितनी भी वस्तु की अनंत मात्रा बेची जा सकती है। पूर्णतया लोचदार पूर्ति वक्र की लोच अनन्त $e_s=\infty$ होती है। इस प्रकार की पूर्ति की लोच

केवल काल्पनिक होती है, व्यावहारिक जीवन में इसका उदाहरण नही मिलता है।इसे रेखाचित्र 10.2 में दिखाया गया है।

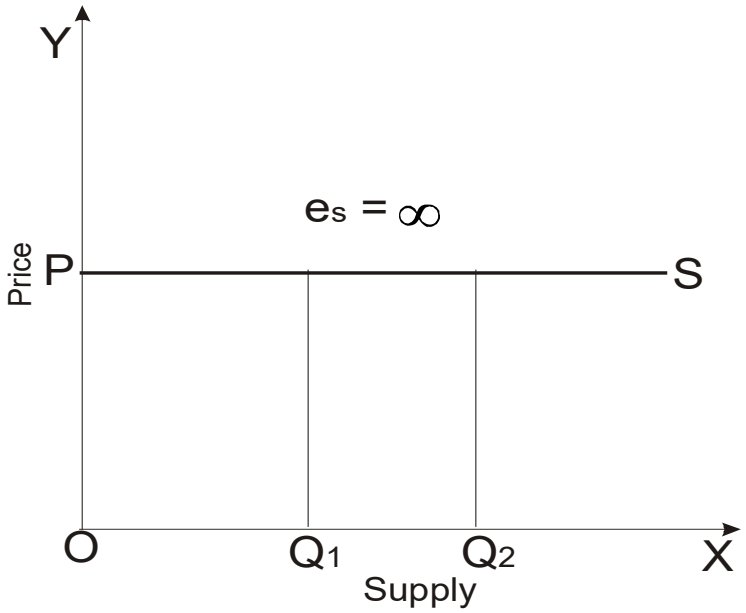

रेखाचित्र 10.2– पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति

2. **अधिक लोचदार पूर्ति :** जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन, कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार पूर्ति ($e_s>1$) कहते है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति में परिवर्तन (QQ1) कीमत में परिवर्तन (PP_1) से अधिक है।इस प्रकार की पूर्ति की लोच को इकाई में अधिक लोच $e_s>1$ भी कहते हैं। इसे रेखाचित्र10.3 में दिखाया गया है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से अधिक है अतः पूर्ति की लोच इकाई से अधिक होगी।

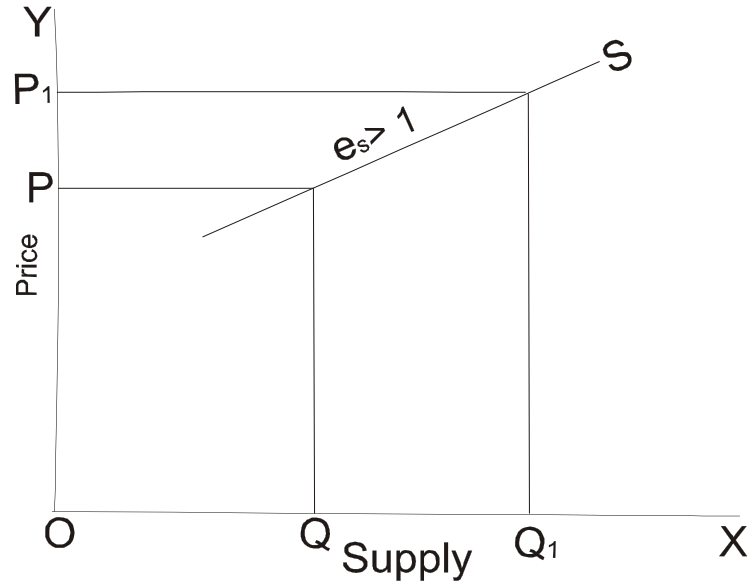

रेखाचित्र 10.3– अत्यधिक लोचदार पूति

3. **इकाई के बराबर पूर्ति लोच :** जब किसी वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन ठीक उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में उसकी कीमत में परिवर्तन हुआ है, तब ऐसी वस्तु की पूर्ति को इकाई लोचदार पूर्ति (e_s =1)कहते है।उदाहरण के लिए, यदि कीमत में 10 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो पूर्ति में भी 10 प्रतिशत की ही वृद्धि होगी। इस प्रकार की वस्तुओं के लिए पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होती है। इसे रेखारेखाचित्र 10.4 में दिखाया गया है।

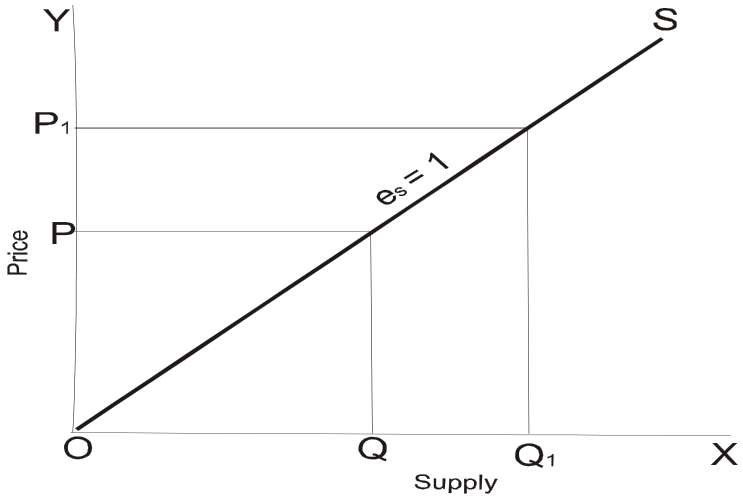

रेखाचित्र 10.4– इकाई लोचदार पूर्ति

4. **अधिक बेलोचदार पूर्ति :** जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन उस वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है तो ऐसी दशा को **'बेलोच पूर्ति' या इकाई से कम लोच पूर्ति** (e_s<1) कहते है। रेखाचित्र से स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ति में परिवर्तन (QQ1) कीमत में परिवर्तन (PP_1) से कम है।उदाहरण के लिए, यदि कीमत में 40 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो वस्तु की पूर्ति में केवल 25 प्रतिशत की ही वृद्धि होगी। अतः पूर्ति की लोच इकाई से कम कहलावेगी। इसे रेखाचित्र 10.5 में दिखाया गया है।

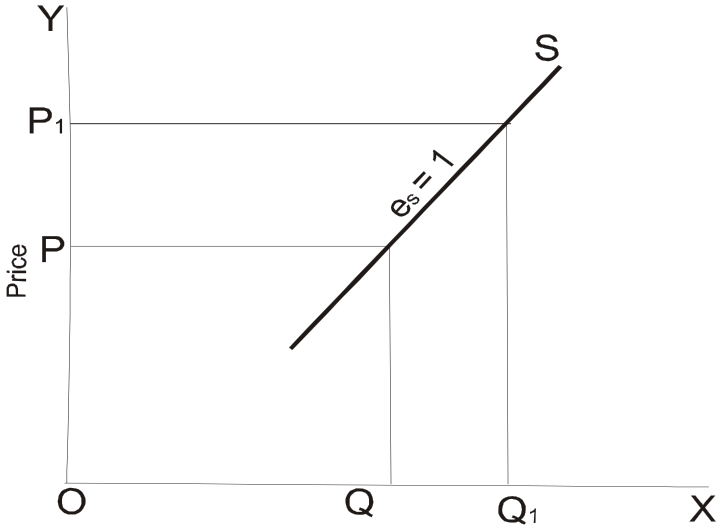

रेखाचित्र 10.5– अधिक बेलोचदार पूर्ति

5. **पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति :** जब किसी वस्तु के मूल्य में पर्याप्त परिवर्तन होने पर भी उसकी पूर्ति में बिल्कुल परिवर्तन न हो तो ऐसी दशा को पूर्णयता बेलोचदार पूर्ति कहते हैं। यहाँ पूर्ति की लोच शून्य के बराबर होगी। चूँकि पूर्ति में बिल्कुल परिवर्तन नहीं होता इसलिए ऐसी स्थिति को गणित की भाषा $e_s = O$ में द्वारा व्यक्त किया जाता है। OP कीमत पर पूर्ति OQ है कीमत बढ़कर OP1 हो जाती है, परन्तु पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता।इसे रेखाचित्र 10.6 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

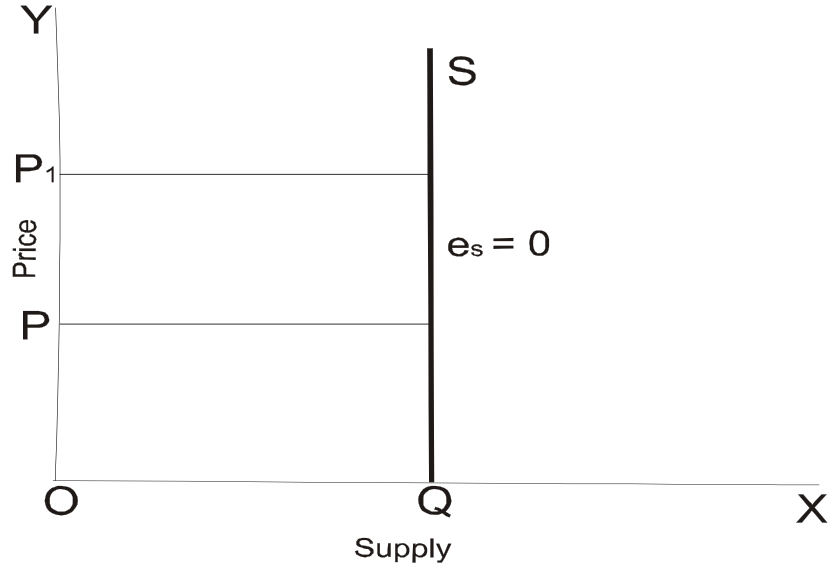

रेखाचित्र 10.6–पूर्णतया बेलोचदार पूति

10.7 पूर्ति की लोच को मापने की रीतियां

पूर्ति की लोच को मापने की दो मुख्य रीतियां हैः

1. **आनुपातिक विधिया प्रतिशतविधि :–** इस रीति के अन्तर्गत पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) को कीमत में आनुपातिक परिवर्तन (या प्रतिशत परिवर्तन) से भाग दिया जाता है। इसमें निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$e_S = \frac{\text{वस्तु की पूर्ति में प्रतिशात परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में प्रतिशात परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{पूर्ति में परिवर्तन}}{\text{पूर्ति की पूर्व की मात्रा}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत}}}$$

$$= \frac{\frac{\Delta Q}{Q}}{\frac{\Delta P}{P}} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}$$

$$= \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P}{Q}$$

$$\text{या} = \frac{\Delta q}{q} \times \frac{p}{\Delta p} = \frac{\Delta q}{\Delta p} \times \frac{p}{q}$$

जबकि, Δ (डेल्टा) = सूक्ष्म परिवर्तन का चिन्ह

Δq = पूर्ति में परिवर्तन

q = पूर्ति की पूर्व मात्रा

Δp = कीमत में परिवर्तन

p = पूर्व कीमत

आधुनिक मत – इस सूत्र से बिल्कुल ठीक व सही उत्तर निकालने के लिए कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसमें संशोधन किया है। इसका संशोधित रूप निम्न प्रकार से दिया जाता है:

$$e_s = \frac{\frac{\text{पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन}}{\frac{(\text{पूर्व मात्रा} + \text{नयी मात्रा})}{2}}}{\frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\frac{(\text{पूर्व कीमत} + \text{नयी कीमत})}{2}}}$$

जबकि,

q_1 = पूर्ति की पूर्व मात्रा

q_2 = पूर्ति की नयी मात्रा

p_1 = पूर्व की कीमत

p_2 = नयी कीमत

~ यह चिन्ह दो संख्याओं के बीच के अन्तर को बताता है।

$$= \frac{\frac{q_1 \sim q_2}{q_1 + q_2}}{\frac{p_1 \sim p_2}{p_1 + p_2}}$$

2. **बिन्दु विधिया रेखागणित विधि :–** इस विधि द्वारा हम पूर्ति रेखा के किसी बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम कर सकते है। उदाहरण के लिए, रेखाचित्र 10.7 में पूर्ति रेखा SS को नीचे की ओर बढ़ाया जाता है ताकि वह X-axis को T बिन्दु पर मिलती है और बिन्दु P से X-axis पर लम्ब पर लम्ब डाला जाता है जो X-axis को N बिन्दु पर मिलता है। पूर्ति की लोच निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है।

$$e_s = \frac{TN}{ON}$$

चूंकि यहाँ पर TN<ON, इसलिए $e_s<1$, रेखाचित्र में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e_s = \frac{TN}{ON}$(चूंकि यहाँ TN>ON, इसलिए $e_s>1$ रेखाचित्र नं0 12 में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $e_s = \frac{TN}{ON}$; यहाँ पर O तथा T बिन्दु एक ही हैं इसलिए ON, अतः $e_s=1$

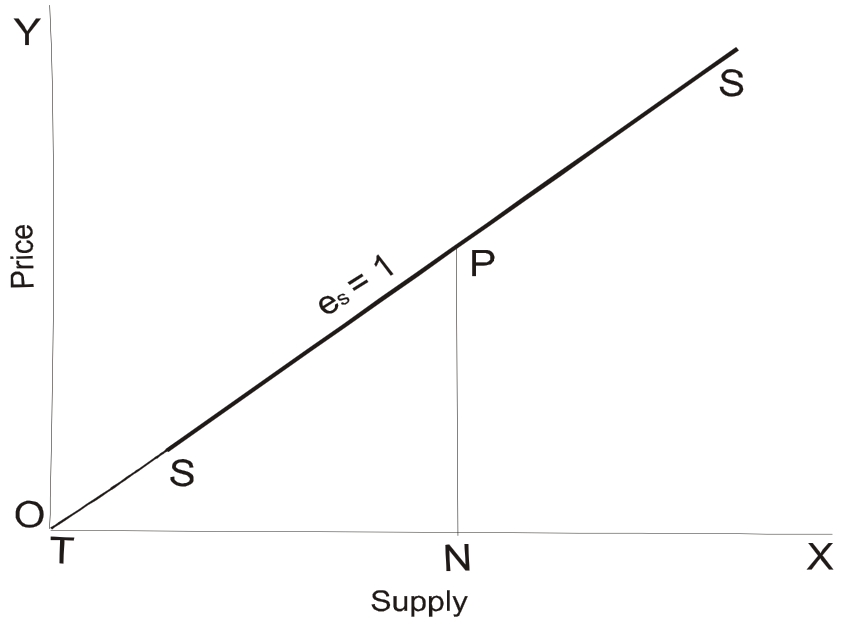

रेखाचित्र 10.7– बिन्दु रीति द्वारा पूर्ति की लोच

परन्तु यदि पूर्ति–वक्र की स्थिति मोड़ लेकर होगी तो पूर्ति लोच निम्नांकित रेखाचित्र 7.15 के माध्यम से स्पष्ट की जा सकती है। रेखाचित्र 7.15 में देखा जा सकता है कि इसमें पूर्ति–वक्र SS है जिसके A बिन्दु पर पूर्ति की लोच ज्ञात करनी है तो हम A बिन्दु से होती हुई एक स्पर्श रेखा बनाते हैं जो X अक्ष को R बिन्दु पर मिलती है। अब पूर्ति की लोच निम्न प्रकार होगी –

$$e_s = \frac{RQ}{OQ}$$

चूँकि रेखारेखाचित्र 10.8 में $RQ < OQ$ है अतः $Es < 1$

चूँकि रेखारेखाचित्र 10.8 में $RQ < OQ$ है अतः $Es < 1$

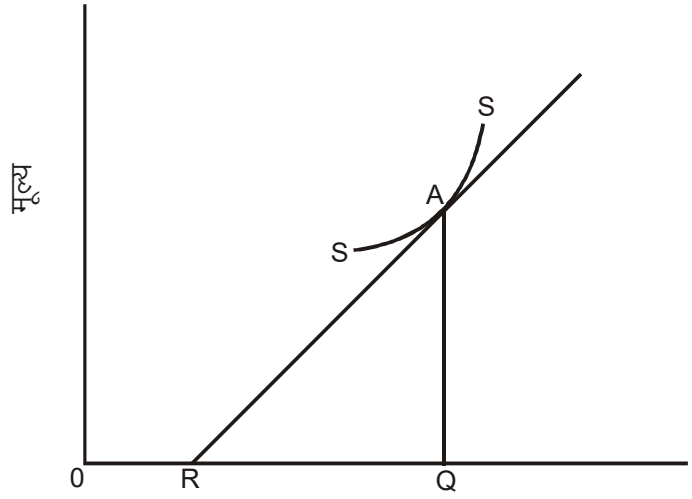

चित्र 7.15

10.7.1 पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले कारक

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित तत्व हैं :

1. **वस्तु की प्रकृति :** पूर्ति की लोच वस्तु–विशेष प्रकृति पर निर्भर करती है।यदि वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली है तो ऐसी वस्तु की पूर्ति बेलोच होती है क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर इसकी पूर्ति को बढ़ाया या घटाया नही जा सकता है। इसके विपरीत टिकाऊ वस्तुओं की पूर्ति की लोच लोचदार होती है।क्योंकि कीमत में परिवर्तन होने पर इनकी मात्रा को परिवर्तित किया जा सकता है।

2. **उत्पादन–तकनीक :** प्रायः सरल उत्पादन–विधि एवं कम पूँजी की आवश्यकता वाली विधि के अन्तर्गत वस्तु की पूर्ति लोचदार होती है। क्योंकि पूर्ति को, कीमत में परिवर्तन होने पर, सुगमता से घटाया या बढ़ाया जा सकता है।इसके विपरीत यदि उत्पादन प्रणाली जटिल है अथवा उसमें पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है तो ऐसी वस्तुओं के लिए पूर्ति की लोच बेलोचदार होती है। क्योंकि इनकी पूर्ति को बढ़ाना या घटाना आसान नहीं होता है।

3. **उत्पादन लागतः –** किसी वस्तु की पूर्ति की लोच उत्पादन लागत से भी प्रभावित होती है।यदि किसी वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम या लागत वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो रहा हो तो उसकी पूर्ति बेलोचदार होती है क्योंकि कीमत बढ़ने पर उनकी पूर्ति को बढ़ाना कठिन है।क्योंकिपूर्ति बढ़ने से लागत बढ़ती है। इसके विपरीत यदि वस्तु का उत्पादन लागत ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो ऐसी वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होगी।

4. **समय :–** समय पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाला एक मुख्य तत्व है। पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों में समय का विशेष महत्व है। जितना लम्बा समय होगा उतनी ही वस्तु की पूर्ति की लोच अधिक होगी क्योंकि उस समय में पूर्ति को आसानी से मात्रा के अनुरूप समायोजित किया जा सकता है। इसके विपरीत जितना कम समय होगा उस वस्तु की पूर्ति उतनी ही कम लोचदार होगी।क्योंकि समय कम होने से ऐसा करना कठिन होता है।

बोध प्रश्न ब

1. **पूर्ति की लोच को समझाइये ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. **पूर्ति की लोच मापन की बिन्दु रेखा विधि को समझाइये ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

3. **पूर्ति की लोच मापन कीआनुपातिक विधिको स्पष्ट रूप में समझाइये ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

.....

4. **पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले कारको को समझाए ?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

5. **निम्नलिखित में सही और गलत का चुनाव कीजिए।**

A. कीमत एवं पूर्ति के बीच धनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले वक्र का नाम है पूर्ति वक्र है।

B. जब किसी वस्तु की पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन, कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है तो ऐसी दशा को अत्यधिक लोचदार पूर्ति की स्थिति कहते है।

C. वस्तु का मूल्य बढ़ने पर वस्तु की पूर्ति बढ जायेगी।

D. जब कीमत में आनुपातिक परिवर्तन के कारण पूर्ति में भी आुनपातिक परिवर्तन हो तो पूर्ति लोच ऐकिक, होती है।

E. नाशवान वस्तुआं की पूर्ति लोच बेलोचदार होती है।

F. कीमत एवं पूर्ति के बीच धनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले वक्र का नाम है,मांग वक्र है।

G. अन्य बातें समान रहने पर, धनात्मक ढाल वाली पूर्ति रेखा के साथ एक वस्तु की कीमत में वृद्धि के परिणामस्वरूप पूर्ति की गई मात्रा में वृद्धि होगी।

10.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके है कि कीमत पूर्ति के साथ क्या सम्बंध हैं। किसी वस्तु की कीमत का पूर्ति के साथ सीधा सम्बंध होता हैं इसीलिएपूर्ति वक्र धनात्मक ढाल वाला होता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पूर्ति के नियम की व्याख्या सहज रूप से कर सकेगें।इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि पूर्ति की लोच में कीमत में आनुपातिक परिवर्तन के कारण पूर्ति की मात्रा में किस अनुपात में परिवर्तन होता है तथा इनको मापने की विधियां कौन–2 सी है एवं इसकों प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन से है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पूर्ति की लोचतथा इनको मापने की विधियोंकी व्याख्या सहज रूप से कर सकेगें।

इस इकाईमें सर्वप्रथमपूर्ति से आशय, पूर्ति लोच से आशय, पूर्ति की लोच की श्रेणियाँ, पूर्ति की लोच की माप तथा पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या की गई है।पूर्ति की लोच का विचार यह बताता है कि कीमत में वृद्धि या कमी होने पर पूर्ति की मात्रा में कितनी या किस गति से वृद्धि या कमी होगी। पूर्ति की लोच कीमत में थोड़े से परिवर्तन के फलस्वरूप पूर्ति की मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।

10.11 उपयोगी शब्दावली

- **स्थानापन्न वस्तुएँः–** जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की माँगी गई मात्रा में कमी ला दे तो ऐसी वस्तुएँ परस्पर स्थानापन्न होंगी।
- **पूरक वस्तुएँः–** जब एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु की मात्रा में वृद्धि ला दे तो ऐसी वस्तुएँ एक दूसरे की पूरक होंगी।

- **निम्न कोटि की वस्तुएँ** :– ये वे वस्तुएँ हैं जिनकी माँग उपभोक्ता की आय में वृद्धि के साथ घटती जाती है।

- **पूर्ति की लोचः–** वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के कारण वस्तु की पूर्ति की गई मात्रा में होने वाली सापेक्षिक अनुक्रिया पूर्ति की लोच कहलाती है।

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न ब

प्रश्न 5. A. उत्तर : सही B.उत्तर : सही C. उत्तर : सही

D. उत्तर : सही E. उत्तर : गलत F. उत्तरः गलत

E. उत्तरः सही

10.13 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 पूर्ति के नियम को समझाइये। इसको प्रभावित करने वाले कारको का विश्लेषण कीजिए ?

प्रश्न–2 पूर्ति के नियमों के अपवादों की विवेचना कीजिए?

प्रश्न–3 पूर्ति की लोच को समझाइये। इसको मापन की विधियों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–4 पूर्ति के क्या को है। इसको प्रभावित करने वाले कारको का विश्लेषण कीजिए ?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आहूजा, एच0 एल0, (2018),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

2. झिंगन, एम0 एल0 (2018), व्याष्टि अर्थशास्त्र, वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, मयूर विहार, नई दिल्ली।

3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थशास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आगरा।

4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थशास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

5. सेठ, एम0 एल0 (2018) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

6. Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.

7. Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.

8. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

9. स्टोनियर एण्ड हेग,(2011)''ए टेक्सट बुक ऑफ इकोनोमिक आक्सफोर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

10. सेन, ए (1999), माइक्रोइकोनॉमिक्स, थियरी एण्ड अप्लीकेशन्स, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

इकाई : 11 लागत सिद्धांत तथा लागत वक्र विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 लागत का सिद्धांत

11.3 मौद्रिक लागत

11.3.1 दृश्य लागतें

11.3.2 अदृश्य लागतें

11.3.3 सामान्य लाभ

11.4 वास्तविक लागत

11.5 अवसर लागत

11.6 अल्पकालीन लागतें

11.6.1 कुल उत्पादन लागत

11.6.2 प्रति इकाई उत्पादन लागत

11.6.3 औसत कुल लागत

11.6.4 औसत स्थिर लागत

11.6.5 औसत परिवर्तनशील लागत

11.6.6 सीमान्त लागत

11.6.7 औसत लागत एवं सीमान्त लागत में सम्बन्ध

11.6.8 औसत लागत एवं सीमान्त लागत का गणितीय सम्बन्ध

11.7 दीर्घकालीन लागत

11.7.1 दीर्घकालीन औसत लागत

11.7.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत

11.8 सारांश

11.9 उपयोगी शब्दावली

11.10 बोध प्रश्नो के उत्तर

11.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि :–

- लागत की विभिन्न धारणओं का अध्ययन कैसे किया जाता है?
- लागत वक्रों की प्रवृति को जान पायेंगे।
- मौद्रिक लागतें का आशय क्या है? तथा इनमें कौन–कौन से तत्व शामिल है, की व्याख्या कर सकेंगें।
- वास्तविक लागत की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेगें।
- अवसर लागत की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगें।
- स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों को समझ सकेंगे।
- औसत लागत व सीमान्त लागतों को भी जान पायेंगे।
- सीमान्त व औसत सम्बंध किस प्रकार के होते हैं।

11.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र मे उत्पादन विश्लेषण में लागत की धारणाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। लागत ज्ञात होने पर ही फर्म या उद्योग की संतुलन की स्थिति विवेचन करना सम्भव है। अर्थात् जिस प्रकार से उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उपयोगिता या संतुष्टि का महत्वपूर्ण योगदान है उसी प्रकार उत्पादक के संतुलन की स्थिति के निर्धारण में लागत का महत्वपूर्ण योगदान है।

अतः किसी उत्पादक की उत्पादन की मात्रा के निर्धारण में उत्पादन लागत का महत्वपूर्ण स्थान होता है। फर्म द्वारा लिये गये उत्पादन सम्बंधी निर्णय एक ओर इस बात पर निर्भर करते हैं कि प्रति इकाई लागतें कितनी आ रही है और दूसरी ओर इस बात पर निर्भर करता है कि बाजार में प्रति इकाई कीमतें कितनी प्राप्त हो रही है। अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लागत वक्रों की विवेचना करने से पूर्व हमें लागत की विभिन्न अवधारणाओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है। इस इकाई में हम उत्पादन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की लागत धारणाओं का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

11.2 लागत के सिद्धांत

उत्पादक के दृष्टिकोण से लागत पक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्पादन प्रारम्भ करने से पूर्व उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। उत्पत्ति के साधनों तथा स्वयं उत्पादक की उद्यमशीलता को एक निश्चित संयोग में मिलाये बिना उत्पादन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन का अपना अलग मूल्य होता है तथा एक उत्पत्ति के साधन से दूसरे उत्पत्ति के साधन को एक

सीमा तक प्रतिस्थापित भी किया जा सकता है। उत्पत्ति के साधनों में महँगे साधनों का प्रयोग निश्चित रूप से कुल उत्पादन लागत को बढ़ायेगा, साथ ही सस्ते उत्पत्ति के साधन से उत्पादित की जा रही वस्तु की उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले समस्त में सहायक साधनों को दिया जाने वाला भुगतान ही उत्पादन लागत है।

अर्थशास्त्र में लागत शब्द को कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। समयान्तराल में अर्थशास्त्रियों द्वारा लागत की विभिन्न प्रकार की धारणाएं प्रतिपादित की गयी। जिनमें प्रमुख अवधारणाएं निम्नवत हैं –

1. मौद्रिक लागत

2. वास्तविक लागत

3. अवसर लागत

11.3 मौद्रिक लागत

सामान्य रूप से किसी वस्तु के उत्पादन प्रक्रिया में उद्यमी द्वारा जो विभिन्न प्रकार के व्यय किये जाते हैं वही उत्पादन की मौद्रिक लागतें कहलाती है। मौद्रिक लागत में निम्नलिखित मदों को सम्मिलित किया जा सकता है – कच्चे माल पर व्यय,श्रम की मजदूरी एवं वेतन पर व्यय, अविभाज्य बड़े उपकरण एवं मशीन पर व्यय, पूंजी पर दिए जाने वाला ब्याज, भूमि का किराया अर्थात् लगान, मशीनों की टूट–फूट एवं घिसावट पर व्यय, प्रबन्धन व्यय, विज्ञापन व्यय, यातायात व्यय, बीमा कम्पनियों को दी जाने वाली राशि तथा सामान्य लाभ।

उपर्युक्त बतायी गई मौद्रिक लागतों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

अ. दृश्य लागतें

ब. अदृश्य लागतें

स. सामान्य लाभ

11.3.1 दृश्य लागतें

दृश्य लागतों के अन्तर्गत उन व्ययों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें उत्पादक के वित्तीय लेखा–जोखा में देखा जा सकता है। अतः इसे व्यक्त लागत भी कहते हैं।दृश्य लागत में निम्नलिखित तीन मदों के व्यय सम्मिलित होते हैं –

1. **उत्पादन लागत**– इसमें कच्चे माल पर व्यय, मजदूरी वेतन, ब्याज, लगाान, मशीन, उपकरण, रख रखाव पर व्यय इत्यादि सम्मिलित होते है।

2. **बिक्री लागत –** विज्ञापन पर व्यय, पैंकिंग पर व्यय, परिवहनीकरण तथा अन्य बिक्री सम्बन्धी व्यय सम्मिलित होते है।

3. **अन्य लागत –**जैसेकर, बीमा, विद्युत, संचार, प्रीमियम इत्यादि पर किया गया व्यय ।

11.3.2 अदृश्य लागतें

इसके अन्तर्गत उन साघनों तथा सेवाओं की कीमत शामिल होती है जिन पर उत्पादन अथवा साहसी व्यय तो रहता है पर प्रत्यक्ष रूप से उनकी कीमतें नही चुकाता। इसमें मुख्यतया वे साधन सम्मिलित होते हैं जो उत्पादन के स्वतः के होते हैं अर्थात् व्यक्तिगत होते हैं। अदृश्य लागतों को अस्पष्ट लागतें, अथवा अव्यक्त लागतें भी कहते है। उदाहरणार्थ उद्यमी की स्वतः की भूमि का लगान, स्वतः की पूँजी का ब्याज, इत्यादि। अदृश्य लागतों के अन्तर्गत निम्नलिखित व्यय सम्मिलित किए जाते हैं –

1. स्वयं उत्पादक द्वारा प्रदान की गई सेवा का पारिश्रमिक
2. उत्पादन की अपनी स्वयं की पूंजी का ब्याज
3. उस बिल्डिंग का किराया जो स्वयं उस उत्पादक की है किन्तु उत्पादन क्रिया में प्रयोग की जा रही है।

11.3.3 सामान्य लाभ

सामान्य लाभ को अर्थशास्त्र में किसी उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने की लागत के रूप मे व्यक्त किया जाता है। लाभ दो प्रकार के होते हैं– अतिरिक्त लाभ तथा सामान्य लाभ। यदि वस्तु की बिक्री से इतना अधिक आगम प्राप्त हो कि उद्यमी की लागत, वेतन इत्यादि तो निकले ही साथ में कुछ अतिरिक्त राशि बच जाए तो उसे उद्यमी के अतिरिक्त लाभ कहेंगे। परन्तु यदि मात्र इतना आगम प्राप्त हो कि केवल उसका वेतन व लागतें निकल पाए तो उसे उद्यमी का सामान्य लाभ कहा जाएगा। सामान्य लाभ को लागतों के अंश के रूप में देखा जाता है, परन्तु अतिरिक्त लाभ में लागतों से कोई सम्बंध नहीं होता। ऐसा माना जाता है कि सामान्य लाभ भी न मिल पाने की दशा में उद्यमी उत्पादन बन्द कर देता है।

सक्षिप्त रूप में,

कुल मौद्रिक लागत = कुल दृश्य लागत + अदृश्य लागत + सामान्य लाभ

11.4 वास्तविक लागत

वास्तविक लागत से अभिप्राय उस कष्ट, प्रयास, मेहनत एवं त्याग से है जिसके द्वारा किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है। यदि किसी वस्तु Xके उत्पादन में वस्तु Y कीतुलना में दुगना अधिक कष्ट, प्रयास अथवा त्याग करना पड़ा है तो X का मूल्य Y की तुलना में दुगना होना चाहिए। प्रो0 मार्शल के अनुसार एक वस्तु के उत्पादन में समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा जो प्रयत्न एवं त्याग किए जाते हैं वही उत्पादन की वास्तविक लागत है। परन्तु वास्तविक लागत की इस विचारधारा की बाद के अर्थशास्त्रियों द्वारा तीक्ष्ण आलोचना की गयी और कहा गया कि कष्ट अथवा त्याग मनोवैज्ञानिक धारणाएं हैं जिन्हें ठीक प्रकार में मापा नहीं जा सकता। साथ ही इस सिद्धान्त को व्यावहारिक नहीं माना जाता क्योंकि एक डाक्टर, वकील इत्यादि की सेवाओं का मूल्य सामान्यतया कुली, श्रमिक इत्यादि से ज्यादा पाया जाता है जो कि इस सिद्धान्त का विरोधाभास है। इस प्रकार किसी उत्पादन क्रिया के अन्तर्गत निहित कष्ट व त्याग वास्तविक लागत का निर्माण करते हैं।''

11.5 अवसर लागत

आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियों द्वारा वास्तविक लागत के स्थान पर अवसर लागत का प्रयोग किया। अर्थशास्त्र का मौलिक सिद्धान्त यह है कि आर्थिक साधन आवश्यकताओं की तुलना में सीमित होते हैं। अतः किसी वस्तु के उत्पादन का अर्थ है – दूसरी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन से वंचित होना। सरल शब्दो में कह तो ''किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन उन्हीं उत्पत्ति साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के विकल्प के रूप में किया जा सकता है।''

अवसर लागत के उपर्युक्त विचार को एक उदाहरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अपनी योग्यता तथा श्रम के आधार पर एक व्यक्ति को तीन

नौकरियां मिल सकती है – डिग्री कालेज लेक्चर (वेतन रू0 60000 मासिक), बैंक ऑफीसर (वेतन रू0 50000 मासिक) तथा मार्केटिग ऑफीसर (वेतन रू0 36000 मासिक)। स्वाभाविक है कि अन्य बातों के समान रहते हुए वह व्यक्ति डिग्री कालेज के प्रवक्ता पद को ही चुनेगा। इस चुनाव के दो विकल्प हैं –50ए000 रू0 मासिक वेतन तथा 36,000 रू0 मासिक वेतन के अन्य दो पद। परन्तु इन पदों में श्रेष्ठ 50,000 रू0 मासिक वाला पद है तथा यही चुने गए पद की वैकल्पिक अथवा अवसर लागत कहलायेगी। वैकल्पिक अथवा अवसर लागत में वस्तु या सेवा के सर्वश्रेष्ठ विकल्प की लागत देखी जा सकती है।

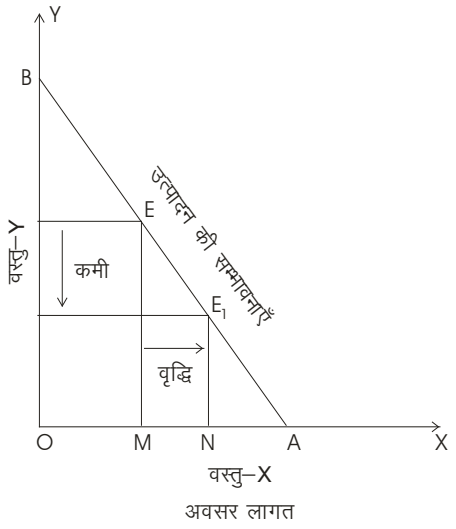

रेखाचित्र–11.1

अवसर लागत के तथ्य को हम रेखाचित्र संख्या 11.1 द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं। AB रेखा दो वस्तुओं X और Y के मध्य की उत्पादन सम्भावना वक्र है। उत्पादक के पास साधनों की मात्रा निश्चित है जिनसे दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन कर सकता है। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादक X वस्तु का उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो उसे Y वस्तु के उत्पादन में कम करना पड़ता है। रेखाचित्र

से स्पष्ट है कि X वस्तु की MN मात्रा में वृद्धि करने के लिए Y वस्तु की RS मात्रा का त्याग करना पड़ेगा, यही अवसर लागत है। X वस्तु की MN मात्रा की अवसर लागत Y वस्तु की RSमात्रा में कमी को माना जाएगा।

अवसर लागत का महत्व

अवसर लागत पर ही लगान का आधुनिक सिद्धान्त आधारित है। यह उत्पत्ति के सीमित साधनों के वितरण में सहायक है। अवसर लागत का तथ्य साधनों के अनुकूलतम वितरण की क्रिया को सफल बनाना है। अवसर लागत के विचार से यह विश्लेषण किया जा सकता है कि फर्म की लागत किस सीमा तक अपने उत्पादन के साथ परिवर्तित हो सकती है।

11.6 अल्पकालीन लागतें

उत्पादन समयावधि तथा साधनों के समायोजन के आधार पर सामान्यतया लागतों का विश्लेषण दो रूप में किया जाता हैः–अल्पकालीन लागतें तथा दीर्घकालीन लागतें।

अल्पकाल में स्थिर साधनों का जो भुगतान किया जाता है उसे स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील साधनों को जो भुगतान किया जाता है उसे परिवर्तनशील लागत कहा जाता है। स्थिर लागतों की एक विशेषता यह भी है कि उत्पादन बन्द हो जाने की दशा में भी उद्यमी को इनका वहन करना पड़ता है परन्तु परिवर्तनशील लागत उत्पादन की मात्रा के अनुसार बढ़ती व घटती रहती है।

अतः अल्पकाल में

कुल उत्पादन लागत = कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्तनशील लागत

$$TC = TFC + TVC$$

रेखाचित्र 11.2 में कुल लागत वक्र को TFC तथा कुल परिवर्तनषील लागत को TVC वक्र के रूप में स्पष्ट किया गया है। TFC रेखा X- अक्ष के समानान्तर एक पड़ी रेखा के रूप में दिखायी गई है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में भी उत्पादक को TFC के बराबर व्यय वहन करना पड़ेगा। इसके दूसरी ओर TVC वक्र मूल बिन्दु से ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होता है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ–साथ कुल परिवर्तनषील लागतों में वृद्धि हो रही है। TVC का आरम्भिक बिन्दु O है जिसका अभिप्राय है कि शून्य उत्पादन होने की दशा में कुल परिवर्तनशील लागत शून्य हो जाती है। इस प्रकार कुल परिवर्तनशील लागत, उत्पादन की मात्रा का एक फलन होता है।

अर्थात्

$$TVC = f\,(Q)$$

दूसरे शब्दों में, उत्पादन की मात्रा की वृद्धि TVC को बढ़ायेगी तथा उत्पादन की मात्रा की कमी TVC को घटायेगी।

TFC एवं TVC वक्रों के योग को प्रदर्शित करता हुआ कुल लागत वक्र रेखाचित्र 11.2 में TC द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो कुल उत्पादन लागत को बताता है। भिन्न–भिन्न उत्पादन स्तरों पर कुल स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागतों का योग इस वक्र के द्वारा प्रदर्शित किया गया। TC वक्र का प्रारम्भ बिन्दु Y-अक्ष का वह बिन्दु है जहाँ से TFC वक्र प्रारम्भ होता है। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में कुल लागत, कुल स्थिर लागत के बराबर होगी क्योंकि शून्य उत्पादन स्तर पर परिवर्तनशील लागत लागत पूर्णतः समाप्त हो जाती है। रेखाचित्र 11.2

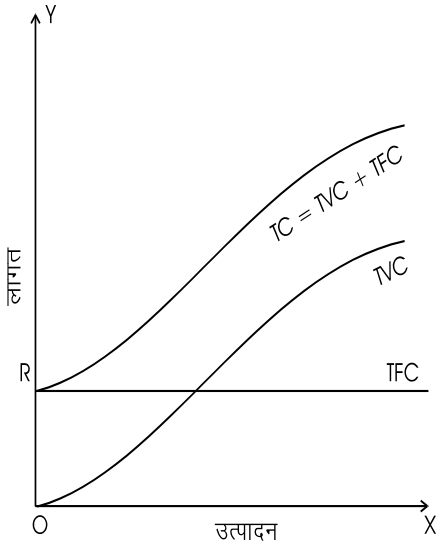

रेखाचित्र–11.2

से यह भी स्पष्ट है कि TVC वक्र के बढ़ने की गति एवं TC वक्र के बढ़ने की गति एक समान है क्योंकि TC वक्र के अनुसार विभिन्न उत्पादन स्तरों पर परिवर्तित होती हुई TVC अपने परिवर्ततन के अनुपात में ही TC में परिवर्तन करती है। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन लागत भी उत्पादन का फलन है। अर्थात् $TC = f(Q)$

स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि दोनों प्रकार की लागतों का अन्तर अल्पकाल में ही लागू होता है दीर्घकाल में नहीं क्योंकि दीर्घ काल में सभी साधन एवं लागतें परिवर्तनशील हो जाती है। दूसरे, स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में अन्तर केवल मात्रा का है न कि किस्म का क्योंकि स्थिर लागतें एक समयावधि के संदर्भ में ही स्थिर होती है।

11.6.1 कुल उत्पादन लागत

अल्पकाल में उत्पादक वस्तु को पूर्ति की परिवर्तित मांग दशाओं के अनुसार समायोजित नहीं कर सकता क्योंकि अल्पकाल में उत्पादक के पास इतना समय नहीं होता कि वह उत्पत्ति के सभी साधनों में समायोजन कर सके। अल्पकाल में उत्पत्ति के कुछ साधन स्थिर होते हैं और कुछ परिवर्तनशील। स्थिर साधनों में सामान्यतया भूमि, पूंजी, मशीन, संगठन, प्रबन्ध इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। स्थिर साधनों के अतिरिक्त कुछ परिवर्तनशील साधन भी होते हैं जिनकी पूर्ति की आवश्यकतानुसार अल्पकाल में भी समायोजित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों की मात्रा, कच्चा माल, ईधन इत्यादि सम्मिलित होते हैं। इन साधनों में उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तन होता है। स्थिर साधनों का जो भुगतान किया जाता है उसे स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील साधनों को जो

भुगतान किया जाता है उसे परिवर्तनशील लागत कहा जाता है। स्थिर लागतों की एक विशेषता यह भी है कि उत्पादन बन्द हो जाने की दशा में भी उद्यमी को इनका वहन करना पड़ता है परन्तु परिवर्तनशील लागत उत्पादन की मात्रा के अनुसार बढ़ती व घटती रहती है।

11.6.2 प्रति इकाई उत्पादन लागत

सूक्ष्मगत आर्थिक विश्लेषण में कुल उत्पादन लागत की धारणा का जितना महत्व है उतना ही महत्व प्रति इकाई अथवा औसत लागत का है। कुल लागत, स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत की उपर्युक्त व्याख्या को औसत लागत, औसत स्थिर लागत तथा औसत परिवर्तनशील लागत के रूप में भी देखा जा सकता है।

11.6.3 औसत कुल लागत (Average Cost)

औसत कुल लागत, कुल लागत तथा कुल उत्पादन मात्रा का भागफल होती है। औसत लागत को प्रति इकाई लागत भी कहते हैं।

$$\text{औसत लागत (AC)} = \frac{\text{कुल लागत (TC)}}{\text{उत्पादित मात्रा (Q)}}$$

अल्पकाल में

$$TC = TFC + TVC$$

अतः $$AC = \frac{TFC + TVC}{Q}$$

अतः $$AC = AFC + AVC$$

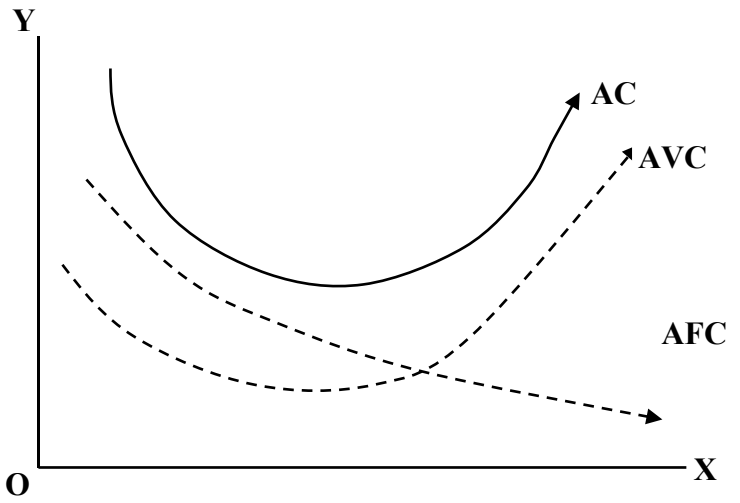

उत्पादन की मात्रा

रेखाचित्र 11.3

औसत लागत वक्र भी U आकार का होता है। स्पष्ट है कि औसत लागत, औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग है।रेखाचित्र 11.3 से स्पष्ट हैं कि उत्पादन में जैसे जैसे वृद्धि होती है कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता तथा परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है। औसत स्थिर लागत की प्रवृति लगातार गिरने की होती है जबकि औसत परिवर्तनशील लागत पहले गिरती है और फिर एक न्यूनतम स्तर प्राप्त करने के पश्चात पुनः बढ़ने लगती है। जब तक यह दोनों ही वक्रे गिरती है औसत लागत वक्र भी गिरती है और न्यूनतम परिवर्तनशील लागत बिन्दु के पश्चात औसत लागत भी औसत परिवर्तनशील लागत की भांति ऊपर बढ़ने लगती है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि जैसे जैसे उत्पादन बढ़ता जाता है कुल लागतों में परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता व स्थिर लागत का अंश घटता जाता है।

11.6.4औसत स्थिर लागत

यदि निश्चित उत्पादन में आई कुल स्थिर लागत (TFC) की उत्पादित मात्रा में भाग दें तो औसत स्थिर लागत प्राप्त होती है।

$$\text{औसत स्थिर लागत (AFC)} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत (TFC)}}{\text{कुल उत्पादन (Q)}}$$

जहाँ AFC = औसत स्थिर लागत

TFC = कुल स्थिर लागत

Q = उत्पादन की मात्रा

अल्पकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से ज्यामितीय रीति द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।

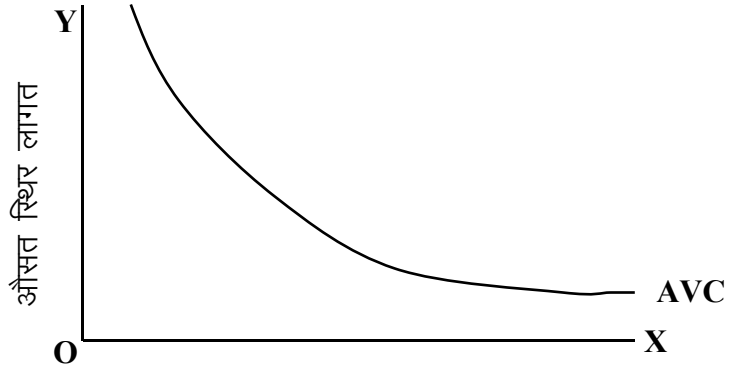

उत्पादन की मात्रा

रेखाचित्र 11.3

रेखाचित्र 11.3 एवं 11.4 से यह स्पष्ट है कि औसत स्थिर लागत (AFC) वक्र सदैव बाएं से दाएं नीचे गिरता हुआ होता है क्योंकि कुल स्थिर लागत अपरिवर्तनीय रहती है और जैसे जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है

औसत स्थिर लागत घटती जाती है। परन्तु AFC वक्र कभी भी X अक्ष को छू नहीं सकता अर्थात TFC कभी भी शून्य नहीं हो सकता। इसका आकार आयताकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperbole) के समान होता है।

11.6.5 औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost)

औसत परिवर्तनशील लागत, कुल परिवर्तनशील लागत एवं उत्पादन की मात्रा का भाग फल होती है।

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत (AVC)} = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)}}{\text{उत्पादन की मात्रा (Q)}}$$

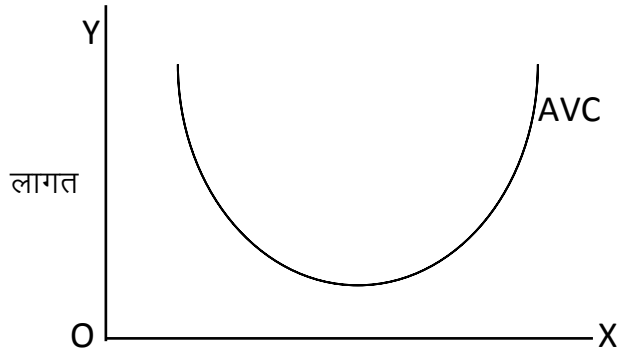

रेखाचित्र 11.5कुल उत्पादन

रेखाचित्र 11.3 एवं 11.5 से यह स्पष्ट है कि औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की प्रवृति उत्पादन में प्रयुक्त परिवर्तनशील साधनों की उत्पादकता पर निर्भर करती है। प्रतिफल के नियमों के अनुसार जब परिवर्तनशील साधनों की मात्राओं को लगातार बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भ में उत्पादन बढ़ता है फिर स्थिर हो जाता है तथा तत्पश्चात घटने लगता है। चूंकि बढ़ते हुए उत्पादन का अर्थ घटती हुई लागत से है अतः यदि लागत की दृष्टिकोण से देखें तो उत्पादन में लगातार वृद्धि होने पर प्रारम्भ में लागत गिरती है फिर स्थिर हो जाती है तत्पश्चात बढ़नें लगती है।परिवर्तनशील साधन की अल्पकाल में औसत उत्पादकता आरम्भ में बढ़ती है फिर स्थिर हो जाती है और उसके बाद घटती है। इस प्रकार औसत उत्पादकता वक्र की आकृति उल्टे U के समान होती है। उत्पादकता एवं लागत में परस्पर विपरीत सम्बन्ध है, जब परिवर्तनशील साधन की औसत उत्पादकता बढ़ती है तब AVC घटती है। जब औसत उत्पादकता स्थिर रहती हैं तब औसत परिवर्तनशील लागत अपने न्यूनतम बिन्दु पर पहुँच कर स्थिर हो जाती है तीसरी अवस्था में जहाँ औसत उत्पादकता घटना प्रारम्भ करती है तब औसत परिवर्तनशील लागत भी बढ़ना प्रारम्भ करती है।

11.6.6 सीमान्त लागत

एक सीमान्त इकाई अर्थात् अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने में जो लागत आती है उसे सीमान्त लागत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से कुल लागत में जितनी वृद्धि होती है उसे उस इकाई विशेष की सीमान्त लागत कहा जाता है।

$$MC_n = TC_n - TC_{(n-1)}$$

जहाँ MC_n = n वीं इकाइयों की सीमान्त लागत

TC_n= n इकाइयों की कुल लागत

TC_{n-1} = (n-1) इकाइयों की कुल लागत

हम जानते हैं कि

$$TC_n = TVC_n + TFC$$

तथा $TC_{n-1} = TVC_{n-1} + TFC$

उपर्युक्त दोनों समीकरणों में इकाइयों की संख्या TFC को प्रभावित नहीं करती क्योंकि TFC उत्पादन के आरम्भ से अन्त तक एक समान एवं अपरिवर्तित रहती है।

अतः $MC_n = TC_n - TC_{n-1}$

$= (TVC_n + TFC) - (TVC_{n-1} + TFC)$

$= (TVC_n + TFC - TVC_{n-1} - TFC)$

$MC_n = TVC_n + TVC_{n-1}$

सीमान्त लागत परिवर्तनशील लागत पर निर्भर करती है न कि स्थिर लागत पर। अल्पकाल में सीमान्त लागत को कुल लागत में परिवर्तन की दर के रूप में भी देखा जा सकता है।

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q} = \frac{\Delta TVC}{\Delta Q}$$

कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि के बराबर होती है।

जहाँ ΔTC = कुल लागत में परिवर्तन

ΔTVC = कुल परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन

ΔQ = कुल उत्पादन में परिवर्तन

अथवा $$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

जहाँ $\triangle TC$ = कुल लागत में परिवर्तन

$\triangle MQ$ = कुल उत्पादन में परिवर्तन

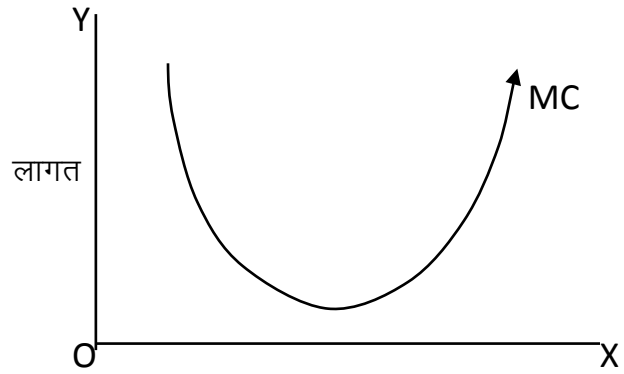

कुल उत्पादन

रेखाचित्र 11.6

रेखाचित्र 11.6 से यह स्पष्ट है कि सीमान्त लागत वक्र भी औसत लागत वक्र की भांति U आकार का होता है। इस आकार का मुख्य कारण परिवर्तनशील अनुपात नियम है। इस नियम के अनुसार प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन के प्रयोग की मात्रा में वृद्धि करने पर उस परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता बढ़ती है दूसरे शब्दों में सीमान्त लागते घटती हैं क्योंकि सीमान्त उत्पादकता एवं सीमान्त लागत दोनों के मध्य व्युत्क्रम सम्बंध पाया जाता है। पुनश्च् उसी साधन में और वृद्धि करने पर साधन की सीमान्त उत्पादकता अधिकतम होकर स्थिर हो जाती है अर्थात सीमान्त लागत न्यूनतम होकर स्थिर हो जाती है। तत्पश्चात सीमान्त उत्पादकता घटने लगती है अर्थात सीमान्त लागत बढ़ने लगती है।

11.6.7 सीमान्त लागत व औसत लागत में सम्बंध

मूल्य सिद्धान्त में औसत लागत (AC) तथा सीमान्त लागत (MC) के मध्य का सम्बंध अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। AC व MC दोनों की ही गणना कुल लागत के आधार पर होती है। जहां औसत लागत प्रति इकाई की औसत लागत को प्रदर्शित करता है वहीं सीमान्त लागत सीमान्त इकाई (अन्तिम इकाई) की लागत को। सामान्य तर्क से समझा जा सकता है कि यदि सीमान्त लागत गिर रही है अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में कम लागत आ रही है तो औसत लागत भी गिरती जाएगी और यदि सीमान्त लागतें बढ़ रही हैं अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में अधिक लागतें आ रही हैं तो औसत लागतें भी बढ़ने लगेंगी।

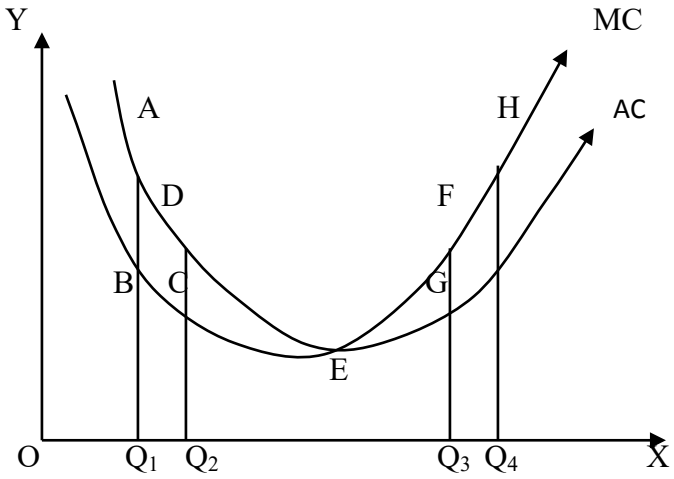

उत्पादन की मात्रा

रेखाचित्र 11.7

रेखाचित्र 11.7 के माध्यम से सीमान्त लागत और औसत लागत सम्बंध को अधिक स्पष्ट रू॰ से समझा जा सकता है। उत्पादन स्तर OQ_1 पर सीामन्त लागत BQ_1 तथा औसत लागत AQ_1 है। यदि उत्पादन स्तर को बढ़ाकर OQ_2 लाया जाए तो सीमान्त लागतें घट कर CQ_2 हो जाती है (अर्थात अतिरिक्त इकाईयों को बनाने में कम लागत आयी) और फलस्वरूप औसत लागतें भी घटकर DQ_2 पर आ जाएगी। यह औसत लागत के घटने की प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक कि सीमान्त लागतें घट रही हैं। जैसे ही सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक आएगी, औसत लागतें बढ़ने लगेंगी।

उत्पादन स्तर OQ_3 पर सीमान्त लागत FQ_3 है जबकि औसत लागत EQ_3 है। उत्पादन स्तर यदि बढ़ाकर OQ_4 किया जाता है तो सीमान्त लागत HQ_4 हो जाती है (यानि अतिरिक्त इकाईयों के निर्माण में अधिक लागत आयी) फलस्वरूप औसत लागत भी बढ़ जाती है।

स्पष्टतया जब तक सीमान्त लागतें गिरती हैं औसत लागत भी गिरती है और जब सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक होने लगती है औसत लागतें बढ़ने लगती है।

मूल्य सिद्धान्त में AC तथा MC का सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। AC और MC के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं –

1. दोनों की गणना उत्पादन की कुल लागत द्वारा की जाती है।

$$\text{औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुलउत्पादन}}$$

$$\text{सीमान्त लागत} = \frac{\text{कुल लागत में परिवर्तन}}{\text{कुल उत्पादन में परिवर्तन}}$$

2. आरम्भ में जब AC वक्र गिरता है तब MC वक्र एक सीमा तक गिरता है। किन्तु एक अवस्था के बाद MC वक्र बढ़ना आरम्भ हो जाता है जबकि AC वक्र गिरता रहता है। इस प्रकार MC सदैव घटती औसत लागत की दषा में औसत लागत से कम होती है।
3. जब AC न्यूनतम होता है तब MC वक्र AC वक्र को नीचे बिन्दु पर काटता है अर्थात् न्यूनतम औसत लागत सीमान्त लागत के बाराबर होती है।
4. जब AC बढ़ता है तो MC वक्र AC से ऊपर होता है एवं साथ ही साथ AC वक्र से तीब्र गति से बढ़ता है।
5. घटती औसत लागत की दशा में सीमान्त लागत घट भी सकती है, स्थिर भी हो सकती है एवं बढ़ भी सकती है।

11.6.8 औसत लागत एवं सीमान्त लागत का गणितीय सम्बन्ध

माना q उत्पादन स्तर पर औसत लागत = C

अतः q उत्पादन स्तर पर कुल लागत

$$TC = q \times C = \text{उत्पादन मात्रा} \times \text{औसत लागत}$$

हम जानते हैं कि,

$$AFC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

$$\text{आकलन के अनुसार, } MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

$$MC = \frac{\Delta(C.Q.)}{\Delta Q}$$

$$= Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c \frac{\Delta Q}{\Delta Q}$$

$$= Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c$$

हम जानते हैं कि $\Delta c/\Delta Q$, AC वक्र के ढाल को बताता है। अतः तीन दषाएँ हो सकती है।

(1) जब $\Delta c/\Delta Q < 0$ अर्थात्, AC वक्र का ढाल ऋणात्मक हो, तब

$$MC = Q \frac{\Delta c}{dQ} + c$$

इस समीकरण में घटक $Q(\Delta c/\Delta Q)$ ऋणात्मक होगा जिसके कारण MC औसत लागत C से कम होगा। दूसरे कारण MC औसत लागत C से कम होगा। दूसरे शब्दों में, जब AC वक्र गिर रहा होगा तब सीमान्त लागत औसत लागत से कम होती है।

(2) जब $\Delta c/\Delta Q = 0$ अर्थात AC वक्र का ढाल शून्य हो तब

$$MC = Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c = 0 + c = c$$

दूसरे शब्दों में, AC के न्यूनतम होने की दषा में सीमान्त लागत औसत लागत के बराबर होती है।

(3) जब $\Delta c/\Delta Q > 0$ अर्थात् AC वक्र ऊपर बढ़ रहा हो, तब

$$MC = Q \frac{\Delta c}{\Delta Q} + c$$

इस समीकरण में घटक $Q(\Delta c/\Delta Q)$ धनात्मक होगा जिसके कारण MC, औसत लागत C से अधिक हो जायेगा। दूसरे शब्दों में, जब AC वक्र ऊपर की ओर बढ़ता है तब सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक हो जाती है।

इस प्रकार गणितीय रीति से भी औसत लागत और सीमान्त लागत के सम्बन्ध को प्राप्त किया जा सकता है।

अल्पकालीन लागत वक्र : औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील, सीमान्त लागत एवं औसत कुल लागत वक्रों का एक साथ रेखाचित्र द्वारा निरूपण :–

सभी अल्पकालीन लागत वक्रों की व्याख्या के बाद अब हम इस स्थिति में हैं कि एक ही रेखाचित्र 11.8 में इन सभी के सम्बन्धों को दर्षा सकें। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जैसे–जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है वैसे–वैसे AC तथा AVC वक्र का अन्तर घटता जाता है जो घटती हुई AFC का सूचक है MC वक्र AVC तथा AC वक्रों के न्यूनतम बिन्दुओं से गुजरता है।

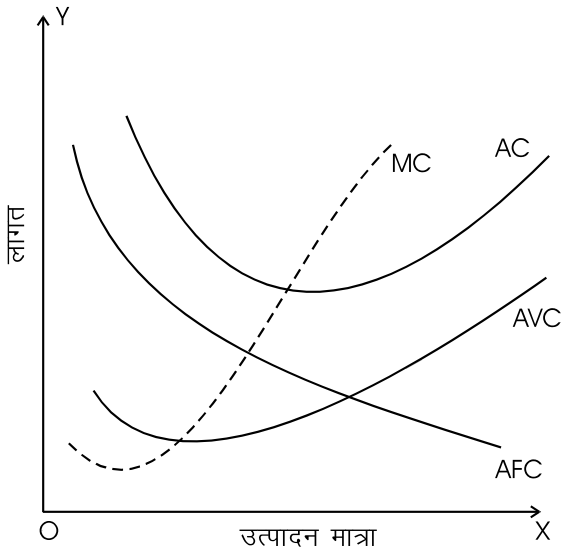

रेखाचित्र11.8

बोध प्रश्न अ

1. लागत का सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. मौद्रिक लागत को स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....

.....

.....

3. दृश्य लागत एवं अदृश्य लागत में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. वास्तविक लागत से आप क्या समझते है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5. अवसर लागत की अवधारणा को समझाइये ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6. कुल उत्पादन लागत एवं प्रति इकाई उत्पादन लागत में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7. औसत कुल लागत अवधारणा को समझाइये ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8. औसत स्थिर लागत आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9. औसत परिवर्तनशील लागत अवधारणा को समझाइये ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10. औसत परिवर्तनशील लागत एवं सीमान्त लागत के मध्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11. सीमान्त लागत आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12. औसत लागत एवं सीमान्त लागत के मध्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....

13. औसत परिवर्तनशील लागत एवं सीमान्त लागत के मध्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....

13. सही उत्तर का चुनाव कीजिये :–

A. किसी वस्तु की मौद्रिक लागत में दृश्य लागतें, अदृश्य लागतें तथा सामान्य लाभ शामिल की जाती है।

B. औसत लागत, औसत परिवर्तनषील लागत तथा सीमान्त लागत का आकार U अक्षर की भांति होता है ।

C. दृश्य एवं अदृश्य लागतेंमौद्रिक वास्तविक लागत का अंग हैं ।

D. अल्पकाल में साधन स्थिर एवं परिवर्तनशील दोनों होते हैं।

E. जब AC वक्र गिर रहा होता है तब सीमान्त लागत औसत लागत से कम और अधिक दोनो दशायें होती है।

F. सीमान्त लागत को $MCn = TC_n - TC_{n-1}$ सूत्र से व्यक्त किया जाता है।

G. किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा का उत्पादन करने पर फर्म को जितना पड़ता है, उसे फर्म की कुल लागत कहते हैं।

H. AFC वक्र वक्र U आकार का होता है।

I. जब सीमान्त लागत कम होती है तो औसत लागत सीमान्त लागत में कोई सम्बंध नहीं होता।

J. कुल लागत बराबर होती है स्थिर लागत + परिवर्तनशील लागत ।

11.7 दीर्घकालीन लागत

दीर्घकालीन वह समयावधि है जिसमें उत्पादक प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को इच्छानुसार एवं आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है। दीर्घकाल में उत्पत्ति का प्रत्येक साधन परिवर्तनशील होता है तथा कोई साधन स्थिर नहीं होता। दीर्घकाल में उत्पादन के प्लाण्ट का आकार भी परिवर्तनीय होता है। जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं कि अल्पकाल में प्लाण्ट का आकार स्थिर रहता

है जिसे घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। इसके विपरीत, दीर्घकाल में प्लाण्ट का आकार बदला जा सकता है अथवा उत्पादक एक प्लाण्ट को छोड़कर अपेक्षाकृत अधिक कुशल प्लाण्ट को अपना सकता है। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक उपयोगी है। अतः एक फर्म उत्पादन के लिए उस प्लाण्ट का उस बिन्दु तक प्रयोग करेगी जहाँ तक उत्पाद में वृद्धि के साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाय। दीर्घकाल में यदि कोई अन्य प्लाण्ट पहले से स्थापित प्लाण्ट की तुलना में किसी उत्पादन स्तर पर कम लागत को सम्भव बनाता है तब ऐसी दशा में उत्पादक कम लागत देने वाले प्लाण्ट पर स्थानान्तरित हो जायेगा।

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें उत्पादक प्रत्येक उत्पत्ति के साधन को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकता है। दीर्घकाल में उत्पादन के प्लाण्ट का आकार भी परिवर्तनशील होता है। फलस्वरूप दीर्घकाल में लागत को स्थिर लागत तथा परिवर्तनशील लागत के रूप में विखण्डित नहीं कर सकते। इस खण्ड में हम दीर्घकाल औसत लागत एवं सीमान्त लागत वक्र के बारे में समझेंगे।

11.7.1 दीर्घकालीन औसत लागत

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की दीर्घकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से प्राप्त किया जाता है।

दीर्घकालीन औसत लागत कुल लागत तथा उत्पादित मात्रा का भागफल है।

$$LAC = \frac{LTC}{q}$$

जहां

LAC = दीर्घकालीन औसत लागत

LTC = दीर्घकालीन कुल लागत

q = उत्पादन की मात्रा

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन की विभिन्न मात्राओं की न्यूनतम सम्भव औसत लागत को व्यक्त करता है। यदि दीर्घकाल में किसी वस्तु की मांग बढ़ जाती है तब उत्पादक बढ़ी मांग को पूरा करने के लिए अपने वर्तमान प्लाण्ट में विस्तार कर सकते हैं अथवा बदल सकते हैं। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक ही उपयोगी होता है। ऐसी दशा में फर्म किसी प्लाण्ट विशेष का उसी अवस्था तक प्रयोग करेगी जहां तक उत्पादन मात्रा में वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाए।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (*LAC Curve*) की व्याख्या सबसे सरल परिस्थिति में करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी उद्योग में प्लाण्ट केवल तीन भिन्न आकारों – सूक्ष्म (*small*), मध्यम (*medium*) तथा वृहत (*large*) में उद्योग में विद्यमान हैं। रेखाचित्र 11.9 में इस स्थिति की व्याख्या दिखाई नहीं है। सूक्ष्म आकार के प्लाण्ट का अल्पकालीन औसत लागत वक्र SAC_1, मध्यम आकार प्लाण्ट का SAC_2 तथा दीर्घ आकार का SAC_3 द्वारा प्रदर्शित है।

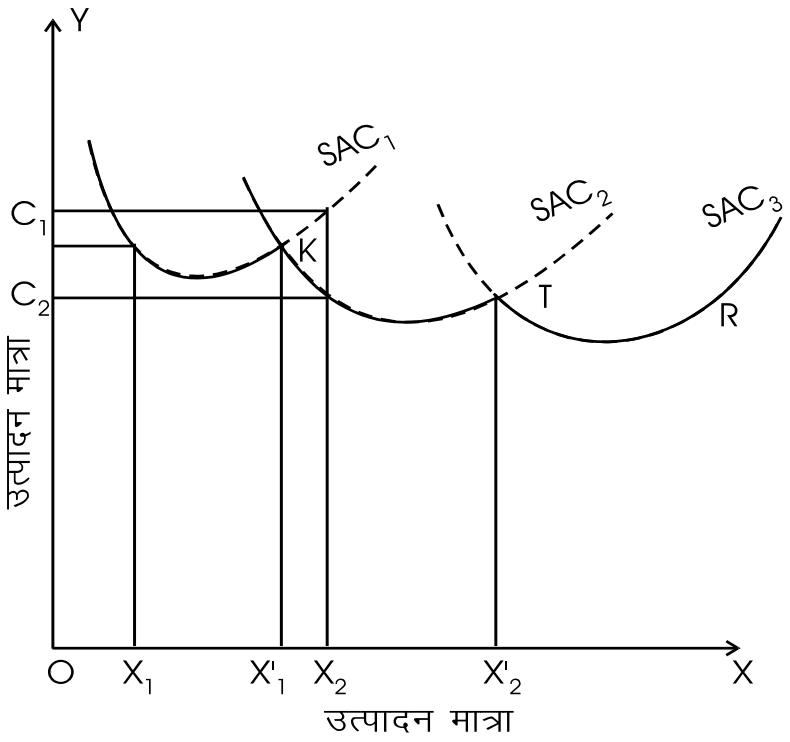

रेखाचित्र 11.9 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

(तीन उपलब्ध प्लाण्टों की दशा में)

दीर्घकाल में एक उद्यमी तीन वैकल्पिक विनियोगों में से किसी एक चुन सकता है। रेखाचित्र में तीनों विकल्पों को तीन अल्पकालीन लागत वक्रों द्वारा दिखाया गया है। उद्यमी तीनों प्लाण्टों में से किसका चुनाव करेगा यह उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि फर्म उत्पादन की OX_1 मात्रा उत्पादित करती है तब न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट का चुनाव किया जायेगा। यदि उत्पादन मात्रा OX_2 हो जाये तब उत्पादक पहले प्लाण्ट को छोड़कर मध्यम आकार वाले प्लाण्ट पर पहुँच जायेगा क्योंकि OX_2 उत्पादन यदि उद्यमी पहले प्लाण्ट पर ही करता है तो औसत लागत OC_1 आती है जबकि उतनी ही मात्रा का उत्पादन उद्यमी दूसरे मध्यम आकार वाले प्लाण्ट के साथ OC_2 औसत लागत पर कर सकता है। अतः उद्यमी के लिए ऊँचे लागत वाले प्लाण्ट से कम लागत वाले प्लाण्ट पर स्थानान्तरित होना हितकर रहेगा। उत्पादन स्तर OX_1 तक उद्यमी न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट के साथ उत्पादन करेगा, क्योंकि इस उत्पादन स्तर तक पहले प्लाण्ट से न्यूनतम लागत प्राप्त हो रही है। जब उत्पादन स्तर OX_1 हो जाता है तब न्यूनतम एवं मध्यम दोनों आकार वाले प्लाण्ट एक समान लागत KX_1 देते हैं। इस बिन्दु पर उद्यमी उदासीन रहेगा कि वह किसका चुनाव करें। किन्तु जैसे ही उत्पादन OX_1 से अधिक होगा न्यूनतम आकार वाला प्लाण्ट ऊँची लागत वाला प्लाण्ट बन जायेगा तथा उद्यमी कम लागत वाले प्लाण्ट SAC_2 पर स्थानान्तरित हो जायेगा। इसी प्रकार उद्यमी OX_2 मात्रा तक मध्यम आकार वाले प्लाण्ट का उपयोग करेगा किन्तु OX_2 से अधिक उत्पादन स्तर पर उद्यमी वृहत आकार वाले प्लाण्ट SAC_2 पर स्थानारन्तरित कर दिया जायेगा। **अतः दीर्घकाल में फर्म को प्लाण्ट के आकार**

को बदलने की स्वतंत्रता होती है तथा दीर्घकाल में फर्म किसी उत्पादन स्तर को उत्पादित करने के लिए उस प्लाण्ट का प्रयोग करेगी जो न्यूनतम औसत लागत पर उत्पादन दे सके। परन्तु दीर्घकाल में उद्यमी का चुनाव तीन प्लाण्टों तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि उसके समक्ष बड़ी संख्या में विभिन्न आकार वाले प्लाण्ट उपस्थित रहते हैं तथा उसे उनमें से किसी एक का चुनाव करना होता है। ऐसा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र रेखाचित्र 11.10 में PKTR द्वारा दिखाया गया है। SAC_1, SAC_2 तथा SAC_3 के बिन्दुकित रेखाओं का दीर्घकालीन औसत लागत विश्लेषण में कोई महत्व नहीं है क्योंकि प्लाण्टों के इन भागों पर उत्पादन करने के बजाय उद्यमी प्लाण्ट के आकार को ही बदल देता है। ऐसी दशा में जिसमें उद्यमी को दीर्घकाल में तीन (अथवा बहुत कम) प्लाण्ट उपलब्ध होते हैं, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र सीधा होकर उतार–चढ़ाव वाला होता है। देखें रेखाचित्र 11.10 में PKTR वक्र।

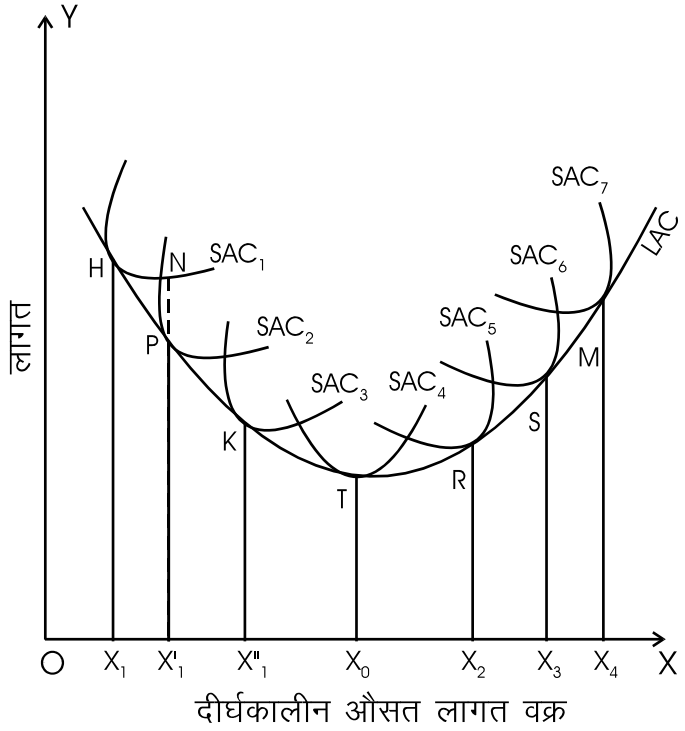

रेखाचित्र 11.10

किन्तु वास्तव में उद्यमी का दीर्घकाल में चुनाव तीन प्लाण्टों तक ही केन्द्रित नहीं होता बल्कि उसके समक्ष बड़ी संख्या में विभिन्न प्रकार आकार वाले प्लाण्ट उपस्थिति है तथा उसमें से किसी एक का चुनाव करता है। इसी स्थिति की व्याख्या रेखाचित्र 11.10 में की गई है।

रेखाचित्र 11.10 में अनेक प्लाण्ट दिखाये गये हैं। उत्पादन की OX_1 मात्रा के उत्पादन के लिए फर्म SAC_1 के बिन्दु H का चुनाव करेगी क्योंकि इस प्लाण्ट से इसी मात्रा पर न्यूनतम लागत प्राप्त रही है। यह SAC_2 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को बिन्दु H पर स्पर्श करता है। उत्पादन की OX_1 मात्रा होने पर SAC_1 लागत वाला प्लाण्ट NX_1 लागत देता है जबकि SAC_2 पर उत्पादन की समान मात्रा PX_1 की लागत प्राप्त की जा सकती है। अतः OX_1 उत्पादन मात्रा के लिए उत्पादक SAC_2 पर स्थानान्तरित हो जायेगा। ठीक उसी प्रकार OX_1, OX_0, OX_2, OX_3 तथा OX_4 उत्पादन करेगा। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC इन विभिन्न प्लाण्टों को दर्शाने वाले अल्पकालीन औसत वक्रों को कहीं न कहीं एक बिन्दु पर स्पर्श अवश्य करेगा। इसलिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को घेरता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि LAC वक्र SAC को केवल स्पर्श करता है, SAC वक्र को किसी भी बिन्दु पर काटता नहीं है। इसका कारण यह है कि किसी भी उत्पादन मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत, अल्पकालीन औसत लागत से अधिक नहीं हो सकता। दीर्घकाल में उत्पादक प्लाण्ट का समायोजन एवं चुनाव इस प्रकार करता है कि उत्पादन लागत को घटाया जा सके। दूसरे शब्दों में, ऐसी कोई भी दशा नहीं हो सकती जिसमें अल्पकालीन औसत लागत, दीर्घकालीन औसत लागत से कम हो अर्थात् सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्र LAC से ऊपर होंगे। दीर्घकाल में उत्पादन करते समय उत्पादक वस्तुतः किसी अल्पकालीन प्लाण्ट पर ही क्रियाशील होता है। अतः प्रत्येक उत्पादन स्तर पर उससे सम्बन्धित अल्पकालीन औसत लागत वक्र किसी न किसी बिन्दु पर LAC को अवश्य स्पर्श करेगा।

LAC वक्र की दूसरी विशेषता दीर्घकालीन पैमाने के प्रतिफलों के कारण उपस्थिति होती है। पैमाने के प्रतिफलों की मान्यता की दशा में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC वक्र) अंग्रेजी के अक्षर U आकार का होता है। रेखाचित्र 11.10 में LAC को U आकार का दिखाया गया है।

रेखाचित्र 11.10 में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को प्रदर्शित किया गया है जो कि कई अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं का बिन्दु पथ है। जैसाकि रेखाचित्र 11.10 में अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से दर्शाया गया है। जैसे जैसे उत्पादन का स्तर बढ़ता है उत्पादक एक प्लाण्ट से दूसरे प्लाण्ट पर हस्तांतरित होता जाता है। अतः दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का आवरण (envelope) भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक औसत लागत वक्रों को घेरता है।

11.7.2 दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की सहायता से की जा सकती है जो सम्बन्ध अल्पकालीन सीमान्त लागत एवं अल्पकालीन औसत लागत के मध्य पाया जाता है ठीक वही सम्बन्ध दीर्घकालीन सीमान्त लागत एवं दीर्घकालीन औसत लागत के मध्य भी उपस्थित होता है।

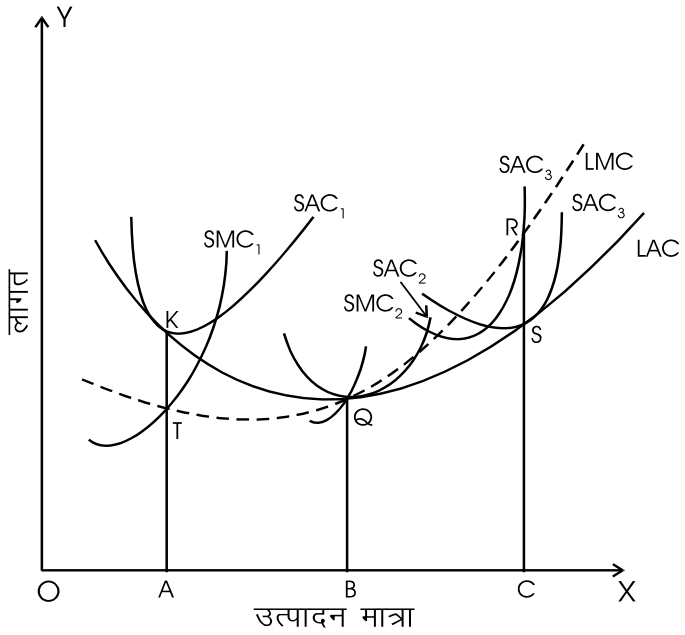

रेखाचित्र11.11– दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति

रेखाचित्र 11.11 में इस सम्बन्ध को दर्शाया गया है। जहॉ कहीं भी SAC वक्र LAC वक्र का स्पर्श करता है वहां उससे सम्बंधित क्रमशः SMC तथा LMC परस्पर बराबर होते हैं। जब तक LAC वक्र नीचे गिर रहा होता है तब तक SMC तथा LMC की यह समानता SAC तथा LAC वक्रों के स्पर्श बिन्दु से नीचे होती है (बिन्दु K तथा T)। प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार पर, जहां LAC तथा SAC दोनों अपने न्यूनतम बिन्दुओं पर परस्पर स्पर्श करते हैं, वहां LMC तथा SMC परस्पर इस प्रकार बराबर होती है कि LMC = SMC = LAC = SAC (बिन्दु θ पर)। इस प्रकार LAC तथा LMC में वही सम्बंध पाया जाता है जो SAC तथा SMC में है अर्थात,

(i) यदि LAC > LAC तथा LAC नीचे गिरेगा।

(ii) यदि LAC = LMC तब LAC स्थिर रहेगा।

अर्थात LAC वक्र LAC को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है।

(iii) यदि LMC > LAC rc LAC ऊपर की ओर बढ़ता हुआ

बोध प्रश्न अ

1. दीर्घकालीन औसत लागत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. दीर्घकालीन सीमान्त लागत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. दीर्घकालीन औसत तथा सीमान्त लागत मे अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. सही उत्तर का चुनाव कीजिये :–

A. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की U आकृति का कारण है,परिवर्तनशील अनुपात का नियम है।

B. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं को उत्पन्न करने की प्रति इकाई अधिकतम लागत को बताती है।

C. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र फर्म का नियोजन वक्र कहा जाता है।

D. दीर्घकाल में औसत लागत तथा सीमान्त लागत का वही सम्बन्ध है जो अल्पकाल में होता हैं।

E. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र आवरण वक्र होता है।

F. जब फर्म सामान्य क्षमता से अधिक उत्पादन करती है तो उसका AVC वक्र तेजी से ऊपर की ओर बढ़ता है।

11.8 सारांश

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि मौद्रिक लागतों से अभिप्राय उस मौद्रिक व्यय से है जो उत्पादक द्वारा उत्पादन क्रिया के दौरान किया जाता है। मौद्रिक लागतों के तीन भाग – दृश्य लागतें, अद्रश्य लागतें तथा सामान्य लाभ होते हैं। वास्तविक लागतों से अभिप्राय उस मेहनत, प्रयास, त्याग व श्रम से है जिससे किसी वस्तु का निर्माण होता है। किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई में

उत्पादित करने में आने वाली अवसर लागत से अभिप्राय दूसरे वस्तु की उस उत्पादन मात्रा से है जिसके उत्पादन का परित्याग किया जा रहा है। कुल लागत के दो खण्ड स्थिर लागत व परिवर्तनशील लागत है। उत्पादन में वृद्धि के साथ कुल लागत में स्थिर लागत का अंश घटता व परिवर्तनशील लागत का अंश बढ़ता जाता है। सीमान्त लागत का अभिप्राय वस्तु की अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत से है।

11.9 शब्दावली

- **लाभः**—उत्पादक के कुल आगम व कुल लागत के मध्य का अन्तर ।
- **सीमान्तः**—अन्तिम इकाई अथवा आखिरी इकाई ।
- **अल्पकाल** :—वह समयावधि जिसमें साधनों में समायोजन एक निश्चित स्तर तक ही सम्भव होगा।
- **दीर्घकाल** :—वह समयावधि जिसमें साधनों में यथावांछित समायोजन किया जा सकता है।
- **सामान्य लाभः**—लागत का एक अंश जिसे उद्यमी को उत्पादन प्रक्रिया में बनाए रखने की लागत के रूप में देखा जाता है।
- **अतिरिक्त लाभः**—सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो भी लाभ प्राप्त होता है उसे अतिरिक्त लाभ कहते हैं।
- **उत्पादन लागत :—**किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले समस्त उत्पत्ति के साधनों को दिया जाने वाला भुगतान उत्पादन लागत कहलाता है।
- **मौद्रिक लागत :—**किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मौद्रिक लागत कहते हैं।
- **दृश्य लागतें :—**वे लागते जिन्हें उत्पादक को उत्पत्ति के साधनों को एकत्र करने हेतु प्रत्यक्ष रूप से व्यय करना पड़ता है।
- **अदृश्य लागतें :—**अदृश्य अथवा सन्निहित लागतों में उत्पादक के वे व्यय शामिल रहते हैं जिनका उत्पादक को प्रत्यक्ष रूप में भुगतान नहीं करना पड़ता।
- **सामान्य लाभ :—**कम से कम वह लाभ जो फर्म अथवा उत्पादक को कार्य में लगाए रखने के लिए आवष्यक होता है।

- **वास्तविक लागत :–**किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन नहीं उत्पत्ति साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के साधनों के रूप में किया जा सकता है।

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न अ

प्रश्न 13. A. उत्तर : सही B. उत्तर : सही C. उत्तर : गलत

D. उत्तर : सही E. उत्तर : सही F. उत्तरः सही

G. उत्तर : गलत H. उत्तर : गलत I. उत्तरः गलत

J. उत्तरः गलत

बोध प्रश्न ब

प्रश्न 4. A. उत्तर : सही B. उत्तर : गलत C. उत्तर : सही

D. उत्तर : सही E. उत्तर : सही F. उत्तरः गलत

11.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 अवसर लागत की धारणा को समझाइए। इसका अर्थशास्त्र में क्या महत्व है?

प्रश्न–2 वास्तविक लागत व अवसर लागत में अन्तर बताइए और आर्थिक विश्लेषण में अवसर लागत के महत्व का परीक्षण कीजिए।

प्रश्न–3 ''अल्पकाल में सीमान्त लागत परिवर्तनशील लागत में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करेगी'' – व्याख्या करें।

प्रश्न–4 व्याख्या कीजिए कि अल्पकालीन में सीमान्त लागत कुल परिवर्तनषील लागत में होने वाले परिवर्तनों के ऊपर निर्भर करेगा।

प्रश्न–5 औसत लागत क्या है? औसत एवं सीमान्त लागत के मध्य सम्बंध स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–6 विभिन्न लागत वक्रों को विस्तार से समझाइए।

प्रश्न–7 ''सीमान्त लागत वक्र औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है'' विवेचना कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आहूजा, एच0 एल0, (2018),उच्चतर आर्थिक सिद्धान्तः व्यष्टिपरक आर्थिक वि''लेषण ; एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

2. झिंगन, एम0 एल0 (2018), व्याष्टि अर्थ''ाास्त्र, वृन्दा पब्लिके''ान्स प्रा0लि0, मयूर विहार, नई दिल्ली।

3. जैन, के0 पी0 (2005) माइक्रो अर्थ''ाास्त्र, नवयुग साहित्य सदन, आगरा।

4. सिंह, एस0 पी0 (2001) माइक्रो अर्थ''ाास्त्र, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

5. सेठ, एम0 एल0 (2018) उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रका''ाक, आगरा।

6. Koutsoyinuis.A. (1979), *Modern Microeconomics*, (2nd Edition), Macmillian Press, London.

7. Peterson, L. and Jain (2006), *Managerial Economics*, 4th edition, Pearson Education.

8. Mishra, S.K. and Puri, V.K., (2003), Modern Micro-Economics Theory, Himalaya Publishing House.

9. स्टोनियर एण्ड हेग,(2011)''ए टेक्सट बुक ऑफ इकोनोमिक आक्सफोर्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

10. सेन, ए (1999), माइक्रोइकोनॉमिक्स, थियरी एण्ड अप्लीकेशन्स, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

11. लॉयरड, पी0आर0जी0 एण्ड, ए, डब्ल्यू0 वालटरस (1978) माइक्रो इकोनॉमिक थियरी मैग्राहिल, नई दिल्ली।

B.Com-103

आर्थिक सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड–चतुर्थ

कीमत का सिद्धान्त

इकाई–12 संतुलन की संकल्पना तथा शर्ते	275–294
इकाई–13 पूर्ण प्रतियोगिता	295–310
इकाई–14 एकाधिकार	311–338
इकाई–15 एकाधिकारी प्रतियोगिता	339–354
इकाई–16 अल्पाधिकार	355–376

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक :– प्रो. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनुवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रूफ रीडर

2020 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN-978-93-83328-78-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड–4 कीमत का सिद्धान्त

विगत खण्ड–3 में हम लोगों का अध्ययन विषय उत्पादन और उससे सम्बन्धित फलन, उत्पादक संतुलन, आपूर्ति की लोच तथा लागत वक्र विश्लेषण सिद्धान्त के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। आर्थिक सिद्धान्तों के इसी क्रम में अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त कीमत निर्धारण का सिद्धान्त आता है। इस खण्ड में अध्ययन का मुख्य विषय है कि मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है अर्थात् उत्पादित वस्तुओं की कीमत निर्धारण का अध्ययन। इस अध्ययन की संकल्पना को पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारिक प्रतियोगिता तथा अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत निर्धारण की व्याख्या किया जाता है। जिसका सार बिन्दु संतुलन की अवधारणा को परिभाषित करना होता है। कीमत सिद्धान्त खण्ड पाँच इकाइयों में विभक्त है, जिसके अन्तर्गत निम्नांकित विवेचन किया गया है।

इकाई–12 में संतुलन या संस्थिति, बाजार और उसकी संरचना, कीमत निर्धारण प्रक्रिया इत्यादि की व्याख्या की गयी है।

इकाई–13 में पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताएँ, फर्म के लाभ अधिकतमीकरण शर्त, अल्पकालिक व दीर्घकालिक संतुलन शर्त और कीमत कुशलता को परिभाषित किया गया है।

इकाई–14 एकाधिकार संकल्पना और कीमत निर्धारण, मूल्य विभेद अवधारणा, लाभ अधिकतमीकरण शर्त और संस्थिति इत्यादि का विवेचन किया गया है।

इकाई–15 एकाधिकारिक प्रतियोगिता की अवधारणा, समूह संतुलन, अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक संस्थिति शर्त इत्यादि को स्पष्ट किया गया है।

इकाई–16 में अल्पाधिकार की विशेषताएं, कपट और गैर कपट समझौतों की स्थिति, अल्पाधिकार का आर्थिक विश्लेषण एवं प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है।

इकाई : 12 संतुलन की अवधारणा तथा शर्तें

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 संतुलन की संकल्पना

12.3 संतुलन का महत्व

12.4 संतुलन की विधियां

12.4. 1 स्थिर और अस्थिर संतुलन एवं तटस्थ संतुलन

12.4. 2 आंशिक और सामान्य संतुलन

12.4. 3 स्थैतिक तथा प्रवैगिक संतुलन

12.5 बाजार और कीमतें

12.6 बाजार का स्वरूप तथा कीमतों का प्रयोग

12.6.1 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार स्थिति

12.6. 2 एकाधिकार बाजार स्थिति

12.6. 3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता बाजार स्थिति

12.6. 4 अल्पाधिकार बाजार स्थिति

12.6. 5 अन्य बाजार स्थिति

12.7 संतुलन के लिये आधारभूत शर्तें

12.8 बाजार दशा और आगम फलन

12.9 सारांश

12.10 उपयोगी शब्दावली

12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :–

- ❖ संतुलन/संस्थिति का अर्थ एवं महत्व को स्पष्ट कर सकेगें,
- ❖ संस्थिति के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण कर सकेगें,

- ❖ स्पष्ट कर सकते हैं कि मांग और पूर्ति की समाजता, बाजार में संतुलन स्थापित कर सकेगें,
- ❖ माँग अनुसूची और पूर्ति अनुसूची तथा इसके वक्रों को निरूपित कर सकेगें,
- ❖ बाजार बिक्री विशेषताएं, स्वरूप तथा मांग वक्र विश्लेषण को स्पष्ट कर सकेगें तथा
- ❖ सभी बाजार स्थितियों में कुल, औसत और सीमान्त आम फलनों के सम्बन्ध में उचित विश्लेषण प्रस्तुत कर सकेगें।

12.1 प्रस्तावना

विगत इकाइयों में यह विश्लेषण हो चुका है कि उपभोक्ता आर्थिक परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार स्थापित करता है साथ ही उत्पादन फलन और उत्पादन के नियम, अल्पकाल व दीर्घकाल में क्रियाशीलता इत्यादि के बारे में प्रासंगिक अध्ययन आर्थिक परिस्थितियों के विश्लेषण के केन्द्र में कीमत तन्त्र महत्वपूर्ण होता है। जो कि मांग, आपूर्ति तथा उत्पादन के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार कीमत तन्त्र उपभोक्ता, उत्पादन और वितरण के लिए भी महत्वपूर्ण होता है। अतः आर्थिक निकाय के केन्द्र में कीमत तन्त्र समायोजन का कार्य करता है। इस समायोजन की प्रासंगिक व्याख्या संतुलन या संस्थिति के माध्यम से की जाती है।

12.2 संतुलन की संकल्पना

आर्थिक विश्लेषण के अन्तर्गत संतुलन की अवधारणा अधिक प्रासंगिक है इसलिए प्रो0 स्टिगलर अर्थशास्त्र को संस्थिति विश्लेषण का नाम देते हैं। संस्थिति (Equilibrium) शब्द लैटिन भाषा को दो शब्दों Acquus (समान) + Libra (संस्थिति) से मिलकर बना है। संस्थिति या संतुलन से आशय है कि जिस बिन्दु पर दो परस्पर विरोधी शक्तियां समान हो जाये तो उसे संतुलन स्थिति कहा जाता है अर्थात् गति तो रहे परन्तु गति से परिवर्तन की दर (Rate of change) स्थिर रहे। इसलिए प्रो0 जे0के0 मेहता अर्थशास्त्र में संतुलन को गति परिवर्तन की अनुपस्थिति कहते हैं। जैसे, वस्तु की मांग उसकी आपूर्ति से कम होने पर कीमतों में गिरावट से विक्रेताओं के लाभ में कमी होती है और उत्पादन स्तर (आपूर्ति) में कमी हो जाती है। परिणामस्वरूप मांग और आपूर्ति बराबर अर्थात् संतुलन की स्थिति में पहुँच जाती है। इस प्रकार अन्य बातें समान रहने पर बाजार क्रियाओं के संचालन द्वारा (मांग एवं आपूर्ति क्रियाविधि) संस्थिति का निर्धारण किया जाता है।

12.3 संतुलन का महत्व

अर्थशास्त्र में संतुलन या संस्थिति या साम्य का बहुत अधिक महत्व है। क्योंकि प्रत्येक आर्थिक प्रक्रिया संतुलन की स्थिति में पहुँचने का प्रयास करती है। व्यष्टिभावी, समष्टिभावी तथा अन्य सभी आर्थिक प्रभागों का अध्ययन संतुलन को ध्यान में रखकर किया जाता है। संतुलन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि आर्थिक कल्याण और स्थिरतायुक्त विकास को त्वरित किया जाता है।

12.4 संतुलन की विधियां

अर्थशास्त्र में संतुलन या साम्य आर्थिक क्रियाओं के संचालन और इसकी प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। जिसमें समय तत्व का महत्व सर्वाधिक होता है। इस समय तत्व को अल्पकालिक व दीर्घकालिक परिस्थितियों में वर्गीकृत करके अध्ययन किया जाता है। सामान्य प्रकार से समय परिस्थिति को आधार बनाते हुए मुख्य रूप से स्थिर (Stable), अस्थिर (Unstable) तथा तटस्थ (Neutral) संतुलन की स्थिति दिखायी पड़ती है। इसके अलावा स्थैतिक, प्रवैगिक, आंशिक तथा सामान्य संतुलन की स्थिति देखी जाती है। संतुलन इसलिए आवश्यक होता है कि एक उत्पादक/संस्था/इकाई द्वारा गैर टिकाऊ वस्तुओं का उत्पादन कर लेता है अर्थात् जो जल्दी **नष्ट होने वाली है।** नष्ट होने की अपेक्षा उस वस्तु की कम कीमत करके उसकी मांग में वृद्धि करके बाजार आवश्यकता के बराबर कर देता है। यदि टिकाऊ वस्तुओं के सन्दर्भ में पर्याप्त समय होने के कारण उत्पादक बाजार आवश्यकता के अनुरूप सुनिश्चित कर देता है। अर्थात माँग और पूर्ति के परस्पर समायोजन द्वारा संतुलन स्थापित किया जाता है। संतुलन की विधियों में मुख्य रूप से स्थिर, अस्थिर, तटस्थ, आंशिक, सामान्य तथा स्थैतिक और प्रवैगिक संतुलन आते हैं।

12.4. 1 स्थिर और अस्थिर संतुलन एवं तटस्थ संतुलन

स्थिर संतुलन तब कहा जाता है जब आर्थिक परिस्थिति में विगत की स्थिति भंग होने पर आर्थिक क्रियाओं (मांग व आपूर्ति) के संचालन द्वारा पुनः संतुलन स्थापित हो जाता है। जिसमें मांग व आपूर्ति क्रियाओं की भूमिका अधिक होती है। जबकि अस्थिर तब कहा जायेगा जब एक बार संस्थिति भंग होने पर आर्थिक शक्तियाँ, विचलन के साथ विगत की स्थिति से दूर होती जाये। जबकि तटस्थ से आशय है कि विगत की संस्थिति और प्राप्त नयी संस्थिति में कोई अन्तर न हो। इन तीनों को एक चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

12.4. 2 आंशिक और सामान्य संतुलन

इस संतुलन को व्यक्तिगत और समष्टिगत संतुलन भी कहा जाता है। व्यष्टिगत का अर्थ सूक्ष्म या छोटे क्षेत्रों से होता है। जैसे एक उपभोक्ता, एक उत्पादक या एक बाजार में संतुलन। जब एक निश्चित समयावधि में एक उपभोक्ता का संतुष्टि स्तर अधिकतम हो जाये या एक उत्पादक का उत्पादन से प्राप्त लाभ अधिकतम हो तो उसे आंशिक संतुलन कहा जाता है। जिसका समायोजनचर कीमत होता है। जबकि सामान्य संतुलन से आशय एक साथ सम्पूर्ण आर्थिक निकाय अर्थात् एक बाजार, एक उपभोक्ता तथा एक उत्पादक एक साथ क्रिया–प्रतिक्रिया द्वारा संतुलन में हो तो उसे सामान्य संतुलन कहा जाता है। वस्तुतः एक साथ वस्तु, साधन तथा मुद्रा बाजार एक साथ संतुलन में हो। इसलिए सामान्य संतुलन को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में देखा जाता है। आंशिक संतुलन को प्रो0 मार्शल द्वारा तथा सामान्य संतुलन को लियोन वालरस द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

12.4. 3 स्थैतिक तथा प्रवैगिक संतुलन

स्थैतिक संतुलन से आशय उस अर्थव्यवस्था से है जिसमें विभिन्न संघटक अंगों जैसे उपभोग, उत्पादन, जनसंख्या, तकनीक, मांग–पूर्ति इत्यादि में परिवर्तन होने की प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ती है। वे हमेशा निश्चित समयावधि में स्थिर बने रहते है। जबकि प्रवैगिक संतुलन से आशय एक प्रवैगिक अर्थव्यवस्था में विभिन्न संघटकों जैसे उपभोग, उत्पादन, जनसंख्या, तकनीक, मांग व पूर्ति में परिवर्तन हो, लेकिन परिवर्तन की दर समान रहे अर्थात् कालान्तर में परिवर्तन की दर स्थिर रहे। जिसे प्रवैगिक संतुलन कहा जाता है।

इस प्रकार संतुलन का अध्ययन व विश्लेषण करने के विभिन्न तरीकें हैं। जिसके माध्यम से आर्थिक निकाय में संतुलन स्थापित किया जाता है। फिर भी संतुलन आर्थिक सिद्धान्तों का सार बिन्दु होता है। कोई भी आर्थिक निकाय उपलब्ध संसाधनों के आधार पर संतुलन बिन्दु पर पहुँचने का प्रयास करता है। इसीलिए अर्थशास्त्र में संतुलन का बहुत ही महत्व है।

12.5 बाजार और कीमतें

अर्थशास्त्र में बाजार का बहुत ही महत्व होता है। बाजार का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से न होकर बल्कि क्रेताओं (मांग करने वाले) और विक्रेताओं (आपूर्ति करने वाले) के मध्य पारस्परिक स्थिति को कहा जाता है। बाजार में क्रेता–विक्रेता परस्पर सम्पर्क में आते हैं और किसी एक या एक जैसी किस्म की वस्तुओं का लेन–देन सम्भव बनाते हैं। बाजार के लिए भौगोलिक क्षेत्र का होना आवश्यक नहीं है परन्तु क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य दूरी हो सकता है। यह आधारभूत संरचना के विकास प्रक्रम व सूचना प्रणाली पर निर्भर करता है। बाजार की विशेषताएँ भिन्न–भिन्न हो सकती है जैसे किसी बाजार में क्रेताओं की तुलना में विक्रेता अधिक और विक्रेताओं की तुलना में क्रेता अधिक हो सकते हैं। इन क्रेताओं एवं विक्रेताओं के क्रियाविधि का समायोजन तत्व कीमत होता है। कीमत के माध्यम से बाजार क्रियाओं का संचालन सुनिश्चित किया जाता है। इसी संचालन से बाजार संतुलन निर्धारित और प्रभावित होता है। इसीलिए बाजार क्रियाओं के संचालन के लिए कीमत को महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार्य किया जाता है।

इस प्रकार मांग व पूर्ति के परस्पर क्रियाविधि द्वारा कीमत का निर्धारण होता है। जहाँ मांग क्रेताओं के अधिमान को व्यक्त करने के कारण कीमत पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है, वही पूर्ति का कीमत पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। कीमत पर पूर्ति प्रभाव समयावधि पर निर्भर करता है। प्रो0 मार्शल ने स्पष्ट किया है कि बाजार काल में पूर्ति स्थिर होने के कारण (समय अत्यन्त कम है) कीमत पर कम प्रभाव, अल्पकाल में पूर्ति का कीमत पर औसत प्रभाव तथा दीर्घकाल में पूर्ति का कीमत पर सबसे अधिक प्रभाव दिखायी पड़ता है। इसके पीछे प्रमुख कारण, दीर्घकाल में सभी साधन संयोग आवश्यकतानुसार समायोजित किये जा सकते हैं। अतः बाजार मांग एवं आपूर्ति के परस्पर समायोजन द्वारा कीमतों का निर्धारण किया जाता है।

12.6 बाजार का स्वरूप तथा कीमतों का प्रयोग

बाजार के लिए क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य परस्पर लेन–देन होना आवश्यक है। बाजार में प्रत्येक वस्तु की मांग भिन्न–भिन्न प्रकार से हो सकती है। इस भिन्नता का प्रमुख कारण कीमत तंत्र को कहा जाता है। बाजार के प्रमुख स्वरूपों का निर्धारण वस्तुओं की प्रकृति, क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या, मांग की कीमत लोच, आय लोच तथा तिर्यक लोचों की स्थिति पर निर्भर करता है। यदि वस्तुओं की प्रकृति समरूप है तो अलग बाजार स्वरूप और वस्तु की प्रकृति विभेदित कृत है तो अलग बाजार स्वरूप होता है।

बाजार स्वरूप निर्धारण में कीमतों का प्रमुख योगदान होता है। क्योंकि कीमतों के माध्यम से बाजार क्रियाओं में संतुलन और निष्पादन स्तर को जाना जाता है। कीमतों का निर्धारण मांग व आपूर्ति के परस्पर क्रियाविधि द्वारा सम्भव होता है। बाजार के अन्तर्गत कीमत विश्लेषण को फर्मों और उद्योगों के सन्दर्भ में व्याख्या किया जा सकता है। क्रेताओं के मांग वक्रों के क्षैतिजीय योग को फर्म का मांग वक्र या बाजार का मांग वक्र कहा जाता है। सभी फर्मों के मांग वक्र के समुच्चय को उद्योग कहा जाता है तथा सभी फर्मों के पूर्ति वक्र के योग को उद्योग का आपूर्ति वक्र कहा जाता है। इस प्रकार कीमत के निर्धारण में उद्योगों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। बाजार स्वरूप मुख्य रूप से पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता युक्त प्रकृति के दिखायी पड़ते हैं। प्रतिस्पर्धायुक्त वातावरण में उल्लेखित बाजार को पूर्ण प्रतियोगिता बाजार तथा अपूर्ण प्रतियोगी वातावरण में एकाधिकार, एकाधिकारिक तथा अल्पाधिकार बाजार का अध्ययन किया जाता है। प्रतिस्पर्धायुक्त बाजार स्वीकारक अर्थशास्त्री एडमस्मिथ तथा अपूर्ण प्रतियोगितायुक्त बाजार को जोन राविन्स तथा चेम्बरलिन है। इसके अतिरिक्त अन्य बाजार क्रेताधिकारी, विक्रेताधिकारी बाजार भी दिखायी पड़ता है।

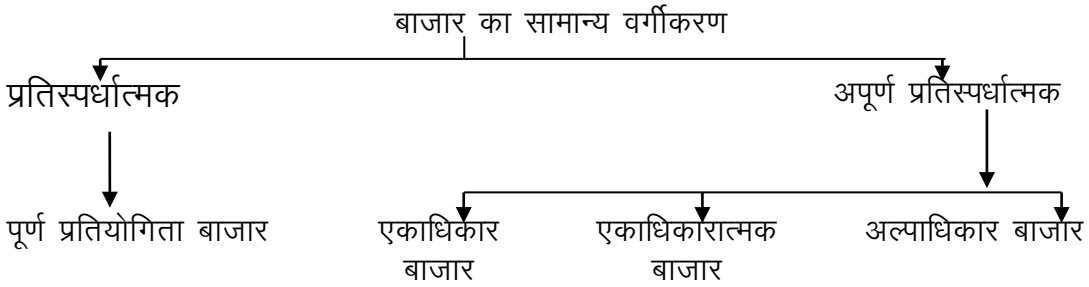

12.6. 1 पूर्ण प्रतियोगिता बाजार स्थिति

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार परिस्थिति से आशय है कि समरूप वस्तुओं की उपस्थिति में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। वस्तुतः क्रेता और विक्रेता मूल्य को प्रभावित करने की क्षमता न के बराबर होती है। फर्मों/उत्पादकों/विक्रेताओं को बाजार और लागत वक्र का पूर्ण ज्ञान, फर्मों का प्रवेश व बर्हिगमन पूर्णतया स्वतंत्र होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताओं में प्रमुख तत्व वस्तु विभेद का अभाव, मूल्य का निर्धारण उद्योगों (मांग व पूर्ति द्वारा) समरूप व सहजातीय वस्तुओं का उत्पादन, स्वतन्त्र प्रवेश व बर्हिगमन, साधनों की पूर्ण गतिशीलता, क्रेता एवं विक्रेताओं का अत्यधिक संख्या इत्यादि पाया जाता है।

चित्र–I

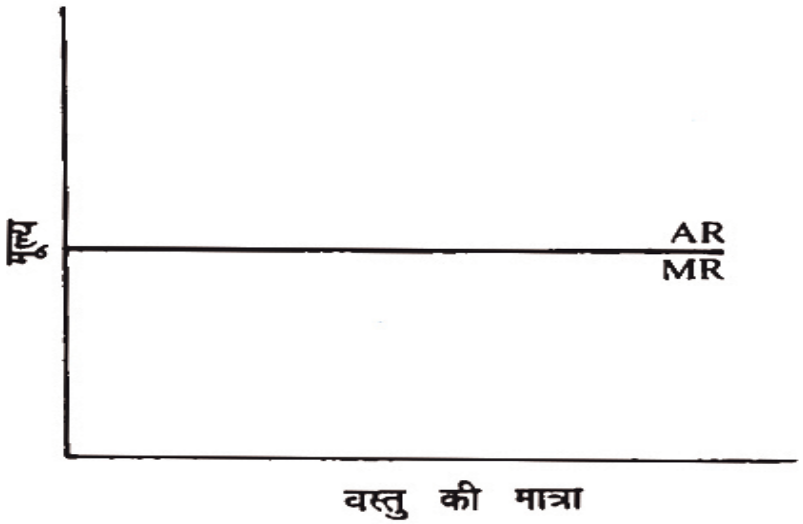

पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योगों द्वारा निर्धारित कीमत को सभी फर्में स्वीकार्य करती है। अर्थात् पूर्ण प्रतियोगी फर्में कीमत निर्धारक न होकर बल्कि कीमत स्वीकारक होती है। इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त आगम या मांग वक्र क्षैतिज अक्ष के समान्तर होता है। चित्र–I में AR रेखा बाजार मांग वक्र को दर्शाता है जिसे पूर्णतया लोचदार कहा जाता है। इस चित्र से स्पष्ट है कि विक्रेता/फर्में दिये हुए मूल्य पर जितना चाहे उतना विक्रय कर सकता है। वस्तुतः इस बाजार संस्थिति को पूर्णकुशलता बाजार स्थिति भी कहा जाता है।

12.6. 2 एकाधिकार बाजार स्थिति

अपूर्ण प्रतियोगिता की धारणा को श्रीमती जोन राविन्सन द्वारा प्रतिपादित किया गया। इस प्रतियोगिता के अन्तर्गत एकाधिकार बाजार स्थिति में वस्तु का एक मात्र विक्रेता होता है, जिसका कोई निकट स्थानापन्न न हो पाने के कारण प्रतियोगिता मुक्त वातावरण बना रहता है। यह पूर्ण प्रतियोगिता ठीक विपरीत स्थिति होती है। इसके अन्तर्गत वस्तुएँ विभेदीकृत होती है। इसकी विशेषताओं में प्रमुख तत्व एक विक्रेता पाये जाने के कारण पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण, उद्योग व फर्म एक समान, फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध, मूल्य विभेद तथा मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होता है। इसमें फर्में कीमत निर्धारक होती हैं।

चित्र–II

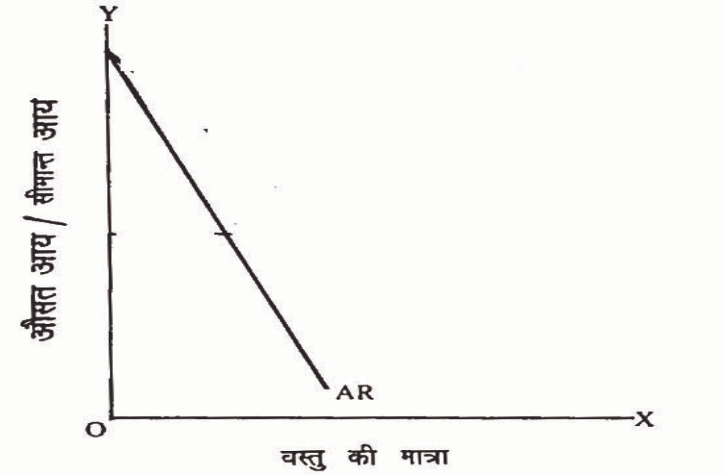

AR रेखा एकाधिकारी का मांग वक्र दिखाता है। जिसका आशय है कि एक विक्रेता ऊँचे मूल्य पर कम और नीचे मूल्य पर अधिक मात्रा का विक्रय कर सकता है। अतः मूल्य व मात्रा का निर्धारण मांग की लोच पर निर्भर करता है। इस स्थिति में विक्रेता किसी एक का निर्धारण कर सकता है दोनों का नहीं अर्थात् या मूल्य या मात्रा का। जब विक्रेता एक ही वस्तु के लिए क्रेताओं से अलग–अलग मूल्य प्राप्त कर सके तो उसे विभेदात्मक एकाधिकार कहा जाता है।

12.6. 3 एकाधिकारिक प्रतियोगिता बाजार स्थिति

एकाधिकारिक प्रतियोगिता बाजार का प्रतिपादन चेम्बरलिन द्वारा किया गया जो अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार के अधिक सन्निकट होता है। इस प्रतियोगिता को मूल्य सिद्धान्तों के लिए महत्वपूर्ण क्रान्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस प्रतियोगिता में कुछ तत्व पूर्ण प्रतियोगिता और कुछ तत्व पूर्ण प्रतियोगिता और कुछ तत्व एकाधिकार के अर्थात् दोनों के गुण पाये दिखायी पड़ते हैं। यह बाजार पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के मध्य की स्थिति को व्यक्त करता है इसलिए व्यवहारिक जगत में दिखायी पड़ता है।

एकाधिकारिक प्रतियोगिता की विशेषताओं में प्रमुख क्रेताओं व विक्रेताओं की बहुत अधिक, फर्मों के प्रवेश एवं बर्हिगमन स्वतंत्र, उत्पादित वस्तुएँ विभेदीकृत होते हुए भी निकट स्थानापन्न (एक ही वस्तु के विभिन्न ब्रांड या किस्म) होती है। इसमें समूह (सभी उद्योगों के समुच्चय को) की अवधारणा को परिभाषित किया गया है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्मों का मांग वक्र पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में अपेक्षाकृत कम लोचदार और एकाधिकारी की तुलना अधिक लोचदार होता है। फिर भी यह मांग वक्र ऊपर से नीचे ऋणात्मक ढाल होता है।

चित्र–III

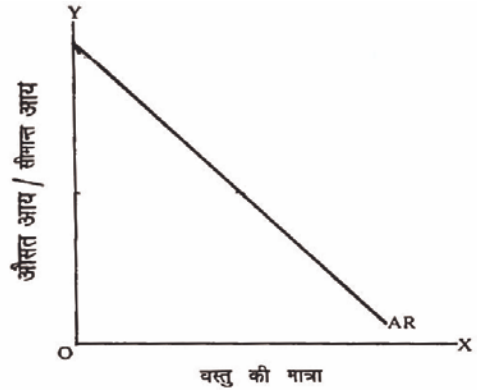

चित्र–III में AR रेखा जो अधिक लोचदार भाग को दर्शाता है। जिसे एकाधिकारिक प्रतियोगिता में देखा जाता है।

12.6. 4 अल्पाधिकार बाजार स्थिति

अल्पाधिकार बाजार स्थिति, अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेष स्थिति होती है। जिसे अधिक व्यवहारिक बाजार स्थिति भी कहा जाता है। इस बाजार के अन्तर्गत फर्मों की संख्या अल्प होती है। इसमें विक्रेता परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए कपट समझौता करते हैं।

अल्पाधिकार बाजार की प्रमुख विशेषताएँ मांग वक्र की अनिश्चितता, परस्पर निर्भरता, उत्पादित वस्तुएँ समरूप एवं विभेदीकृत तथा कपट, गैर कपट समझौता तथा प्रतिद्वन्दी की प्रतिक्रिया इत्यादि तत्व पाये जाते हैं। इस बाजार स्थिति में मांग वक्र ऊपर से नीचे गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला तथा विकुंचित मांग वक्र दोनों की स्थिति दिखायी पड़ती है। अतः फर्में कीमत दृढ़ता को व्यक्त करती है न कि कीमत निर्धारण को।

चित्र–IV

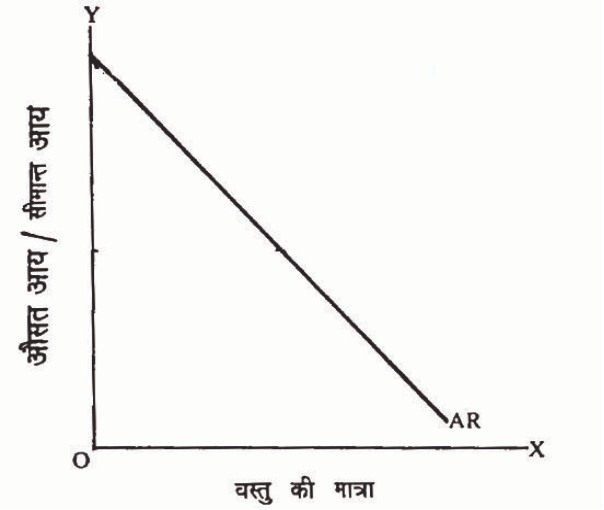

चित्र–V

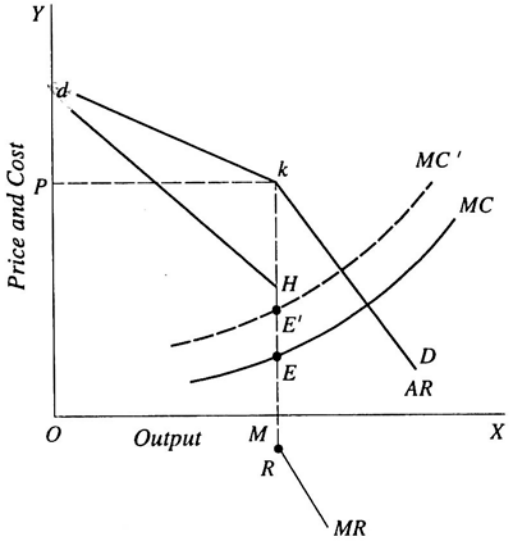

चित्र–IV में मांग वक्र की स्थिति को कपटसन्धि समझौते में और चित्र–V में मांग वक्र की स्थिति गैर कपट समझौतों के अन्तर्गत देखी जाती है। इसके अलावा अल्पाधिकार बाजार स्थिति की विशेष दशा को द्वयाधिकार बाजार स्थिति कहा जाता है। जिसमें केवल दो विक्रेता होते हैं।

12.6. 5 अन्य बाजार स्थिति

बाजार के विस्तृत स्वरूप में अन्य बाजार स्थिति जैसे द्विपक्षीय एकाधिकार (एक क्रेता और एक विक्रेता हो) क्रेताधिकार (Monopsony) (एक क्रेता और अनेक विक्रेता हो) दिखायी पड़ता है।

बोध प्रश्न 'क'

1. **स्थिर और अस्थिर संतुलन से आप क्या समझते है?**

.....

.....

.....

2. **स्थैतिक एवें प्रवैगिक संतुलन में अन्तर स्पष्ट कीजिए?**

.....

.....

.....

3. **पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**

.....

.....

.....

.....

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) जब आर्थिक निकाय पर दो परस्पर....., जिस बिन्दु पर बराबर होती है तो उसे साम्य की स्थिति कहा जाता है। (सम शक्तियां / विरोधी शक्तियां)

ii) पूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुएँ .....होती हैं। (विभेदीकृत / समरूप)

iii) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्में कीमत .....होती है। (स्वीकारक / निर्धारक)

iv) एकाधिकार बाजार के अन्तर्गत मांग वक्र का ढाल .....होता है। (ऋणात्मक / घनात्मक)

v) एकाधिकारिक प्रतियोगिता को सर्वप्रथम प्रतिपादित करने का श्रेय ....को प्राप्त है। (रिकार्डो / चेम्बरलिन)

12.7 संतुलन के लिए आधारभूत शर्तें

आर्थिक निकायों में संतुलन के लिए क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य सामंजस्य होना जरूरी होता है। इस सामंजस्य की शर्त को ही आधारभूत शर्त कहा जाता है। जिसकी क्रियाविधि वस्तु बाजार में वस्तुओं की मांग एवं आपूर्ति पर, साधन बाजार में साधनों (पूंजी व श्रम) की मांग और आपूर्ति पर तथा अन्य बाजार में सम्बन्धित मांग तथा आपूर्ति पर निर्भर करता है।

मांग एवं आपूर्ति को व्यापक अर्थों में परिभाषित करने से स्पष्ट होता है कि मांग क्रय की क्षमता और इच्छा के साथ उपलब्ध वस्तुओं की एक अनुसूची या सारणी होती है जिसे क्रेता खरीदना चाहता है। जबकि पूर्ति, उत्पादित व उपलब्ध मात्रा के साथ विक्रेता के विक्रय की प्रत्याशाओं की अनुसूची या तालिका होती है। वस्तुतः क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य संतुलन उस कीमत पर होगा जहाँ क्रेता जितनी मात्रा क्रय करना चाहते हैं, विक्रेता उतनी मात्रा विक्रय करना चाहते हैं दोनों जिस बिन्दु पर बराबर होते हैं। अतः एक बार संतुलन स्थापित होने से क्रेता–विक्रेता तथा अन्य सभी आर्थिक निकाय उस ज्ञात स्थिति से परिवर्तन की सम्भावना को नकार देते हैं। वस्तुतः उसी स्थिति में कार्य करते रहते हैं।

संतुलन की मूलभूत शर्तों का उल्लेख विभिन्न बाजारों के अन्तर्गत किया जा सकता है। जैसे वस्तु बाजारों में संतुलन शर्त मांग और पूर्ति के परस्पर क्रिया द्वारा उपभोक्ता अपनी सीमान्त उपयोगिता (एक अतिरिक्त इकाई के उपयोग से प्राप्त उपयोगिता स्तर) को अधिकतम करता है अर्थात् वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता और उस वस्तु की कीमत परस्पर एक–दूसरे के बराबर हो जाते हैं। दूसरी ओर विक्रेता एक इकाई की आपूर्ति द्वारा वस्तु की कीमत और उसकी सीमान्त लागत (एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने से कुल लागत में हुई वृद्धि) की तुलना करता है। जिस बिन्दु पर कीमत और सीमान्त लागत बराबर हो जाते हैं संतुलन बिन्दु कहलाता है। अतः मांग व पूर्ति से परस्पर समन्वय जिस

बिन्दु पर होता है वही संतुलन बिन्दु कहलाता है। वस्तु बाजार की स्थिति में मांग एवं आपूर्ति अनुसूची द्वारा संतुलन बिन्दु का निर्धारण किया गया है।

चित्र–VI

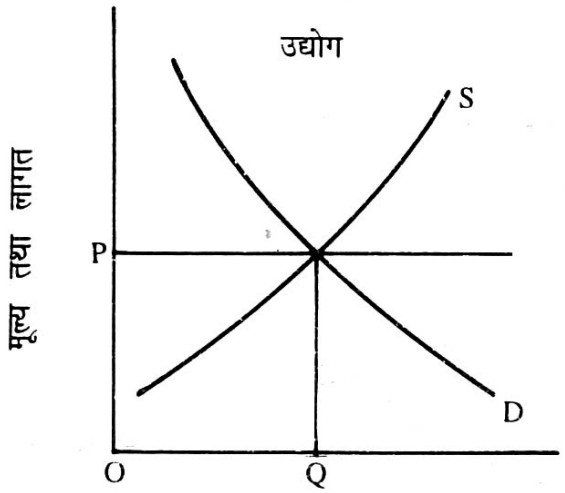

फर्मों के संतुलन सिद्धान्त को स्वप्रतिष्ठित सिद्धान्त भी कहा जाता है। फर्मों का एक मात्र उद्देश्य लाभ अधिकतमीकरण करना होता है। इस दृष्टिकोण से फर्म संतुलन की शर्त को कुल आगम (TR) और कुल लागत (TC) का अन्तर जिस बिन्दु पर अधिकतम होता है। उसे संतुलन शर्त कहा जाता है या सीमान्त आय (MR) और सीमान्त लागत (MC) जिस बिन्दु पर एक–दूसरे के बराबर होते हैं उसे लाभ अधिकतमीकरण बिन्दु तत्पश्चात संतुलन शर्त कहा जाता है। इसको एक चित्र–VII द्वारा समझा जा सकता है।

चित्र–VII

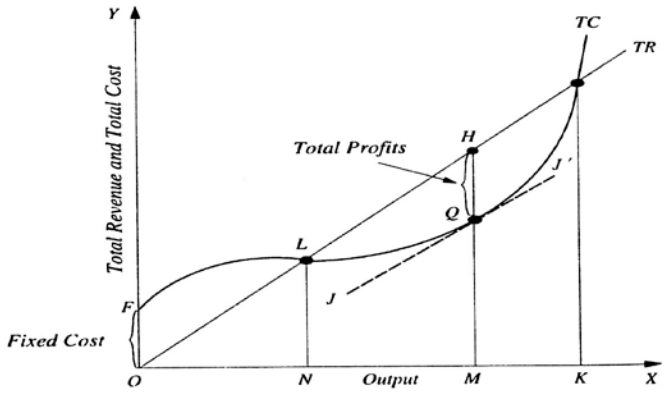

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत (TR-TC) का अन्तर H बिन्दु पर अधिकतम है जिसे लाभ अधिकतमीकरण बिन्दु अर्थात् संतुलन बिन्दु कहा जाता है या इस बिन्दु पर

MR=MC होता है। अतः H संतुलन बिन्दु है। पूर्ण प्रतियोगिता में TR वक्र रैखिक होता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता (एकाधिकार, एकाधिकारिक तथा अल्पाधिकार) के अन्तर्गत लाभ अधिकतमीकरण शर्त (TR-TC) का अन्तर अधिकतम होने की दशा में होता है या सीमान्त आगम (MR)= सीमान्त लागत (MC)। इसको एक चित्र–VIII द्वारा देखा जा सकता है।

चित्र–VIII

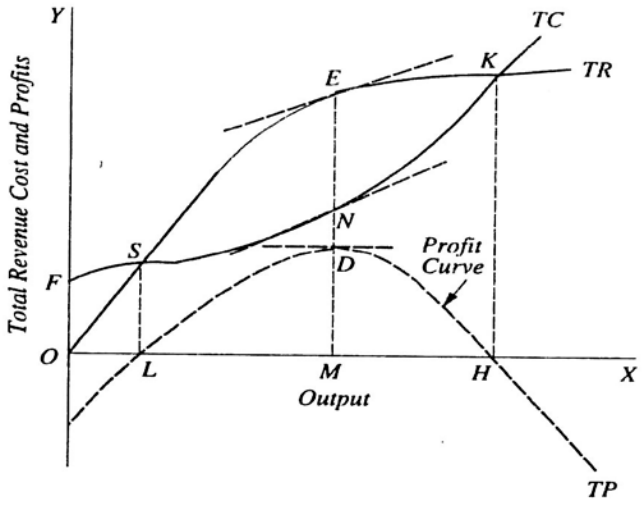

चित्र–VIII से स्पष्ट है कि TR वक्र आगे की झुका हुआ होता है। E बिन्दु पर लाभ अधिकतम है जिस पर फर्म संतुलन को दर्शाता है।

12.8 बाजार दशा और आगम फलन

बाजार को संतुलन दशा में लाने के लिए मांग और पूर्ति को परस्पर समान होना आवश्यक है। इस आवश्यक शर्त को बाजार परिस्थितियों के अन्तर्गत व्याख्या किया जाय तो इसके लिए कुल आगम/आय (TR), औसत आगम/आय (AR) तथा सीमान्त आगम (MR) को परिभाषित करना आवश्यक हो जाता है। बाजार में पहली इकाई से अन्तिम इकाई के विक्रय से कुल मौद्रिक प्राप्ति के योग को कुल आगम कहा जाता है। कुल आगम को विक्रय की गई इकाइयों से भाग देने पर औसत आगम प्राप्त हो जाता है। जबकि एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम कहा जाता है। कुल आगम को अवकलित करने पर सीमान्त आगम प्राप्त हो जाता है। सीमान्त आगम $(MR_n)=(TR_n-TR_n-1)$ जहाँ TR_n, $_n$ इकाई का कुल आगम और TR_n-1, TR_n इकाई के पहले का आगम।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म का कुल आगम औसत आगम तथा सीमान्त आगम में सम्बन्ध को एक तालिका से देखा जा सकता है।

तालिका–12 पूर्ण प्रतियोगिता में–

वस्तु की मात्रा (Q)	प्रति इकाई मूल्य (P)	कुल आगम TR=(P×Q)	औसत आगम AR=TR/Q	सीमान्त आगम $MR=TR_n-TR_n-1$
1	40	40	40	40
2	40	80	40	40
3	40	120	40	40
4	40	160	40	40
5	40	200	40	40

तालिका में प्रति इकाई मूल्य, औसत तथा सीमान्त आगम स्थिर बने रहे रहते हैं। इसके पीछे प्रमुख कारण की पूर्ण प्रतियोगी फर्में कीमत स्वीकारक होती है न कि निर्धारण अर्थात् दिये गये कीमत पर चाहे जितना विक्रय कर सकती है। इसलिए पूर्ण प्रतियोगी फर्म का मांग वक्र क्षैतिज अक्ष के समान्तर होता है। पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग की मांग एवं आपूर्ति द्वारा कीमत का निर्धारण होता है जो सभी फर्मों को स्वीकार्य होता है। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों के मांग वक्र को AR वक्र कहा जाता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म का कुल आगम, औसत और सीमान्त आगम के मध्य सम्बन्ध को तालिका से देखा जा सकता है।

तालिका–13 अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कुल औसत तथा सीमान्त आगम

वस्तु की मात्रा (Q)	प्रति इकाई मूल्य (P)	कुल आगम TR=(P×Q)	औसत आगम (AR=TR/Q)	सीमान्त आगम ($MR=TR_n-TR_n$)
1	100	100	100	100
2	90	180	90	80
3	80	240	80	60
4	70	280	70	40
5	60	300	60	20
6	50	300	50	0

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत और सीमान्त आय विक्रय की मात्रा के साथ क्रमशः गिरावट देखी जाती है। क्योंकि इस स्थिति में फर्में कीमत को प्रभावित करती है। वस्तुतः फर्में कीमतों में कमी करके अधिक से अधिक मात्रा विक्रय करती है। यदि फर्में ऊँची कीमत रखती है तो कम मात्रा विक्रय आदि कम कीमत रखती है तो अधिक मात्रा का विक्रय कर सकती है। इसलिए अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी बाजारों का मांग वक्र ऊपर से नीचे गिरता हुआ होता है। इसलिए तालिका में औसत आगम या मांग वक्र का मान प्रत्येक इकाई के साथ कम होता जा रहा है। जबकि सीमान्त आगम वक्र AR से कम होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता दोनों बाजारों में सीमान्त आय (MR) एक समान तरीके से निकाला जाता है। जैसे तालिका–12 और 13 में दूसरी इकाई की

सीमान्त आय = दूसरी इकाई का कुल आगम– प्रथम इकाई का कुल आगम अर्थात् 180–100 = 80 प्राप्त होता है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत और सीमान्त में कमी होती है लेकिन सीमान्त आय में कमी तेजी से होती है। बाजार आधारित संकल्पना में सीमान्त, औसत और मांग की लोच (e) में परस्पर देखा जाता है। अर्थात् $MR=AR\left(1-\frac{1}{e}\right)$ होता है। जबकि लोच के साथ मुख्य सम्बन्ध $e=\frac{AR}{AR-MR}$ होता है।

12.9 सारांश

आर्थिक निकायों के अध्ययन की प्रक्रिया अल्पकाल से दीर्घकाल तक संतुलन की ओर अग्रसर होती है जिसके अन्तर्गत स्थिर, अस्थिर, आंशिक, सामान्य तथा स्थैतिक और प्रवैगिक की अवस्था को व्यक्त करता है। इसके अन्तर्गत संतुलन की अवधारणा अधिक प्रासंगिक है इसलिए प्रो0 स्टिगलर अर्थशास्त्र को संस्थिति विश्लेषण का नाम देते हैं। जब दो परस्पर विरोधी शक्तियां समान हो जाये तो उसे संतुलन स्थिति कहा जाता हैं। इस प्रकार अन्य बातें समान रहने पर बाजार क्रियाओं के संचालन द्वारा (मांग एवं आपूर्ति क्रियाविधि) संस्थिति का निर्धारण किया जाता है। संतुलन आर्थिक सिद्धान्तों का सार बिन्दु होता है। कोई भी आर्थिक निकाय उपलब्ध संसाधनों के आधार पर संतुलन बिन्दु पर पहुँचने का प्रयास करता है। इसीलिए अर्थशास्त्र में संतुलन का बहुत ही महत्व है।

बाजार का सम्बन्ध किसी स्थान विशेष से न होकर बल्कि क्रेताओं (मांग करने वाले) और विक्रेताओं (आपूर्ति करने वाले) के मध्य पारस्परिक स्थिति को कहा जाता है। इस प्रकार मांग व पूर्ति के परस्पर क्रियाविधि द्वारा कीमत का निर्धारण होता है। बाजार के प्रमुख स्वरूपों का निर्धारण वस्तुओं की प्रकृति, क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या, मांग की कीमत लोच, आय लोच तथा तिर्यक लोचों की स्थिति पर निर्भर करता है। बाजार स्वरूप मुख्य रूप से पूर्ण प्रतियोगिता और अपूर्ण प्रतियोगिता युक्त प्रकृति के दिखायी पड़ते हैं। प्रतिस्पर्धायुक्त वातावरण में उल्लेखित बाजार को पूर्ण प्रतियोगिता बाजार तथा अपूर्ण प्रतियोगी वातावरण में एकाधिकार, एकाधिकारिक तथा अल्पाधिकार बाजार का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य बाजार क्रेताधिकारी, विक्रेताधिकारी बाजार भी दिखायी पड़ता है।

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताओं में प्रमुख तत्व वस्तु विभेद का अभाव, मूल्य का निर्धारण उद्योगों (मांग व पूर्ति द्वारा) समरूप व सहजातीय वस्तुओं का उत्पादन, स्वतन्त्र प्रवेश व बर्हिगमन, साधनों की पूर्ण गतिशीलता, क्रेता एवं विक्रेताओं का अत्यधिक संख्या इत्यादि पाया जाता है।अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एकाधिकार बाजार स्थिति में वस्तु का एक मात्र विक्रेता होता है, जिसका कोई निकट स्थानापन्न न हो पाने के कारण प्रतियोगिता मुक्त वातावरण बना रहता है। यह पूर्ण प्रतियोगिता ठीक विपरीत स्थिति होती है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता बाजार को मूल्य सिद्धान्तों के लिए महत्वपूर्ण क्रान्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस प्रतियोगिता में कुछ तत्व पूर्ण प्रतियोगिता और कुछ तत्व पूर्ण प्रतियोगिता और कुछ तत्व एकाधिकार के अर्थात् दोनों के गुण पाये दिखायी पड़ते हैं। यह बाजार

पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के मध्य की स्थिति को व्यक्त करता है इसलिए व्यवहारिक जगत में दिखायी पड़ता है।

अल्पाधिकार बाजारो के अन्तर्गत फर्मों की संख्या अल्प होती है। इसमें विक्रेता परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए कपट, गैर कपट समझौता तथा प्रतिद्वन्दी की प्रतिक्रिया इत्यादि तत्व पाये जाते हैं।

आर्थिक निकायों में संतुलन के लिए क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य सामंजस्य होना जरूरी होता है। इस सामंजस्य की शर्त को ही आधारभूत शर्त कहा जाता है। फर्मों का एक मात्र उद्देश्य लाभ अधिकतमीकरण करना होता है। इस दृष्टिकोण से फर्म संतुलन की शर्त को कुल आगम (TR) और कुल लागत (TC) का अन्तर जिस बिन्दु पर अधिकतम होता है। उसे संतुलन शर्त कहा जाता है या सीमान्त आय (MR) और सीमान्त लागत (MC) जिस बिन्दु पर एक–दूसरे के बराबर होते हैं उसे लाभ अधिकतमीकरण बिन्दु तत्पश्चात संतुलन शर्त कहा जाता है। अतः स्पष्ट है कि आर्थिक निकायों के परस्पर क्रियाविधि द्वारा कीमत निर्धारण सिद्धान्त अधिक महत्वपूर्ण और प्रगतिशील रहा है। इसलिए इसकी वर्तमान में प्रासंगिकता बनी हुई है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. एकाधिकार और अल्पाधिकार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2. फर्म के संतुलन की शर्त को बताइये।

.....

.....

.....

.....

3. औसत सीमान्त आगम तथा मांग की लोच में सम्बन्ध बताइये।

.....

.....

.....

.....

4. निम्नांकित कथनों पर विचार कीजिए कि सत्य है या असत्य–

i) संतुलन के लिए मांग एवं आपूर्ति का होना आवश्यक है।

ii) दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन की सम्भावना को नकार दिया जाता है।

iii) पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं व विक्रेताओं की अल्प होती है।

iv) एकाधिकार में बाजार मांग वक्र ऊपर से नीचेक गिरता हुआ होता है।

v) फर्म के लाभ को अधिकतम करने के लिए सीमान्त आगम को सीमान्त लागत के बराबर होना चाहिए।

5. निम्नलिखित प्रश्नों का सबसे प्रासंगिक उत्तर का चुनाव कीजिए।

i) किस बाजार में वस्तुएँ सहजातीय और समरूप होती हैं।

क) एकाधिकार में

ख) पूर्ण प्रतियोगिता में

ग) शुद्ध एकाधिकार में

घ) इनमें से कोई नहीं।

ii) कुल आगम और कुल लागत का अन्तर जिस बिन्दु पर अधिकतम होता है उस बिन्दु को कहा जाता है–

क) लाभ अधिकतमीकरण बिन्दु

ख) लाभ न्यूनतमीकरण बिन्दु

ग) हानि अधिकतम बिन्दु

घ) पूर्ण प्रतियोगिता बिन्दु

iii) एकाधिकार में सीमान्त आगम–

क) औसत आगम से अधिक होती है।

ख) औसत आगम के बराबर होती है।

ग) औसत आगम से कम होती है।

घ) कुल आगम के बराबर होती है।

iv) बाजार का अर्थ होता है–

क) एक शहर का नाम

ख) एक राजधानी का नाम

ग) जनसमूह का नाम

घ) क्रेताओं और विक्रेताओं का समूह

v) विकुंचित मांग वक्र दर्शाता है–

क) कीमत निर्धारण का

ख) कीमत दृढ़ता का

ग) कीमत उच्चावचन का

घ) कीमत शून्य का

12.10 उपयोगी शब्दावली

- **संतुलनः** जब दो परस्पर विरोधी शक्तियां समान हो जाये तो उसे संतुलन स्थिति कहा जाता हैं। इस प्रकार अन्य बातें समान रहने पर बाजार क्रियाओं के संचालन द्वारा (मांग एवं आपूर्ति क्रियाविधि) संस्थिति का निर्धारण किया जाता है।

- **स्थिर संतुलनः** जब आर्थिक परिस्थिति में विगत की स्थिति भंग होने पर आर्थिक क्रियाओं (मांग व आपूर्ति) के संचालन द्वारा पुनः संतुलन स्थापित हो जाता है। जिसमें मांग व आपूर्ति क्रियाओं की भूमिका अधिक होती है।

- **प्रवैगिक संतुलनः** एक प्रवैगिक अर्थव्यवस्था में विभिन्न संघटकों जैसे उपभोग, उत्पादन, जनसंख्या, तकनीक, मांग व पूर्ति में परिवर्तन हो, लेकिन परिवर्तन की दर समान रहे अर्थात् कालान्तर में परिवर्तन की दर स्थिर रहे।

- **कुल आगमः** बाजार में पहली इकाई से अन्तिम इकाई के विक्रय से कुल मौद्रिक प्राप्ति के योग को कुल आगम कहा जाता है।

- **सीमान्त आगमः** एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से कुल आगम में जो वृद्धि होती है उसे सीमान्त आगम कहा जाता है। सीमान्त आगम $(MR_n)=(TR_n-TR_n-1)$ जहाँ TR_n, $_n$ इकाई का कुल आगम और TR_n-1, TR_n इकाई के पहले का आगम।

- **लाभ अधिकतमीकरण शर्तः** इस दृष्टिकोण से फर्म संतुलन की शर्त को कुल आगम (TR) और कुल लागत (TC) का अन्तर जिस बिन्दु पर अधिकतम होता है। उसे संतुलन शर्त कहा जाता है या सीमान्त आय (MR) और सीमान्त लागत (MC) जिस बिन्दु पर एक–दूसरे के बराबर होते हैं उसे लाभ अधिकतमीकरण शर्त कहा जाता है।

- **अल्पाधिकारी बाजारः** इसके अन्तर्गत फर्मों की संख्या अल्प होती है। इसमें विक्रेता परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए कपट, गैर कपट समझौता तथा प्रतिद्वन्दी की प्रतिक्रिया इत्यादि तत्व पाये जाते हैं।

12.11बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4	i)	विरोधी शक्तियाँ	ii)	समरूप	iii)	स्वीकारक
	iv)	ऋणात्मक	v)	चेम्बरलिन		
ख 4	i)	सत्य	ii)	असत्य	iii)	असत्य
	iv)	सत्य	v)	सत्य		
5	i)	ख	ii)	क	iii)	ग
	iv)	घ	v)	ख		

12.12 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 पूर्ण प्रतियोगी बाजार की विशेषताएं बताइये।

प्रश्न–2 एकाधिकार से आप क्या समझते हैं? एकाधिकार के अन्तर्गत लाभ अधिकतमीकरण शर्त को दर्शाइये।

प्रश्न–3 बाजार किसे कहते हैं? इसके विभिन्न प्रकारों की संक्षिप्त में व्याख्या कीजिए।

प्रश्न–4 कुल आगम और सीमान्त आगम को परिभाषित कीजिए। एकाधिकारात्मक बाजार के अन्तर्गत कुल आगम और सीमान्त आगम तालिका का निर्माण कीजिए।

प्रश्न–5 संतुलन से क्या आशय है? इसके विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तके

- डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)

- ❖ डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- ❖ एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

इकाई 13 पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार की विशेषताएं

13.3 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का अल्पकालीन संतुलन दशा

13.4 दीर्घकालीन फर्म संतुलन दशा

13.5 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का मांग व आपूर्ति वक्र

13.6 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का अल्पकालीन संतुलन स्थिति

13.7 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का दीर्घकालीन संतुलन स्थिति

13.8 सारांश

13.9 उपयोगी शब्दावली

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इसइकाई को पढ़ने के बाद इस योग्य हो सकेगे कि :–

- ❖ पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार की अवधारणा और उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेगें,
- ❖ पूर्ण प्रतियोगिता फर्मों के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन शर्तों का स्पष्टीकरण कर सकेगें,
- ❖ पूर्ण प्रतियोगिता फर्मों के सीमान्त और लागत वक्रों को खीचें जाने की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर सकेगें,
- ❖ उद्योगो द्वारा निर्धारित कीमत और उसके संतुलन को व्यक्त कर सकेगें तथा
- ❖ संसाधनों के अधिकतम प्रयोग और न्यूनतम औसत लागत स्थिति का ब्यौरा दे सकेंगे तथा
- ❖ प्रतियोगी फर्मों के मांग और आपूर्ति वक्रों का ब्यौरा दे सके।
- ❖ पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की संतुलन शर्तें और उसकी क्रियाविधि के बारे में उचित जानकारी प्राप्त कर सके।

13.1 प्रस्तावना

संस्थिति की अवधारणा और बाज़ार प्रक्रियाओं के बारे में विगत इकाई में पढ़ चुके हैं कीमत निर्धारण में मांग और आपूर्ति की क्रियाएं महत्वपूर्ण होती है। इन क्रियाओं के बाज़ार सन्दर्भ में उद्योग महत्वपूर्ण होता है अर्थात् कई फर्मों के सामोहिकरण और समरूप वस्तुएं (सभी एक जैसी) के उत्पादन समूह को उद्योग कहा जाता है। उद्योगों के मांग एवं आपूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत को पूर्ण प्रतियोगी फर्में स्वीकार कर लेती है। इसलिए पूर्ण प्रतियोगी फर्मों को कीमत ग्रहणकर्ता या कीमत स्वीकारक कहा जाता है। इस स्थिति में फर्मों के सीमान्त आगम और सीमान्त लागत के मध्य सामजस्य को स्पष्ट किया जाता है। अल्पकाल में सीमान्त लागत परिवर्तनीय अनुपात के नियम पर और दीर्घकाल में पैमोने के प्रतिफल नियम पर निर्भर करता है जिससे संतुलन बिन्दु निर्धारित होता है। इस इकाई में आप पूर्ण प्रतियोगी फर्मों की विशेषताएं, अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन शर्तों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेंगे। इस बाज़ार में उद्योगों की क्रियाविधि और संसाधनों के कुशलतम प्रयोग को सुनिश्चित करने की दिशा में भी जानकारी हासिल कर लेंगे।

13.2 पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की विशेषताएँ

पूर्ण प्रतियोगिता ऐसी बाज़ार परिस्थिति है जिसमें एक समान वस्तुओं के क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। इसलिए इस बाज़ार में न तो क्रेता और न ही विक्रेता इतना महत्वपूर्ण होता है कि वह बाज़ार मूल्य को प्रभावित कर सके इसलिए इस बाज़ार दशा में मूल्य का निर्धारण बाज़ार शक्तियों अर्थात् उद्योगों के मांग और आपूर्ति द्वारा होता है जिसे सभी क्रेता और विक्रेता/फर्में स्वीकार कर लेते हैं। इस बाज़ार की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत होती है–

1) उद्योगों के अन्तर्गत कार्यरत फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ परस्पर समरूप होती है।

2) क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अत्याधिक होती है।

3) फर्मों को बाज़ार परिस्थितियों का पूर्णज्ञान तथा साधन पूर्ण गतिशील होते है।

4) फर्मों का प्रवेश और बर्हिगमन स्वतंत्र होता है।

5) वस्तु विभेद, परिवहन तथा विक्रय लागतों का अभाव पाया जाता है।

6) फर्में कीमत निर्धारक के बजाय कीमत स्वीकारक या ग्रहणकर्त्ता (Price Taker) होती है। इसलिए फर्मों का मांग वक्र क्षैतिज रेखा के समान्तर होता है।

7) पूर्ण प्रतियोगी फर्मों के तिर्यक मांग की लोच अनन्त होती है इसलिए बाज़ार में एक विक्रेता की हिस्सेदारी लगभग नगण्य होती है। इसी प्रकार एक क्रेता की भी।

8) फर्में अपने लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करती है। फर्मों का लाभ वहां अधिकतम होता है जहां पर कुल आगम (TR)–कुल लागत (TC) का अन्तर अधिकतम हो या सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) हो।

9) यदि पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं में से बाज़ार परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान, साधनों की गतिशीलता की विशेषताओं को निकाल दिया जाय तो उसे विशुद्ध प्रतियोगिता बाज़ार कहा जाता है। यह प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में संकुचित और यथार्थवादी बाज़ार स्थिति कहलाती है।

13.3 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की अल्पकालीन संतुलन दशा

अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि अर्जित कर सकती हैं। यह प्लाण्ट और फर्मों के संगठन पर कार्य करता है। जो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC), औसत लागत (AC) तथा सीमान्त लागत (MC) पर निर्भर करता है। उक्त लागतों की प्रकृति परिवर्तनीय अनुपात के नियम पर निर्भर करता है। अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में लगभग यू–आकार (U) के लागातों का सामना करती हैं अर्थात् प्रारम्भ में उत्पादन के साथ लागतें घटती है उसके बाद न्यूनतम होती है तत्पश्चात् प्रति इकाई उत्पादन के साथ लागतें बढ़ती हैं। अल्पकाल में फर्मों के संतुलन को वयक्त करने के लिए औसत आगम (AR), सीमान्त आगम (MR), सीमान्त लागत (MC) और औसत लागत (AC) को आधार बनाया जाता है।

पूर्ण प्रतियोगी फर्में अल्पकाल में असामान्य लाभ तब अर्जित करती है जब फर्म की औसत लागत (AC), औसत आगम से नीचे हो अर्थात् AR>AC/ संतुलन शर्त वहां होगा जहां MR=MC हो तथा MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है। इस तथ्य को एक चित्र द्वारा देखा जा सकता है।

चित्र–I

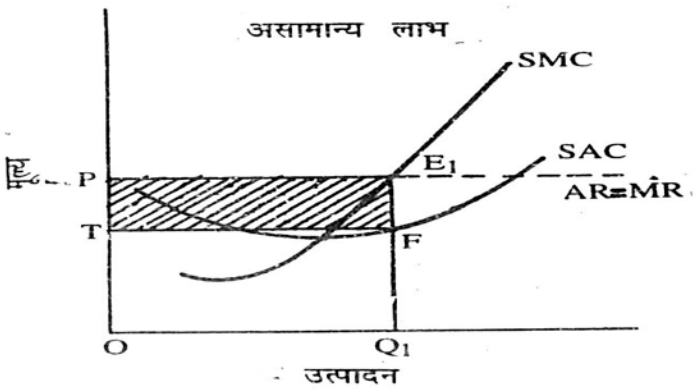

चित्र–I में प्रति इकाई मूल्य OP तथा उत्पादन OQ_1 है। प्रति इकाई औसत लागत Q_1 Fतथा OP_1 है। इसलिए असामान्य लाभ = AR-AC अर्थात् OP-OT होगा। अतः कुल असामान्य लाभ क्षेत्रफल $\square PE_1$ FT होगा।अल्पकाल में फर्मों द्वारा अर्जित आसामान्य लाभ तब प्राप्त होगा जब बाज़ार में अधिक से अधिक फर्में प्रवेश कर जाती है। इस स्थिति में फर्म की औसत आगम (AR) और प्रति इकाई लागत एक दूसरे के बराबर होते हैं अर्थात् AR=AC हो।

चित्र–II

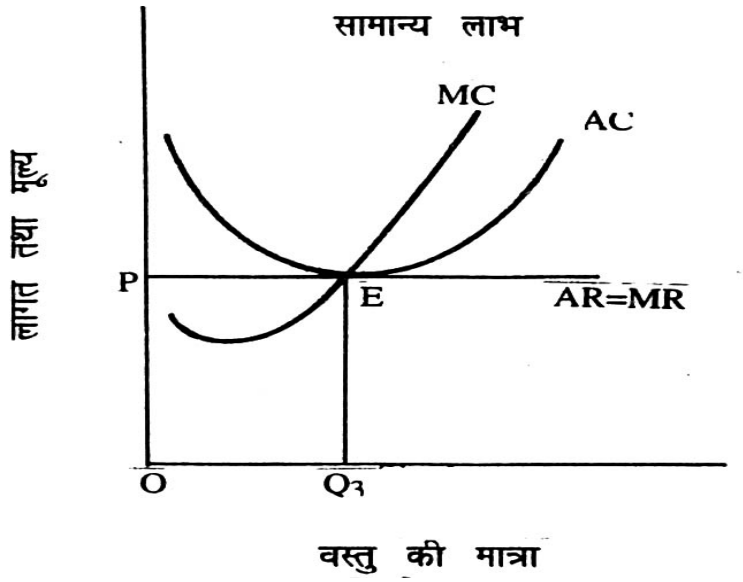

चित्र–IIमेंप्रति इकाई मूल्य OP एवं उत्पादन OQ_1 है। E बिन्दु संतुलन बिन्दु है जहां प्रति इकाई औसत आगत AR और औसत लागत AC एक–दूसरे के बराबर है। इसलिए फर्में अपने को वर्तमान व्यवस्था में बनाये रखेगी और उत्पादन कार्य जारी रखेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि AR=AC एवं MR=MC संतुलन शर्त है। इस स्थिति में MR=MC को संतुलन की आवश्यक शर्त कहा जाता है। जबकि पर्याप्त शर्त यह है कि MC वक्र, MRवक्र को नीचे से काटता हो। संतुलन बिन्दु पर फर्में अपने उत्पादन को जारी रखती है और इसमें परिवर्तन की सम्भावना को नकार देती हैं।

अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में हानि की स्थिति में भी हो सकती है अर्थात् AR<AC स्थिति। इस स्थिति में फर्में उस बिन्दु का निर्धारण करती हैं जहां पर हानि न्यूनतम हो।

चित्र–III

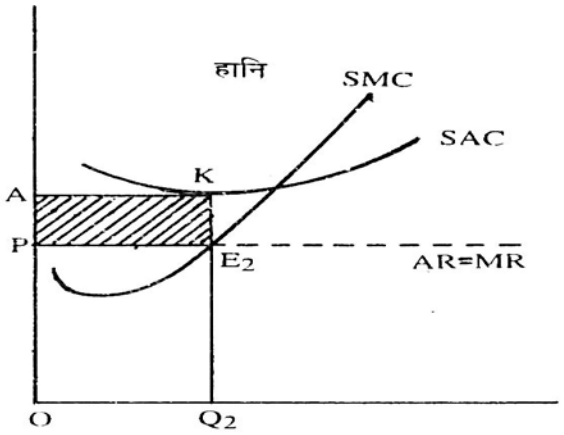

चित्र–III में प्रति इकाई मूल्य OP एवं उत्पादन OQ_2 है। जबकि प्रति इकाई लागत OA है जो कि औसत आगम AR या P से PA अधिक है। इसलिए फर्म को क्षेत्रफल □P E_2KA हानि उठानी पड़ रही है। पूर्ण प्रतियोगी फर्में अल्पकाल में हानि पर कार्य करते–करते तालाबन्दी बिन्दु (Shut Down Point)पर पहुँच जाती हैं। इसके पीछे फर्मों का प्रमुख तर्क होता है कि दीर्घकाल में लाभ अर्जित कर लेगे। इसी उद्देश्य से फर्में तब तक कार्य करती रहती हैं जब तक फर्मों की औसत परिवर्तनशील लागते (AVC) प्राप्त होती है अर्थात् मूल्य (P) = AVC हो। कीमत इससे नीचे आने पर फर्मों को औसत स्थिर लागत (AFC) और AVC दोनों को प्राप्त नही कर पायेंगी। वस्तुतः उद्योग छोड़कर चली जायेगी। अतः जहां पर कीमत (P) और औसत परिवर्ती लागत AVC एक दूसरे के बराबर हो। अर्थात् P = AVC, इसे उत्पादन तालाबन्दी बिन्दु कहा जाता है। उत्पादन तो बन्द कर देती है लेकिन उद्योग छोड़कर बाहर नहीं जाती है।

चित्र–IV–तालाबन्दी बिन्दु

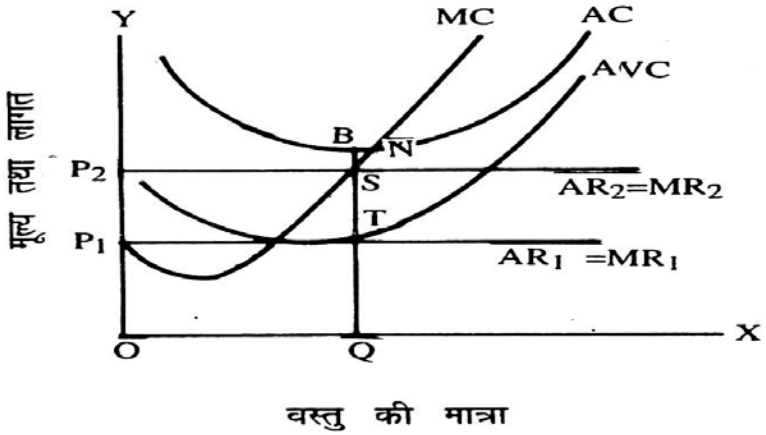

चित्र–IV में फर्म न्यूनतम औसत परवर्ती लागत AVC =P_1, Tबिन्दु पर प्राप्त हो रहा है। यदि कीमत AVC से अधिक हुआ तो फर्में उत्पादन करना उचित समझती है। लेकिन P<AVC हुआ तो फर्में उत्पादन को बन्द कर देती है फलतः दीर्घकाल

में लाभ की आशा क्यों न हो? इसलिए P = AVC को फर्मों का तालाबन्दी बिन्दु कहा जाता ळें इस प्रकार स्पष्ट है कि अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगिता फर्में असामान्य, सामान्य लाभ, हानि तथा तालाबन्दी बिन्दु की स्थिति प्राप्त करती है। और संतुलन शर्तों के अन्तर्गत AR=AC=MR=MC या P=AR=AC=MR=MC का अनुसरण करती है साथ ही MC वक्र MR को नीचे से काटता हो। पूर्ण प्रतियोगिता फर्मों में समस्थिति बिन्दु या लाभ–अलाभ बिन्दु (Break Even Point) अर्थात् वह बिन्दु जहां पर प्रति इकाई आगम, प्रति इकाई औसत लागत के बराबर हो।

चित्र–IVमें T बिन्दु तालाबन्दी बिन्दु जबकि N बिन्दु समस्थिति बिन्दु को सूचित करता है। अतः किसी भी फर्म के अल्पकालीन संतुलन के लिए तालाबन्दी एवं समस्थिति बिन्दु दो सीमाएं होती है। इसके मध्य अल्पकालीन फर्में संतुलन शर्तों के विश्लेषण पर जोर देती है ताकि अधिकतम लाभ अर्जित कर सके। फिर भी अल्पकाल में जहां सभी साधन परिवर्तनशील नही होते हैं। उस स्थिति में MC और AC को स्पष्ट करना कठिन हो जाता है साथ ही संगत MR वक्र का अनुमान लगाना और भी कठिन हो जाता है।

13.4 दीर्घकालीन फर्म संतुलन दशा

दीर्घकाल ऐसा समयावधि है जिसमें प्लाण्ट के आकार, फर्म समूह विस्तार तथा उत्पादन के साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है। अतःदीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में सदैव सामान्य लाभ अर्जित करती है। दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्मों का औसत लागत (LAC) न्यूनतम बिन्दु पर होता है अर्थात् न ही उत्पादन क्षमता अतिरेक और न ही न्यूनतम उत्पादन बल्कि अनुकूलतम उत्पादन स्थिति तथा संसाधनों का पूर्ण विदोहन (Full Utilization) होता है।दीर्घकाल में फर्में हानि पर कार्य नही करती है। वे उद्योग छोड़कर चली जाती है। यदि फर्में असामान्य लाभ अर्जित कर रही है तो यह अनुभव करके नयी फर्में उद्योग में शामिल होकर कुल पूर्ति बढ़ाती है जिससे उत्पादित वस्तुओं की कीमतों में कमी आ जाती है। फलतः फर्में दीर्घकाल में सामान्य लाभ अर्जित करने लगती है।दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में उस समय संस्थिति में होगी जहां दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) का न्यूनतम बिन्दु, औसत आगत (AR) को स्पर्श करता हो। अतः दीर्घकालीन संतुलन शर्त–LAC=LMC=AR=MR पाया जाता है।

चित्र–V दीर्घकालीन सस्थिति शर्त

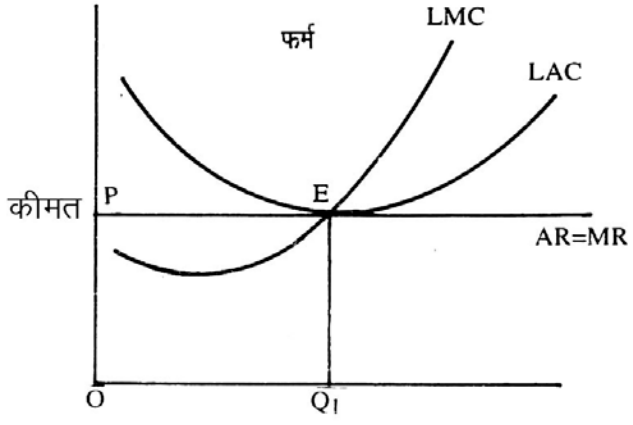

चित्र–V में स्पष्ट है कि OP कीमत और OQ_1 मात्रा बाज़ार में प्रचलित रहती है। E बिन्दु दीर्घकालीन संतुलन बिन्दु है। जिस पर फर्म सामान्य लाभ अर्जित कर रही है क्योंकि E बिन्दु पर दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) न्यूनतम है। इसलिए संतुलन शर्त LAC=LMC=AR=MR होता है या विस्तार संतुलन शर्त LAC=LMC=SAC=SMC=AR=MR होता है। जहां SAC अल्पकालीन औसत लागत और SMC अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र है। छोटे–छोटे SAC को मिलाकर LAC और छोटे–छोटे SMC को मिलाकर LMC का निमाण होता है।

बोध प्रश्न क

1. **पूर्ण प्रतियोगी फर्मों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए?**

.....
.....
.....
.....
.....

2. **पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन संतुलन शर्त को बताइए?**

.....
.....
.....
.....
.....

3. **निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए कि सही है या गलत?**

(i) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत तस्तु विभेद, परिवहन तथा विक्रय लागतें सक्रिय रूप से पायी जाती है।

(ii) जब पूर्ण प्रतियोगी फर्म अल्पकाल में P≠AVC हो तो उत्पादन बन्द बिन्दु कहलाता है।

(iii) पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्में अल्पकाल में असामान्य, सामान्य लाभ तथा हानि अर्जित करती हैं।

(iv) पूर्ण प्रतियोगी फर्में दीर्घकाल में असामान्य एवं सामान्य लाभ अर्जित करती हैं।

(v) दीर्घकाल में औसत लागत वक्र LAC अपने न्यूनतम बिन्दु पर औसत और सीमान्त आगम को स्पर्श करता है।

13.5 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का मांग एवं आपूर्ति वक्र

पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में कीमत निर्धारण उद्योग की मांग एवं आपूर्ति द्वारा होता है अर्थात् मांग एवं आपूर्ति जिस बिन्दु पर एक दूसरे के बराबर होते है उस

बिन्दु पर कीमत का निर्धारण होता है। वहीं कीमत पूर्ण प्रतियोगी फर्में स्वीकार कर लेती है। इस स्थिति में फर्म का मांग वक्र क्षैतिज रेखा के समान्तर हो जाता है जिसे औसत आगम(AR) कहा जाता है। जबकि पूर्ण प्रतियोगी फर्मों का आपूर्ति वक्र सीमान्त लागत वक्र (MC) के ऊपर उठते हुए भाग को कहा जाता है। जिसका प्रारम्भ बिन्दु औसत परवर्ती लागत (AVC) के न्यूनतम बिन्दु से शुरू होता है। इसे चित्र–Vद्वारा देखा जा सकता है।

चित्र–V

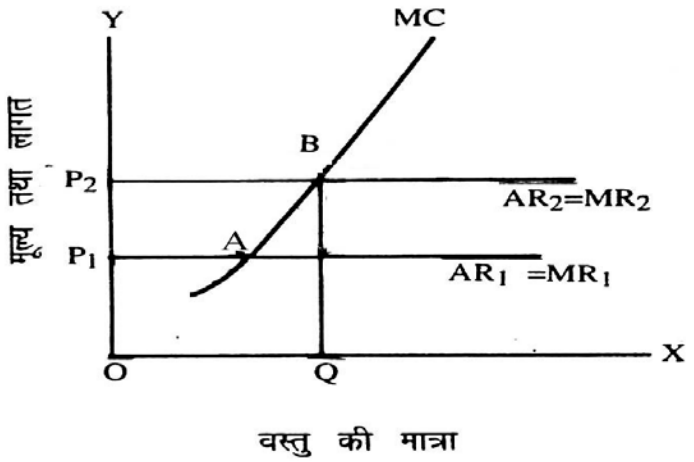

चित्र–V से स्पष्ट है कि न्यूनतम परिवर्ती लागत बिन्दु (AVC) के उपरान्त उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए प्रयोग हुई अतिरिक्त लागत बढ़ती है। अतः सीमान्त लागत (MC) के ऊपर उठते बिन्दुओं का बिन्दु पथ पूर्ण प्रतियोगी फर्म का पूर्ति वक्र कहलाता है। जिसे A, एवंBबिन्दुओं से दर्शाया गया है। AVC का न्यूनतम बिन्दु A पर है। इस प्रकार स्पष्ट है कि AR वक्र फर्म का मांग वक्र और सीमान्त लागत (MC) वक्र के ऊपर उठते हुए भाग को पूर्ण प्रतियोगिता का आपूर्ति वक्र कहा जाता है।चित्र से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत संतुलन शर्त में मांग एवं पूर्ति के परस्पर समायोजन द्वारा परिभाषित किया जाता है।

13.6 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का अल्पकालीन संतुलन स्थिति

पूर्ण प्रतियोगिता में सभी फर्मों द्वारा उत्पादित एक समान वस्तुओं के समूह को उद्योग कहा जाता है। उद्योग के लिए मांग वक्र विभिन्न क्रेताओं के मांग वक्र का योग होता है और पूर्ति वक्र फर्मों के पूर्ति का योग होता है उद्योग संतुलन की स्थिति में वहां होगा जहां बाज़ार मांग = बाज़ार आपूर्ति।

चित्र–V

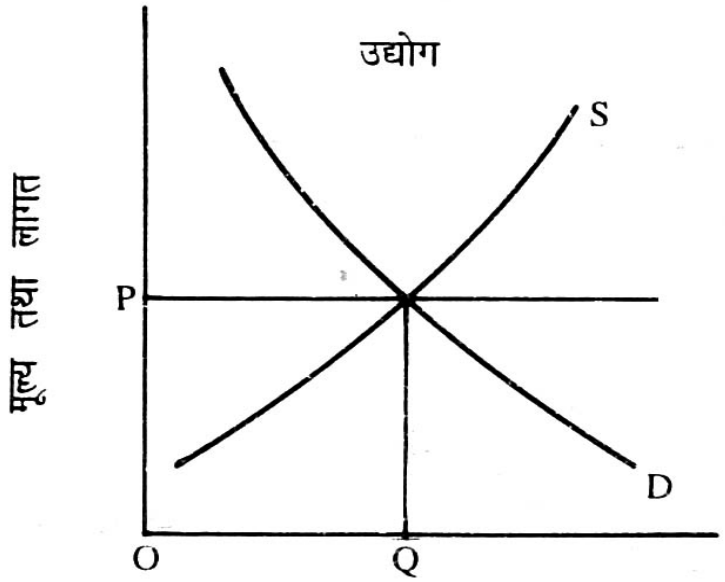

OP कीमत पर उद्योग सांस्थिति की स्थिति में है। क्योंकि D उद्योग का मांग वक्र और S उद्योग का आपूर्ति वक्र एक–दूसरे को काटते है। अतः बाज़ार मांग= बाज़ार आपूर्ति। इस OP कीमत पर कुछ फर्म असामान्य, सामान्य लाभ तथा कुछ को हानि भी उठानी पड़ती है।

13.7 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का दीर्घकालीन संतुलन स्थिति

पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का दीर्घकालीन संतुलन के लिए उद्योग के मांग एवं आपूर्ति परस्पर जिस बिन्दु पर बराबर होता है संस्थिति बिन्दु कहलाता है। दीर्घकालीन में उद्योग विस्तार की प्रवृति के साथ अनुकूलतम स्तर को सुनिश्चित करते है। दीर्घकाल में उद्योग के उत्पादन में परिवर्तन दो ही प्रकार से हो सकता है–या तो चालू फर्में उत्पादन में वृद्धि करें या नई फर्में उद्योग में प्रविष्ट हो और वे अपने उत्पादन से उद्योग के उत्पादन में वद्धि करें। उद्योग का मांग वक्र बांये से दायें नीचे गिरता हुआ और पूर्ति वक्र दायें से बायें ऊपर उठता हुआ होता है।

चित्र–VI

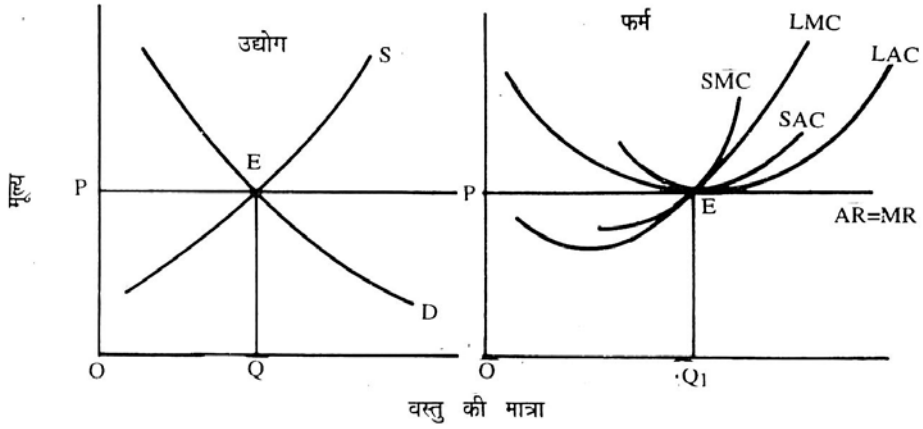

चित्र–VI से स्पष्ट है कि E बिन्दु पर उद्योग दीर्घकालीन संतुलन स्थिति में है। जो OP कीमत OQ_1 मात्रा को निर्धारित करता है। चूंकि दीर्घकाल में संसाधन समायोजन सम्भव है इसलिए उद्योग अनुकूलतम उत्पादन संयोग निर्धारित करता है। उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को दीर्घकाल में फर्में स्वीकार कर लेती है और अनुकूलतम उत्पादन प्राप्त करती है। चित्र में E बिन्दु फर्मों के अनुकूलतम उत्पादन को सूचित करता है। इस स्थिति में उद्योग दीर्घकालीन संतुलन शर्त के लिए आवश्यक और पर्याप्त शर्तों का उल्लेख करती है।

उद्योग की कुल मांग = उद्योग की कुल पूर्ति को आवश्यक शर्त के रूप में। जबकि पर्याप्त शर्त के लिए फर्म का LAC=LMC=SAC=SMC=AR=MR परस्पर एक–दूसरे के बराबर होते है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) अपने न्यूनतम स्तर अर्थात् आन्तरिक एवं वाह्य मितव्ययताएं प्राप्त होती है जिससे फर्मों को अधिकाधिक सामान्य लाभ प्राप्त होता है। जिससे उद्योग तथा उद्योग की सभी फर्म सांस्थिति की स्थिति में रहती है। दीर्घकाल में संसाधनों का समुचित प्रयोग होने के कारण लागतें अपने न्यूनतम स्तर पर और बचतें अधिकतम स्तर की ओर उन्मुख होती है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. **पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के पूर्ति वक्र से आप क्या समझते है?**

.....
.....
.....
.....
.....

2. **उद्योग के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन संतुलन शर्त को दशाइयें?**

.....
.....
.....
.....
.....

3. **निम्नलिखित कथनों में सत्य या असत्य का चुनाव कीजिए?**

(i) उद्योग का मांग एवं आपूर्ति वक्र जिस बिन्दु पर एक–दूसरे के बराबर होते है उस बिन्दु पर उद्योग संतुलन में होता है।

(ii) फर्म की दीर्घकालीन संतुलन शर्त LAC=LMC=SAC=SMC=AR=MR होतो है।

(iii) AVC के न्यूनतम बिन्दु से MC के ऊपर उठते हुए भाग को पूर्ण प्रतियोगी फर्म का मांग वक्र कहा जाता है।

(iv) पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में आन्तरिक एवं वाह्यय मितव्ययिताएं सृजित नहीं होती है।

(v) दीर्घकाल में संसाधनों का पूर्ण विदोहन सम्भव होता है।

4. दिये गये विकल्पों में से सही का चुनाव कीजिए?

(i) पूर्ण प्रतियोगिता में पाया जाता है–

(क) वस्तु विभेद

(ख) एकल विक्रेता

(ग) समरूप वस्तुएं

(घ) इनमें से कोई नही

(ii) त्पादन बन्द बिन्दु वह है जिस पर–

(क) कुल आगम = कुल लागत

(ख) कीमत = न्यूनतम परवर्ती लागत

(ग) कुल आगम

(घ) कुल लागत

(iii) लाभ–अलाभ बिन्दु कहलाता है–

(क) कुल लागत

(ख) कुल विक्रेता

(ग) कुल क्रेता

(घ) कुल आगम – कुल लागत = 0

(iv) संसाधनों के पूर्ण विदोहन द्वारा आन्तरिक एवं वाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होता है

(क) पूर्ण प्रतियोगिता में

(ख) एकाधिकार में

(ग) विभेदात्मक में

(घ) इनमें से कोई नही

(iv) फर्म का दीर्घकालीन संतुलन होता है–

(क) LAC=LMC

(ख) LAC=LMC=AR

(ग) LAC=LMC=SAC=SMC=AR=MR

(घ) AR=MR=SAC=SMC

13.8 सारांश

पूर्ण प्रतियोगी फर्मों को कीमत ग्रहणकर्ता या कीमत स्वीकारक कहा जाता है। इस स्थिति में फर्मों के सीमान्त आगम और सीमान्त लागत के मध्य सामजस्य को स्पष्ट किया जाता है। अल्पकाल में सीमान्त लागत परिवर्तनीय अनुपात के नियम पर और दीर्घकाल में पैमोने के प्रतिफल नियम पर निर्भर करता है जिससे संतुलन बिन्दु निर्धारित होता है।पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार परिस्थिति में एक समान वस्तुओं के क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। इसलिए इस बाज़ार में न तो क्रेता और न ही विक्रेता इतना महत्वपूर्ण होता है कि वह बाज़ार मूल्य को प्रभावित कर सके इसलिए इस बाज़ार दशा में मूल्य का निर्धारण बाज़ार शक्तियों अर्थात् उद्योगों के मांग और आपूर्ति द्वारा होता है जिसे सभी क्रेता और विक्रेता/फर्में स्वीकार कर लेती है। फर्में कीमत निर्धारक के बजाय कीमत स्वीकारक या ग्रहणकर्त्ता (Price Taker) होती है। इसलिए फर्मों का मांग वक्र क्षैतिज रेखा के समान्तर होता है।

फर्में अपने लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करती है। फर्मों का लाभ वहां अधिकतम होता है जहां पर कुल आगम (TR)–कुल लागत (TC) का अन्तर अधिकतम हो या सीमान्त आगम (MR) = सीमान्त लागत (MC) हो। अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि अर्जित कर सकती है। यह प्लाण्ट और फर्मों के संगठन पर कार्य करता है जो औसत परिवर्तनशील लागत (AVC), औसत लागत (AC) तथा सीमान्त लागत (MC) पर निर्भर करता है। उक्त लागतों की प्रकृति परिवर्तनीय अनुपात के नियम पर निर्भर करता है। अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में लगभग यू–आकार (U) के लागातों का सामना करती है अर्थात् प्रारम्भ में उत्पादन के साथ लागतें घटती है उसके बाद न्यूनतम होती है तत्पश्चात् प्रति इकाई उत्पादन के साथ लागतें बढ़ती है।

अल्पकाल में फर्मों के संतुलन को वयक्त करने के लिए औसत आगम (AR), सीमान्त आगम (MR), सीमान्त लागत (MC) और औसत लागत (AC) को आधार बनाया जाता है।पूर्ण प्रतियोगी फर्में अल्पकाल में असामान्य लाभ तब अर्जित करती है जब फर्म की औसत लागत (AC), औसत आगम से नीचे हो अर्थात् AR>AC/ संतुलन शर्त वहां होगा जहां MR=MC हो तथा MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है। संतुलन बिन्दु पर फर्में अपने उत्पादन को जारी रखती है और इसमें परिवर्तन की सम्भावना को नकार देती है। अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में हानि की स्थिति में भी हो सकती है अर्थात् AR<AC स्थिति।

पूर्ण प्रतियोगी फर्में अल्पकाल में हानि पर कार्य करते–करते तालाबन्दी बिन्दु (Shut Down Point) पर पहुँच जाती है। इसके पीछे फर्मों का प्रमुख तर्क होता है कि दीर्घकाल में लाभ अर्जित कर लेगे। इसी उद्देश्य से फर्में तब तक कार्य करती रहती है जब तक फर्मों की औसत परिवर्तनशील लागते (AVC) प्राप्त होती है अर्थात् मूल्य (P) = AVC हो। कीमत इससे नीचे आने पर फर्मों को औसत स्थिर लागत (AFC) और AVC दोनों को प्राप्त नही कर पायेगीं। वस्तुतः उद्योग छोड़कर चली जायेगी। अतः जहां पर कीमत (P) और औसत परिवर्ती लागत AVC एक दूसरे के बराबर हो। अर्थात् P = AVC, इसे उत्पादन तालाबन्दी बिन्दु कहा जाता है। उत्पादन तो बन्द कर देती है लेकिन उद्योग छोड़कर बाहर नही जाती है।

दीर्घकाल ऐसा समयावधि है जिसमें प्लाण्ट के आकार, फर्म समूह विस्तार तथा उत्पादन के साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है। अतः दीर्घकाल में पूर्ण

प्रतियोगी फर्में सदैव सामान्य लाभ अर्जित करती है। दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्मों का औसत लागत (LAC) न्यूनतम बिन्दु पर होता है अर्थात् न ही उत्पादन क्षमता अतिरेक और न ही न्यूनतम उत्पादन बल्कि अनुकूलतम उत्पादन स्थिति तथा संसाधनों का पूर्ण विदोहन (Full Utilization) होता है। दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्में उस समय संस्थिति में होगी जहां दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) का न्यूनतम बिन्दु, औसत आगत (AR) को स्पर्श करता हो। अतः दीर्घकालीन संतुलन शर्तः LAC=LMC=AR=MR पाया जाता है।

13.9 उपयोगी शब्दावली

- **विशुद्ध प्रतियोगिता बाज़ार :** पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं में से बाज़ार परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान, साधनों की गतिशीलता की विशेषताओं को निकाल दिया जाय तो उसे विशुद्ध प्रतियोगिता बाज़ार कहा जाता है। यह प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में संकुचित और यथार्थवादी बाज़ार स्थिति कहलाती है।

- **उद्योग :** कई फर्मों के सामोहिकरण और समरूप वस्तुएं (सभी एक जैसी) के उत्पादन समूह को उद्योग कहा जाता है।

- **असामान्य लाभ :** जब फर्म की औसत लागत (AC), औसत आगम से नीचे हो अर्थात् AR>AC ।

- **सामान्य लाभः** फर्में अपने को वर्तमान व्यवस्था में बनाये रखेगी और उत्पादन कार्य जारी रखती है। AR=AC एवं MR=MC संतुलन शर्त होती है। इस स्थिति में MR=MC को संतुलन की आवश्यक शर्त कहा जाता है।

- **संतुलन शर्त :** जब फर्म की MR=MC हो तथा MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है।

- **दीर्घकाल :** ऐसी समयावधि है जिसमें प्लाण्ट के आकार, फर्म समूह विस्तार तथा उत्पादन के साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है।

- **उत्पादन तालाबन्दी बिन्दु :** फर्मों की औसत परिवर्तनशील लागते (AVC) और मूल्य (P) एक दूसरे के बराबर हो। अर्थात् P = AVC, इसे उत्पादन तालाबन्दी बिन्दु कहा जाता है। उत्पादन तो बन्द कर देती है लेकिन उद्योग छोड़कर बाहर नही जाती है।

- **लाभ–अलाभ बिन्दु** : वह बिन्दु जहां पर प्रति इकाई आगम, प्रति इकाई औसत लागत के बराबर हो।

- **अल्पकालीन संतुलन की सीमा :** फर्म के अल्पकालीन संतुलन के लिए तालाबन्दी एवं समस्थिति बिन्दु दो सीमाएं होती है।

- **अल्पकालः** पूर्ण प्रतियोगी फर्में असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि अर्जित कर सकती है। यह प्लाण्ट और फर्मों के संगठन पर कार्य करता है।

- **दीर्घकालीन संतुलन शर्त :** LAC=LMC=SAC= SMC=AR=MR पाया जाता है।

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3	i) गलत	ii) गलत	iii) सही	iv) गलत	v) सही
ख 3	i) सत्य	ii) सत्य	iii) असत्य	iv) असत्य	v) सत्य
4	i) ग	ii) ख	iii) घ	iv) क	v) ग

13.11 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्मों के संतुलन स्थिति का सचित्र वर्ण कीजिए?

प्रश्न–2 दीर्घकाल में फर्म संतुलन शर्तो का विवेचन कीजिए।

प्रश्न–3 उद्योग से क्या तात्पर्य है? दीर्घकाल में उद्योग संतुलन स्थिति की व्याख्या कीजिए

प्रश्न–4 पूर्ण प्रतियोगी फर्मों की विशेषताएं बताइये। इन फर्मों के पूर्ति वक्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–5 पूर्ण प्रतियोगी फर्मों के लाभ अधिकतमीकरण शर्तों को बताइये। क्या आप मानते है कि इस जटिल वातावरण में फर्म अपने उद्देश्य में सफल होती है?

कुछ उपयोगी पुस्तके

- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- ❖ एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- ❖ प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- ❖ एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- ❖ लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- ❖ पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)

- ❖ डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- ❖ एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

इकाई– 14 एकाधिकार

इकाई की रूपरेखा

14.0. उद्देश्य

14.1. प्रस्तावना

14.2. एकाधिकार की अवधारणा

14.3. एकाधिकारी बाजार में संतुलन

14.3.1. अल्पकाल में

14.3.1. दीर्घकाल में

14.4. एकाधिकार में कीमत विभेद

14.5. एकाधिकार एवं आर्थिक कुशलता : पूर्ण प्रतियोगिता से तुलना

14.6. एकाधिकारी शक्ति की मात्रा का माप

14.7. एकाधिकार का विनियमन

14.8. पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार : तुलनात्मक अध्ययन

14.9. सारांश

14.10. उपयोगी शब्दावली

14.11. बोध प्रश्नों के उत्तर

14.12. महत्वपूर्ण प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में भेद बता सकें,
- अल्पकाल और दीर्घकाल का वर्णन कर सकें,
- एकाधिकार में कीमत विभेद की व्याख्या कर सकें तथा
- एकाधिकार का विनियमन करने के लिए सरकार जो उपााय कर सकती है, उनका मूल्यांकन कर सकें।

14.1 प्रस्तावना

एकाधिकार से आशय उस बाजार स्थिति सें है, जब किसी वस्तु का एक मात्र विक्रेता होता है, जिसका बाजार की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है। यह

प्रतियोगिता के ठीक विपरीत स्थिति है, क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या अधिक होने के कारण किसी एक फर्म का बाजार की पूर्ति में नगण्य हिस्सा होता है, इसलिए मूल्य निर्धारण में पूर्ण प्रतियोगी फर्मों की कोई भूमिका नहीं होती, वही एकाधिकारी मूल्य का निर्धारक होता है। इस प्रकार जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तुओं का उत्पादन दीर्घकाल में न्यूनतम संभव औसत लागत पर होता है एवं कीमते सीमान्त लागत के बराबर होती है, साधनो का अपव्यय नहीं होता वहीं एकाधिकारी बाजार की स्थिति में उत्पादन साधारणतया अनुकूलतम स्तर से कम होता है एवं कीमत सीमान्त लागत से अधिक होती है।

एकाधिकारी अपने वस्तु का एक मात्र उत्पादक होता है, इसलिए वह क्रेता से मनचाही कीमत वसूल कर सकता है, परन्तु वह मांग की सीमाओं से परे नहीं जा सकता एवं न ही वह इतनी कीमत वसूल कर सकता है कि क्रेता स्थानापन्न वस्तुएं ढूढ़ने को मजबूर हो जाए।

सामान्यतः देखा जाता है कि एकाधिकारी फर्म या तो मूल्य निर्धारित कर सकती है या मात्रा/वह दोनो का निर्धारण एक साथ नहीं कर सकती है। एकाधिकारी फर्म यदि मूल्य ऊँचा रखती है तो विक्रम मात्रा कम हो जाती है वही दूसरी ओर मूल्य नीचा रखने पर विक्रम मात्रा अधिक होती है। यही कारण है कि एक अपूर्ण प्रतियोगी फर्म का मांग वक्र ऊपर से नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होता है।

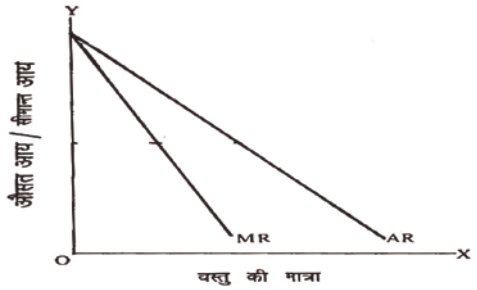

चित्र : 1

एक अपूर्ण प्रतियोगी फर्म का नीचे की ओर गिरता हुआ AR तथा MR Oøa

14.2 एकाधिकार की अवधारणा

"Monopoly" शब्द की उत्पत्ति लैट्रिन भाषा के दो शब्दों से हुई है– "Mono अर्थात् Single" एवं "Poly" अर्थात् विक्रेता। इस प्रकार "Monopoly" का अर्थ ऐसी बाजार स्थिति से है, जिसमें मात्र एक विक्रेता होता है। एकाधिकार द्वारा उत्पादित वस्तु का न तो पूर्ण एवं न ही निकट प्रतिस्थापन बाजार में उपलब्ध होता है, इसलिए एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग की तिर्यक लोच शून्य होती है।

एकाधिकारी उद्योग में नई कर्मों का प्रवेश प्रतिबंधित होता है। एकाधिकारी के फर्म एवं उद्योग में कोई अन्तर नहीं होता है। एकाधिकारी मूल्य विभेद कर सकता है अर्थात समान वस्तु के लिए अलग–अलग क्रेताओं से अलग–अलग मूल्य प्राप्त कर सकता है। **चैम्बरलिन** के मत में ''एकाधिकारी उसे समझना चाहिए जो किसी

वस्तु की पूर्ति पर नियन्त्रण रखता हो।'' **प्रो0 लर्नर** के अनुसार 'एकाधिकारी से आशय उस विक्रेता से है जिसकी वस्तु का माँग वक्र गिरता हुआ होता है।'

एकाधिकार के पक्ष और विपक्ष में मत

जब क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने यह सुझाव दिया था कि वह अर्थव्यवस्था सर्वोत्तम है जो निर्बाध बाजार के आधार पर कार्य करती है तो उनका तात्पर्य यह था कि ऐसी अर्थव्यवस्था में बाज़ार में वस्तु विक्रेताओं के बीच बहुत तीव्र प्रतिस्पर्धा होगी। उनका मत था कि अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए विक्रेता एक बार अधिकाधिक उत्पादन करना शुरू कर दें तो समाज के हित में होगा। वस्तुओं और सेवाओं का बढ़ता हुआ उत्पादन श्रम–विभाजन और बड़े पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहित करेगा और सीमान्त लागत, औसत लागत व कीमतों का कम करेगा तथा धन को बढ़ायेगा।

वास्तव में क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि ये सभी बातें इसी तरह होंगी जैसा अभी बताया गया है। अतः यदि बाज़ार में बाधा न डाली जाए तो व्यक्ति और समाज दोनों का आर्थिक कल्याण कैसे संबंधित है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जब किसी वस्तु के उत्पादन व विक्रय से होने वाले लाभों का अन्य व्यक्तियों को पता चलता है तो वे भी ऐसा लाभ प्राप्त करने की ओर आकर्षित होते हैं। इससे बाज़ार में नये उत्पादक आ जाते है। परिणामस्वरूप उत्पादकों की संख्या बढ़ती जाती है और उनमें प्रतिस्पर्धा तीव्र होती जाती है। इस प्रतिस्पर्धा से समाज को होने वाले लाभों की आप परिकल्पना कर सकते है। प्रत्येक उत्पादक दूसरों से अधिक बिक्रमी करना चाहेगा और इस प्रक्रिया में अपनी उत्पादन लागत को न्यनूतम कर देगा। इससे अधिक श्रम विभाजन, बड़े पैमाने पर उत्पादन व कल उत्पादन अधिक होगा तथा लागत व कीमतें कम होंगी और यह ही सब समाज को होने वाले लाभ है। यही कारण है कि अर्थशास्त्री पूर्ण प्रतियोगिता को एक आदर्श बाज़ार स्थिति मानते थे।

बाज़ार में यदि प्रतियोगिता घटती जाए तो हम एकाधिकार की ओर अग्रसर होते हैं और ऐसी स्थिति में ऊपर बताये गये लाभों को प्राप्त करना असंभव होता है। यदि प्रतिस्पर्धा का भय न हो या ये कम हो जाए जैसा कि एकाधिकार में होता है तो यह संभव है कि उत्पादक अधिक श्रम विभाजन और अधिक उत्पादन आदि के लिए बाध्य न हो और इस कारण लागत व कीमत कम न हों। इस प्रकार जब हम प्रतियोगी बाज़ार से एकाधिकार बाज़ार की ओर अग्रसर होते हैं तो निबांध अर्थव्यवस्था के कारण मिलने वाले लाभ लुप्त होने लगते हैं।

अर्थशास्त्री कभी–कभी यह भी कहते हैं कि एकाधिकारी एक असामान्य प्राणी होता है और यह संभव है कि वह केवल लाभ के उद्देश्य से प्रेरित न हो। विवशता न होने पर स्थिति में प्रचलित कीमत से कम हो। लेकिन क्या एकाधिकारी इस दिशा में कार्य करेगा? एकाधिकार बाजार की संरचना में ऐसा कुछ निहित नहीं है जिससे यह लगे कि वह अवश्य ही इस दिशा में कार्य करेगा।

क्या एकाधिकार के कारण साधनों का दुराबंटन होगा?

क्या एकाधिकार में साधनों के अनुकूलतम आवंटन के कारण विकृत एकाधिकार के संसाधनों का नियतन (allocation of resources) होता है। यह स्मरणीय है कि एकाधिकार के अन्तर्गत साधनों के अनुकूलतम आवंटन को विकृत करने की प्रवृत्ति होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन के अनुकूलतम स्तर पर कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है। ऐसी स्थिति में विक्रेता क्रेताओं को

नुकसान पहुँचा कर कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। सभी विक्रेता अनुकूलतम स्तर पर उत्पादन करते हैं इसलिए साधनों के एक विक्रेता से दूसरे की ओर जाने की प्रवृत्ति नहीं होगी और सभी ओर अनुकूलतम उत्पादन की स्थिति होगी। एकाधिकार में कीमत कभी भी सीमान्त लागत के बराबर नहीं होती बल्कि हमेशा उससे अधिक होती है। अधिकतम लाभ वाले संतुलन के लिए एकाधिकार में भी सीमान्त आय और सीमान्त लागत का बराबर होना आवश्यक है क्योंकि इसमें औसत आय (यानि कीमत) सीमान्त आय से हमेशा अधिक होती है इसलिए कीमत अपने आप ही सीमान्त लागत से अधिक होगी। साधनों का सर्वोत्तम आवंटन केवल तब होता है जब कीमत सीमान्त लागत के बराबर हो न कि वह सीमान्त लागत से अधिक हो। अतः एकाधिकार में साधनों का आवंटन अनुकूलतम नहीं होता है अर्थात् साधनों का दुरावंटन होता है।

एकाधिकार में साधनों का दुरावंटन होता है इसलिए सरकार को एकाधिकार को रोकने के लिए आर्थिक उपाय खोजने पड़ते हैं। सरकार एकाधिकारी द्वारा किये जाने वाले कुल विनियोग पर पाबंदियां लगा सकती हैं। सरकार कीमत को नियंत्रित कर सकती है या उसके द्वारा बाजार को प्रभावित करने के लिए दिए जा रहे अनाप–शनाप विज्ञापनों पर रोक लगा सकती है। क्योंकि एकाधिकारी को अतिरेक तो मिलता ही है इसलिए सरकार उसे कीमत पर रोक लगाने के लिए मजबूर करके उसके अतिरेक को घटा सकती है जिससे समाज का कल्याण होगा। यह संभव है कि सरकार के हस्तक्षेप के कारण वह शोध या नवीन प्रक्रिया आदि में रूचि न ले जिससे कि उत्पादन की लागत ऊँची रहे या वह अधिक उत्पादन न करे जिससे अर्थव्यवस्था व रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

14.3. एकाधिकारी बाजार में संतुलन

एकाधिकारी बाजार को प्रभावित करने की स्थिति में होता है इसलिए वह कीमत निर्धारक होता है, कीमत स्वीकारक नहीं। वह बाजार में प्रचलित कीमत को स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं है। वह अपने प्रभाव के अनुसार कीमत को बदल सकता है। उसे अन्य वस्तुओं की कीमतों की परवाह नहीं करनी होती क्योंकि सिद्धांततः उसकी वस्तु की कोई स्थानापन्न वस्तु नहीं होती। वास्तव में इसी कारण वह कीमत को प्रभावित कर सकता है। जब हम यह कह सकते हैं कि एकाधिकारी कीमत निर्धारित कर सकता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह जितना चाहे उतना उत्पादन कर सकता है और जिस कीमत पर चाहे उसे बेच सकता है। ऐसा करना असंभव है। यदि वह कीमत निश्चित करने का निर्णय लेता है तो इस कीमत पर जितनी मात्रा बिक सकती है उतना ही उत्पादन करेगा। दूसरी ओर यदि वह उत्पादन निश्चित करता है वे उतना उत्पादन जिस कीमत पर भी बिके उसे स्वीकार करनी होगी। इस प्रकार एकाधिकारी एक शक्तिशाली उत्पादक होने पर भी उत्पादन के स्तर और कीमत दोनों को निर्धारित नहीं कर सकता। या तो वह उत्पादन के बारे में निर्णय ले सकता है और कीमत संतुलन की आवश्यकता के द्वारा निर्धारित हो जाएगी या वह कीमत निर्धारित कर सकता है और उत्पादन की मात्रा मांग की स्थिति निर्धारित हो जाएगी।

एकाधिकारी फर्म का एक मात्र उद्देश्य लाभ अधिकतम करना होता है, इसलिए उस विक्रम मात्रा पर लाभ अधिकतम होता है, जब फर्म संतुलन में होती है इसका अध्ययन प्रमुख रुप से दो विधियों से किया जा सकता है।

1. TR – TC विधि

2. MC = MR विधि

जहाँ,

a) जब MC= MR

b) MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटे।

1. TR-TC विधि : संतुलन स्थिति उस विक्रय मात्रा पर प्राप्त होती है, जब कुल आगम एवं कुल लागत का अन्तर अधिकतम हो, एवं यह स्थिति तब प्राप्त होती है, जब TR एवं TC के ढाल एक दूसरे के बराबर हों।

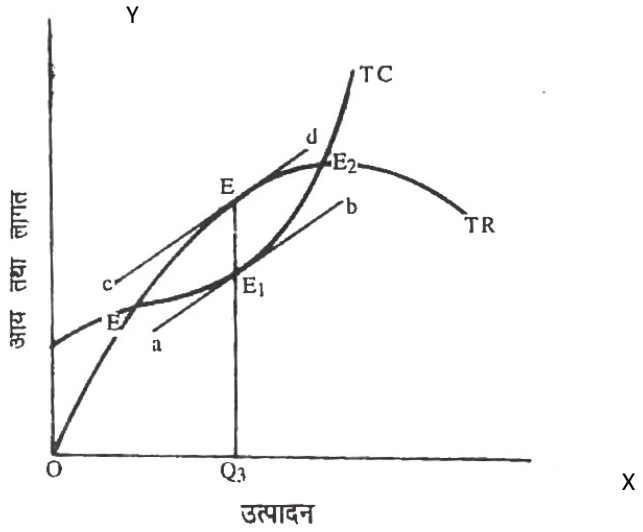

चित्र : 2

निम्नांकित चित्र में OQ विक्रय मात्रा पर फर्म संतुलन में है।

2. **MC=MR विधि :** इस विधि के अनुसार फर्म संतुलन की स्थिति में तब होती है, जब सीमान्त लागत सीमान्त आगम के बराबर हो एवं सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को नीचे से काटे।

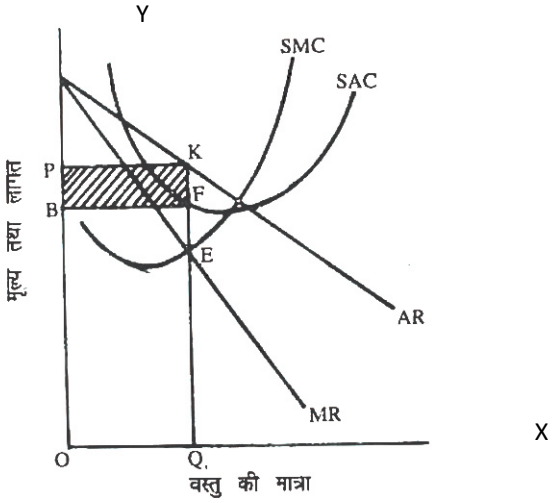

चित्र : 3

निम्नांकित चित्र में क्षैतिज अक्ष पर विक्रय मात्रा एवं ऊर्ध्वाधर अक्ष पर लागत एवं आगम को मापा गया है। AR, MR, AC एवं MC क्रमशः औसत आगम, सीमान्त आगम, औसत लागत एवं सीमान्त लागत को प्रदर्शित करते हैं। संतुलन स्थिति में फर्म OQ विक्रय मात्रा एवं OP मूल्य निर्धारित करती है, KF प्रति इकाई लाभ को प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार समय तत्व के आधार पर एकाधिकार में भी अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन में भेद किया जाता है। पहले हम अल्पकालीन संतुलन का अध्ययन करेंगे।

14.3.1. अल्पकाल में

अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म सामान्य लाभ, असामान्य लाभ या हानि अर्जित कर सकती है, वैसे एकाधिकारी फर्म के असामान्य लाभ अर्जित करने की सम्भावना अधिक रहती है।

असामान्य लाभ–

रेखाचित्र : 4 में SAC अल्पकालीन औसत लागत वक्र है जो एकाधिकारी फर्म के उस प्लाण्ट से सम्बन्धित है जिस पर वह उत्पादन कर रही है। अल्पकाल में फर्म इसी SAC पर कार्य करेगी। औसत आय तथा सीमान्त आय AR तथा MR से क्रमशः प्रदर्शित हैं। इस रेखा चित्र में SAC तथा SMC अल्पकालीन औसत तथा सीमान्त लागत वक्र है। SMC वक्र MR को E बिन्दु पर काटती है। E से उत्पादन अक्ष पर खींचा गया लम्ब, अधिकतम लाभ वाला उत्पादन OQ निर्धारित करता है। OQ से सम्बन्धित AR का बिन्दु K मूल्य बतायेगा क्योंकि मूल्य = औसत आय। इस प्रकार–

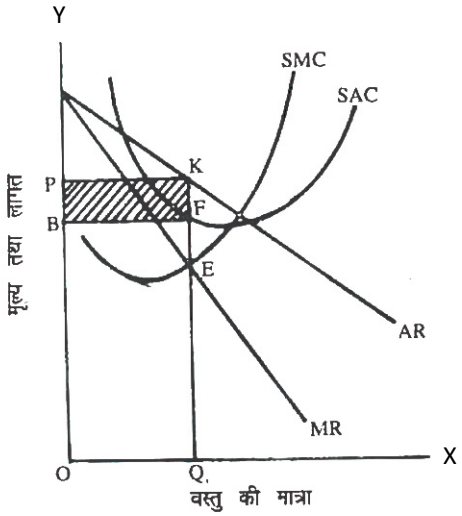

चित्र : 4

संस्थिति उत्पादन = OQ

मूल्य = OK (या OP) औसत लागत = QF

लाभ प्रति इकाई = OK- QF = FK

कुल लाभ = FK × OQ = PKFB

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है और वह यह है कि अल्पकाल में पूर्ण प्रतियोगिता की फर्म तो हानि पर भी कार्य कर सकती है पर क्या एकाधिकारी फर्म भी हानि की स्थिति में कार्य कर सकती है? सामान्य व्यक्ति तो यही मानता है कि एकाधिकारी फर्म हानि पर कार्य नहीं करेगी। चूँकि वह अकेला विक्रेता है इसलिए वह अपनी वस्तु का ऊँचा से ऊँचा मूल्य रख सकता है इसलिए हानि का प्रश्न ही नहीं उठेगा। पर यह सोचना गलत है क्योंकि प्रतियोगिता की अनुपस्थिति इस बात का आश्वासन नहीं देती है कि एकाधिकारी फर्म को लाभ मिलगा ही क्योंकि लाभ की मात्रा तो एकाधिकारी फर्म को वस्तु की माँग तथा लागत के स्वरूप पर निर्भर करेगी। चूँकि अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म की माँग के अनुसार प्लाण्ट के आकार को समायोजित नहीं कर सकती बल्कि एक दिए हुए प्लाण्ट पर ही कार्य करेगी इसलिए हानि की सम्भावना हो सकती है। इतना ही नहीं यदि मांग अपर्याप्त हो तो भी एकाधिकार में हानि की सम्भावना हो सकती है। इस प्रकार यह सोचना गलत होगा कि एकाधिकारी फर्म चूंकि उत्पादन तथा बाजार में पूर्ति को नियंत्रित कर रही है तथा साथ ही मूल्य का निर्धारण भी वही कर रही है इसलिए वह अल्पकाल में भी हानि नहीं उठायेगी।

अल्पकाल में हानि की स्थिति–

(AC>AR) में कार्य करने वाली फर्म की स्थिति को इस रेखाचित्र 5 में प्रदर्शित किया गया है।

रेखाचित्र में स्पष्ट है SMC वक्र MR को E बिन्दु पर काटती है। इस प्रकार–

संस्थिति उत्पादन = OQ

प्रति इकाई मूल्य = QB (या OA)

औसत लागत = QC

हानि प्रति इकाई = QC - QB = CB

कुल हानि = BC × OQ = CBAP

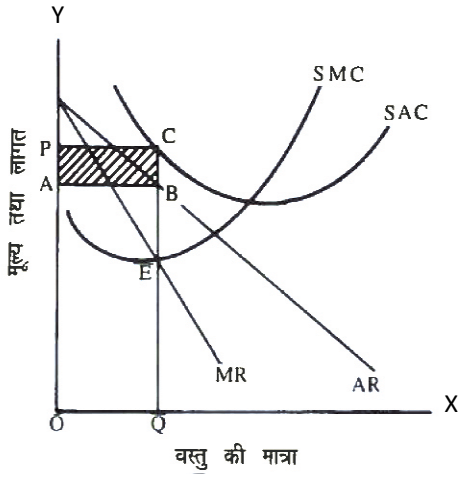

चित्र : 5

पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में फर्म की संस्थिति की व्याख्या करते समय, एक प्रश्न यह उठाया गया था कि एक फर्म अल्पकाल में हानि की स्थिति में कब तक कार्य करती रहेगी, यही प्रश्न एकाधिकार के भी सन्दर्भ में उठता है और इसका उत्तर भी पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दी गयी व्याख्या में ही निहित है। हम यहाँ केवल इतना कह रहे हैं कि जब तक मूल्य AVC या औसत परिवर्तनीय लागत से ऊपर होगा, फर्म हानि पर उत्पादन करती रहेगी। यदि मूल्य इससे नीचे आया तो फर्म अपने प्लाण्ट को बन्द कर देगी, यद्यपि उद्योग में बनी रहेगी। इस स्थिति को रेखाचित्र 6 में प्रदर्शित किया गया है।

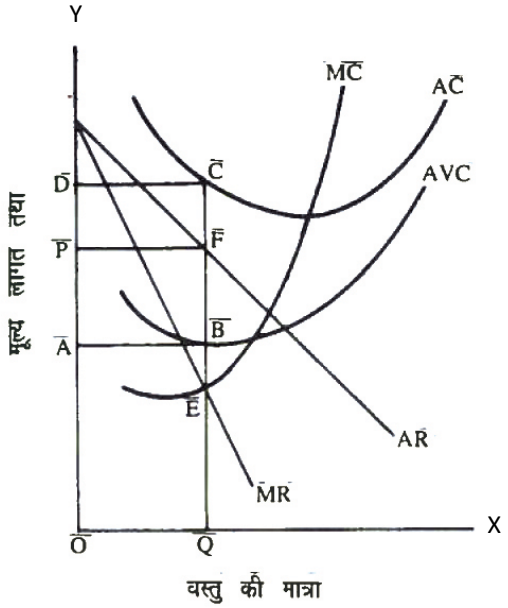

चित्र : 6

रेखाचित्र से स्पष्ट है, फर्म की हानि PDCF के बराबर है। इस स्थिति में फर्म उत्पादन करेगी क्योंकि फर्म औसत स्थिर लागत (औसत स्थित लागत = AC-AVC½ का भी कुछ भाग पूरा कर ले रही है। पर यदि मूल्य QB से नीचे आ जाय (QB परिवर्तनीय लागत है) तो फर्म उत्पादन बन्द कर देगी।

अल्पकाल में सामान्य लाभ–

एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में सामान्य लाभ भी अर्जित कर सकती है जिसे चित्र 7 में प्रदर्शित किया गया है, चित्र में संस्थिति उत्पादन OQ तथा मूल्य OP, मूल्य OP ही औसत लागत (QE) के बराबर है। इस प्रकार AR=AC। फर्म सामान्य लाभ अर्जित करेगी।

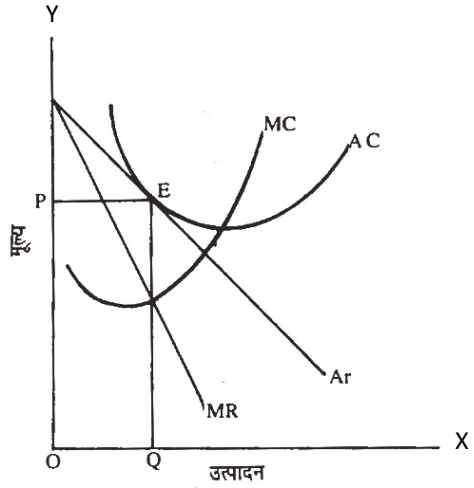

चित्र : 7

14.3.2. दीर्घकाल में

अल्पकाल में फर्म अपने प्लाण्ट के आकार में किसी भी प्रकार का समायोजन नहीं कर सकती है, दिए हुए प्लाण्ट पर ही कार्य करती है, इसीलिए उसको होने वाली हानि या लाभ की मात्रा प्लाण्ट के समायोजन पर नहीं बल्कि माँग के आकार पर निर्भर करेगी। पर दीर्घकाल में फर्म अपने प्लाण्ट के आकार में वृद्धि ला सकती है या दिए हुए प्लाण्ट को ही किसी स्तर तक प्रयोग में ला सकती है जिससे उसका लाभ अधिकतम हो सके। इसलिए दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म उस प्लाण्ट को चुनेगी जो माँग में एक स्तर के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। यह आवश्यक नहीं है कि एकाधिकारी फर्म 'अनुकूलतम स्तर' पर उत्पादन करे या दीर्घकालीन लागत वक्र (LARC) के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करे और न ही यह आवश्यक है कि एकाधिकारी फर्म वर्तमान प्लाण्ट के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करे। पर इतना निश्चित है कि अल्पकाल में हानि पर कार्य करने वाली एकाधिकारी फर्म या तो प्लाण्ट के समायोजन के द्वारा कुशलता लाने की कोशिश करेगी जिससे हानि की स्थिति समाप्त हो जाय, अन्यथा दीर्घकाल में बाजार छोड़कर चली जायेगी। एकाधिकारी फर्म, दीर्घकाल में सामान्यतया असामान्य लाभ अर्जित करती रहेगी। प्लाण्ट का आकार तथा वर्तमान प्लाण्ट का किस स्तर तक प्रयोग हो सकेगा यह बाजार माँग के ऊपर निर्भर करेगा। वह LAC के न्यूनतम बिन्दु (प्लाण्ट के अनुकूलतम स्तर), LAC के गिरते हुए भाग (अनुकूलतम स्तर के पहले) या LAC के ऊपर उठते हुए भाग (अनुकूलतम स्तर के बाद) में उत्पादन करेगी, यह बाजार में माँग के आकार पर निर्भर करेगा।

दीर्घकाल में असामान्य लाभ की स्थिति रेखाचित्र 8 में प्रदर्शित है।

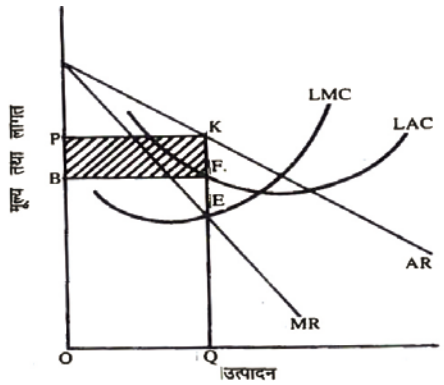

चित्र : 8

इस रेखा में LAC दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है तथा LMC सीमान्त लागत वक्र है। सीमान्त लागत वक्र (LMC) सीमान्त आय (MR) को E बिन्दु पर काटता है। MR तथा LMC की समता के द्वारा फर्म अधिकतम लाभ वाला उत्पादन OQ निर्धारित करेगी। AR (D) के आधार पर OQ उत्पादन की स्थिति में वह मूल्य OP रखेगा। इस स्थिति में प्रति इकाई औसत लागत QF या OB है। प्रति इकाई लाभ = OP - OB = PB। कुल एकाधिकारी असामान्य लाभ OQ × PB = PBFK।

रेखाचित्र से स्पष्ट है एकाधिकारी फर्म की संस्थिति स्थिति LAC के न्यूनतम बिन्दु पर नहीं है, F बिन्दु पर LAC के गिरते हुए भाग में है। स्पष्ट है

LAC के किस भाग में एकाधिकारी उत्पादन करेगा, यह AR तथा MR के आकार के ऊपर निर्भर करेगा।

दीर्घकाल में मूल्य–निर्धारण की क्रिया के ऊपर उत्पादन के विभिन्न नियमों का प्रभाव पड़ेगा। इसकी व्याख्या आगे रेखाचित्र नं0– 9, 10 तथा 11 में की गयी है।

लागत–ह्रास नियम के लागू होने पर–

चित्र नं0–9 में उस अवस्था का स्पष्टीकरण किया गया है जिसमें उत्पादन के साथ–साथ लागत घटती जाती है। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी कम से कम मूल्य रखकर अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहेगा।

रेखाचित्र में OQ उत्पादन का निर्धारण सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय की समानता के आधार पर किया गया है। इस रेखा चित्र में–

MR= MC के आधार पर संस्थिति उत्पादन = OQ

AR के आधार पर मूल्य = OP

AC के आधा पर लागत = OT

AR - AC के आधार पर प्रतिवस्तु लाभ = OP -OT = PT

कुल लाभ (प्रतिवस्तु लाभ × उत्पादन) = PT × OQ = PTEA

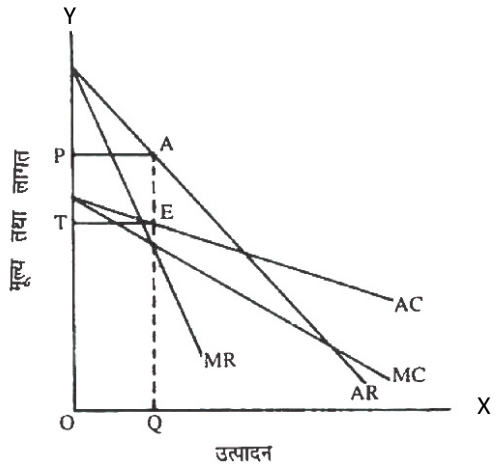

चित्र : 9

स्थिर लागत–नियम लागू होने पर–

जब उत्पादन स्थिर लागत–नियम के अन्तर्गत हो रहा हो तब उत्पादन का निर्धारण सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय के द्वारा ही होगा जैसा दिये गये चित्र 10 एवं 11 में स्पष्ट गया है।

रेखाचित्र में – उत्पादन OQ मूल्य प्रतिइकाई OP औसत लागत प्रतिइकाई OA लाभ प्रति इकाई OP- OA = PA

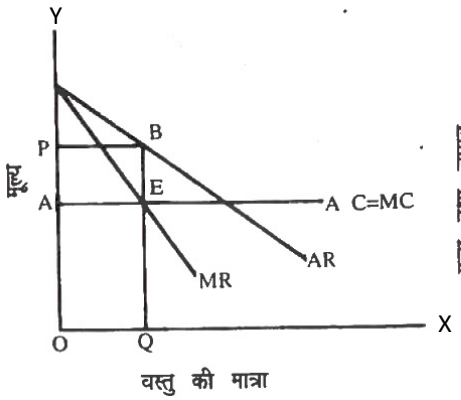

चित्र : 10

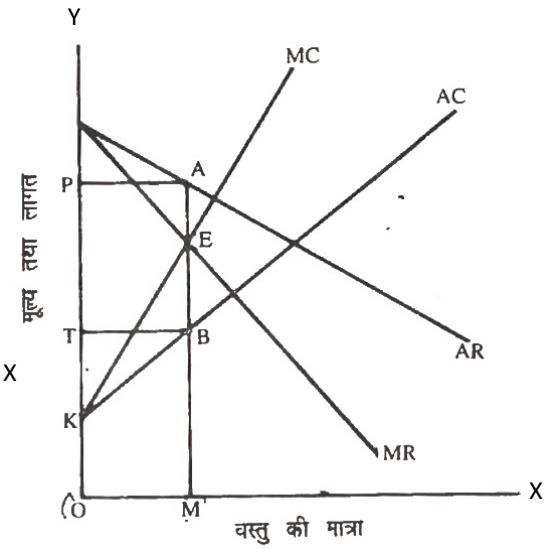

चित्र : 11

कुल लाभ = OQ × PA = PAEB

लागत वृद्धि की स्थिति – इसका वर्णन ऊपर दिये गये रेखाचित्र में किया गया है।

सीमान्त लागत, सीमान्त आय रेखा को E बिन्दु पर काटती है। एकाधिकारी OQ वस्तु का उत्पादन करेगा जिस पर MC=MR है। इस OQ पर औसत आय OP है, यही मूल्य होगा जिस पर इसका लाभ अधिकतम होगा।

इस चित्र में

प्रति वस्तु मूल्य = OP या QA प्रति वस्तु औसत लागत = OT या QB कुल बेची गई वस्तुये = OQ प्रति वस्तु लाभ = OP - OT = PT या AB

कुल लाभ = प्रतिवस्तु × कुल बेची गयी वस्तुयें = PT × OQ = PABT

एकाधिकार में मूल्य–निर्धारण तथा माँग की लोच–

जब कि एक एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन निर्धारित करता है, वह अपनी मूल्य लोच को ध्यान में रखता है। वास्तविकता तो यह है कि एकाधिकारी मूल्य वहाँ निर्धारित करेगा जहाँ वस्तु की मूल्य लोच इकाई से अधिक हो। एकाधिकारी वही मूल्य रखेगा जिस पर माँग की लोच इकाई से अधिक हो $(e>1)$ एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण के सम्बन में एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बात यह है कि वह वही उत्पादन निर्धारित करता है जिससे सम्बन्धित मूल्य पर माँग की लोच इकाई से अधिक हो, ऐसा क्यों। इसके स्पष्टीकरण के लिए रेखाचित्र नं0– 12 दिया गया है।

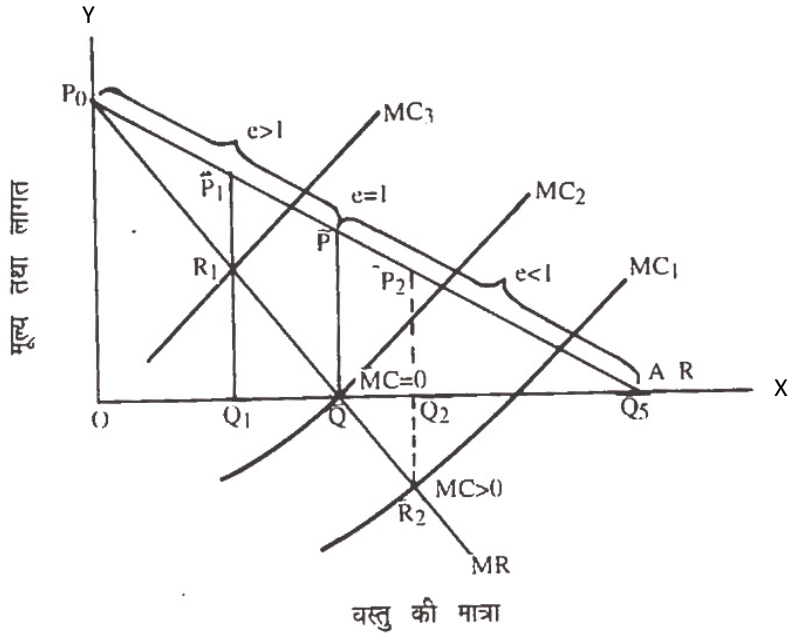

चित्र : 12

अधिकतम लाभ वाला उत्पादन वहाँ निर्धारित होगा जहाँ MC=MR, यदि MC=MR करना हो तो MC तीन बिन्दुओं से होकर जा सकती है– एक तो Q बिन्दु के बायें से, अथवा दूसरे Q बिन्दु के दायें से अथवा तीसरे Q बिन्दु से। इसीलिए विकल्प के रूप में तीन MC खींची गई है MC_3 MR के R_1 बिन्दु से, MC_2 वक्र MR के R_2 बिन्दु से जाती है। यदि आप MC_1 को लें तो उत्पादन की मात्रा OQ_2 तथा मूल्य Q_2P_2 होगा पर यह स्थिति तभी प्राप्त होगी जबकि MC तथा MR दोनों ऋणात्मक हों। क्या आप कोई स्थिति सोच सकते हैं जिसमें उत्पादन की लागत ऋणात्मक हो कदापि नहीं। इसलिए यह स्पष्ट हुआ कि MC वक्र Q से नीचे नहीं होगी, अगर ध्यान से देखें तो आप भी कह सकते हैं कि मूल्य ऐसा निर्धारित नहीं होगा जहाँ e<1 हो अर्थात् संस्थिति उत्पादन OQ से अधिक नहीं होगा और मूल्य QP से कम नहीं होगा। यदि आप MC_2 को लें तो आप यह पायेंगे कि MC=MR की स्थिति Q बिन्दु पर है। ऐसा तभी होगा जबकि MC=0 हो। इस प्रकार की काल्पनिक स्थिति की चर्चा प्रो0 एजवर्थ ने अपने प्रसिद्ध खनिज कुयें (Mineral Wells) के उदाहरण में की। यदि ऐसी स्थिति हो तो निःसंदेह उत्पादन OQ होगा तथा मूल्य QP होगा जिस पर e=1 है। पर सामान्यतः ऐसी स्थिति हो तो निःसंदेह उत्पादन OQ होगा तथा मूल्य QP होगा जिस पर e=1 है। पर सामान्यतः ऐसी स्थिति नहीं मिलेगी। सामान्यतया MC धनात्मक (+) होगी, इसलिए संस्थिति उत्पादन OQ से कम तथा मूल्य QP से अधिक होगा अर्थात् वहाँ जहाँ मूल्य लोच 1 से अधिक हो, e>1 हो।

बोध प्रश्न क

प्रश्न–1 एक एकाधिकारी मांग वक्र के उस हिस्से में उत्पादन करता है, जहाँ मांग की लोच इकाई से ज्यादा होती है, चित्र सहित व्याख्या करें।

.....

प्रश्न–2 एक एकाधिकारी फर्म का AR तथा MR वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ क्यों होता है?

.....

प्रश्न–3 फर्म के संतुलन के आवश्यक तथा अनिवार्य दशाओं का वर्णन करें।

.....

प्रश्न–4 क्या एकाधिकारी बाजार में संसाधनों का दुरावंटन होता है, स्पष्ट करें।

.....

प्रश्न–5 प्राकृतिक एकाधिकार व सामान्य एकाधिकार में भेद कीजिए।

.....

प्रश्न–6 एकाधिकार के अन्तर्गत अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन में अंतर बताइये।

.....

प्रश्न–7 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत।

(i) लाभ अधिकतम करने के अतिरिक्त एकाधिकारी के अन्य उद्देश्य भी होते हैं।

(ii) एकाधिकार में अधिकतम लाभ वाले संतुलन के लिए सीमान्त लागत और सीमान्त आय का बराबर होना जरूरी है।

(iii) एकाधिकारी कीमत निर्धारक होते हैं, कीमत स्वीकारक नहीं।

(iv) एकाधिकारी वह कीमत स्वीकार नहीं करेगा जो औसत परिवर्ती लागत को पूरा न करें।

14.4. एकाधिकार में कीमत विभेद

समान वस्तु के लिए अलग–अलग क्रेताओं से अलग–अलग मूल्य प्राप्त करने की क्रिया मूल्य विभेद कहलाती है। स्टिगलर के अनुसार ''समान वस्तु के लिए दो या दो से अधिक मूल्य प्राप्त करने को मूल्य विभेद कहते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म मूल्य विभेद नहीं कर सकती क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में एक समान वस्तु के विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होती है। एकाधिकारी फर्म मूल्य विभेद कर सकता है, क्योंकि उसका बाजार की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण होता है, जो एकाधिकारी मूल्य विभेद करता है, उसे विभेदात्मक एकाधिकारी कहा जाता है।''

मूल्य विभेद की अनिवार्य शर्तें –

मूल्य विभेद निम्नलिखित दशाओं में ही सम्भव होता है–

- मूल्य विभेद करने वाली फर्म एकाधिकारी हो।
- बाजार लोच के आधार पर अलग–अलग भागों में विभाजित हो।
- क्रेताओं के मध्य संदेशवाहन का अभाव हो।
- वस्तु का पुनः क्रय विक्रय न किया जाय।
- वस्तु की प्रकृति अहस्तान्तरणीय होने पर मूल्य विभेद अधिक प्रभावी होता है।

एकाधिकारी का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है और वह लाभ अधिकतम करने के लिए वह विभेद करता है। विभेदात्मक एकाधिकारी न केवल यह तय करता है कि कुल विक्रय मात्रा पर उसका लाभ कब अधिकतम होता है बल्कि यह भी तय करता है कि लाभ अधिकतम करने के लिए प्रत्येक बाजार में वह कितना बेचे। कुल उत्पादन का विभिन्न बाजारों में विभाजन वह मांग की लोच के आधार पर करता है। जिस बाजार में मांग की लोच अधिक होती है वह मूल्य कम एवं अधिक मात्रा का विक्रय करता है और कम लोच वाले बाजार में वह मूल्य ऊँचा एवं मात्रा कम निर्धारित करता है।

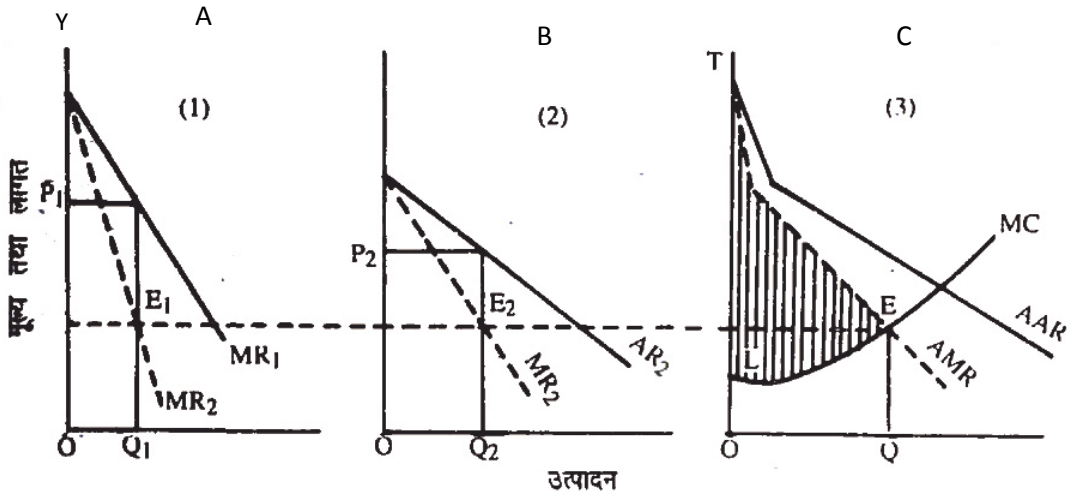

चित्र : 13 **चित्र : 14** **चित्र : 15**

उपरोक्त चित्र में एक ऐसी एकाधिकारी फर्म का वर्णन है जो भिन्न लोचदार दो बाजारों में काम कर रही है। बायीं ओर से पहले भाग में अपेक्षाकृत बेलोच मांग एवं दूसरे भाग में अपेक्षाकृत लोचदार मांग प्रदर्शित है। दोनों बाजारों के क्षैतिज मांग वक्र द्वारा बाजार मांग वक्र प्राप्त किया जाता है। AMR औसत सीमान्त आगम वक्र को प्रदर्शित करता है।

विभेदात्मक एकाधिकारी फर्म को निर्णय लेना होता है कि वह कुल कितना उत्पादन करे और विभिन्न बाजारों में किस मूल्य एवं मात्रा का निर्धारण

करे। एकाधिकारी यह निणय मांग की लोच के आधार पर करता है। अपेक्षाकृत लोचदार मांग के सन्दर्भ में वह मूल्य नीचा एवं अधिक विक्रय मात्रा का निर्धारण करता है एवं अपेक्षाकृत बेलोच मांग के सन्दर्भ में वह मूल्य ऊँचा एवं विक्रय मात्रा कम निर्धारित करता है।

मूल्य विभेद की कोटियाँ –

प्रो0 पीगू तीन कोटियों के मूल्य विभेद की बात करते हैं :–

प्रथम कोटि का मूल्य विभेद (Price discrimination of first degree) तब होगा जबकि एकाधिकारी प्रत्येक क्रेता को उतने मूल्य पर अपनी वस्तु की प्रत्येक इकाई बेचने में सफल हो जाय जितना मूल्य उस वस्तु के उपयोग से वंचित रहने की स्थिति में क्रेता देने को तैयार हो जाय। इस स्थिति में वह क्रेता से उतना मूल्य ले लेता है जितना वह अधिक से अधिक देने के लिए तैयार है। स्पष्ट है, इस स्थिति में उपभोक्ता के पास कुछ भी 'उपभोक्ता की बचत शेष नहीं रह जायेगी। श्रीमती जोन राबिन्सन' इस स्थिति को एकाधिकारी की दृष्टि से 'पूर्ण मूल्य विभेद' की संज्ञा देती है। इस स्थिति को रेखाचित्र नं0– 16 में प्रदर्शित किया गया है। स्पष्ट है, वस्तु की पहली इकाई के लिए उपभोक्ता OD मूल्य देने के लिए तत्पर है और क्रेता इस इकाई को OD मूल्य पर बेच देता है, इसी प्रकार वह प्रत्येक इकाई को माँग वक्र (D) के प्रत्येक बिन्दु से व्यक्त उसके मूल्य पर बेच देता है।

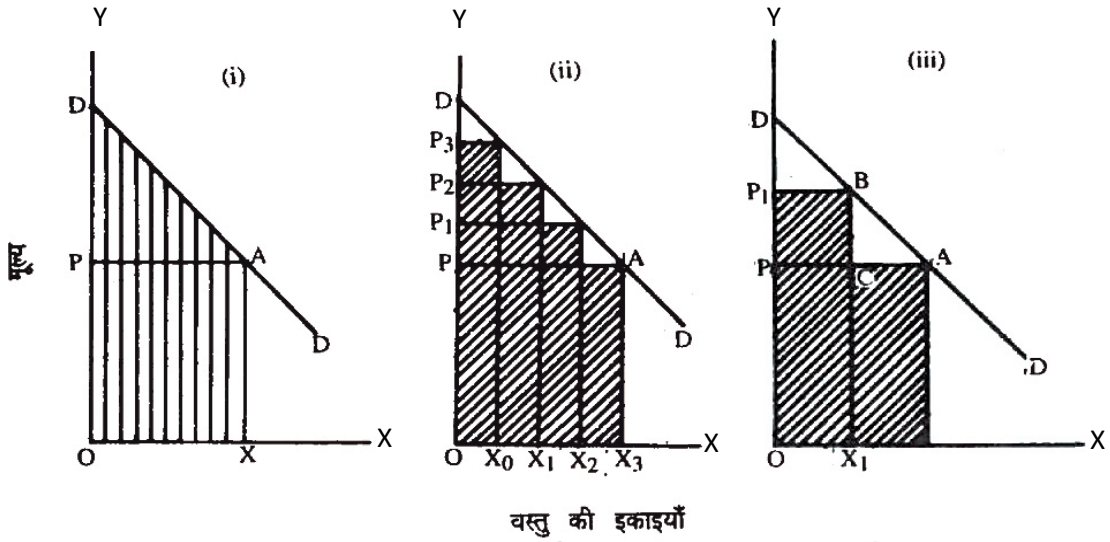

चित्र : 16 चित्र : 17 चित्र : 18

द्वितीय कोटि के मूल्य विभेद (Price discrimination of second degree) की स्थिति तब होगी जब एकाधिकारी दो से अधिक मूल्य लेने की स्थिति में हो, इस स्थिति में तृतीय कोटि की अपेक्षा उपभोक्ता की बचत का अधिक भाग एकाधिकारी के पास चला जायेगा। इस स्थिति का प्रदर्शन रेखाचित्र नं0– 17 में किया गया है। इस स्थिति में एकाधिकारी OX_0 वस्तु OP_3 मूल्य, X_0X_1 वस्तु OP_2 पर X_1X_2 वस्तु OP_1 मूल्य तथा X_2X_3 वस्तु OP मूल्य पर बेचेगा। स्पष्ट है इस स्थिति में एकाधिकारी तृतीय कोटि की अपेक्षा अधिक उपभोक्ता की बचत का हिस्सा प्राप्त करेगा।

तृतीय कोटि के मूल्य विभेद (Price discrimination of Third degree) की स्थिति तब होगी जब एकाधिकारी अपनी वस्तु की इकाइयों का दो मूल्य रखने में सफल हो जाय जिससे वह क्रेता को होने वाली बचत का कुछ भाग प्राप्त कर लें। अब तक हम लोगों ने मूल्य विभेद का जो विश्लेषण किया वह तृतीय कोटि का है। इसका और स्पष्टीकरण रेखाचित्र नं0– 18 में किया गया है। रेखाचित्र में प्रदर्शित माँग रेखा वक्र उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की स्थिति में मूल्य देने की तत्परता व्यक्त करती है इस प्रकार यदि एकाधिकारी एक ही मूल्य OP रखता तो उपभोक्ता की बचत PDA होती और एकाधिकारी की आय $OPAX_0$ होती। मान लीजिए, एकाधिकारी OX_1 वस्तु OP_1 मूल्य पर बेचता है तथा शेष X_1X_0 मात्रा OP मूल्य पर तो आय PP_1BC से बढ़ जायेगी, जो उपभोक्ता की बचत थी।

14.5. एकाधिकार एवं आर्थिक कुशलता : पूर्ण प्रतियोगिता से तुलना–

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect competition) की स्थिति में साधनों का अनुकूलतम आवंटन (Optimum Allocation of Resources) प्राप्त होता है और इस प्रकार इससे अधिकतम सामाजिक कल्याण (maximum social welfare) की प्राप्ति होती है। लेकिन एकाधिकार की स्थिति में साधनों का अनुकूलतम आवंटन नहीं होता जिससे सामाजिक कल्याण का ह्रास होता है। यहाँ हम मान लेते हैं कि फर्म पैमाने के स्थिर प्रतिफल (constant returns to scale) प्राप्त कर रही है जिससे रेखाचित्र में औसत लागत वक्र (AC) तथा सीमान्त लागत वक्र (MC) क्षैतिज रेखाएं हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि मांग वक्र उपभोक्ताओं द्वारा वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिताओं (MU) का प्रतीक होती है। जब तक बाजार में प्रचलित कीमत सीमान्त उपयोगिता से कम होती है, वस्तु की अतिरिक्त इकाइयां प्राप्त करने से उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि में निवल (net) वृद्धि होती है। उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि अथवा सामाजिक कल्याण तभी अधिकतम होता है जब वस्तु की इतनी इकाइयाँ उत्पादित की जा रही हों ताकि सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) वस्तु की कीमत के समान होता है।

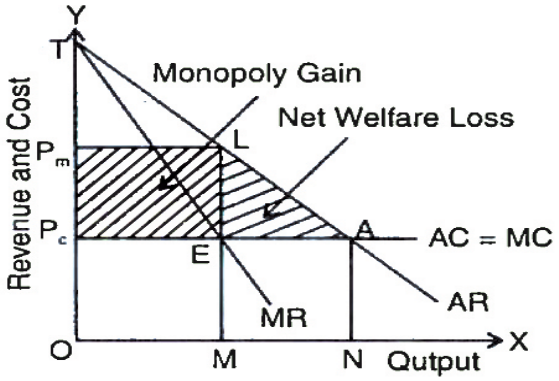

रेखाचित्र : *एकाधिकार के कारण कल्याण में कमी*

रेखाचित्र : 19

रेखाचित्र में पूर्ण प्रतियोगी फर्म द्वारा वस्तु की ON मात्रा उत्पादित की जाती है क्योंकि इस पर कीमत, सीमान्त लागत (MC) तथा औसत (AC) के समान है। वस्तु के (ON) उत्पादन तथा OP कीमत से उपभोक्ताओं को P_CTA के बराबर उपभोक्ता की बचत (consumer's surplus) मिलेगी जो कि उनको प्राप्त सन्तुष्टि अथवा कल्याण का सूचक है।

लेकिन एकाधिकारी फर्म का सन्तुलन वस्तु की ON उत्पादन मात्रा पर नहीं होगा और न ही वह OP_C कीमत निश्चित करेगा। एकाधिकार की स्थिति में फर्म OM मात्रा पर सन्तुलन में होगी जहाँ पर सीमान्त लागत (MC), सीमान्त आय (MR) के बराबर है और वस्तु की OP_m कीमत निर्धारित होगी। एकाधिकार की स्थिति में OM उत्पादन मात्रा तथा OP_m कीमत निर्धारित होने से उपभोक्ता की बचत घटकर LP_mT के समान हो जाएगी अर्थात उपभोक्ता को AP_cP_mL के बराबर सन्तुष्टि (कल्याण) में कमी होगी। लेकिन एकाधिकारी द्वारा उत्पादन मात्रा ON से घटाकर OM कर देने तथा कीमत OP से बढ़ाकर OP_m कर देने से उसको P_CELP_m के बराबर लाभ (gain) प्राप्त होगा। स्पष्ट है कि एकाधिकार द्वारा प्राप्त लाभ (monopolist's gain) जो कि P_cELP_m के बराबर है से अधिक है। अन्य शब्दों में, एकाधिकार की स्थापना से पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में त्रिभुज AEL के बराबर सन्तुष्टि अथवा कल्याण में निवल कमी (net welfare loss) होती है। इसका अर्थ यह है कि उपभोक्ता वस्तु की MN मात्रा के लिए उस पर उठाई जाने वाली लागत से अधिक कीमत देने के लिए तैयार है परन्तु उसे यह मात्रा वास्तव में प्राप्त नहीं होती है क्योंकि एकाधिकारी इसे उत्पादित नहीं करता है। परिणामस्वरूप समाज को त्रिभुज AEL के बराबर कल्याण में हानि एकाधिकार की स्थापना के कारण होती है।

निष्कर्ष रूप में, एकाधिकारी वस्तु के उत्पादन का वह स्तर उत्पादित न करके साधनों का गलत आवंटन तथा कल्याण में विशुद्ध हानि (जिसे dead weight loss कहा जाता है) करता है जिस पर कीमत उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर होती है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कल्याण में निवल हानि करने के अतिरिक्त एकाधिकारी ने आय का हस्तांतरण भी किया है। P_cELP_m क्षेत्रफल के बराबर एकाधिकारी का मौद्रिक लाभ (monopolist's gain) एकाधिकारी उत्पादक की ओर आय के हस्तांतरण को दर्शाता है।

एकाधिकारी को यह लाभ उपभोक्ताओं की लागत पर हुआ है। इस प्रकार एकाधिकार का अर्थव्यवस्था के आय वितरण पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

14.6. एकाधिकारी शक्ति की मात्रा का माप

एकाधिकारी शक्ति से हमारा तात्पर्य उस स्वनिर्णय (discretion) की मात्रा से है जो कि उत्पादक या विक्रेता को अपनी कीमत व उत्पादन नीति का निर्धारण करने के सम्बन्ध में प्राप्त होता है (Monopoly power indicates the degree of control which a producer or seller possesses over the price and output of a product)। अन्य शब्दों में, एकाधिकारी की शक्ति नियन्त्रण की उस मात्रा का प्रतीक है जो उत्पादक या विक्रेता को अपने उत्पाद की कीमत तथा उत्पादन के सम्बन्ध में निर्णय लेने में प्राप्त होती है।

एकाधिकारी की शक्ति को मापने की अनेक विधियों को अर्थशास्त्रियों द्वारा सुझाया गया है परन्तु हम यहाँ पर केवल तीन की ही विवेचना करेंगे।

(1) एकाधिकारी की शक्ति की मांग की लोच द्वारा माप (Elasticity of Demand as a Measure of Monopoly Power)

उत्पादक अथवा विक्रेता के वस्तु की मांग की कीमत लोच (Price elasticity of demand) को काफी लम्बे समय से एकाधिकारी की शक्ति की मात्रा का माप करने में उपयोग किया जा रहा है। इस विधि के अन्तर्गत मांग की कीमत लोच के व्युत्क्रम (inverse) से एकाधिकारी शक्ति की माप की जाती है। अतः

(i) एकाधिकारी शक्ति की मात्रा $= \frac{1}{e_p}$

(degree of monopoly power)

जहाँ e_p मांग की कीमत–लोच है। इस सूत्र से स्पष्ट है कि मांग की कीमत लोच जितनी कम होगी विक्रेता अथवा उत्पादक की एकाधिकारी शक्ति उतनी ही अधिक होगी। मांग की लोच अधिक होने पर एकाधिकारी शक्ति कम होगी।

(ii) लरनर द्वारा प्रतिपादित एकाधिकारी शक्ति की माप (Lerner's Measure of Monopoly Power) – प्रो0 ए0पी0 लरनर (Prof. A.P Lerner) ने एकाधिकारी शक्ति के माप के अन्य तरीका बताया है जिसको काफी लोकप्रियता मिली है। एकाधिकारी शक्ति को मापने के लिए लरनर ने पूर्ण प्रतियोगिता को विचलन का आधार माना है। उसने पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect competition) को सामाजिक अनुकूलतम (Social optimum) तथा अधिकतम कल्याण की स्थिति माना। इससे कोई भी विचलन (departure) एकाधिकारी शक्ति की उपस्थिति का प्रतीक होगा। जैसा कि हम जानते हैं कि अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition) की स्थिति में फर्म का मांग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर झुका हुआ होता है और सीमान्त आय (MR) वक्र उसके नीचे होता है। अतः अपूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेता की सन्तुलन की स्थिति में, सीमान्त लागत (MC), सीमान्त आय (MR) के बराबर होगी लेकिन कीमत (Price), सीमान्त आय या सीमान्त लागत से अधिक होगी। कीमत तथा सीमान्त लागत में यह अन्तर प्रो0 लरनर के अनुसार एकाधिकारी शक्ति के अस्तित्व का द्योतक है। कीमत और सीमान्त लागत में यह अन्तर जितना अधिक होगा, उत्पादक अथवा विक्रेता की एकाधिकारी शक्ति उतनी ही अधिक होगी। इस आधार पर ही लरनर ने एकाधिकारी शक्ति को मापने का एक निश्चित सूचक (Index) बनाया जो निम्न है–

एकाधिकारी शक्ति का सूचक $= \frac{P - MC}{P}$

(Index of Monopoly Power)

जहाँ P कीमत तथा MC उत्पादन के सन्तुलन स्तर पर सीमान्त लागत है।

पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में जब कीमत P, सीमान्त लागत (MC) के बराबर होती है तो लरनर के एकाधिकारी शक्ति का सूचक शून्य के बराबर होगा। जिसका अर्थ यह है कि उत्पादक के पास कोई एकाधिकारी शक्ति नहीं होती है। दूसरी ओर, जब उत्पादक द्वारा उत्पादित वस्तु की कोई भी उत्पादन लागत नहीं होगी तो सीमान्त लागत (MC) शून्य के बराबर होगी फलस्वरूप लरनर

के एकाधिकारी शक्ति का सूचक एक के बराबर होगा। अतः स्पष्ट है कि लरनर का एकाधिकारी शक्ति का सूचक एक से लेकर शून्य के बीच में हो सकता है।

(iii) मांग की प्रतिलोच द्वारा एकाधिकारी शक्ति की माप (Cross Elasticity of Demand as a Measure of Monopoly Power) – मांग की प्रति–लोच की धारणा की सहायता से एकाधिकारी शक्ति को मापने का सर्वप्रथम सुझाव लेकर केल्डर (Kaldor) ने दिया था परन्तु उस पर अधिक ध्यान रॉबर्ट ट्रिफिन (Robert Triffin) ने दिया। मांग की प्रति–लोच (Cross-elasticity od demand) यह बताती है कि एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की मांग का दूसरी फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत पर निर्भर नहीं करती, तब वह फर्म दूसरी फर्म की कीमत पर निर्भर नहीं करती, तब वह फर्म दूसरी फर्म की कीमत पर निर्भर नहीं करती, तब वह दूसरी फर्म की कीमत एवं उत्पादन नीतियों के प्रभाव से स्वतंत्र होगी। एक फर्म की वस्तु की मांग की प्रतिलोच जितनी कम होगी, फर्म की एकाधिकारी शक्ति की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी तथा विलोम क्रम जब एक फर्म या विक्रेता के उत्पाद की मांग पर अन्य फर्म की वस्तु की कीमत का प्रभाव नहीं पड़ता है तो इसके वस्तु की मांग की प्रति–लोच शून्य (Zero) होती है। परिणामस्वरूप फर्म को अपनी कीमत व उत्पादन नीति अपनाने के लिए पूर्ण एकाधिकारी (Perfect Monopoly) शक्ति प्राप्त होगी। अतः रॉबर्ट ट्रिफिन ने शुद्ध एकाधिकार की परिभाषा उस स्थिति से की जिसमें फर्म के वस्तु की मांग की प्रति लोच शून्य है। एक फर्म के उत्पाद की मांग की प्रति–लोच जितनी अधिक होगी, फर्मों में प्रतियोगिता की मात्रा उतनी ही अधिक होगी और एकाधिकारी शक्ति उतनी ही कम।

14.7. एकाधिकार का विनियम

ऊपर हमने देखा है कि एकाधिकारी न केवल अर्थव्यवस्था में आय वितरण की असमानताओं में वृद्धि करते हैं बल्कि समाज के साधनों के आवंटन में अकुशलता भी उत्पन्न करते हैं। अतः दो उद्देश्य प्राप्त करने के दृष्टिकोण से एकाधिकार का नियमन किया जाता है। प्रथम, आय वितरण में सुधार तथा एकाधिकारियों द्वारा उपभोक्ताओं के शोषण से बचाने के लिए इसका नियमन किया जाता है। दूसरा, एकाधिकार का नियमन साधनों के आर्थिक दृष्टि से कुशल आवंटन को समुचित करारोपरण या अपने वस्तु के लिए वसूल की जा सकने वाली अधिकतम कीमत निर्धारण के माध्यम से नियमित किया जा सकता है।

साधनों के आवंटन अथवा आय के वितरण में सुधार लाने के लिए सरकार एकाधिकारी द्वारा वसूल की जाने वाली कीमत को नियमित (Price Regulation) करने का निर्णय करती है। स्पष्ट है कि सरकार अधिकतम कीमत (कीमत सीमा) एकाधिकारी के लाभ को अधिकतम करने वाली कीमत की अपेक्षा कम स्तर पर निर्धारित करेगी। कीमत निर्धारण के दो प्रकार का नियम है जिनका एकाधिकार की स्थिति में कीमत नियमन के लिए उपयोग किया जाता है।

पहला, चूँकि सामाजिक कल्याण तब अधिकतम होता है जब वस्तु की कीमत उस स्तर पर निर्धारित की जाती है जहाँ पर कीमत, सीमान्त लागत के बराबर होती है। अतः एकाधिकार के अन्तर्गत अधिकतम कीमत को सीमान्त लागत के बराबर निर्धारित करने का प्रस्ताव किया जाता है। इसलिए इसे सीमान्त–लागत कीमत निर्धारण (Marginal Cost Pricing) कहा जाता है।

दूसरा, कभी–कभी एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत का नियमन करते समय औसत लागत कीमत निर्धारण (Averaghe Cost Pricing) की नीति अपनाई जाती है। जिसमें अधिकतम कीमत औसत लागत (Average Cost) के बराबर निश्चित की जाती है।

बोध प्रश्न ख

1. **एकाधिकारी शक्ति की मात्रा के माप की विभिन्न विधियों का वर्णन करें।**

   .....

2. **एकाधिकारी शक्ति की मात्रा के माप के संदर्भ में पींगू के विचारों को स्पष्ट करें।**

   .....

3. **पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में अन्तर स्पष्ट करें।**

   .....

4. **एक एकाधिकारी या तो मूल्य का निर्धारण कर सकता है या मात्रा का, स्पष्ट करें।**

   .....

5. **कीमत विभेद से आप क्या समझते हैं?**

   .....

6. **एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता में अंतर बताइये।**

   .....

7. **बताइये कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत :**

   (i) लाभों को अधिकतम करने के लिये सीमान्त आय और सीमान्त लागत का बराबर होना जरूरी है।

   (ii) विभिन्न बाजारों के मांग वक्र भिन्न होते हैं।

   (iii) एकाधिकार में कीमत सीमान्त लागत से कम होती है।

   (iv) एकाधिकारी उत्पादन साधारणतया अनुकूलतम उत्पादन से कम होता है।

   (v) क्योंकि एकाधिकारी की प्रवृत्ति सीमान्त लागत से ऊँची कीमत प्राप्त करने की होती है इसलिये सरकार एकाधिकारी कीमत का विनियमन कर सकती है।

8. **निम्नलिखित विकल्पों में से उपयुक्त उत्तर चुनिए :**

   i) एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत

      क) सीमान्त उत्पादन लागत से अधिक होती है।

      ख) सीमान्त उत्पादन लागत से कम होती है।

ग) औसत उत्पादन लागत से अधिक होती है।

घ) औसत उत्पादन लागत से कम होती है।

ii) एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त आय और सीमान्त लागत एक दूसरे के बराबर होती है

क) अनुकूलतम बिन्दु पर

ख) अनुकूलतम बिन्दु के बाद

ग) अनुकूलतम बिन्दु से पहले

घ) किसी भी बिन्दु पर

14.8 पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार : तुलनात्मक अध्ययन–

हम लोगों ने अब तक पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की अलग–अलग व्याख्या की, उनकी विशेषताओं, मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण की समस्याओं पर प्रकाश डाला। यहाँ अब हम दोनों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं–

- **फर्म की संख्या तथा प्रवेश प्रक्रिया (Number of Firms and process of entry) –** पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मों की संख्या इतनी अधिक होती है कि कोई भी फर्म अपने व्यवहार से मूल्य को प्रभावित नहीं कर सके, जबकि एकाधिकार में एक फर्म होती है और वही अपने मूल्य तथा उत्पादन का निर्धारण करती है।

  पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में फर्मों का स्वतंत्र प्रवेश होता है, अल्पकाल में प्रवेश नहीं हो सकता। पर एकाधिकार में फर्मों का प्रवेश दीर्घकाल में भी बाधित रहता है।

- **वस्तु का स्वभाव (Nature of the product) –** पूर्ण प्रतियोगिता में सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तु पूर्णतया सहजातीय होती है, उनमें किसी प्रकार विभेद नहीं। एकाधिकारी चूँकि अकेला उत्पादक होता है, इसलिए उसकी वस्तु भी सहजातीय होती है, वस्तु विभेद की उसे कोई आवश्यकता भी नहीं। एकाधिकार की वस्तु की कोई नजदीकी स्थानापन्न वस्तु भी नहीं होती है, पूर्ण प्रतियोगिता में ऐसा नहीं होता।

- **फर्म का लक्ष्य (Goal of the firm) –** पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों में ही फर्म का लक्ष्य अपने लाभ को अधिकतम करना है। दोनों ही स्थितियों में फर्म का मालिक ही साहसी तथा प्रबन्धक के रूप में कार्य करता है। दोनों ही स्थितियों में अधिकतम लाभ की स्थिति वहाँ प्राप्त होती है जहाँ सीमान्त आय (MR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर है। लाभ के अधिकतमीकरण की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में एक अन्तर है और वह यह है कि पूर्ण प्रतियोगी फर्म किसी प्रकार का मूल्य

विभेद कर ही नहीं सकती है जबकि एक एकाधिकारी फर्म मूल्य विभेद का सहारा लेकर अपने निबल लाभ को अधिकतम कर सकती है।

- **लागत तथा आय वक्र (Cost and Revenue Curves) -** पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों ही स्थितियों में लागत वक्र U के आकार की होती है जो यह प्रदर्शित करता है कि फर्म न्यूनतम लागत पर एक ही स्तर का उत्पादन उत्पादित कर सकती है।

  पर आय वक्रों के स्वरूप में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में अन्तर होता है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म की औसत आय वक्र (AR) पूर्णतया लोचदार फलस्वरूप आधार अक्ष के समानान्तर होती है जो यह प्रदर्शित करता है कि एक दिए हुए मूल्य पर फर्म जितना चाहे उतना बेच सकती है, वस्तु की मांग का कोई प्रतिबन्ध उसके ऊपर नहीं होता। एकाधिकार की माँग वक्र (औसत आय वक्र) ऋणात्मक ढाल की होती है, जो यह प्रदर्शित करती है गिरते हुए मूल्य पर ही वस्तु की अधिक मात्रा बेची जा सकती है। पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अन्तर्गत AR का स्वरूप नीचे चित्र 20, 21 में दिया गया है।

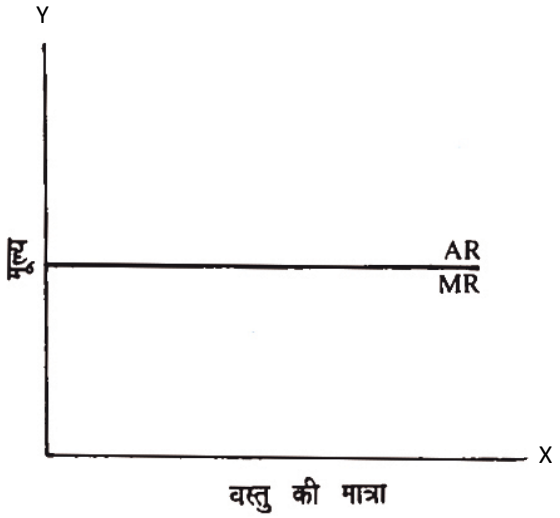

चित्र : 20

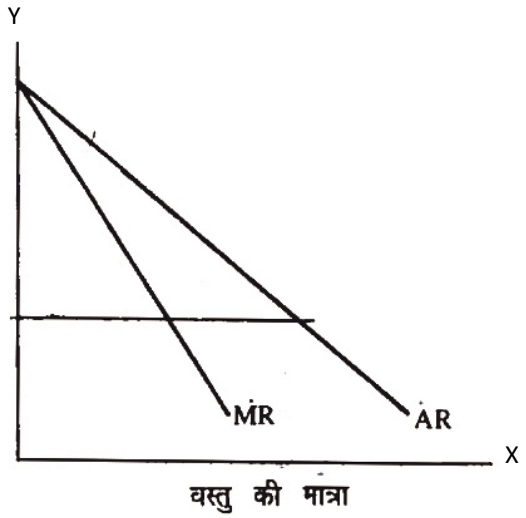

चित्र : 21

- **एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्ति वक्र (Supply curve under Monopoly and Perfect Competition) -** पूर्ण प्रतियोगी फर्म की पूर्ति वक्र विशिष्ट रूप से निर्धारित होती है। औसत परिवर्तन लागत वक्र (AVC) के ऊपर का सीमान्त लागत वक्र (MC) का भाग अल्पकाल में फर्म की पूर्ति वक्र प्रदर्शित करेगा। दीर्घकालीन पूर्ति वक्र किसी स्थिति में होगी और न ही पूर्ति वक्र निर्धार्य होगी।

- **लाभ की स्थिति (State of Profit)** – पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार दोनों ही स्थितियों में अल्पकाल में फर्म सामान्य लाभ, असामान्य लाभ तथा

हानि की स्थिति से गुजर सकती है पर दीर्घकाल में दोनों की फर्मो में अन्तर है। फर्मों की स्वतंत्र प्रवेश तथा बहिर्गमन है कारण पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में सभी फर्म सामान्य लाभ ही अर्जित करेंगी पर एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में सामान्यतया असामान्य लाभ ही अर्जित करेगी।

- **मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण (Determination of Price and Output) -** पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म मूल्य की स्वीकारक होती है मूल्य निर्धारक नहीं, इसलिए अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए अपने उत्पादन का केवल समायोजन करती है एकाधिकारी फर्म मूल्य तथा उत्पादन दोनों को ही निर्धारित करने की स्थिति में होती है वह उत्पादन या पूर्ति को नियंत्रित करके मूल्य ऊँचा रखने तथा लाभ अधिकतम करने में सफल होती है।

- **औसत आय (AR), सीमान्त आय (MR) तथा माँग की लोच (e)–** श्रीमती जोन राबिन्सन पूर्णप्रतियोगिता तथा एकाधिकार के बीच अन्तर स्पष्ट करते हुए एकाधिकार में AR, MR तथा e के बीच एक विलक्षण सम्बन्ध पाती है– $MR = AR\left(1 - \frac{1}{e}\right)$ और यह कहती है कि एकाधिकारी मूल्य तथा उत्पादन निर्धारण करते समय अपनी वस्तु की माँग की लोच (e) को ध्यान में रखता है तथा उत्पाद का मूल्य वहाँ निर्धारित करता है जहाँ उसकी माँग की लोच इकाई से अधिक है ऐसा इसलिए है क्योंकि AR तथा MR नीचे गिरती हुयी होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में चूँकि AR तथा MR दोनों ही आधार अक्ष के समानान्तर होते हैं, इसलिए AR, MR तथा e के बीच एकाधिकार के अन्तर्गत पाया जाना वाला सम्बन्ध नहीं रहता।

- **संस्थिति तथा AR, MR तथा MC की स्थिति–** हम लोगों ने पूर्ण प्रतियोगिता की व्याख्या के सम्बन्ध में देखा कि एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म की औसत आय वक्र (AR) तथा सीमान्त आय वक्र (MR) आधार के समानान्तर होते हैं। ऐसी स्थिति में संस्थिति उत्पादन वहाँ निर्धारित होता है जहाँ न केवल सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर हो (MR=MC) बल्कि वहीं AR तथा AC भी बराबर हो। पर चूँकि MR=AR इसलिए संस्थिति की स्थिति में मूल्य या औसत आय, सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत परस्पर बराबर होंगे। पूर्ण प्रतियोगिता में दिये गये रेखाचित्र से यह तथ्य और स्पष्ट हो जाता है। पर एकाधिकार में औसत आय वक्र नीचे गिरता हुआ होता है फलस्वरूप सीमान्त आय वक्र नीचे होता है। स्पष्ट है कि इस स्थिति में संस्थिति उत्पादन की स्थिति या सीमान्त आय तथा सीमान्त लागत की समानता की स्थिति औसत आय वक्र के नीचे होगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में संस्थिति की स्थिति में AR=MR=MC=AC होगा पर एकाधिकार में औसत आय का मान MR=MC से बड़ा होगा अर्थात AR>(MR=MC)] इस सम्बन्ध में दोनों स्थितियों में पाये जाने वाले अन्तर को रेखाचित्र नं0–22 में स्पष्ट किया गया है।

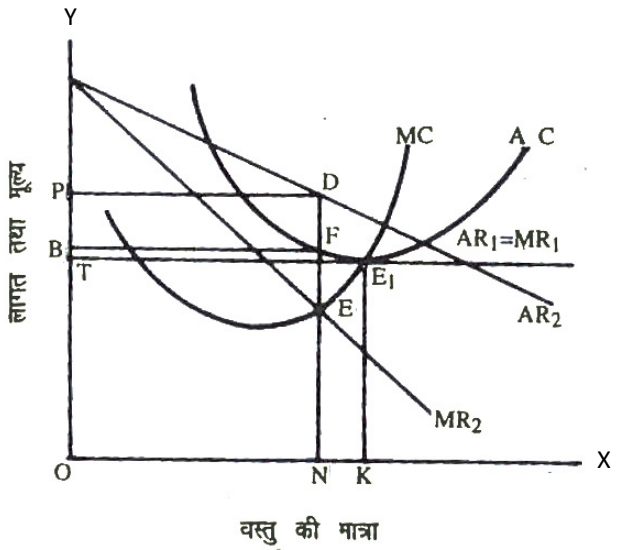

चित्र : 22

इस रेखाचित्र में दोनों पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की स्थितियों को प्रदर्शित किया गया है। लागत वक्रें दोनों स्थितियों में एक ही हैं पर आय वक्रें भिन्न हैं। AR_2 तथा MR_2 एकाधिकार से सम्बन्धित हैं जबकि AR_1 तथा MR_1 पूर्ण प्रतियोगिता से सम्बन्धित है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता में संस्थिति की स्थिति E_1 पर होगी जहाँ $MR_1=MC=AR_1=AC$ है तथा मूल्य OT है, सीमान्त आय, औसत लागत तथा सीमान्त लागत है, जबकि एकाधिकार में संस्थिति की स्थिति E पर होगी जहाँ $MR_2=MC$ पर इस स्थिति में मूल्य या AR_2 इससे अधिक है।

- **दीर्घकालीन संस्थिति तथा लाभ की स्थिति–** पूर्ण प्रतियोगिता की दीर्घकालीन संस्थिति की स्थिति में फर्म केवल सामान्य लाभ ही अर्जित करेगी क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग में फर्मों के प्रवेश पर रोक नहीं रहता है इसलिए यदि कोई पूर्ण प्रतियोगिता की फर्म असामान्य लाभ अर्जित करे तो नयी फर्में प्रविष्ट हो जायेंगी और असामान्य लाभ की स्थिति समाप्त हो जायेगी। पर एक एकाधिकारी फर्म दीर्घकाल में असामान्य लाभ अर्जित कर सकती है क्योंकि न तो उसे प्रतियोगिता का भय रहता है और न ही नयी फर्मों के प्रवेश का ही डर रहता है। पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकालीन संस्थिति की स्थिति में MR=MC=AR=AC पर एकाधिकार में संस्थिति में केवल MR= MC होगा AR इससे अधिक होगा।

- **अनुकूलतम प्रयोग तथा निष्क्रिय उत्पादन क्षमता–** पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकालीन संस्थिति की स्थिति औसत लागत–वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर प्राप्त होती है अर्थात् फर्म ने अनुकूलतम स्थिति को प्राप्त कर ली है, पर एकाधिकार में सामान्यतया एकाधिकारी न्यूनतम बिन्दु से पहले ही औसत लागत वक्र के बिन्दु की प्राप्ति के पहले ही उत्पादन बन्द कर देता है। यदि हम रेखाचित्र नं0–23 को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता में संस्थिति AC वक्र के न्यूनतम बिन्दु E_1 पर प्राप्त होगी जबकि एकाधिकार में F बिन्दु पर प्राप्त होगी। स्पष्ट है, F बिन्दु E_1 बिन्दु

के पहले है। साधनों के अनुकूलतम प्रयोग की दृष्टि से पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति एकाधिकार की स्थिति से अधिक वांछनीय होगी। पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में निष्क्रिय उत्पादन क्षमता नहीं होती जबकि एकाधिकारी फर्म निष्क्रिय उत्पादन क्षमता को बनाये रखने की कोशिश करेगी।

- **पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार में मूल्य तथा उत्पादन की सापेक्षिक स्थिति (Long period equilibrium and profit)**& एकाधिकार में निर्धारित मूल्य पूर्ण प्रतियोगिता के मूल्य से आवश्यक रूप से ऊँचा होता है तथा निर्धारित संस्थिति उत्पादन पूर्ण प्रतियोगिता के संस्थिति उत्पादन से कम होता है। यदि हम रेखाचित्र नं0–22 को ध्यान में देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु E_1 ∴पर उत्पादन करेगी इसलिए वह OK उत्पादन करेगी, पर एकाधिकार में फर्म E_1 बिन्दु की प्राप्ति के पहले ही उत्पादन बन्द कर देगी। एकाधिकार में उत्पादन ON होगा जैसा रेखाचित्र में प्रदर्शित है। इतना ही नहीं एकाधिकार का मूल्य OP है जो पूर्ण प्रतियोगिता के मूल्य OT से ऊँचा है।

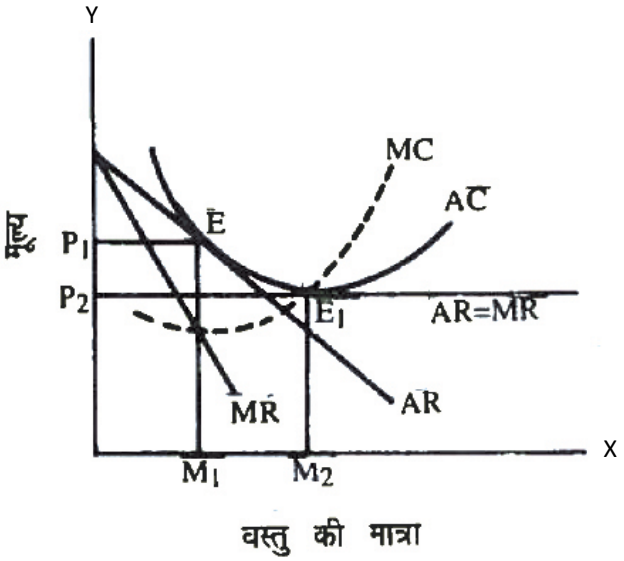

चित्र : 23

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म सामान्य लाभ अर्जित करती है यदि हम कुछ समय के लिए मान लें कि एकाधिकारी फर्म सामान्य लाभ अर्जित कर रही है तो इन बहुत ही स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित कर सकते हैं कि यद्यपि दोनों ही सामान्य लाभ अर्जित कर रही हों तो फिर भी पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकार में मूल्य ऊँचा होगा तथा उत्पादन कम होगा। इसका प्रदर्शन रेखाचित्र नं0–23 में किया गया है।

इस दिये गये चित्र में गिरता हुआ औसत आय–वक्र औसत–लागत–वक्र को E बिन्दु पर स्पर्श करता है। इस बिन्दु पर OM_1 संस्थिति–उत्पादन है, OP_1 मूल्य है, फर्म एकाधिकार में होते हुए भी सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही है। पूर्ण

प्रतियोगिता में भी देखा गया कि फर्म सामान्य लाभ ही प्राप्त करती है। पर दोनों अवस्थाओं में अन्तर है। इस स्थिति में भी एकाधिकारी मूल्य OP_1 पूर्ण प्रतियोगिता के मूल्य OP_2 से ऊँचा है तथा पूर्ण प्रतियोगिता में निर्धारित उत्पादन OM_2 एकाधिकार में निर्धारित उत्पादन OM_1 से अधिक है। यहाँ पर एक बात उल्लेखनीय है। एकाधिकार में अधिक मूल्य तथा पूर्ण उत्पादन क्षमता से कम प्रयोग तथा परिणामस्वरूप कम उत्पादन के कारण उपभोक्ता का शोषण होता है।

14.9. सारांश

पूर्ण प्रतियोगिता एक आदर्श है और एकाधिकारी जीवन की वास्तविकता है। वास्तविक जीवन में पूर्ण ज्ञान व पूर्ण गतिशीलता आदि नहीं होते और उत्पादक वास्तव में कीमत को प्रभावित करने में इतने असहाय नहीं होते जितना कि पूर्ण प्रतियोगिता में बताया गया है और न ही विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता का बाज़ार के नगण्य भाग पर ही नियंत्रण हो।

एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता दोनों में ही मांग और पूर्ति की शक्तियों की सहायता से संतुलन कीमत का निर्धारण होता है लेकिन दोनों बाज़ारों में इन शक्तियों की सापेक्षिक भूमिका अलग–अलग है। उदाहरण के लिये सीमान्त लागत वक्र जिसकी पूर्ण प्रतियोगिता में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है, एकाधिकार में उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती। यह एकाधिकार में पूर्ति वक्र नहीं होता क्योंकि एकाधिकारी द्वारा ली गई कीमत सीमान्त लागत से अधिक होती है।

सीमान्त लागत वक्र का उपयोग केवल यह है कि इससे इसके और सीमान्त आय वक्र के प्रतिच्छेद बिन्दु का पता लगता है। एकाधिकारी अपनी एकाधिकारी शक्ति का फायदा उठाते हुए ऐसी कीमत निर्धारित करना चाहता है जिससे उसकी शुद्ध एकाधिकारी आय अधिकतम हो। और ऐसी कीमत केवल वह होगी जिस पर सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर हो। इसलिये एकाधिकारी का संतुलन निर्धारित करने के लिए सीमान्त लागत आवश्यक है लेकिन यह उसका पूर्ति वक्र नहीं है।

दीर्घकाल में एकाधिकारी को अधिकतम शुद्ध एकाधिकारी आय मिलनी ही चाहिए। अल्पकाल में यदि सीमान्त लागत और सीमान्त आय की समानता के बिन्दु पर औसत आय औसत लागत से कम है तो उसे हानि भी हो सकती है।

एकाधिकार में उत्पादन का स्तर अनुकूलतम स्तर से कम होता है। इसे अकुशल, अपव्ययी तथा उपभोक्ताओं और समाज के हितों के लिये हानिकारक कहा जा सकता है इसलिये आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में सरकारे एकाधिकार को विनियमित करना चाहती है।

14.10. उपयोगी शब्दावली

- **समस्त सीमान्त आय** : दो या दो अधिक बाज़ारों की सीमान्त आय का योग।
- **एकाधिकार** : बाज़ार की वह स्थिति जिससे एक विक्रेता का बाज़ार के बहुत ही बड़े भाग पर नियंत्रण होता है और इसलिये उसका कीमत पर भी नियंत्रण होता है।

- **प्राकृतिक एकाधिकार :** वह स्थिति जिसमें एक उत्पादक का एकाधिकारी बनना स्वाभाविक है। पीने का पानी और बिजली की सप्लाई इसके उदाहरण है।

- **शुद्ध एकाधिकारी आय :** एकाधिकारी की कुल आय और कुल लागत का अन्तर।

- **कीमत विभेद :** वह स्थिति जिसमें एकाधिकारी एक ही वस्तु की विभिन्न क्रेताओं से या विभिन्न बाज़ारों में अलग–अलग कीमत लेता है।

14.11. बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) सही

ख 3 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) सही

(v) सही

14.12. महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 एकाधिकारी किसे कहते हैं? यह पूर्ण प्रतियोगिता से किस प्रकार भिन्न है?

प्रश्न–2 एकाधिकार के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।

प्रश्न–3 शुद्ध एकाधिकारी आय क्या होती है? यह अधिकतम कब होती है?

प्रश्न–4 दीर्घकाल में एकाधिकारी का संतुलन निर्धारण समझाइये।

प्रश्न–5 दो बाजारों की स्थिति में भेदमूलक (discriminating) एकाधिकारी में संतुलन कैसे निर्धारित होगा?

कुछ उपयोगी पुस्तके

- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- ❖ एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- ❖ प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- ❖ एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- ❖ लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)

- पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)
- डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

इकाई : 15 एकाधिकारी प्रतियोगिता

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 अस्पर्धी बाजारों का प्रादुर्भाव

15.3 प्रवेश पर अवरोध और एकाधिकारी ढांचा

15.4 एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत संतुलन

15.4.1 अल्पकालीन

15.4.2 दीर्घकालीन

15.5 एकाधिकारी संतुलन में संसाधन

15.6 सारांश

15.7 उपयोगी शब्दावली

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- उत्पाद विभेदन (product differentiation) के महत्व को विस्तार से समझ सकेगें,
- उन कारणों को जान पाएं जिनके फलस्वरूप बाजार में नई फर्मों के निर्बाध प्रवेश के संबंध में कठिनाइयां आ सकती हैं,
- कुल औसत उत्पादन लागत वक्र की अवधारणा को विवेचित कर सकेंगे,
- सम्बन्धित अवधारणाओं को विश्लेषित कर सकेंगे तथा
- कीमत और उत्पादन के सम्बन्ध में एकाधिकारी प्रतियोगिता और पूर्ण प्रतियोगिता के बीच भेद बता सकेगें।

15.1 प्रस्तावना

1920 के पूर्व मूल्य के परम्परागत सिद्धान्त में जो दो मुख्य मॉडल शामिल थे वे पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार थे। द्वयाधिकार मॉडलो पर बौद्धिक अभ्यास के रूप में विचार किया जाता था। मार्शल से नाईट तक का आर्थिक व्यवहार का सामान्य मॉडल पूर्ण प्रतियोगिता था परन्तु 1920 के पश्चात् व्यावसायिक व्यवहार के

निर्धारण में पूर्ण प्रतियोगिता के प्रयोग का अर्थशास्त्री तेजी से विरोध करने लगे, जिसका मुख्य कारण था कि पूर्ण प्रतियोगिता कई महत्वपूर्ण तथ्यों की व्याख्या नहीं कर पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की समान उत्पाद (Homogenous Product) की मान्यता वास्तविक जगत में खरी नहीं उतरी। इसी प्रकार व्यवसायियों द्वारा बड़े पैमाने पर विज्ञान विक्रय इत्यादि पर किये जाने वाले व्यय की व्याख्या पूर्ण प्रतियोगिता की सहायता से नहीं की जा सकती थी। सार्फा (Sraffa) ने अपने लेख "Great Cost Controversy of the 1920s" में बताया कि क्लैसिकल सिद्धान्त की गिरती हुई लागत असमंजस (Falling/declining cost dilemma) की स्थिति उत्पन्न करती है। इस प्रकार जो प्रमुख मॉडल सामने आये उसमें एकाधिकारी प्रतियोगिता महत्वपूर्ण है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता का प्रतिपादन 1933 में "Edward Hastings Chamberlin" द्वारा अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Theory of Monopolistic Competition" में किया। यद्यपि इसी तरह के बाजार दशा के प्रतिपादन का श्रेय श्रीमती John Robinson को भी जाता है, जिन्होंने 1933 में ही स्वतंत्र रूप से ही अपनी क्रान्तिकारी पुस्तक "The economic of imperfect competition" में अपूर्ण प्रतियोगता की संकल्पना प्रस्तुत की।

एकाधिकारी प्रतियोगता से तात्पर्य बाजार के ऐसे स्वरूप से है, जिसमें बड़ी संख्या में फर्में विभेदित उत्पादों (Differentiated Product) जो एक दूसरे के नजदीकी प्रतिस्थापन (तकनीकी व आर्थिक तौर पर) होते हैं, का विक्रय करती है। यह बाजार स्वरूप यथार्थ के करीब है, क्योंकि इसमें वस्तु विभेद को स्वीकार किया गया है तथा विज्ञापन व विक्रय लागतों (Selling and Advertisement cost) को भी शामिल किया गया है, जिसे फर्में व्यावहारिक जगत में प्रयोग में लाती है।

यद्यपि चैम्बरलिन व श्रीमती जॉन राबिन्सन दोनों की अवधारणा बाजार के इसी स्वरूप से है, किन्तु तुलनात्मक रूप में चैम्बरलिन की एकाधिकारिक प्रतियोगिता को श्रेष्ठतर समझा जाता है।

15.2 अस्पर्धी बाजारों का प्रादुर्भाव

हम जानते हैं कि वास्तविक जीवन में हमें पूर्ण प्रतियोगी बाजार नहीं बल्कि अपूर्ण प्रतियोगी बाजार देखने को मिलता है। पिछली इकाइयों में बाजारों के ढांचे के संबंध में विचार करते समय बताया गया था कि विक्रेताओं की संख्या, उत्पाद की सजातीयता (Homogeneity), वस्तु के लिए मांग की लोच और कुछ अन्य कारकों पर निर्भर रहते हुए बाजार एक दूसरे से भिन्न रहते हैं। एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रेताओं की संख्या काफी अधिक होती है और प्रत्येक विक्रेता का कुल उत्पादन के एक छोटे भाग पर ही नियंत्रण होता है। यह स्थिति अल्पाधिकार (Oligopoly) से भिन्न होती है जिसमें प्रत्येक विक्रेता बाजार के एक महत्वपूर्ण अंश को नियंत्रित कर पाता है। यद्यपि एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रेता बाजार मांग के एक छोटे भाग को ही नियंत्रित कर पाता है, फिर भी वह अपनी वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। यही बात उसे पूर्ण प्रतियोगिता के विक्रेता से अलग करती है। बाजार मांग के छोटे भाग पर नियंत्रण होने के बावजूद विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत को उत्पाद विभेद (Product differention) के माध्यम से नियंत्रित कर पाता है। ऐसा पूर्ण प्रतियोगिता में संभव नहीं है, क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक विक्रेता द्वारा बेची जाने वाली वस्तु समरूप (Homogeneous) होती है।

प्रत्येक उत्पादक (विक्रेता) की वस्तुएँ के परस्पर भिन्न होते हुए भी कोई भी उत्पाद ऐसा नहीं होता जिसका स्थान बाजार की कोई अन्य वस्तु न ले सके। अतः जब भी कोई विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत को बहुत बढ़ाने का प्रयास करता है तब उसे अपने ग्राहकों को खोना पड़ेगा, जो उसकी स्थानापन्न वस्तुओं को खरीदने लगेंगे। अतः कोई उत्पादक एक सीमा तक ही अपने उत्पाद की कीमत को प्रभावित कर सकता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

- **उत्पाद विभेद (Product Differentiation)**

उत्पाद विभेद के द्वारा एक एकाधिकारी प्रतियोगी सदा ही यह प्रयास करता है कि वह क्रेताओं के बीच ब्रांड निष्ठा (Brand Loyalty) पैदा करे जिससे जब भी वह अपने उत्पाद की नई किस्म बाजार में लाता है तब उसे केवल यही आशा नहीं होती कि उसके क्रेता इसे खरीद लेंगे बल्कि अपने नये एवं पुराने क्रेताओं से ली जाने वाली कीमत पर उसका कुछ नियंत्रण भी रहता है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह होता है कि नई वस्तु के चलते उसके पास नया मांग या औसत आय वक्र हो जाता है। अब यदि हम यह याद रखें कि नई वस्तु का किस्म की दृष्टि से पुरानी वस्तु से भिन्न होने के कारण उसके औसत लागत वक्र में परिवर्तन आ जाता है तब यह कहा जा सकता है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता में औसत लागत वक्र में स्थानान्तरण के कारण औसत आय वक्र में भी स्थानांतरण हो जाता है। इससे पता चलता है कि औसत लागत और औसत आय वक्र के बीच एक तरह की परस्पर निर्भरता होती है जो एकाधिकारी प्रतियोगिता की अपने प्रकार की विशेषता है।

- **कीमतेतर प्रतियोगिता (विज्ञापन)**

एकाधिकारी प्रतियोगिता में चूँकि विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, तथा वे कीमत को कुछ हद तक प्रभावित कर सकने की स्थिति में भी होते हैं अतः वे इस प्रयास में होते हैं कि वे अपनी वस्तु की ओर ग्राहकों को आकर्षित कर सकें। इसके लिए वे कीमतेतर प्रतियोगिता (non-price Competition) का सहारा लेते हैं। चूँकि कीमत प्रतियोगिता में सदा प्रतिकार (retaliation) का खतरा रहता है, अतः वह विभिन्न प्रकार से प्रतियोगिता करता है। इसमें से सबसे महत्वपूर्ण है 'विज्ञापन'। विज्ञापन तीन प्रकार का होता है–

(i) सूचनात्मक (informative)

(ii) प्रलोभक (Persuasive)

(iii) अतिरंजित, गलत और भ्रमकारी (exaggerated)

सूचनात्मक विज्ञापन का संबंध वस्तु की उपयोगिता, प्रभाविता और दीर्घकालिक उपयोग के संबंध में स्पष्ट और साफ–साफ शब्दों में ग्राहकों को जानकारी देने से है। इस प्रकार के विज्ञापन स्वागत–योग्य हैं।

प्रलोभक विज्ञापन का लक्ष्य होता है ग्राहकों की दुर्बलताओं से लाभ उठाकर उन्हें अपनी वस्तु की ओर आकर्षित करना। टूथ–पेस्ट का विज्ञापन इसका उदाहरण है जिसमें हम देखते हैं कि इसका प्रयोग करने वाले नवयुवक के चमकीले दांतों की ओर आकर्षिक होकर कोई लड़की उसका चुम्बन करना चाहती है।

भ्रमकारी विज्ञापन वह है जिसमें हम देखते हैं कि किसी वस्तु में जो गुण या विशेषता नहीं है उसका भी उसमें होना बताया जाता है, जिससे ग्राहकों को गुमराह किया जा सके। इस प्रकार का विज्ञापन नैतिक मापदण्डों का उल्लंघन करता है, अतः इसे उचित नहीं माना जा सकता। भारत में एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार आयोग (MRTP- Commission) को यह अधिकार है कि वह इस प्रकार के अनुचित व्यापार कार्य करने वालों के विरूद्ध कार्यवाही करें।

साम्यवादी अक्सर ही कहते हैं कि विज्ञापन पर किया जाने वाला व्यय धन का दुरूपयोग है और उचित नहीं है।

कुछ देशों में तो विज्ञापन पर किया जाने वाला खर्च अनुसंधान एवं नवीन प्रक्रियाओं पर किये जाने वाले खर्च के बराबर होता है। यह वांछनीय नहीं है, क्योंकि अनुसंधान पर होने वाले खर्च के फलस्वरूप नवीन प्रक्रिया और तकनीकी परिवर्तन आते हैं तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है, परन्तु विज्ञापन पर होने वाले खर्च से ऐसे लाभ नहीं हो पाते। विज्ञापन पर होने वाले व्यय को वस्तु की बिक्री लागत माना जाता है। इस प्रकार वस्तु की दो लागतें हो जाती हैं– उत्पादन लागत और बिक्री लागत। उत्पादन लागत के अंतर्गत वस्तु के उत्पादन में लगने वाले प्लांट, उपस्कर, कच्चे माल, श्रम आदि आगतों पर होने वाली विभिन्न लागतें आती हैं। इसके विपरीत बिक्री लागत वह व्यय है जो खरीददार द्वारा वस्तु को स्वीकार्य बनाने के लिये किया जाता है। यह व्यय वस्तु की बिक्री लागत का एक बहुत बड़ा भाग होता है।

उत्पादन लागत वक्र खींचना आपने पिछली इकाई में सीखा। बिक्री लागत वक्र बनाने के संबंध में कहा जाता है कि औसत बिक्री लागत वक्र औसत उत्पादन लागत वक्र जैसा ही होता है। उत्पादन बढ़ने के साथ– साथ यह पहले नीचे गिरेगा, फिर ऊपर उठेगा।

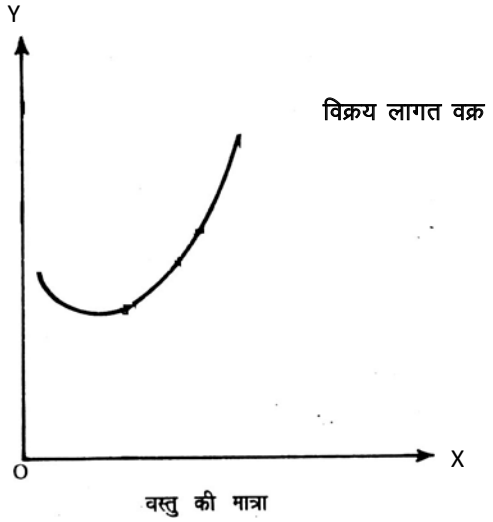

चित्र :1

चित्र से स्पष्ट है कि यह वक्र भी U– आकृति के औसत लागत वक्र जैसा ही होता है। वक्र की आकृति से स्पष्ट है कि शुरू–शुरू में तो वस्तु की बिक्री में बिक्री लागत के अनुपात से अधिक मात्रा में वृद्धि होगी, परन्तु बाद में व्यय के अनुपात में बिक्री घटने लगती है।

15.3 प्रवेश पर अवरोध और एकाधिकारी ढ़ांचा

एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार की अवधारणा में यह मान लिया जाता है कि उत्पादन प्रक्रिया के दौरान बाजार में फर्मों के प्रवेश या बहिर्गमन के सम्बन्ध में कोई प्रतिबंध नहीं होता। परन्तु निर्बाध बाजार की अर्थव्यवस्थाओं का इतिहास साक्षी है कि समय के साथ–साथ पूर्ण प्रतियोगिता कारगर नहीं हो पाई है। एकाधिकार और एकाधिकारिक प्रतियोगिता दो ऐसे बाजार ढ़ाँचे हैं जो पूर्ण प्रतियोगिता से भिन्न होते हैं और इन स्थितियों में उत्पादकों को उपभोक्ताओं की तुलना में अधिक लाभ मिलता है।

बाजार में फर्मों के निर्बाध प्रवेश पर अवरोध होने के विभिन्न कारण निम्नलिखित हैं–

- **कच्चे माल की पूर्ति पर नियंत्रण** – जो उत्पादक लम्बे समय से उत्पादन में संलग्न हों और बाजार में अपनी साख स्थापित कर चुके हों, उनका उन कच्चे मालों की आपूर्ति पर नियंत्रण हो सकता है जो उस वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं। इस स्थिति में अन्य फर्में इस वस्तु का उत्पादन करने की इच्छा रखते हुए भी ऐसा न करने का निर्णय लेती हैं क्योंकि सुस्थापित फर्मों से कच्चे माल को प्राप्त करने में उन्हें कठिनाई होती है, इसके फलस्वरूप बाजार में नई फर्मों के प्रवेश पर अप्रत्यक्ष रोक लग जाती है।

- **सीमित पूर्ति** – कच्चे माल की अत्यंत सीमित मात्रा में पूर्ति होने के कारण भी फर्म के प्रवेश में बाधा उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ कुछ फर्में यदि सोना या इसी तरह के किसी अन्य दुर्लभ खनिज पदार्थ का उपयोग अपने उत्पादन कार्य में करती है, तब नई फर्मों के लिए इस क्षेत्र में आना कठिन हो सकता है।

- **निरपेक्ष लागत लाभ** – जो फर्में पहले से ही उत्पादन कार्य कर रही हैं उन्हें निरपेक्ष लागत के सम्बन्ध में अधिक सुविधा होती है। इसका कारण यह है कि उनके उत्पादन का आकार इतना बड़ा हो जाता है कि उन्हें बड़े पैमाने की किफायतें मिलने लगती हैं। यदि कोई नयी फर्म बाजार में आना चाहती है तब उसे इतने संसाधन जुटाने होते हैं कि वह पहले से सुस्थापित फर्मों के ही समान निवेश कर सके। परन्तु इतनी मात्रा में निवेश करने का साहस प्रत्येक फर्म नहीं कर सकती।

- **विज्ञापन और उत्पाद विभेदीकरण पर अत्यधिक व्यय** – चूँकि सुस्थापित फर्में इस प्रकार के कामों पर काफी रकम खर्च करती है, अतः ये भी नई फर्मों के निर्बाध प्रवेश में अवरोध की तरह होते हैं।

- **प्राकृतिक (स्वाभाविक) एकाधिकार** – कुछ बड़ी परियोजनाओं जैसे जल आपूर्ति, बिजली उत्पादन आदि में बहुत बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता होने के कारण किसी अन्य उत्पादक के लिए यह लाभकारी नहीं होगा कि वह इन वस्तुओं के उत्पादन के लिए आवश्यक दोहरी

अधोसंरचना (infrastructure) तैयार करे और दूसरों को इन वस्तुओं की पूर्ति करे।

बोध प्रश्न 'क'

1. **एक एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म के MR की ढाल AR के ढाल के दो गुने से अधिक होती है, सचित्र स्पष्ट करें।**

   .....

2. **सामान्य लाभ, शून्य लाभ एवं लेखांकन लाभ की अवधारणा को स्पष्ट करें।**

   .....

3. **एकाधिकारी प्रतियोगिता और अल्पाधिकार में अंतर स्पष्ट करें।**

   .....

4. **कीमतेतर प्रतियोगिता (Non-Price Competition) से आप क्या समझते हैं?**

   .....

5. **एकाधिकारी प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता से किन अर्थों में भिन्न है, स्पष्ट करें।**

   .....

6. **फर्म एवं उद्योग (समूह) के संतुलन को स्पष्ट करें।**

   .....

7. **बताइए कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत :**

   i) एकाधिकारी प्रतियोगी बाजारों में उपभोक्ता अतिरेक पूर्ण प्रतियोगिता से कम होता है।

   ii) एकाधिकारी प्रतियोगी बाजारों में अतिरेक उत्पादन क्षमता पायी जाती है।

   iii) वास्तविक जीवन में हम अपूर्ण नहीं बल्कि पूर्ण बाजार पाते हैं।

   iv) एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होती है और प्रत्येक विक्रेता समस्त उत्पादन के एक बहुत बड़े भाग पर नियन्त्रण रखता है।

   v) क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार निर्बाध बाजार प्रणाली (free market system) समाज के लिए सर्वोत्तम होती है।

   vi) विक्रय लागत वक्र बढ़ते उत्पादन के साथ पहले गिरता है फिर उठता है।

15.4 एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत संतुलन

फर्म तब संतुलन में होती है, जब उसका लाभ अधिकतम होता है। उद्योग/बाजार/समूह तब संतुलन में होता है जब फर्मों की प्रवेश व बर्हिगमन की प्रवृत्ति समाप्त हो जाये तथा बाजार में फर्मों की संख्या अनुकूलतम हो जाय।

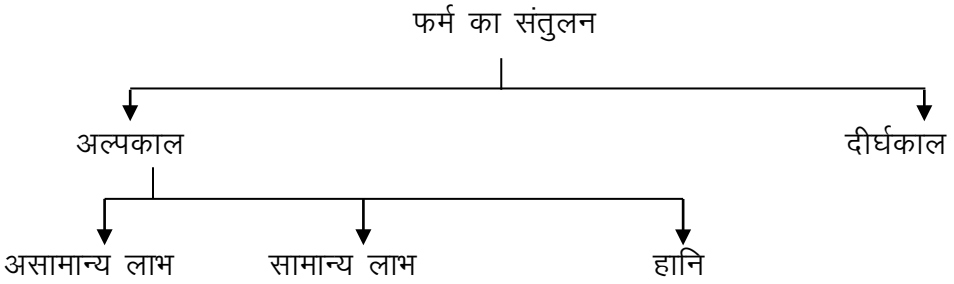

यद्यपि तीनों ही दशायें अल्पकाल में हो सकती है, किन्तु सामान्यतः अल्पकाल में असामान्य लाभ ही देखा जाता है। इसके कारण है–

- ह्रासमान लागते
- वर्धमान प्रतिफल
- पैमाने की मितव्ययतायें
- विशेषीकरण
- श्रम विभाजन
- अल्पकाल में फर्मों का एकाधिकारी की भाँति कार्य करना।

अल्पकाल के लाभों से आकर्षित होकर नई फर्में उद्योग/समूह में प्रवेश कर सकती है, और ये परस्पर कीमत प्रतियोगता भी कर सकती हैं। इससे तीन स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं –

1. कीमत प्रतियोगिता रहित प्रवेश

   (New entary without price competition)

2. नव प्रवेश रहित कीमत प्रतियोगिता

   (Price competition without New entary)

3. नव प्रवेश सहित कीमत प्रतियोगिता

   (Price competition with new entary)

कोई एकाधिकारी प्रतियोगी अपनी एकाधिकारी स्थिति का उपयोग अनेक प्रकार से कर सकता है। वस्तु की कीमत को प्रभावित करना उनमें से एक है। उत्पाद विभेद की स्थिति के होने से वह अपनी वस्तु की किस्म को बदल सकता है, बिक्री लागत को बढ़ाकर वह वस्तु की बिक्री को भी प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रयोग में आने वाले विकल्पों के संयोजन के आधार पर संतुलन का निर्धारण भी भिन्न–भिन्न प्रकार से हो सकता है। स्पष्ट है कि

एकाधिकारी प्रतियोगिता में कार्य कर रही फर्म को पूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म की तुलना में अधिक जटिल समस्या का सामना करना होता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता में व्यक्तिगत फर्म का संतुलन तीन विषयों में होता है, अर्थात्

(i) कीमत के विषय में,

(ii) पदार्थ के विषय में,

(iii) विज्ञापन व्यय की मात्रा के विषय में।

किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए हम एक फर्म द्वारा उत्पादित पदार्थ की एक विशेष किस्म को मानकर और विज्ञापन पर व्यय की एक विशेष मात्रा को स्थिर मानकर, केवल कीमत तथा उत्पादन मात्रा के विषय में ही फर्म के संतुलन की व्याख्या करेंगे।

15.4.1 अल्पकाल में व्यक्तिगत फर्म का सन्तुलन अथवा वैयक्तिक सन्तुलन

चूँकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में विभिन्न फर्में ऐसे पदार्थ उत्पादित करतीं हैं जो एक दूसरे के निकट स्थानापन्न होते हैं, प्रत्येक फर्म के पदार्थ के मांग वक्र की स्थिति, स्तर अथवा मूल्य लोंच प्रतियोगी स्थानापन्न पदार्थों की उपलब्धता तथा उनकी कीमतों पर निर्भर करेगी। इसलिए एकाधिकारिक प्रतियोगिता में किसी व्यक्तिगत फर्म के संतुलन की व्याख्या अन्य फर्मों से पृथक होकर नहीं की जा सकती। किन्तु हम विश्लेषण की सुगमता के लिए स्थानापन्न पदार्थों की उपलब्धि तथा प्रतिद्वन्दी फर्मों द्वारा उनकी प्राप्त की जाने वाली कीमतों को निश्चित मानवकर एक व्यक्तिगत फर्म के संतुलन की विवेचना पृथक रूप से करेंगे।

बाजार में कई निकट स्थानापन्न होने के कारण किसी व्यक्तिगत फर्म के पदार्थ का मांग वक्र अधिक मूल्य सापेक्ष (Price elastic) होगा। फलस्वरूप उत्पादक द्वारा अधिक ऊँची कीमत लिए जाने की स्थिति में अधिकांश ग्राहक उसे छोड़कर उसके प्रतिद्वन्दियों के पास चले जाएँगे।

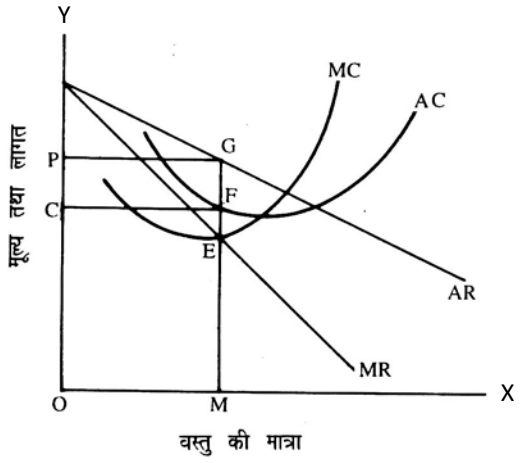

चित्र : 2

उपरोक्त रेखाचित्र में AR फर्म का व्यक्तिगत मांग वक्र है, जो नीचे की ओर झुका हुआ है। यह मांग वक्र फर्म का औसत आय वक्र (AR) भी है। AC तथा MC वक्र क्रमशः फर्म के औसत लागत व सीमान्त लागत वक्र हैं, जो अपने परम्परागत U-आकार के हैं। चूँकि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत सिद्धन्त भी पूर्ण प्रतियोगिता की ही तरह अधिकतम लाभ के सिद्धान्त पर ही आधारित है अतः एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म भी अपने लाभ अधिकतम करने के लिए सीमान्त लागत को सीमान्त आय के समान करेगी। जैसा की रेखाचित्र से स्पष्ट है, फर्म अपना उत्पादन OM मात्रा पर निश्चित करेगी क्योंकि इस पर ही MR व MC बराबर हैं। इस प्रकार फर्म को अपनी वस्तु की OM मात्रा बेंचकर MG कीमत प्राप्त होती है, जो कि OP के बराबर है। इस प्रकार OP कीमत व OM उत्पादन मात्रा निश्चित करके फर्म PCFG के क्षेत्रफल के बराबर लाभ अर्जित कर रही है। यह लाभ सामान्य लाभ से अतिरिक्त है क्योंकि सामान्य लाभ तो औसत लागत वक्र में ही निहित होता है। अतः PCFG फर्म द्वारा अर्जित आसामन्य लाभ अथवा आर्थिक लाभ है।

उल्लेखनीय है कि अल्पकाल में फर्म को आसामन्य लाभ की बजाय हानि भी उठानी पड़ सकती है। ऐसा तब हो सकता है जब पदार्थ की मांग दशाएँ लागत दशाओं की अपेक्षा इतनी अच्छी न हों। निम्न रेखाचित्र ऐसी ही दशाओं को दर्शाता है–

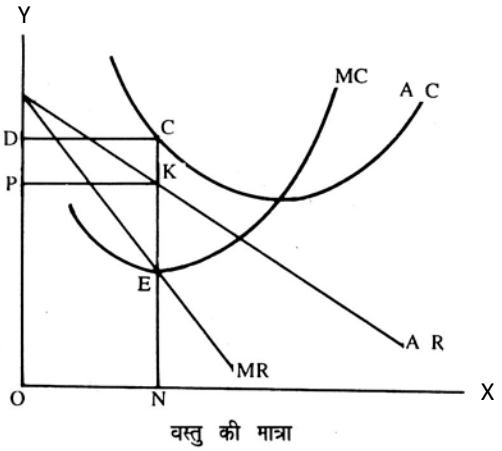

चित्र : 3

रेखाचित्र से स्पष्ट है पदार्थ का मांग वक्र AR औसत लागत वक्र (AC) के नीचे स्थित है परिणाम स्वरूप कोई भी उत्पादन मात्रा लाभप्रद नहीं हो सकती। इस दशा में फर्म अधिक से अधिक यही कर सकती है कि वह अपनी हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करें। फर्म का संतुलन बिन्दु E पर है जहाँ MR=MC है। फर्म ON मात्रा में अपनी वस्तु का उत्पादन कर रही है और इसके विक्रय से NK=OP आगम प्राप्त कर रही है। इस दशा में फर्म की कुल हानि DPKC के समान है।

कोई एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म अल्पकाल में सामान्य लाभ भी अर्जित कर सकती है; इसकी व्याख्या इस रेखाचित्र के माध्यम से किया जा सकता है।

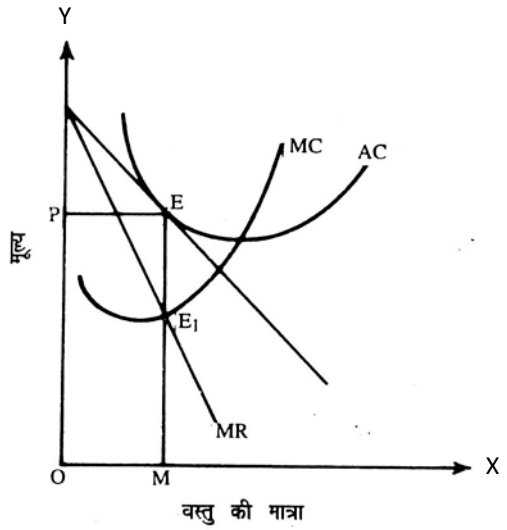

चित्र : 4

15.4.2 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन तथा समूह संतुलन

हम अब इस बात की व्याख्या करेंगे कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में समस्त समूह (Group) किस प्रकार संतुलन में होता है, अर्थात् विभिन्न फर्में जो एक दूसरे के निकट स्थानापन्न पदार्थ उत्पादित कर रही होती हैं, सामूहिक रूप से उनकी कीमतों और उत्पादन में किस प्रकार संतुलन स्थापित होगा।

समूह संतुलन के विश्लेषण को सरल बनाने के लिए चैम्बरलिन प्रत्येक फर्म की विभिन्न दशाओं को ध्यान में नहीं रखते और सभी को एक ही दशा में कार्य करते हुए मान लेते हैं। चैम्बरलिन की यह मान्यता समानता की मान्यता (Uniformity assumption) अथवा बड़ी मान्यता (heroic assumption) कहलाती है। इस मान्यता के अनुसार एकाधिकारिक प्रतियोगिता में बड़ी संख्या में फर्मों के होने के कारण एक फर्म द्वारा अपने पदार्थ की कीमत और उत्पादन मात्रा में परिवर्तन का प्रभाव उसके प्रतियोगियों पर इतना नगण्य होगा कि वे प्रतिक्रिया के रूप में अपनी कीमतों और उत्पादन मात्राओं में परिवर्तन करने के लिए प्रेरित नहीं होंगे।

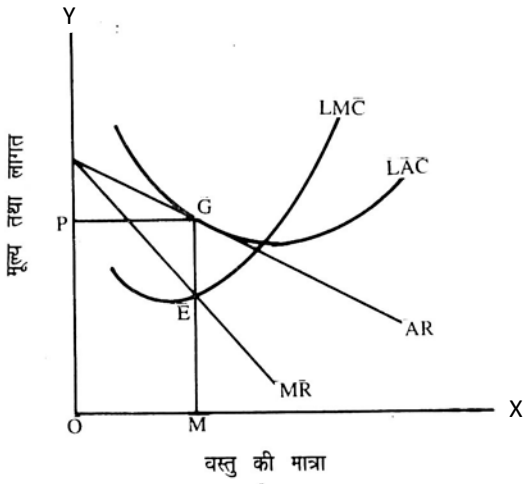

चित्र : 5

समूह की प्रत्येक फर्म का मांग वक्र AR और औसत लागत वक्र AC है जो कि पिछले रेखाचित्र में प्रदर्शित है। प्रत्येक फर्म इन दशाओं में OP कीमत निश्चित करेगी जिस पर उसकी सीमान्त लागत और सीमान्त आय बराबर है। स्पष्ट है कि OP कीमत लाभ अधिकतम कारी कीमत है। इस असामान्य लाभ प्रदान करने वाली कीमत से नई फर्में उद्योग में प्रवेश करने के लिए आकृष्ट होंगी और वस्तु की मांग पहले से अधिक फर्मों में विभाजित हो जाएगी जिससे प्रत्येक फर्म के पदार्थ का मांग वक्र नीचे बाँयी ओर सरक जाएगा। नई फर्मों के लगातार प्रवेश के साथ मांग वक्र नीचे खिसकना जारी रहेगा, जब तक यह औसत लागत वक्र को स्पर्श न करने लगे और असामान्य लाभ पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाता।

इस प्रकार हमने देखा कि एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के दीर्घकालीन संतुलन अथवा समस्त समूह के संतुलन के लिए निम्न दो शर्तों की पूर्ति होना आवश्यक है –

सीमान्त आय (MR) = सीमान्त लागत (MC)

औसत आय (AR) = दीर्घकालीन और लागत (LAC)

उपरोक्त रेखाचित्र में औसत आय (AR) वक्र, औसत लागत (LAC) वक्र को बिन्दु G पर स्पर्श करता है। सीमान्त लागत (MC) और सीमान्त आय (MR) वक्र इस स्पर्श बिन्दु से सीधे नीचे एक दूसरे को काटते हैं। अतः दीर्घकालीन संतुलन में फर्म पदार्थ की OM मात्रा उत्पादित करेगी और OP कीमत निश्चित करेगी। फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त करेगी। अतः नई फर्मों के लिए उद्योग में प्रवेश करने के लिए कोई प्रेरणा नहीं होगी।

15.5 एकाधिकार संतुलन में संसाधन

एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत सन्तुलन तथा पूर्ण प्रतियोगी सन्तुलन में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता में सन्तुलन उस उत्पादन स्तर पर होता है जहाँ वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त लागत स्तर पर होता है जहाँ वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त लागत के समान होती है (Price = MC)। किन्तु एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म के वस्तु का मांग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है और सीमान्त आय (MR) वक्र उसके नीचे स्थित होता है। परिणामस्वरूप सन्तुलन की स्थिति में जिस उत्पादन की मात्रा पर फर्म की सीमान्त लागत (MC) सीमान्त आय (MR) के बराबर होती है, वह कीमत से कम होती है। उपभोक्ताओं द्वारा वस्तु के लिए दी जाने वाली कीमत उनको उनसे प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को दर्शाती है। जबकि वस्तु की सीमान्त लागत समाज द्वारा उसमें प्रयुक्त किए गए संसाधनों पर उठायी गई लागत को दर्शाती है। अतः सन्तुलन की दशा में वस्तु की कीमत का सीमान्त लागत से अधिक होना यह प्रकट करता है कि वस्तु के सीमान्त उत्पादन से उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि में वृद्धि समाज द्वारा उठाई गई लागत से अधिक है। लेकिन अधिकतम सामाजिक कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु के उत्पादन स्तर को वहां तक बढ़ाया जाए जहाँ कीमत, सीमान्त लागत के बराबर होती है। लेकिन एकाधिकारिक प्रतियोगिता में उत्पादन उस स्तर से कम होता है जहाँ पर कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है। परिणामस्वरूप **एकाधिकारिक प्रतियोगिता में अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति नहीं हो पाती है।**

इस प्रकार एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अन्तर्गत दो प्रकार की अकुशलताएं (ineffciencies) पाई जाती हैं जिनके कारण सामाजिक कल्याण में अधिकतम सम्भव वृद्धि नहीं हो पाती। प्रथम, अकुशलता इस कारण उत्पन्न होती है क्योंकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्में दीर्घकालीन लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु पर उत्पादन न करके उससे ऊँची औसत लागत पर वस्तु का उत्पादन करती है और फलस्वरूप एकाधिकारिक प्रतियोगिता में आधिक्य क्षमता (excess capacity) पाई जाती है। द्वितीय, अकुशलता इसलिए उत्पन्न होती है कि फर्में सीमान्त लागत से अधिक कीमत वसूल करती हैं और उस सीमा तक उत्पादन नहीं बढ़ाती जिस पर कीमत, सीमान्त लागत के बराबर होती है। इससे सामाजिक कल्याण का ह्रास होता है।

बोध प्रश्न 'ख'

1. **एकाधिकारी प्रतियोगी बाजार के सन्दर्भ में ''साहसपूर्ण मान्यता'' की अवधारणा को स्पष्ट करें।**

   .....

2. **एकाधिकारी प्रतियोगी बाजार, एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता के बीच की स्थिति है, स्पष्ट करें।**

   .....

3. **कुल लागत पर कीमत निर्धारण से आप क्या समझते हैं।**

   .....

4. **साधनों की बरबादी से आप क्या समझते हैं।**

   .....

5. **क्या एकाधिकारी प्रतियोगिता में आधिक्य क्षमता (excess capacity) पायी जाती है, स्पष्ट करें?**

6. **एकाधिकारी बाजारों के बिक्री लागत की अवधारणा पर प्रकाश डालें।**

7. **बताइए निम्नलिखित कथन सही है अथवा गलत–**

   (i) एक फर्म संतुलन में वहाँ होती है, जहाँ MC=MR हो, पर यह आवश्यक नहीं है कि MC=MR पर फर्म को लाभ हो रहा हो।

   (ii) एकाधिकारी प्रतियोगिता में मांग वक्र नीचे की ओर झुकता है।

   (iii) एकाधिकारी प्रतियोगिता में औसत लागत वक्र और औसत आय वक्र कुछ हद तक एक दूसरे पर निर्भर होते हैं?

   (iv) एकाधिकारी प्रतियोगी विभिन्न किस्म की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।

   (v) पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकारी प्रतियोगिता में क्रेता को या तो उच्च मूल्य चुकाना पड़ता है या उसे निम्न कोटि की वस्तु को स्वीकारना पड़ता है।

(vi) अल्पकाल में एकाधिकार प्रतियोगी अपनी औसत कीमत के ऊपर अधिशेष नहीं कमा सकता।

8. निम्नलिखित प्रश्नों के लिए सही उत्तर का चुनाव करें–

i) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत क्रेताओं की संख्या..... होती है।

क) कम ख) पाँच

ग) दो घ) बहुत बड़ी

ii) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत मांग वक्र .....होता है।

क) समस्तर

ख) उर्ध्वस्तर

ग) दाईं ओर ऊपर उठता हुआ

घ) दाईं ओर नीचे गिरता हुआ

iii) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत संतुलन कीमत

क) कुल उत्पादन लागत के बराबर होती है।

ख) औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है।

ग) सीमान्त उत्पादन लागत के बराबर होती है।

घ) ऊपर के किसी के भी बराबर होती है।

iv) बिक्री लागत की प्रवृत्ति.....होती है।

क) समस्तर होने की

ख) सदा ऊपर उठने की

ग) सदा नीचे गिरने की

घ) U– आकार के होने की।

v) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन में संतुलन तब होता है जब

क) सीमांत आय कीमत से अधिक होती है।

ख) सीमान्त आय कीमत के बराबर होती है।

ग) सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक होती है।

घ) सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है।

15.6 सारांश

एकाधिकारी प्रतियोगिता उस बाजार स्थिति की सूचक है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि प्रत्येक विक्रेता कुल बाजार के एक छोटे भाग

में ही अपनी वस्तु को बेच सकता है, वस्तु की कीमत को प्रभावित करने के सम्बन्ध में उसकी स्थिति उतनी मजबूत नहीं होती जैसी की पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत होती है।

इसके फलस्वरूप उसके सम्मुख का मांग वक्र समस्तर सीधी रेखा नहीं होती। इकाई 13 में हम देख चुके हैं कि इस प्रकार के मांग वक्र का अर्थ यह होता है कि विक्रेता प्रचलित कीमत पर अपनी वस्तु को बेच तो सकता है लेकिन वह कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता या उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता। परन्तु एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत ऐसी स्थिति नहीं होती। उस स्थिति में चूँकि कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन किया जा सकता है अतः एकाधिकारी प्रतियोगी के सम्मुख का मांग वक्र अपूर्ण प्रतियोगी के मांग वक्र जैसा होगा अर्थात् दाईं ओर अधोमुखी होगा। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि उत्पादन के विभिन्न स्तरों के लिए सीमान्त आय की अनुसूची को भी इसी प्रकार से तैयार किया जाएगा। इसके अतिरिक्त औसत आय की तुलना में सीमान्त आय कम होगी।

सीमान्त और औसत लागत वक्रों के U–आकार के होने से संतुलन को निर्धारित करने वाले सीमान्त आय और सीमान्त लागत वक्रों का कटान एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता इन दोनों ही स्थितियों में होगा। परन्तु इनके बीच एक अन्तर होता है। एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत चूँकि विक्रेताओं की संख्या बहुत होती है और नई फर्मों के प्रवेश पर कोई अवरोध नहीं होता अतः विक्रेता अपनी औसत उत्पादन लागत के ऊपर अधिशेष अर्जित नहीं कर सकता। इसी प्रकार के अधिशेष को अर्जित करने के आकर्षण से नई फर्मों के प्रवेश और बहुत बड़ी संख्या वाले वर्तमान फर्मों के साथ तीव्र प्रतियोगिता के फलस्वरूप यह अधिशेष बहुत ही कम होता जाएगा तथा दीर्घकाल में यह बिल्कुल ही लुप्त हो जाएगा, और कीमत औसत उत्पादन लागत के ठीक बराबर हो जाएगी।

इस प्रकार एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमान्त आय को सीमान्त लागत के बराबर होना होता है परन्तु अंततः औसत आय को औसत उत्पादन लागत के भी बराबर होना होता है। मांग वक्र के ढलवां होने से ऐसा तब होता है जब यह मांग वक्र औसत लागत वक्र को ठीक उस बिन्दु के ऊपर स्पर्श करता है, जहाँ पर सीमान्त आय और सीमान्त लागत वक्र एक दूसरे को काटते हैं। संतुलन की इस स्थिति में उत्पादन इष्टतम से कम होगा और औसत लागत न्यूनतम से अधिक होगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति की तुलना में एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत अधिक होती है तथा उत्पादन कम होता है। इसके अतिरिक्त चूंकि इष्टतम स्तर तक पहुँचने के पूर्व ही उत्पादन होना बन्द हो जाता है, अतः एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में क्षमता निष्क्रिय रह जाती है तथा संसाधनों की बरबादी होती है।

15.7 उपयोगी शब्दावली

- **एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic competition) :** बाजार की वह स्थिति जिसमें कोई विक्रेता वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है।

ऐसा इसके बावजूद होता है कि विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होता है और प्रत्येक विक्रेता का नियंत्रण बाजार पूर्ति के अत्यंत नगण्य भाग पर ही होता है।

- **उत्पादन विभेदन (Product differentiation) :** कोई विक्रेता जब किसी एक ही वस्तु की विभिन्न किस्म की पूर्ति करने का प्रयास करता है।
- **प्रवेश पर अवरोध (Barrier to entry) :** वह स्थिति जब किसी कारण से नई फर्मों द्वारा बाजार में प्रवेश के सम्बन्ध में कठिनाइयां पैदा कर दी जाती है।
- **बिक्री लागत (Selling cost) :** किसी वस्तु की बिक्री के संवर्धन पर किया गया व्यय।
- **उत्पादन लागत (Production Cost) :** किसी वस्तु को उत्पादित करने पर किया गया व्यय, उसकी बिक्री के संवर्धन पर नहीं।
- **कुल लागत पर कीमत निर्धारण (Full-cost pricing) :** विक्रेता जब अपनी कीमत को इस प्रकार से निर्धारित करता है कि वह उसकी औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है। इस सम्बन्ध में वह अपनी सीमान्त लागत को सीमान्त आय के बराबर करने का प्रयास नहीं करता जिसके फलस्वरूप उसे कोई असामान्य लाभ नहीं हो पाता।
- **इष्टतम उत्पादन (Optimum output) :** वह उत्पादन जो U– आकार के औसत उत्पादन लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु के अनुरूप होता है।

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 i) गलत ii) गलत iii) सही
iv) सही v) स्ही

ख 3 i) सही ii) सही iii) सही
iv) सही v) ग्लत
4 i) घ ii) घ iii) ख
iv) घ

15.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 एकाधिकारी प्रतियोगिता की संकल्पना को भली भांति स्पष्ट करें।

प्रश्न–2 बाजार में फर्मों के निर्बाध प्रवेश सम्बन्धी कठिनाइयों किन कारणों से पैदा होती हैं?

प्रश्न–3 उत्पादन और बिक्री लागतों के बीच अंतर बताइए। दिखाइए कि किसी एकाधिकारी प्रतियोगी के कुल औसत लागत वक्र को कैसे खींचना चाहिए?

प्रश्न–4 एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थितियों में दीर्घकालिक संतुलन का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?

प्रश्न–5 कुल लागत पर कीमत निर्धारण सिद्धान्त क्या है? इसके चलते इष्टतम उत्पादन से भी अधिक उत्पादन किस प्रकार हो पाता है?

कुछ उपयोगी पुस्तके

- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- ❖ एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- ❖ प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- ❖ एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- ❖ लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- ❖ पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)
- ❖ डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- ❖ एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

इकाई : 16 अल्पाधिकार

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 अल्पाधिकार की विशेषताएं, प्रकार और प्रकृति

16.3 अल्पाधिकारी कपट समझौतो के अंतर्गत कीमत और उत्पादन संतुलन

16.3. 1 कीमत नेतृत्व माडल

16.3. 2 कॉर्टेल माडल

16.4 गैर कपट समझौतो के अंतर्गत कीमत और उत्पादन संतुलन

16.4. 1 द्वयाधिकार का कूर्नो माडल

16.4. 2 विकुंचित मांग वक्र माडल

16.5 अल्पाधिकार का आर्थिक परिदृश्य और प्रासंगिकता

16.6 सारांश

16.7 उपयोगी शब्दावली

16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने से आप इस योग्य हो सकेंगे कि :–

- ❖ अल्पाधिकार बाज़ार का अर्थ और उसकी विशेषताओं को विवेचित कर पायेंगे,
- ❖ पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारी फर्म और अल्पाधिकारी फर्म के बीच अंतर कर सकेंगे,
- ❖ अल्पाधिकारी आपस में प्रतिस्पर्धा करने के बजाए कपट समझौता क्यों करते हैं स्पष्ट कर सकेंगे,
- ❖ अल्पाधिकार के अंतर्गत कपट और गैर कपट समझौतों के मध्य संतुलन कीमत और उत्पादन के निर्धारण संबंधी परिणामों को निरूपित कर सकेंगे तथा
- ❖ उपभोक्ताओं के लिए इस प्रकार के समझौतों से लाभ, अल्पाधिकारी फर्मों की निष्पादन और प्रसंगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में हम सभी देख चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगी और एकाधिकारी बाज़ार की स्थिति व्यावहारिक जीवन में नहीं दिखाई पड़ती है। इसके अभाव में अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति अधिक व्यावहारिक होती है जिसके अंतर्गत विक्रेताओं की संख्या यदि बहुत बड़ी नहीं परन्तु दो या दो से अधिक हो तो भी अपूर्णता की कुछ विशेषताएं देखी सकती हैं जिन्हें समझने और उनका विश्लेषण करने की आवश्यकता पड़ती है।

पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अधिक तथा विभेदितकृत उत्पाद नहीं होता है। इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में विक्रेता के पास अपनी वस्तु की कीमत पर प्रभाव डालने की शक्ति नहीं होती है। जबकि एकाधिकार बाज़ार स्थिति में केवल एक ही विक्रेता होने के कारण बाज़ार पर नियंत्रण अधिक होता है और उत्पाद विभेदन की क्षमता दिखाई पड़ती है। अतः एकाधिकार बाज़ार स्थिति में कीमत को प्रभावित करने की शक्ति होती है। अतः इन दोनों के मध्य ऐसी भी स्थिति होती है जिसमें विक्रेताओं की संख्या दो या दो से अधिक होती हो लेकिन बहुत अधिक नहीं। इसलिए प्रत्येक विक्रेता का बाज़ार के बहुत बड़े हिस्से पर नियंत्रण होता है। अतः कीमत को प्रभावित करने की क्षमता रखते है। फिर भी परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता के कारण विक्रेताओं के मध्य कीमत–स्पर्धा बनी रहती है। इस कारण अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति को, पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार दोनों से भिन्न स्थिति कही जाती है।

इस इकाई में हम पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारी फर्म और अल्पाधिकारी फर्म के बीच अंतर, अल्पाधिकार बाज़ार का अर्थ और उसकी विशेषताओं के सम्बंध में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। इसके अतिरिक्त, अल्पाधिकार के अंतर्गत कपट और गैर कपट समझौतों के मध्य संतुलन कीमत और उत्पादन के निर्धारण, उपभोक्ताओं के लिए इस प्रकार के समझौतो से लाभ, अल्पाधिकार का आर्थिक परिदृश्य और प्रासंगिता का विश्लेषण किया गया है।

16.2 अल्पाधिकार की विशेषताएं, प्रकार और प्रकृति

व्यावहारिक परिस्थियों में सबसे अधिक प्रासंगिक बाज़ार स्थिति को अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति कहा जाता है। यदि विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी है तब पूर्ण प्रतियोगी, यदि एक है तब उसे एकाधिकारी बाज़ार कहा जाता है। परन्तु अल्पाधिकार के अंतर्गत विक्रेताओं की संख्या दो या दो से अधिक परन्तु बहुत अधिक नही होती हैं। जिसे कुछ में प्रतियोगिता बाज़ार भी कहा जाता है। अल्पाधिकार (Oligopoly) यूनानी शब्द Oligoi + Pollein से मिलकर बना है। Oligoi का अर्थ कुछ या अल्प से, तथा Pollein से आशय विक्रय या बेचने से होता है अर्थात कुछ विक्रेताओं द्वारा विक्रय से होता है। अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति से आशय ऐसी बाज़ार स्थिति से है, जिसमें वस्तुओं एवं सेवाओं के कुछ ही विक्रेता होते है अर्थात् दो या दो से अधिक परन्तु बहुत अधिक नहीं। इस स्थिति में विक्रेताओं/फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता, समूह व्यवहार, विज्ञापन महत्व, माग वक्र की अनिश्चितता आदि के कारण कीमत–युद्ध (Price War) की स्थिति देखी जाती है। प्रत्येक फर्म वस्तु की कीमत, उत्पादन, किस्म, विक्रय आदि को प्रभावित करने की क्षमता रखती है इस बाज़ार में उत्पादित वस्तुएं सहजतीय और विभेदीकृत होती है। अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति की प्रमुख विशेषताएं।

- ❖ अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति में विक्रेताओं की अल्पसंख्या पायी जाती है। जिससे बाज़ार के कुल पूर्ति के बड़े भाग पर नियंत्रण होने से कीमत और उत्पादन मात्रा प्रभावित होती है फलतः अन्य फर्मों की प्रतिक्रिया आती है।

- ❖ अल्पाधिकार बाज़ारों में परस्पर निर्भरता से फर्मे एक–दूसरे का तीव्र प्रतियोगी होती है। अतः किसी एक फर्म का आपूर्ति पर नियंत्रण अधिक होने से प्रतिद्वन्दी फर्मों के लाभ में कमी तत्पश्चात् प्रतिद्वन्दी के निर्णय में परिवर्तन की प्रतिक्रिया आती है। परस्पर निर्भरता के होने का कारण यह है कि कोई विक्रेता यदि कोई विशेष कीमत लेना चाहता है या किसी वस्तु किस्म को बेचना चाहता है तब उसे इस बात का अनुमान लगाना होता है कि इन सबके संबंध में उसके प्रतियोगी की वास्तविक प्रतिक्रिया क्या होगी और फिर उसे यह भी अनुमान लगाना होता है कि अपने प्रतियोगी की वास्तविक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यदि वह कोई सामजस्य करता है तब वह प्रतियोगी क्या करने की सोचेगा अर्थात् वास्तविक या कल्पित प्रतिक्रियाओं के संबंध में अनुमान लगाना, जिससे संतुलन निर्धारण में काफी अनिश्चितता आ जाती है।

- ❖ अल्पाधिकारी फर्मे विज्ञापन और विक्रय लागत के महत्व पर अधिक जोर देती है। इसके साथ उत्पादित वस्तुएं समरूप और विभेदितकृत, कीमत दृढ़ता तथा माँग वक्र की अनिश्चितता होना सुनिश्चित होता है।

- ❖ अल्पाधिकार बाज़ारों में कपट संधि, गैर कपट संधि और कीमत दृढ़ता आदि की स्थिति भी दिखाई पड़ती है।

- ❖ अल्पाधिकारी बाज़ारों में विक्रेताओं के मध्य, मांग वक्र की अनिश्चितता आदि के कारण कीमत–युद्ध (Price War) की स्थिति देखी जाती है। अल्पाधिकारी की विशेषताएं ही संतुलन के निर्धारण को कठिन और अनिश्चित बना देती हैं।

अल्पाधिकार के अंतर्गत परस्पर निर्भरता बाज़ार की मूल विशेषता है। जिसके कारण कीमत–निर्धारण बहुत कठिन हो जाता है। जबकि एकाधिकारी स्वतंत्रता निर्णय लेकर कीमत निर्धारण सकता है। इस प्रकार एकाधिकार में संतुलन की स्थिति सरल जबकि अल्पाधिकार में संतुलन की दशा जटिल हो जाती है। अल्पाधिकार के अंतर्गत संतुलन विश्लेषण में कोई उत्पादक अपने उत्पाद के लिए जो कीमत लेता है उसी के अनुसार उसके उत्पादन की मात्रा का निर्धारण होता है। परन्तु अन्य उत्पादकों की प्रतिक्रिया के ही संबंध में भी अनुमान लगाना होता है। इन अनुमानों के प्रत्युत्तर में स्वयं वहीं यदि अपनी नीतियों को बदलता है तब प्रतियोगी भी नीतियों में इस प्रकार के परिवर्तन को स्वीकार कर लेते है। यह क्रिया–प्रतिक्रिया अल्पाधिकारी बाज़ार में चलती रहती है। इसी कारण अन्य नये प्रतियोगियों को बाज़ार में प्रवेश और बहिर्गमन पर कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

अल्पाधिकारी मुख्यरूप से दो प्रकार के होते हैं। प्रथम–उत्पाद विभेदक अल्पाधिकार या अपूर्ण अल्पाधिकार और द्वितीय–उत्पाद विभेदकरहित अल्पाधिकार या पूर्ण अल्पाधिकार। अपूर्ण अल्पाधिकार के अंतर्गत उत्पादन विभेदन होता हैं जिसके कारण गैर कीमत प्रतियोगिता बनी रहती है, साथ ही अपने उत्पाद को अन्य से भिन्न दिखाने का प्रयास किया जाता है। उत्पादन विभेदन के कारण कोई उत्पादक अन्य उत्पादकों की अपेक्षा कुछ अधिक कीमत ले सकता है यह इस बात पर निर्भर

करता है कि विज्ञापन व्यय द्वारा वह अपने ग्राहकों को यह बताने में भी सफल हो जाय कि उसकी वस्तु अन्य उत्पादकों की तुलना में अच्छी किस्म की हैं। अपूर्ण अल्पाधिकार के अंतर्गत फर्मों की प्रतिक्रिया द्वारा औसत लागत स्तर के ऊपर कीमत का निर्धारण होता है। पूर्ण अल्पाधिकार की तुलना में केवल कीमत–स्पर्धा का अंश कम होता है।

पूर्ण अल्पाधिकार की स्थिति वह होती है, जिसमें फर्मे उत्पाद विभेदक नहीं करती है। इस कारण प्रतियोगिता करना कठिन हो जाता है फलता कीमत–युद्ध का अंत नहीं हो पाता और कीमत का निर्धारण, औसत उत्पादन लागत से बहुत अधिक होती है। पूर्ण अल्पाधिकार की स्थिति में विज्ञापित करने और बिक्री लागत को लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी स्थितियों में कोई उत्पादक यदि अपने उत्पाद की कीमत बढ़ाता है तब अन्य प्रतिक्रिया अवश्य होगी और यह क्रिया–प्रतिक्रिया चलती रहती है। इस प्रकार हैं पूर्ण अल्पाधिकार का प्रारंभ उस कीमत से होता है जो उत्पादन लागत से बहुत अधिक होती है परंतु कीमत युद्ध के कारण अंत में यह कीमत कम होते–होते औसत उत्पादन लागत के बराबर हो जाती है जिससे संतुलन स्थापित होने लगता है। फिर भी अल्पाधिकारी बाज़ारो में अनिश्चितता, संतुलन में कठिनाई और उसके फलस्वरूप होने वाला कीमत–युद्ध के कारण संतुलन स्थापित होने की दिशा कठिनाई आती है। इसीलिए फर्मे बाज़ार में बनाये रखने के लिए कपट संधि और गैर कपट संधि को बढ़ावा देती हैं। अल्पाधिकारी बाज़ारों की प्रकृति कपट संधि अल्पाधिकार (Collusive Oligopoly) और गैर कपट संधि अल्पाधिकार (Non Collusive Oligopoly) की पायी जाती है। अल्पाधिकारी बाज़ारों में परस्पर निर्भरता होने के कारण फर्मे अपनी मांग वक्र की निश्चितता को स्पष्ट नहीं कर पाती है। अतः विक्रेताओं के निर्णय परस्पर स्वतंत्र नहीं होते है। इस कारण अल्पाधिकार के अंतर्गत मांग और पूर्ति की क्रियाओं में परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया चलती रहती है। वस्तुतः सीमांत आगम और सीमांत लागत वक्रों का सही अनुमान अत्यंत कठिन हो जाता है फलतः संतुलन स्थापित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जबकि एक एकाधिकारी आसानी से कर सकता है। अल्पाधिकार की स्थिति में वर्तमान उत्पादक बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश को कठिन और अवरूद्ध बनाने का प्रयास करते है। एकाधिकार में प्रवेश सम्बन्धित ऐसी कोई संभावना नहीं पाई जाती है।

16.3 अल्पाधिकारी कपट समझौतो के अंतर्गत कीमत और उत्पादन संतुलन

कपट संधि अल्पाधिकार से आशय है कि फर्मे परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए आपस में विचार–विमर्श के द्वारा (consult to each other) कुछ औपचारिक और अनौपचारिक समझौते करती है। जब किसी एक फर्म विशेष को अग्रणी मान लिया जाता है और उसे उस कीमत को निर्धारित करने का विशेषाधिकार दे दिया जाता है जिसे अन्य फर्मे भी अपनी वस्तु की कीमत के रूप में स्वीकार कर लेती हैं। इसके लिए विशेष प्रकार की सहमति नहीं होती बल्कि कीमत ही निश्चित कर दी जाती है तथा कीमत युद्ध से बचा जाता हैं। अल्पाधिकारी कपट समझौतों के अंतर्गत अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास अनौपचारिक या औपचारिक रूप से अलग–अलग नहीं बल्कि संयुक्त रूप से करते हैं। इसके पीछे प्रमुख कारण अन्य फर्मों के प्रवेश पर रोक लगाने आदि के संबंध में प्रायः आपस में व्यवस्था कर लेते हैं, जिससे वे सभी बाज़ार में बने रह

सकें। कपट समझौते के द्वारा शक्ति का संकेन्द्रण इस प्रकार से हो जाता है जैसे कि वह एक ही के हाथ में हो। इन समझौतो का महत्वपूर्ण स्वरूप कीमत नेतृत्व और का कार्टेल है।

16.3.1 कीमत नेतृत्व माडल

कीमत नेतृत्व (Price Leadership) या अपूर्ण कॉर्टेल, कपट संधि अल्पाधिकारी बाज़ारों के अन्तर्गत उल्लिखित अनौपचारिक समझौता की वह स्थिति है जब फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए किसी एक फर्म को कीमत नेतृत्व स्वीकार करनी होती है। इसके द्वारा निर्धारित मूल्य को अन्य फर्में स्वीकार कर लेती है। कीमत नेतृत्वकर्त्ता फर्में एकाधिकारी की भांति कीमत व मात्रा का निर्धारण करती है जिसे अनुसरणकर्त्ता फर्में पूर्ण प्रतियोगी फर्मों की भांति स्वीकार कर लेती है। यह एक प्रकार का गुप्त समझौता होता है। यदि कीमत अलग–अलग हो कीमत नेतृत्व सम्भव नहीं होता है। कीमत नेतृत्व मुख्यरूप से तीन प्रकार के होते है कम लागत कीमत नेतृत्व माडल (Price Leadership by a Low Cost Firms), प्रधान फर्म/अधिक लागत वाली फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व (Price Leadership by a Dominant/ Large Cost Firms) और स्थितिमान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व (Price Leadership by a Barometric Firms) माडल।

कम लागत कीमत नेतृत्व मॉडल उस फर्म से है, जिसके द्वारा उत्पादित वस्तु की उत्पादन लागत अन्य/प्रतिद्वन्दी फर्मों की अपेक्षा कम होती है जिससे मूल्य कम निर्धारित होता है। यदि प्रतिद्वन्दी फर्में इसे स्वीकार न करे तो कीमत युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जायेंगी और प्रतिद्वन्दी फर्मों के लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए बाज़ार में बने रहने के लिए प्रतिद्वन्दी फर्में कम लागत फर्म को कीमत नेता मान लेती है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उल्लिखित होने कारण अल्पाधिकारी कम लागत नेता फर्मों का मांग वक्र ऊपर से नीचे गिरता हुआ होता है। इस स्थिति अन्य प्रतिद्वन्दी फर्में कीमत युद्ध से बचने के लिए छोटी फर्मों को नेता मान लेती है।

चित्र–I

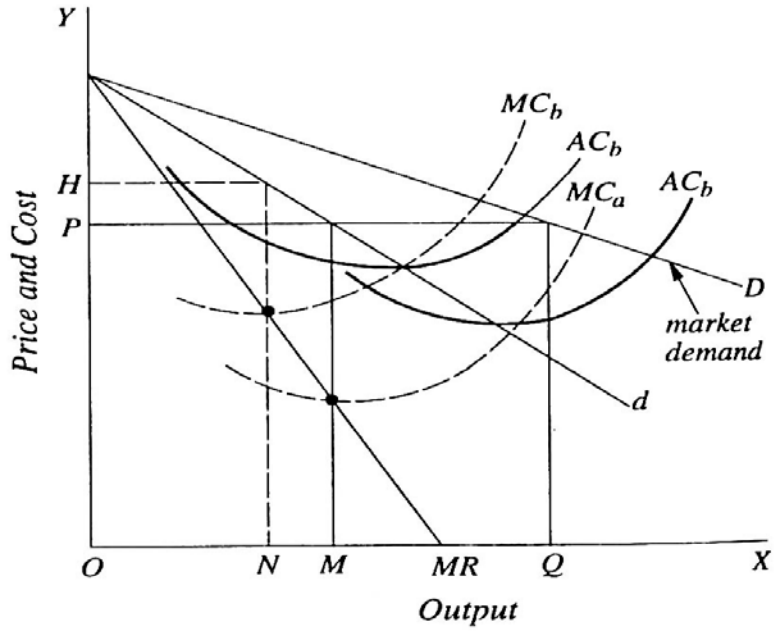

चित्र–I से स्पष्ट है कि a और b दो फर्मों में, a छोटी और b बड़ी लागत की फर्म है। प्रत्येक फर्म संतुलन में है। लेकिन a फर्म की उत्पादन लागत b से कम होने के कारण कीमत युद्ध से बचने के लिए b फर्म, a फर्म को कीमत नेता मान लेती है। अतः a फर्म एकाधिकारी कीमत P निर्धारित करती है। जिस पर OQ मात्रा और P कीमत संतुलन स्तर को बताता है। कीमत नेता मूल्य OP है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कपट सन्धि के अन्तर्गत कीमत नेतृत्व माडल उत्पादन और कीमत संतुलन को व्यक्त करता है।

प्रधान फर्म/बड़ी फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व उस फर्म से है, जिसके द्वारा उत्पादित वस्तुएं कुल बाज़ार मांग के अधिक से अधिक हिस्से की आपूर्ति (large share in the total market demand) करती है। जिससे बड़ी फर्मों के लाभ में वृद्धि और परस्पर निर्भरता के कारण छोटी फर्मों के बाज़ार हिस्सेदारी कम होने से उनके लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः छोटी फर्में कीमत युद्ध से बचने और दीर्घकालीन निश्चित लाभ को प्राप्त करने और बाज़ार व्यवस्था में बने रहने के लिए प्रधान फर्म को कीमत नेता स्वीकार कर लेती है। बड़ी फर्मों द्वारा कीमत नेतृत्व माडल में फर्मों के उत्पादन का क्षैतिजीय योग होता है और कुशलता के आधार पर बड़ी फर्में प्रतिद्वन्दी फर्मों के सीमान्त लागत (MC) को जानती है।

चित्र–II

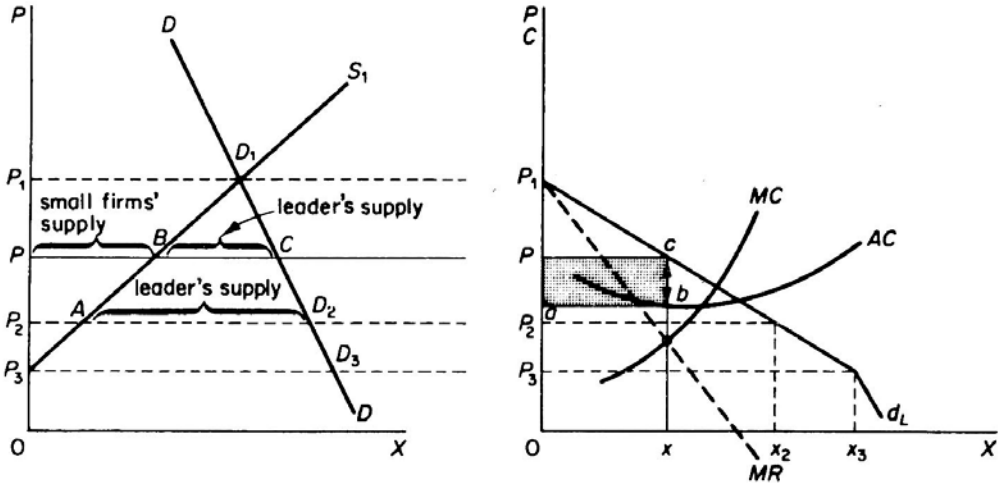

चित्र–II से स्पष्ट है कि छोटी फर्मों की आपूर्ति PB है और बड़ी फर्म की आपूर्ति BC है। अतः छोटी फर्में कीमत युद्ध से बचने और वर्तमान व्यवस्था में बनाये रखने के लिए बड़ी फर्मों को नेता मान लेती है। वस्तुतः बड़ी फर्में OP कीमत निर्धारित करके OX मात्रा का उत्पादन करती है। इस स्थिति OP_2 लागत और OP कीमत नेता स्थिति है। अतः अल्पाधिकारी बाजार में बड़ी फर्मों को कीमत नेता स्वीकार्य लेने पर संतुलन बिन्दु C पर निर्धारित होता है। जबकि P_3 रेखा से नीचे आपूर्ति नहीं हो सकती है।

जबकि स्थितिमान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व आशय उस फर्म से है जो उद्योग में दीर्घकालीन समय से कार्य कर रही हो और आर्थिक वातावरण में होने वाले परिवर्तनों का बेहतर अनुमान लगा सकती है। दीर्घकालीन समय से आशय है कि फर्में कुशलता और उत्पादकता बेहतर का बेहतर अनुमान लगा लेती है। P = AVC + AFC + Profit प्राप्त करके दीर्घकालीन स्थायी लाभ प्राप्त □□□□ है। जबकि

आर्थिक वातावरण से आशय है कि अन्य फर्मों के बाज़ार मांग का बेहतर अनुमान लगा लेती है और कुल बाज़ार मांग से अधिक से अधिक आपूर्ति करती है। अतः दीर्घकालीन और आर्थिक वातावरण बेहतर मापने के कारण प्रतिद्वन्दी फर्में, स्थितिमान फर्मों को कीमत नेता मान लेती है। अल्पाधिकारी फर्मे दो प्रकार की स्थितियों से बचने का प्रयास करती हैं एक है तीव्र प्रतिस्पर्धा, जिसके कारण कीमत और कीमतेतर प्रतियोगिता होती है और दूसरी है बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश की संभावना। इसलिए वे कीमत को इस प्रकार से निश्चित करने का प्रयास करते हैं ताकि इन दोनों ही प्रकार के खतरों से बचा जा सके। इस प्रकार अल्पाधिकारी बाजारों में सन्धि के साथ कीमत और उत्पादन संतुलन को स्पष्ट किया जाता है। इन तीनों कीमत नेता माडल में सबसे कुशल और दक्ष कीमत नेता माडल बैरोमिट्रिक/स्थितिमान फर्मों द्वारा किया जाता है। क्योंकि इसमें अल्प और बड़ी दोनों लागत फर्मों के गुण पाये जाते हैं।

16.3.2 कॉर्टेल माडल

कपट समझौतो के अन्तर्गत कॉर्टेल (Cartels) या गुट या संघ महत्त्वपूर्ण होते है। कॉर्टेल कपट संधि या प्रतिक्रियात्मक संधि अल्पाधिकारी बाज़ारों के अन्तर्गत उल्लेखित औपचारिक समझौतो की वह स्थिति है जब उद्योग में कार्यरत फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता (कीमत युद्ध) से बचने के लिए आपस में संघ गुट का निर्माण कर लेती है। तत्पश्चात् कीमतों, उत्पादन की मात्रा, लाभ अधिकतमीकरण सम्बन्धित समान नीतियों के संदर्भ में समझौता कर लेती है जिनका उद्देश्य दीर्घकालीन नियोजित लाभ को प्राप्त करना, वर्तमान बाज़ार व्यवस्था में बनायें रखना और परस्पर निर्भरता तथा मांग वक्र की अनिश्चितता को काफी हद तक दूर करना होता है। विश्व अर्थव्यवस्था में पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन (ओपेक) कॉर्टेल के स्वरूप का वर्णन करता है। कार्टेल वह व्यवस्था है जिसके अंतर्गत विभिन्न फर्में आपस में संयोजन केवल कीमत को निश्चित करने के उद्देश्य से ही नहीं करतीं बल्कि उनका उद्देश्य बाज़ार में प्रत्येक के अंश के संबंध में सहमत होना भी होता हैं। कार्टेल बाज़ार में अन्य फर्मों के प्रवेश पर रोक लगाने का प्रयास तो कर सकता है, परन्तु ऐसा करने का उसके पास कोई नियम एवं विनियमन नहीं होता। कॉर्टेल निर्माण क्रियाविधि के आधार पर मुख्यरूप से दो प्रकार से दिखायी देता है। संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण कॉर्टेल (Cartel Aiming at Joint Profit Maximization) और बाज़ार विभाजन वाला कॉर्टेल (Market Sharing Cartels)।

संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण करने वाला कॉर्टेल, कपट संधि अल्पधिकारी बाज़ारों के अन्तर्गत उल्लिखित औपचारिक समझैतों की वह स्थिति है जब एक उद्योग में कार्यरत फर्में कीमत युद्ध से बचने के लिए संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण संबंधी समान नीतियों के संदर्भ में संघ/गुट का निर्माण करती हे। जिसका उद्देश्य दीर्घकालीन नियोजित लाभ को प्राप्त करना होता है। संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण कॉर्टेल की मान्यताओं में मुख्यरूप से उद्योग में दो सदस्य फर्में समांग वस्तुओं या पूर्ण प्रतिस्थपित वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। केन्द्रीय ऐजेन्सी द्वारा कुल बाज़ार का अनुमान सीमान्त आय (MR) और सीमान्त लागत (MC) के क्षैतिजीय योग (Horizontal Summation) द्वारा किया जाता है। संयुक्त लाभ अधिकतम करने के लिए गुट विचार–विमर्श और दूरदर्शिता का प्रयोग करके एक केन्द्रीय ऐजेन्सी/नोडल ऐजेन्सी का निर्माण करता है। यह ऐजेन्सी बहुप्लांटीय एकाधिकारी की भांति उत्पादन मात्रा, कीमत, विक्रय मात्रा इत्यादि गतिविधियों के सन्दर्भ में समान नीतियों का निर्धारण करता है। जिस पर सदस्य फर्मों के संयुक्त लाभ

अधिकतम हो सके और सभी फर्में उसे स्वीकार कर लेती है। नोडल ऐजेन्सी द्वारा बनाये गये अनुदेशों के आधार पर सदस्य फर्मों के मध्य लाभ का वितरण होता है। संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण कार्टेल को एक चित्र द्वारा समझा जा सकता है। कार्टेल में दो फर्में A एवं B हैं। A बड़ी और B छोटी फर्में में हैं। केन्द्रीय ऐजेन्सी द्वारा फर्मों के MR और MC वक्र के क्षैतिजीय योग द्वारा कार्टेल कीमत का निर्धारण किया जाता है।

चित्र–III

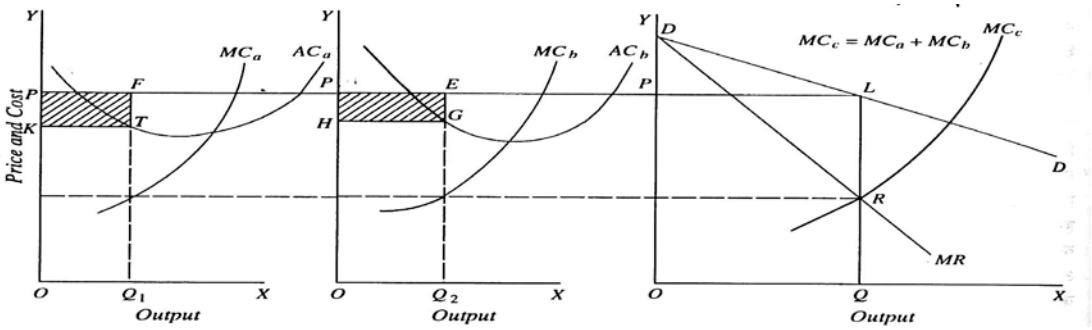

चित्र I में, a फर्म का कुल उत्पादन OQ_1 और कीमत OP है तथा उत्पादन की लागत OK है। जबकि b फर्म की लागत a से अधिक है। इस स्थिति में OP कीमत रखकर कार्टेल का निर्माण कर दिया जाता है। कुल उत्पादन का क्षैतिजीय योग बनाकर OQ उत्पादन और OP कीमत निर्धारित होता है जिस पर सभी फर्मों का लाभ अधिकतम होता है। वस्तुतः चित्र III में L बिन्दु संतुलन बिन्दु को दर्शाता है जो सीमान्त लागत के योग द्वारा होता है।

बाज़ार विभाजन वाला कॉर्टेल, अल्पाधिकारी बाज़ार परिस्थिति में कपट संधि के अन्तर्गत औपचारिक समझौतो के स्वरूप में बाज़ार विभाजन कॉर्टेल अधिक लोकप्रिय है। उसके अन्तर्गत उद्योग में कार्यरत फर्में बाज़ार विभाजन या निश्चित बाज़ार में आपूर्ति के लिए निश्चित कीमत या मात्रा के लिए संघ बनाती है या सहमति प्रकट करती है। इसके पीछे प्रमुख कारण एकाधिकारी कीमत प्राप्त करना, बाज़ार व्यवस्थाओं में बनाये रखना, परस्पर निर्भरता और मांग वक्र की अनिश्चितता को काफी हद तक समाप्त करना। बाज़ार में हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए यदि कीमत स्थिर है तो रणनीतिक निर्णय के आधार पर उत्पादन मात्रा, कीमत या कोटा मात्रा को निर्धारित करना होता है जबकि अन्य निर्णयों में विज्ञान व्यय, उत्पाद के डिज़ाइन, बाहरी पैकिंग तथा सेवाएं/छूट देना इत्यादि शामिल होता है।

बाज़ार विभाजित कॉर्टेल के सन्दर्भ में गैर कीमत प्रतियोगिता समझौता (Non - Price Competition Agreements)] उद्योग में कार्यरत फर्मों के विचार–विमर्श के बाद सौदेकारी शक्ति (Bargaining Power) के द्वारा एक निश्चित मूल्य तय हो जाता है जिसे सभी फर्मों को स्वीकार हो जाता है। कीमत के सन्दर्भ में समझौता (लागत के आधार पर) हो जाता है परन्तु अन्य निर्णय जैसे विज्ञापन व्यय, उत्पाद के ड़िजाइनों, बाहरी पैकिंग, विक्रय के उपरान्त सेवाएँ प्रदान करना, उपहार देना/छूट देना, मार्केट चैनल, उत्पाद की गुणवत्ता को बताना इत्यादि के संदर्भ में कोई समझौता नही होता है जिससे प्रतिस्पर्धा युक्त वातावरण बना रहता है। अतः बाज़ार विभाजन के उपरान्त गैर कीमत प्रतियोगिता की स्थिति बनी रहती है। फलतः कॉर्टेल को अस्थिर कॉर्टेल कहा जाता है।

बाज़ार विभाजन के द्वारा उत्पाद कोटा समझौता कॉर्टेल (Sharing of Market by Agreement on Quotas Production) को भौगोलिक क्षेत्र द्वारा कॉर्टेल भी कहा जाता है। बाज़ार उत्पाद कोटा समझौता उद्योग में कार्यरत फर्मों की सौदेबाज़ी शक्ति और लागत ढांचे और भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर सदस्य फर्मों द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तु की मात्रा (कोटा) निश्चित कर दी जाती है और एकाधिकारी कीमत का निर्धारण कर दिया जाता है। वस्तुतः फर्मों के मध्य सीमांत लागत समानता के आधार पर बाज़ार मे समान मात्रा (कोटा) का विक्रय होता है। इस परिस्थिति में काफी हद तक फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने का प्रयास करती है। इन विभिन्न संगठनात्मक व्यवस्थाओं का मुख्य उद्देश्य यह देखना होता है कि कीमत–युद्ध न हो तथा जहां तक संभव हो नई फर्मों को बाज़ार में आने से रोका जा सके। अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत–निर्धारण के कुछ सिद्धांतों में प्रवेश पर अवरोध के संबंध में विशेष रूप से ध्यान दिया जाता हैं जैसे सीमा कीमत निर्धारण सिद्धांत। कोई अल्पाधिकारी क्या करना चाहेगा या उसे क्या करना चाहिए उसके संबंध में अनेक अस्थायी व्याख्याएं हो सकती हैं परन्तु जिस कीमत पर उसे संतुलन की स्थिति में माना जा सकता है उसके संबंध में कोई संतोषजनक सैद्धांतिक स्पष्टीकरण नहीं है। कपट समझौता युक्त अल्पाधिकार में फर्मे समझौते से परे जाकर विक्रय किये जाने वाले उत्पादो की किस्मों, कीमतों और उत्पादन के अंश में अंतर के कारण कपट संधि टूटने लगता है। फिर भी, अनौपचारिक कपट संधि, औपचारिक कपट समझौते की अपेक्षा अच्छी तरह कार्य करता है। चूंकि, कपट संधि में गला काट प्रतियोगिता होती रहती है इसलिए कपट समझौतायुक्त अल्पाधिकार की स्थिति में विखराव उत्पन्न हो जाता है। अतः उपभोक्ताओं को उचित लाभ प्राप्त होने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। इस कमी को दूर करने के लिए गैर कपट अल्पाधिकार को बढ़ावा दिया गया।

बाजार विभाजन वाले कार्टेल में भी संयुक्त लाभ कार्टेल की तरह दो फर्में 1 व 2 हैं। इस कार्टेल में उत्पादित वस्तुओं के आधार पर मात्रा निश्चित कर दिया जाता है और सन्तुलन बिन्दु निर्धारित कर दिया जाता है। जैसे–

चित्र–IV

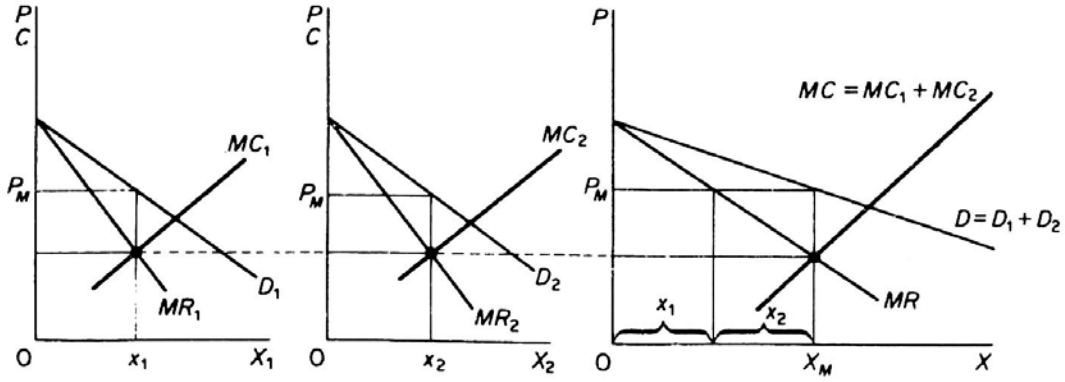

उत्पादित मात्रा

चित्र–IV से स्पष्ट है कि सीमान्त लागतों को समान रखकर उत्पादन कोटा के आधार पर कार्टेल का निर्माण कर लिया जाता है। यहाँ पर फर्में P_M कीमत पर

संतुलन में होती है। वस्तुतः P_M कीमत निर्धारित होकर बाजार में उत्पाद कोटा OX_M निर्धारित कर लिया जाता है। इसी प्रकार गैर कीमत प्रतियोगिता समझौते में भी संतुलन प्राप्त किया जाता है। लेकिन कार्टेल की प्रकृति अस्थिरकारी होने लगती है जब विक्रय सौदेकारी निर्णय (जैसे उत्पाद डिजाइन, छूट देना, मार्केट बिक्री चैनल इत्यादि) को बढ़ावा मिलने लगता है। फिर भी फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता तथा कीमत युद्ध से बचने में कार्टेल द्वारा सहायता प्राप्त हो जाता है।

बोध प्रश्न क

1. **अल्पाधिकार बाज़ार को परिभाषित कीजिए।**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. **कपट संधि अल्पाधिकार को स्पष्ट कीजिए।**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. **संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण करने वाला कॉर्टेल से आप क्या समझते है।**

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. **निम्नलिखित में से सही या गलत कथनों को चुनिए।**

i) कपट संधि अल्पाधिकारी बाज़ारो में कीमत और उत्पाद के सम्बन्ध में फर्मे कोई समझौता नहीं करती हैं।

ii) अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति में उत्पादको की संख्या बहुत अधिक होती है।

iii) कॉर्टेल के सन्दर्भ में गैर कीमत प्रतियोगिता समझौता, उद्योग में कार्यरत फर्मों के विचार–विमर्श के बाद सौदेकारी शक्ति के द्वारा एक निश्चित मूल्य तय किया जाता है।

iv) प्रधान फर्म/बड़ी फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व में उत्पादित वस्तुएं कुल बाज़ार मांग के अधिक से अधिक हिस्से की आपूर्ति करती है।

v) अल्पाधिकारी बाज़ारों में विक्रेताओं के मध्य, माग वक्र की अनिश्चितता और कीमत–युद्ध **(Price War)** की स्थिति देखी जाती है।

16.4 गैर कपट समझौतो के अंतर्गत कीमत और उत्पादन संतुलन

गैर कपट अल्पाधिकार **(Non Collusive Oligopoly)** से आशय है कि फर्मों के मध्य जब कोई समझौता नही होता है अर्थात् फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता की उपेक्षा होती है। इस स्थिति में फर्में कीमत व मात्रा के सम्बन्ध प्रतिद्वन्दी फर्मों की प्रतिक्रिया का अनुसरण नहीं करती है। कूर्नो का द्वयाधिकार माडल, और विकुंचित मांग वक्र की अवधारणा गैर कपट अल्पाधिकार से सम्बन्धित है। अल्पाधिकार के अंतर्गत संतुलन विश्लेषण को प्रतिबंधात्मक धारणाओं के आधार पर व्यक्त किया जाता हैं। अल्पाधिकार की विशेष स्थिति को द्वयाधिकार माडल के रूप में जाना जाता है। जिसमें मुख्यरूप से दो उत्पादकों के मध्य कीमत एवं उत्पादन से सम्बन्धित क्रिया का अध्ययन किया जाता हैं। द्वयाधिकार के संबंध में विश्लेषण उत्पादकों के प्रवेश के संबंध में पूर्ण अवरोध होता हैं। द्वि–अधिकार के विश्लेषण के दौरान प्रायः यह मान लिया जाता है कि प्रथम उत्पादक यदि अपने उत्पादन और कीमत में परिवर्तन कर लेता है तब भी अन्य प्रतियोगी उत्पादक ऐसा नहीं करते। द्वयाधिकार विश्लेषण का सबसे अच्छा उदाहरण कूर्नो माडल है।

16.4.1 द्वयाधिकार का कूर्नो माडल

कूर्नो के प्रतिष्ठित द्वयाधिकार माडल शून्यकल्पित परिवर्तनशीलता, शून्य उत्पादन लागत इत्यादि की मान्यता के साथ खनिज जल बनाने वाली द्वयाधिकारी फर्मों में प्रथम फर्म एकाधिकारी की भांति कुल बाज़ार मांग को अपनी मांग मानते हुए आधे $(\frac{1}{2})$ हिस्से पर उत्पादन और कीमत का निर्धारण करती है जिस पर फर्म का व्यक्तिगत लाभ अधिकतम हो यदि प्रथम फर्म $=\frac{1}{2},\frac{3}{8},\frac{11}{32}.....=\frac{1}{3}$ बाज़ार मांग व दूसरी फर्म पहली फर्म के उत्पादन का कीमत नीति से स्वतंत्र होकर आधी $(\frac{1}{2})$ बाज़ार मांग को अपना मांग वक्र मानकर आधे के आधे $(\frac{1}{4})$ हिस्से पर उत्पादन व कीमत का निर्धारण करती है। जिस पर फर्म का व्यक्तिगत लाभ अधिकतम हो, तो दूसरी फर्म का उत्पादन $=\frac{1}{4},\frac{5}{16},\frac{21}{64}.....\frac{1}{3}$ बाज़ार मांग को पूरा करता है। इस स्थिति में प्रथम फर्म के लाभ में कमी होने के कारण शेष बाज़ार मांग के आधे के

आधे हिस्से $(\frac{3}{8})$ पर उत्पादन व कीमत नीति का निर्धारण करती है तत्पश्चात् दूसरी फर्म भी इसी प्रकार की प्रतिक्रिया करती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक प्रत्येक फर्म स्थायी $(\frac{1}{3})$ बाज़ार हिस्से पर उत्पादन न करने लगे। संयुक्तरूप से संतुलन वहाँ होगा जहाँ फर्में कुल बाज़ार के $(\frac{2}{3})$ हिस्से पर उत्पादन करती है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गैर कपट संधि के अन्तर्गत कूर्नो का माडल स्थायी संतुलन की शर्त की व्यवस्थित व्याख्या कर सकता है। कूर्नो के मॉडल में स्थायी संतुलन को अधिक स्पष्ट करने के लिए स्टेकलबर्ग (Staekleberg) के प्रतिक्रिया वक्रो से स्पष्ट किया जाता हैं। कूर्नो ने द्वयाधिकार माडल की व्याख्या के लिए दो खनिज जल बनाने वाली दो फर्मों को लेते है। जिनकी उत्पादन लागत शून्य है अर्थात् बाज़ार के मांग पक्ष का विश्लेषण करते है और परिभाषित करते है कि प्रतिद्वन्दी का उत्पादन स्तर निश्चित रहता है।

कूर्नो के द्वयाधिकार माडल में उत्पादन का निर्धारण एक चित्र द्वारा देखा जा सकता है। जिसमें दो फर्में A और B है। जिनकी उत्पादन लागत शून्य है। कूर्नो संतुलन को दिखाने के लिए प्रतिक्रिया वक्रों का भी सहारा लिया जाता है जिसे स्टेकलवर्ग द्वारा व्यक्त किया गया था। यदि A व B दो फर्में हो तो A का प्रतिक्रिया वक्र, B की प्रतिक्रिया में A के उत्पादन मात्राओं को व्यक्त करता है।

चित्र–V

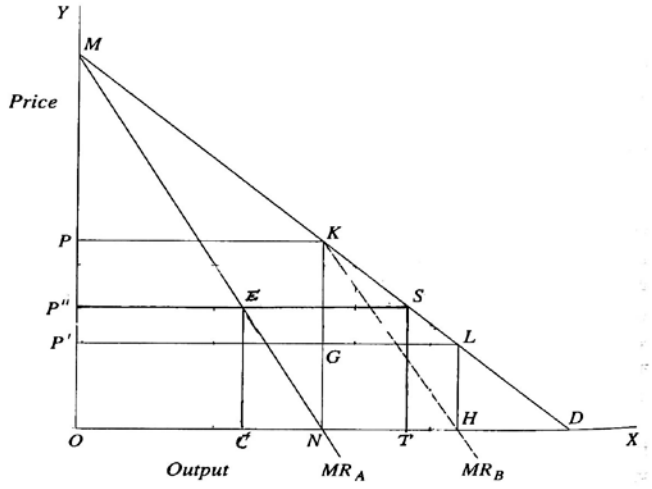

चित्र–V से स्पष्ट है कि A फर्म का कुल बाजार के आधे हिस्से पर उत्पादन सुनिश्चित करता है। A फर्म का कुल लाभ ONKP है। जबकि B फर्म बाजार में उत्पादन करती है तो A फर्म के लाभ में कमी होती है। क्योंकि B फर्म NH उत्पादन करके A फर्म के कुछ लाभ को प्राप्त करती है। यह क्रिया–प्रतिक्रिया तब तक चलती रहती है जब प्रत्येक फर्म 1/3 बाजार हिस्से पर उत्पादन करने लगती है और फर्मों का कुल उत्पादन 2/3 हो जाता है। इस संतुलन शर्त को स्टेकलवर्ग के प्रतिक्रिया वक्रों से देखा जा सकता ळें

चित्र–VI

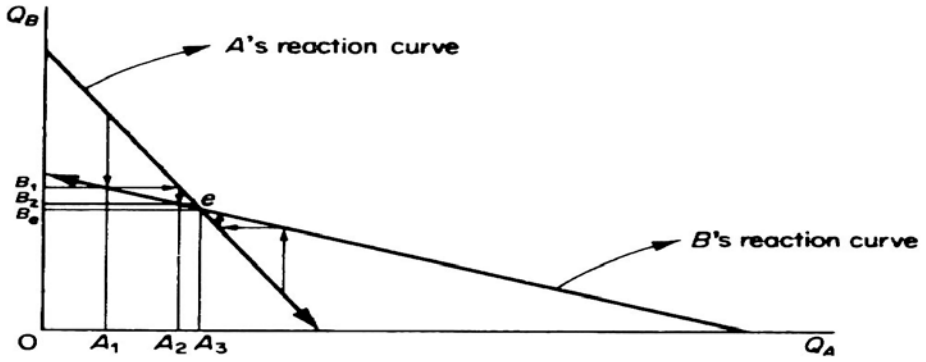

चित्र–VI में e बिन्दु पर फर्में यह सोचती है कि वर्तमान उत्पादन रणनीति अनुकूलतम रणनीति है। इस बिन्दु पर संयुक्त उत्पादन 2/3 हिस्से पर उत्पादन होता है। फिर भी फर्में अनुकूलतम स्थिति में कार्य नहीं कर पाती है अर्थात् 'No Learning by doing concept' पर कार्य करती है।

चेम्बरलिन का अल्पाधिकार लघु समुह माडल (Small Group Oligopoly Model of Chamberlines's) कूर्नो के द्वयाधिकार माडल पर सुधार के रूप में स्वीकार किया जाता है। क्योंकि जहां प्रतिष्ठित कूर्नो माडल शून्य कल्पित परिवर्तनशीलता की मान्यता के साथ फर्में परस्पर निर्भरता की उपेक्षा करती है, वही चेम्बरलिन माडल विगत की गलतियों से सीखते हुए एक दूसरे के सह–आस्तित्व (परस्पर निर्भरता) को स्वीकार करते हुए बिना कपट संधि के संयुक्त लाभ को अधिकतम करती हैं और स्थायी संतुलन की व्याख्या करती है। अल्पाधिकारी उद्योग के अन्तर्गत उल्लिखित अल्प समूह माडल फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता, कुल निर्णय प्रभाव और करने से सीखने की मान्यता को स्वीकार करते हुए समान वस्तुओं के उत्पादन में एक फर्म कुल बाज़ार मांग के आधे हिस्से को अपनी मांग मानते हुए, अपनी मांग के आधे हिस्से पर नियंत्रण रखती है और लाभ को अधिकतम करती है।

16.4.2 विकुंचित मांग वक्र माडल

अल्पाधिकारी बाज़ारों में उल्लेखित गैर कपट संधि के अन्तर्गत विकुंचित मांग वक्र की व्यवस्थित और क्रमवद्ध अवधारणा का प्रतिपादन पाल स्वीजी द्वारा अपने लेख Demand Under Conditions of Oligopoly 1939 में किया गया। वस्तुतः इस सन्दर्भ का प्रयोग हाल और हिच द्वारा भी किया गया लेकिन पूर्ण रूप से व्याख्या नही कर पाये। स्वीजी ने अनुभवजन्य अध्ययन से बताया कि अल्पाधिकरी फर्में कीमत दृढ़ता प्रदर्शित करती है न की कीमत निर्धारण अर्थात् फर्मों के मध्य कीमत निर्धारण हो जाने के बाद कीमत परिवर्तन की सम्भावना कम पायी जाती है अर्थात् संतुलन मे कठोरता (Stickiness) पाया जाता है। स्वीजी का माडल यह स्पष्ट करता है कि कीमत–युद्ध से बचने के लिए यदि एक फर्म अपनी कीमत को कम करता है तो अन्य फर्में भी अपनी–2 कीमत को उस सीमा तक घटायेंगे जिससे बाज़ार में उनका अंश पहले जैसा बना रहे। इसके अतिरिक्त, एक फर्म अपनी कीमत बढ़ाती है तब अन्य फर्में स्वीकार नहीं करती अर्थात् जब कोई अल्पाधिकारी अपनी कीमत को बढ़ाता है तब प्रतियोगी वैसा नहीं करेंगे और जब वह कीमत को घटाता है तब वे भी उतना ही घटा देते है। अतः मांग–कीमत वक्र किसी एक बिन्दु पर विकुंचित/किंक (kink) हो जाता है। इस दश में एक अल्पाधिकारी कीमत में

परिवर्तन इसलिए नहीं करता कि यदि वह वर्तमान स्तर से कीमत को बढ़ायेंगा तो अन्य अल्पाधिकारी अपनी कीमतें नहीं बढ़ाएंगे जिससे प्रथम अल्पाधिकारी को बाज़ार के कुछ हिस्से को खोना पड़ेगा और यदि प्रथम अल्पाधिकारी कीमत को कम करता है तब उसकी स्थिति यथापूर्व बनी रहेगी क्योंकि अन्य अल्पाधिकारी अपनी कीमतो को कम कर देंगे। फलतः अल्पाधिकारी, कीमत को एक बार निश्चित करने के बाद उसमें परिवर्तन की संभावना को नकार देता है। इस प्रकार, विंकुचित मांग वक्र विश्लेषण यह स्पष्ट कर देता है कि औपचारिक कपट समझौता के बिना अल्पाधिकारी बाज़ारों में कीमत दृढ़ता पाई जाती है।

अल्पाधिकारी उद्योग मे कार्यरत फर्में जिस मांग वक्र का अनुसरण करती है वह वर्तमान कीमत पर विकुंचित होता है और संगत सीमान्त आय (MR) वक्र विखाण्डित होता है। इसके पीछे प्रमुख कारण फर्में यह विश्वास करती है कि यदि वस्तु की कीमत वर्तमान कीमत से अधिक रखनी है तो सम्भावना अत्यन्त कम है कि अन्य फर्में इसका अनुसरण करेंगी जिससे ऊपर का भाग अपेक्षाकृत अधिक लोचदार, और एक फर्म कीमत कम रखती है तो सम्भावना अधिक कि अन्य फर्में इसके अनुसरण करेगी और नीचे का मांग वक्र अपेक्षाकृत बेलोचदार हो जाता है। विकुंचित मांग वक्र विश्लेषण अल्पाधिकारी बाज़ारों में कीमत निर्धारण की व्याख्या न करके बल्कि कीमत दृढ़ता की व्याख्या करता है अर्थात् अल्पाधिकारी फर्मों का मांग वक्र वर्तमान कीमत स्तर पर विकुंचित होता है। जिससे आशय है कि एक फर्म का मांग वक्र वर्तमान कीमत स्तर से ऊपर का भाग अपेक्षाकृत लोचदार और नीचे का मांग वक्र अपेक्षाकृत बेलोचदार होता है। लोचो के अन्तर के कारण मांग वक्र विकुंचित हेाता है मांग वक्र विकुंचन के कारण संगत सीमान्त आय (MR) वक्र विखण्डित होता है सीमान्त आय (MR) वक्रो के दोनों खण्डों के मध्य सान्तरता (Gaps) मांग वक्र के लोच पर निर्भर करता है लोचो का अन्तर जितना अधिक सीमान्त आय (MR) में सान्तरता उतना अधिक होने के कारण कीमत दृढ़ता उतना ही अधिक होती है। कीमत में कमी और लागतो में कमी की दशा में कीमत दृढ़ता अधिक देखी जाती है। जबकि कीमत में वृद्धि और लागतो में वृद्धि की स्थिति में कीमत दृढ़ता कम पायी जाती है। विकुंचित मांग वक्र की अवधारणा को एक चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

चित्र–VII

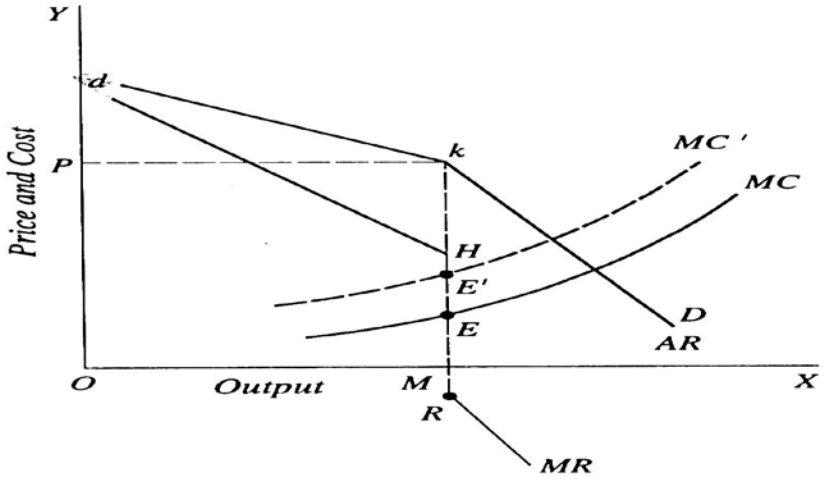

k बिन्दु विकुंचन बिन्दु है जिस पर फर्में कीमत दृढ़ता को व्यक्त करती है। इस विकुंचन के कारण MR वक्र विखण्डित है अर्थात् dH के बाद R दिखायी पड़ता है। यदि दोनों मांग वक्रों (अधिक लोचदार व अधिक बेलोचदार) के लोचों में अन्तर अधिक हो तो MR वक्रों में सान्तरता (Gap) अधिक होगा और दोनों मांग वक्रों में लोचों का अन्तर कम हो तो MR वक्रों में सान्तरता (Gap) कम होगा अर्थात् मूल्य दृढ़ता में कमी आयेगी। इस प्रकार स्वीजी औसत और सीमांत आगम वक्रों के साथ सीमांत लागत वक्र को लाकर कपट समझौता के बिना अल्पाधिकारी बाजारों में संतुलन का निर्धारण करते है। यह संतुलन विन्दु, विकुंचित विन्दु k पर पाया जाता है इस विन्दु पर औसत आगत वक्र को, औसत लागत वक्र स्पर्श करता है अर्थात् दोनों बराबर होते है। जिसे विकुंचन संतुलन शर्त के नाम से भी जाना जाता है।

16.5 अल्पाधिकार का आर्थिक परिदृश्य और प्रासंगिकता

वर्तमान व्यवस्थता में सबसे अधिक प्रासंगिक बाज़ार स्थिति को अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति कहा जाता है। अतः यह देखना आवश्यक हो जाता है कि समाज के आर्थिक कल्याण पर अल्पाधिकारी बाज़ार की क्या प्रासंगिकता है? अल्पाधिकारी बाज़ारो के अंतर्गत फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए आपस में कपट संधि और गैर कपट संधि को बढ़ावा देती हैं। इस समझौतो के माध्यम से अल्पाधिकारी वस्तु की कीमत को बहुत ऊंची रखने का प्रयास करता है जिससे फर्मों का लाभ अधिकतम हो सके। इसके साथ अल्पाधिकारी बाज़ार में नयी फर्मों के प्रवेश पर रोक, तथा गला काट प्रतियोगिता को बढ़ावा देकर एकाधिकारी कीमत को स्थापित करने का प्रयास करती है। इस स्थिति में समाज के आर्थिक बचत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परन्तु परस्पर निर्भरता के कारण फर्में आपस में गला काट प्रतियोगिता, नयी फर्मों के प्रवेश के भय से और बाज़ार में अपनी वस्तुओं की पूर्ति बढ़ाने के उद्देश्य से कीमतों में नम्यता की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। इस स्थिति में समाज के रहन सहन स्तर में वृद्धि और आर्थिक स्थिति में सुधार होता है। यही स्थिति अल्पाधिकारी बाज़ारो में सार्वभौमिक रूप से दिखाई पड़ती है। अतः कहा जा सकता है कि अल्पाधिकारी बाज़ारो का समाज के आर्थिक कल्याण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त, अल्पाधिकारी बाज़ारो के अंतर्गत विभेदितकृत उत्पादो के लिए नयी उत्पादन प्रक्रियाएं, विधियों तथा प्रोद्योगिकीय परिवर्तन होते रहते हैं। इन प्रक्रियाओं के प्रोत्साहन एवं अनुसंधान से समाज को उपयोगितायूक्त वस्तुओं की नई किस्में प्राप्त होने लगती है। जिससे समाज के संतुष्टि स्तर में वृद्धि होने लगती हैं और समाज को लाभ प्राप्त होने लगता हैं।

फिर भी अल्पाधिकारी बाज़ारों में, एकाधिकारी गुण पायें जाने के कारण संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग या पूर्णक्षमता उपयोग सुनिश्चित नहीं हो पाता हो पाता है फलतः आर्थिक पैमानों के अनुसार आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो पाती हैं। वस्तुतः जहां तक अल्पाधिकारी बाज़ारों में, एकाधिकारी कीमत का संबंध है उसके लिए सरकार द्वारा न्यास–विरोधी (Anti-Trust) कानूनों को बनाकर और सयुक्तरूप से एकमुश्त कर लगाकर अल्पाधिकारी से कुछ संसाधनों का हस्तान्तरण अपने पास कर सकती है तत्पश्चात् उसी संसाधनों को समाज पर व्यय करके सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ा सकती है। इस सन्दर्भ में 1 जुलाई 2017 से लागू वस्तु और सेवा कर (GST) अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

16.6 सारांश

पूर्ण प्रतियोगी और एकाधिकारी बाज़ार की स्थिति व्याहारिक जीवन में नहीं दिखाई पड़ती है। इन दोनों के मध्य अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति पायी जाती है। जिसमें विक्रेताओं की संख्या दो या दो से अधिक होती है लेकिन बहुत अधिक नहीं। इस स्थिति में विक्रेताओं/फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता, समूह व्यवहार, विज्ञापन महत्व, मांग वक्र की अनिश्चितता आदि के कारण कीमत–युद्ध (Price War) की स्थिति देखी जाती है। प्रत्येक फर्म वस्तु की कीमत, उत्पादन, किस्म, विक्रय आदि को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। इस बाज़ार में उत्पादित वस्तुए सहजतीय और विभेदीकृत होती है। अल्पाधिकारी मुख्यरूप से दो प्रकार के होते हैं। प्रथम उत्पाद विभेदक अल्पाधिकार या अपूर्ण अल्पाधिकार और द्वितीय उत्पाद विभेदकरहित अल्पाधिकार या पूर्ण अल्पाधिकार। जबकि अल्पाधिकारी बाजारो की प्रकृति कपट संधि अल्पाधिकार और गैर कपट संधि अल्पाधिकार की पायी जाती है।

कपट संधि अल्पाधिकार में फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए आपस में विचार–विमर्श के द्वारा कुछ औपचारिक और अनौपचारिक समझौते करती है। जब किसी एक फर्म विशेष को अग्रणी मान लिया जाता है और उसे उस कीमत को निर्धारित करने का विशेषाधिकार दे दिया जाता है जिसे अन्य फर्में भी अपनी वस्तु की कीमत के रूप में स्वीकार कर लेती है। इन समझौतों का महत्वपूर्ण स्वरूप कीमत नेतृत्व और का कार्टेल है। कीमत नेतृत्व में, फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए किसी एक फर्म को कीमत नेतृत्व स्वीकार करनी होती है। इसके द्वारा निर्धारित मूल्य को अन्य फर्में स्वीकार कर लेती है। कीमत नेतृत्वकर्त्ता फर्में एकाधिकारी की भांति कीमत व मात्रा का निर्धारण करती है जिसे अनुसरणकर्त्ता फर्में पूर्ण प्रतियोगी फर्मों की भांति स्वीकार कर लेती है। यह एक प्रकार का गुप्त समझौता हेाता है। कीमत नेतृत्व मुख्यरूप प्रकार कम लागत कीमत नेतृत्व माडल, प्रधान फर्म/अधिक लागत वाली फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व और स्थितिमान फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व माडल। कॉर्टेल औपचारिक समझौतो की वह स्थिति है जब उद्योग में कार्यरत फर्में लाभ अधिकतमीकरण सम्बन्धित समान नीतियों के संदर्भ में समझौता कर लेती है जिनका उद्देश्य दीर्घकालीन नियोजित लाभ को प्राप्त करना, वर्तमान बाज़ार व्यवस्था में बनायें रखन और परस्पर निर्भरता तथा मांग वक्र की अनिश्चितता को काफी हद तक दूर करना होता है। कॉर्टेल निर्माण क्रियाविधि के आधार पर मुख्यरूप से दो प्रकार से संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण कॉर्टेल और बाज़ार विभाजन वाला कॉर्टेल । कॉर्टेल के सन्दर्भ में गैर कीमत प्रतियोगिता समझौता, उद्योग में कार्यरत फर्मों के विचार–विमर्श के बाद सौदेकारी शक्ति के द्वारा एक निश्चित मूल्य तय हो जाता है जिसे सभी फर्मों को स्वीकार हो जाता है।

गैर कपट अल्पाधिकार में फर्मों के मध्य जब कोई समझौता नही होता है अर्थात् फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता की उपेक्षा होती है। इस स्थिति में फर्में कीमत व मात्रा के सम्बन्ध प्रतिद्वन्दी फर्मों की प्रतिक्रिया का अनुसरण नही करती है। कूर्नो का द्वयाधिकार माडल, और विकुंचित मांग वक्र की अवधारणा गैर कपट अल्पाधिकार से सम्बंधित है। कूर्नो का प्रतिष्ठित द्वयाधिकार माडल में दो उत्पादकों के मध्य

कीमत एवं उत्पादन से सम्बंधित क्रिया का अध्ययन किया जाता हैं। दोनों फर्मो का संयुक्तरूप से संतुलन वहां होगा जहां फर्में कुल बाज़ार के $\frac{2}{3}$ हिस्से पर उत्पादन करती है। कूर्नों के माडल में स्थायी संतुलन को अधिक स्पष्ट करने के लिए स्टेकलबर्ग (Staekleberg) के प्रतिक्रिया वक्रो से स्पष्ट किया जाता हैं। कूर्नों के द्वयाधिकार माडल पर चेम्बरलिन का लघु समुह माडल एक सुधार के रूप में स्वीकार किया जाता है क्योंकि चेम्बरलिन माडल विगत की गलतियों से सीख लेती है।

विकुंचित मांग वक्र की अवधारणा का प्रतिपादन पाल स्वीजी द्वारा किया गया। जो अल्पाधिकरी बाजारों में कीमत दृढ़ता प्रदर्शित करता है न की कीमत निर्धारण अर्थात् फर्मों के मध्य कीमत निर्धारण हो जाने के बाद कीमत परिवर्तन की सम्भावना कम पायी जाती है अर्थात संतुलन में कठोरता (Stickiness) पाया जाता है। फर्मों मांग–कीमत वक्र किसी एक बिन्दु पर विकुंचित/किंक होता है। इस दशा में एक अल्पाधिकारी कीमत में परिवर्तन इसलिए नहीं करता कि यदि वह वर्तमान स्तर से कीमत को बढ़ायेंगा तो अन्य अल्पाधिकारी अपनी कीमतें नहीं बढ़ाएंगे जिससे प्रथम अल्पाधिकारी को बाज़ार के कुछ हिस्से को खोना पड़ेगा और यदि प्रथम अल्पाधिकारी कीमत को कम करता है तब उसकी स्थिति यथापूर्व बनी रहेगी क्योंकि अन्य अल्पाधिकारी अपनी कीमतो को कम कर देंगे। फलता अल्पाधिकारी, कीमत को एक बार निश्चित करने के बाद उसमें परिवर्तन की संभावना को नकार देता है। इस प्रकार, विकुंचित मांग वक्र विश्लेषण यह स्पष्ट कर देता है कि औपचारिक कपट समझौता के बिना अल्पाधिकारी बजारों में कीमत दृढ़ता पाई जाती है। मांग वक्र विकुंचन के कारण संगत सीमान्त आय (MR) वक्र विखण्डित होता है सीमान्त आय (MR) वक्रों के दोनों खण्डों के मध्य सान्तरता (Gaps) मांग वक्र के लोच पर निर्भर करता है लोचो का अन्तर जितना अधिक सीमान्त आय (MR) में सान्तरता उतना अधिक होने के कारण कीमत दृढ़ता उतना ही अधिक होती है। कीमत में कमी और लागतो में कमी की दशा में कीमत दृढ़ता अधिक देखी जाती है। स्वीजी औसत और सीमांत आगम वक्रों के साथ सीमांत लागत वक्र को लाकर कपट समझौता के बिना अल्पाधिकारी बाजारों में संतुलन का निर्धारण करते है।

वर्तमान व्यवस्थता में सबसे अधिक प्रासंगिक बाज़ार स्थिति को अल्पाधिकार बाज़ार स्थिति कहा जाता है। अल्पाधिकारी बाज़ारों के अंतर्गत फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए आपस में कपट संधि और गैर कपट संधि को बढ़ावा देती है। अल्पाधिकारी बाज़ारो के अंतर्गत विभेदितकृत उत्पादो के लिए नयी उत्पादन प्रक्रियाएं, विधियों तथा प्रोद्योगिकीय परिवर्तन होते रहते हैं। इन प्रक्रियाओं के प्रोत्साहन एवं अनुसंधान से समाज को उपयोगितायुक्त वस्तुओं की नई किस्में प्राप्त होने लगती हैं। जिससे समाज के संतुष्टि स्तर में वृद्धि होने लगती हैं और समाज को लाभ प्राप्त होने लगता हैं। वस्तुतः जहां तक अल्पाधिकारी बाज़ारो में, एकाधिकारी कीमत का संबंध है उसके लिए सरकार द्वारा न्यास–विरोधी (Anti-Trust) कानूनों को बनाकर और संयुक्तरूप से एकमुश्त कर लगाकर अल्पाधिकारी से कुछ संसाधनो का हस्तान्तरण अपने पास कर सकती है तत्पश्चात् उसी संसाधनों समाज पर व्यय करके सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ा सकती

है। इस सन्दर्भ में 1 जुलाई 2017 से लागू वस्तु कर (**GST**) अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

बोध प्रश्न ख

1. **गैर कपट अल्पाधिकार से आप क्या समझते हैं?**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. **द्वयाधिकार माडल को परिभाषित कीजिए।**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

3. **विकुंचित मांग वक्र की अवधारणा को समझाइये।**

.....
.....
.....
.....
.....
.....

4. **निम्नलिखित सही या गलत कथनों को चुनिए।**

(i) विकुंचित मांग वक्र की अवधारणा, कीमतों की अनम्यता का द्योतक होता है।

(ii) कूर्नो ने द्वयाधिकार माडल की व्याख्या के लिए दो खनिज जल बनाने वाली फर्मों को लेते है जिनकी उत्पादन लागत शून्य है।

(iii) चेम्बरलिन का अल्पाधिकार लघु समुह माडल, कूर्नो के द्वयाधिकार माडल पर सुधार के रूप में स्वीकार नही किया जाता है।

(iv) अल्पाधिकारी उद्योग मे कार्यरत फर्मों का मांग वक्र वर्तमान कीमत पर विकुंचित होता है और संगत सीमान्त आय वक्र विखण्डित होता है।

(v) कूर्नो का द्वयाधिकार माडल, गैर कपट अल्पाधिकार से सम्बंधित है।

5. **निम्नलिखित विकल्पों में से सबसे उपयुक्त उत्तर का चुनाव कीजिएः**

क. परस्पर निर्भरता और कीमत–युद्ध की स्थिति देखी जाती है।

i) एकाधिकार में

ii) अल्पाधिकार में

iii) प्रतियोगिता में

iv) इनमें से कोई नहीं

ख. विकुंचित मांग वक्र की व्यवस्थित और क्रमवद्ध अवधारणा का प्रतिपादन किया गया

i) पाल स्वीजी द्वारा

ii) कूर्नो द्वारा

iii) चेम्बरलिन द्वारा

iv) इनसमें से कोई नहीं

ग. कीमत दृढ़ता की व्याख्या करता हैः

i) कॉर्टेल

ii) विकुंचित मांग वक्र

iii) कीमत नेतृत्व

iv) कोई नहीं

घ. पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन (ओपेक) वर्णन करता है

i) कॉर्टेल के स्वरूप का

ii) कीमत नेतृत्व स्वरूप का

iii) प्रतियोगिता स्वरूप का

iv) द्वयाधिकार स्वरूप का

ड़. कूर्नो के प्रतिष्ठित द्वयाधिकार माडल में, संयुक्तरूप से संतुलन वहां होगा जहां फर्में कुल बाज़ार के

i) $\frac{2}{3}$ हिस्से पर उत्पादन करती है

ii) $\frac{2}{1}$ हिस्से पर उत्पादन करती है

iii) $\frac{3}{3}$ हिस्से पर उत्पादन करती है

iv) $\frac{4}{4}$ हिस्से पर उत्पादन करती है

16.7 उपयोगी शब्दावली

- **अल्पाधिकार :** ऐसी बाज़ार स्थिति से है, जिसमें वस्तुओं एवं सेवाओं के कुछ ही विक्रेता होते है अर्थात् दो या दो से अधिक परन्तु बहुत अधिक नहीं। इस स्थिति में विक्रेताओं/फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता, समूह व्यवहार, विज्ञापन महत्व, मांग वक्र की अनिश्चितता आदि के कारण कीमत–युद्ध की स्थिति देखी जाती है।

- **अपूर्ण अल्पाधिकार :** इसके अंतर्गत उत्पादन विभेदन होता हैं जिसके कारण गैर कीमत प्रतियोगिता बनी रहती है, साथ ही अपने उत्पाद को अन्य से भिन्न दिखाने का प्रयास किया जाता है।

- **कपट संधि अल्पाधिकार :** फर्में परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता से बचने के लिए आपस में विचार–विमर्श के द्वारा कीमत व मात्रा के सम्बन्ध में कुछ औपचारिक और अनौपचारिक समझौते करती है।

- **कम लागत कीमत नेतृत्व माडल :** उस फर्म से है जिसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की उत्पादन लागत अन्य/प्रतिद्वन्दी फर्मों की अपेक्षा कम होती है जिससे मूल्य कम निर्धारित होता है। यदि प्रतिद्वन्दी फर्में इसे स्वीकार न करे तो कीमत युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जायेंगी और प्रतिद्वन्दी फर्मों के लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

- **कॉर्टेल :** कपट संधि अल्पाधिकारी बाज़ारों के अन्तर्गत उल्लेखित औपचारिक समझौतो की वह स्थिति है जब उद्योग में कार्यरत फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता से उत्पन्न अनिश्चितता (कीमत युद्ध) से बचने के लिए आपस में संघ गुट का निर्माण कर लेती है। तत्पश्चात् कीमतों, उत्पादन की मात्रा, लाभ अधिकतमीकरण सम्बन्धित समान नीतियों के संदर्भ में समझौता कर लेती है।

- **बाज़ार विभाजन वाला कॉर्टेल :** उद्योग में कार्यरत फर्में बाज़ार विभाजन या निश्चित बाज़ार में आपूर्ति के लिए निश्चित कीमत या मात्रा के लिए संघ बनाती है या सहमति प्रकट करती है।

- **गैर कपट अल्पाधिकार:** फर्मों के मध्य जब कोई समझौता नही होता है अर्थात् फर्मों के मध्य परस्पर निर्भरता की उपेक्षा होती है। इस स्थिति में फर्में कीमत व मात्रा के सम्बन्ध प्रतिद्वन्दी फर्मों की प्रतिक्रिया का अनुसरण नही करती है।

- **द्वयाधिकार :** अल्पाधिकार की विशेष स्थिति को द्वयाधिकार माडल के रूप में जाना जाता है। जिसमें मुख्यरूप से दो उत्पादकों के मध्य कीमत एवं उत्पादन से सम्बंधित क्रिया का अध्ययन किया जाता हैं। द्वयाधिकार के संबंध में विश्लेषण उत्पादकों के प्रवेश के संबंध में पूर्ण अवरोध होता हैं।

- **विकुंचित मांग वक्र :** जब एक फर्म का मांग वक्र वर्तमान कीमत स्तर से ऊपर का भाग अपेक्षाकृत लोचदार और नीचे का मांग वक्र अपेक्षाकृत बेलोचदार होता है। लोचो के अन्तर के कारण मांग वक्र विकुंचित होता हैं। विकुंचित मांग वक्र कीमत दृढ़ता प्रदर्शित करता है न की कीमत निर्धारण अर्थात् फर्मों के मध्य कीमत निर्धारण हो जाने के बाद कीमत परिवर्तन की सम्भावना कम पायी जाती हैं।

16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क.	4	गलत	ii)	गलत	iii)	सही	iv)	सही
	v)	सही						
ख	4	i) सही	ii)	सही	iii)	गलत	iv)	सही
		vi) सही						
5	क. ii	ख. i		ग. ii		घ. i		ड़. i

16.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 अल्पाधिकारी बाज़ार से क्या आशय होता है? इस बाज़ार की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न–2 कीमत नेतृत्व क्या है? इसके प्रमुख प्रकारों और संतुलन स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–3 संयुक्त लाभ अधिकतमीकरण और बाज़ार विभाजन वाला कॉर्टेल की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए। क्या अल्पाधिकार संतुलन की सभी समस्याओं का समाधान कर पाता है?

प्रश्न–4 कीमतो में अनम्यता होने की प्रवृत्ति विकुंचित मांग वक्र में पायी जाती है, क्यों? इस कथन के संबंध में अपना मत प्रकट कीजिए।

प्रश्न–5 कूर्नो के प्रतिष्ठित द्वयाधिकार माडल को स्टेकलबर्ग के प्रतिक्रिया वक्रो की सहायता से संतुलन स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तके

- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- ❖ एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- ❖ प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)

- डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)
- डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014

B.Com-103

आर्थिक सिद्धान्त

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

खण्ड–पंचम

आय का विवरण

इकाई–17 वितरण का सिद्धान्त	379–394
इकाई–18 आय का "वितरण–I : मजदूरी और व्याज"	395–414
इकाई–19 आय का "वितरण–II : लगान और लाभ"	415–426
इकाई–20 आय की असमानता	427–442

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
उत्तर प्रदेश प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

1. डॉ. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
2. डॉ देवश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
3. प्रो. आर.सी. मिश्रा, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन एवं वाणिज्य विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
4. प्रो. लवकुश मिश्रा, निदेशक, इंस्टीट्यूट ऑफ टूरिज्म एण्ड होटल मैनेजमेंट, श्री भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।
5. प्रो. सोमेश शुक्ला, विभागाध्यक्ष, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
6. प्रो. राधेश्याम सिंह, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

लेखक :– डॉ. करुणा शंकर कनौजिया, सहायक आचार्य, एपलाइड इकोनॉमिक्स विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सम्पादक :– प्रो. ओमजी गुप्ता, निदेशक, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

परिमापक :–

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	अनुवाद
मूल सम्पादक	भाषा सम्पादक
मूल परिमापक	परिमापक

सहयोगी टीम

संयोजक :– डॉ देवेश रंजन त्रिपाठी, सहायक आचार्य, व्यापार प्रबन्धन, प्रबन्धन अध्ययन विद्याशाखा, उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रूफ रीडर

2020 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN-978-93-83328-78-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई : 17 वितरण का सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 आय वितरण के वैकल्पिक स्वरूप

17.2.1 वैयक्तिक वितरण

17.2.2 कार्यात्मक वितरण

17.3 वितरण का क्लासिकी सिद्धान्त

17.3.1 लगान

17.3.2 मजदूरी

17.3.3 ब्याज

17.3.4 लाभ

17.4 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

17.4.1 उत्पादकता की अवधारणाएँ

17.4.2 सिद्धान्त का विवरण

17.4.3 सिद्धान्त की मान्यताएँ

17.5 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना

17.6 सारांश

17.7 उपयोगी शब्दावली

17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आप आय वितरण के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कर सकेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि उत्पादन के विभिन्न साधनों की आय का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है,
- आय वितरण के सम्बन्ध में क्लासिकी विचारों की ब्याख्या कर सकेगें तथा

- वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्तों का वर्णन कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

वितरण सिद्धान्त से तात्पर्य उत्पादन के साधनों जैसे भूमि, श्रम, पूंजी व उधमिता का मूल्य किस प्रकार निर्धारित किया जाय से लगाया जाता है। उत्पादन के यह सभी साधन सामूहिक रूप से उत्पादन को सफल बनाने में प्रत्यक्ष भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार इसे हम साधन बाजार का अध्ययन भी कह सकते हैं। इसे वितरण का सिद्धान्त कहने के पीछे मुख्य कारण यह है कि देश की अर्थव्यवस्था मे धन के वितरण को निर्धारित करने में लगान, मजदूरी, ब्याज व लाभ निर्धारण का विशेष महत्व होता है। चूंकि उत्पादन क्रिया में प्रत्येक उत्पादन साधन का अनुपातिक महत्व होता है। इसलिए इन्हें मिलने वाला पारिश्रमिक भी अनुपातिक रूप से अलग–अलग होता है। अर्थात उत्पादन के इन सभी साधनों के द्वारा कमाई गई कुल संयुक्त आय में इन सभी साधनों को प्राप्त आय एक सामान नहीं होती है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि वितरण के सिद्धान्त में कीमतों के निर्धारण से तात्पर्य साधनों की सेवाओं के बदले में जो कीमत उन्हें मिलती है उसके निर्धारण से लगाया जाता है न कि साधनों की कीमत निर्धारण से। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को जो काम दिया जाता है तो उस काम को उसने कितने घण्टे में किया या उस काम के लिए सेवा दी। उसकी उसे कीमत मिलती है न कि उस व्यक्ति की कीमत उसे दी जाती है। इस प्रकार इस इकाई में आय वितरण के प्रतिष्ठित सिद्धान्त व सीमान्त उतपादकता सिद्धान्त के अतिरिक्त आय वितरण के विभिन्न दृष्टिकोणों का भी अध्ययन करेंगें।

17.2.1 वैयक्तिक वितरण

वैक्तिक वितरण से तात्पर्य है कि समाज के विभिन्न व्यक्तियों के मध्य राष्ट्रीय आय का वितरण किस प्रकार होगा। अर्थात व्यक्तियों की आय किस प्रकरण निर्धारित होगी। समाज में व्यक्ति अनेक प्रकार के कार्यों में संलग्न होते हैं और उसके बदले में आय प्राप्त करते हैं। जैसे अध्यापक, कर्मचारी व अधिकारी वेतन पाते हैं। मजदूर को मजदूरी प्राप्त होती है। डाक्टर वकील आदि अपने सेवा के बदले फीस लेते हैं। चूंकि यह जरूरी नहीं की सभी तरह के कार्य के लिए एक समान कुशलता ही आवश्यक हो और न ही एक समान उत्पादन करते हैं। अतः इन विभिन्न व्यक्तियों की कुल राष्ट्रीय आय में जो हिस्सा मिलेगा वह भिन्न–भिन्न होगा। इसी प्रकार यह भी जरूरी नहीं की समाज के सभी व्यक्ति परिश्रम कर ही आय प्राप्त करें। बल्कि जो लोग भूमि अथवा पूंजी या दोनों रखते हैं तो वह दोनों से आय प्राप्त करते हैं। उद्यमी भी अपने साहस के लिए लाभ प्राप्त करता है।

17.2.2 कार्यात्मक वितरण

कार्यात्मक वितरण से तात्पर्य यह है कि वस्तु के भौतिक उत्पादन की प्रक्रिया में लगे सभी साधनों का पारितोषिक या उनके मूल्य का निर्धारण कैसे होगा। वैसे कार्यात्मक वितरण की दो शाखायें हैं। वितरण का व्यष्टि सिद्धान्त एवं वितरण का व्यापक सिद्धान्त। यहाँ पर सिर्फ हम कार्यात्मक वितरण के व्यष्टि सिद्धान्तों के अन्तर्गत यह ज्ञात करने का प्रयास करते हैं कि उत्पादक साधनों जैसे मजदूर को उसकी मजदूरी, भूमिपति को भूमि के प्रयोग के बदले में उसे लगान, पूंजीपति को ब्याज एवं उद्यमी या साहसी को मिलने वाले लाभ का निर्धारण किस प्रकार होता है।

बोध प्रश्न क

1. **कार्यात्मक वितरण व वैयक्तिक वितरण के मध्य अन्तर को स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....
.....
.....

2. **निम्न में से सही/गलत को बताइए।**

(i) साहसी अपनी सेवा या साहस के बदले में ब्याज प्राप्त करता है
(ii) कार्यात्मक वितरण के व्यष्टिभावी सिद्धान्त के अन्तर्गत हम साधनों को मिलने वाले पारितोषिक की दर का निर्धारण करते हैं।
(iii) एक मजदूर अपनी सेवा के बदले कुल आय में जो भाग प्राप्त करता है व लाभ कहलाता है।
(iv) वैयक्तिक वितरण से यह ज्ञात किया जा सकता है कि आय की असमान्ताएं क्यों होती हैं।
(v) भूस्वामी को उसकी भूमि के बदले मिलने वाला परिश्रमिक लगान कहलाता है।

3. **रिक्त स्थानों को भरिये।**

(i) साहसी/उद्यमी जोखिम उठाने के बदले ..... प्राप्त करता है।
(ii) भूस्वामी को ..... के उपयोग के बदले लगान प्राप्त होता है।
(iii) ब्याज.....को उसकी सेवा के बदले मिलने वाला पारिश्रमिक है।
(iv) समाज में व्यक्ति अनेक प्रकार के कार्यों में संलग्न होते है और उसके बदले में ..... प्राप्त करते है।
(v) ..... को उसके कार्य के बदले मजदूरी प्राप्त होती है।
(vi) वैयक्तिक वितरण से तात्पर्य समाज के विभिन्न व्यक्तियों के मध्य ....के वितरण से लगाया जाता है।

17.3 वितरण का क्लासिकी सिद्धान्त

डेविड रिकार्डो व ऐडम स्मिथ दोनों प्रतिष्ठित विचारधारा के प्रमुख अर्थशास्त्री व विचारक माने जाते हैं। इनके लेखन में आय वितरण के सम्बन्ध में काफी क्रमबद्धता दिखाई देती है। इन लोगों ने अपने सिद्धान्त के माध्यम से लगान, मजदूरी व ब्याज आदि के निर्धारण में काफी रूचि दिखाई एवं प्रत्येक के लिए अलग–अलग सिद्धान्त विकसित किये। जैसे कि ऐडम स्मिथ व उनके अनुयायियों ने निर्वाह मजदूरी सिद्धान्त विकसित किया। रिकार्डो ने लगान का सिद्धान्त विकसित किया। इसी प्रकार ब्याज के सम्बन्ध में बचत व विनियोग का सिद्धान्त प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के द्वारा दिया गया। साथ में ब्याज के सम्बन्ध में यह भी कहा गया कि पूंजी में भी श्रम व भूमि की तरह उत्पादकता होती है। क्योंकि एक ऋणी भी धन को उधार लेकर अपने अन्य साधनों के साथ उत्पादकता को बढ़ा कर लाभ अर्जित करता है। इसलिए उसे पूंजी की उत्पादकता के बदले ऋणदाता को कुछ पुरस्कार भुगतान के रूप में अवश्य देना चाहिए। इस प्रकार इस इकाई में हम उत्पादन के विभिन्न साधनों के पुरस्कार या उनके मूल्य के निर्धारण के बारे में संक्षेप में व्याख्या करेंगे। साथ ही आय वितरण के सम्बन्ध में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की चर्चा करेंगे। यह भी विदित है कि प्रतिष्ठत अर्थशस्त्रियों ने लाभ के

सम्बन्ध में कोई स्पष्ट सिद्धान्त विकसित नहीं किया है। उसके पीछे मुख्य कारण यह है कि लाभ का सटीक अनुमान पहले नहीं लगाया जा सकता है। बल्कि यह उत्पादन के अन्य सभी साधनों को आय में से उनका हिस्सा मिलने के बाद का अवशेष है।

17.3.1 लगान

प्रतिष्ठित विचारधारा में डेविड रिकार्डो का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिन्हे अपने लेखों व सिद्धान्तों के लिए समकालीन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में प्रमुख अर्थशास्त्री माना जाता है। डेविड रिकार्डो ने ही लगान के सम्बन्ध में सर्वप्रथम सिद्धान्त विकसित किया था। रिकार्डो ने अपने लगान सिद्धान्त में भूमि की उपजाऊ शक्ति के बदले में भूस्वामी को दिये जाने वाला भुगतान कहा था। इस प्रकार रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की उपज का भाग जो भूमि की मूल एवं अविनाशी शक्तियों के उपयोग के बदले में भूस्वामी को दिया जाता है। अर्थात भूस्वामी को दिया जाने वाला सम्पूर्ण भुगतान लगान नहीं होगा। बल्कि वही भाग लगान कहलायेगा जो भूमि की मूल व अविनाशी शक्तियों के बदले में दिया गया हो। इस प्रकार भूमि को उपयोगी बनाने लिये जो अन्य व्यय या विनियोग किया जाता है वह लगान नहीं है। चूंकि कुल लगान में यह विनियोग व्यय भी शामिल होता है। इसलिये यह सम्पूर्ण लगान शुद्ध लगान नहीं होगा। शुद्ध या आर्थिक लगान वही होगा जो कुल लगान में से इस प्रकार के व्यय को घटाने के बाद भूस्वामी को प्राप्त होगा लगान कहलायेगा। रिकार्डो ने अपने लगान सिद्धान्त की व्याख्या में भूमि को कई प्रकार की श्रेणी में बांटा है और बताया कि प्रत्येक व्यक्ति सर्वप्रथम उस श्रेणी की भूमि पर कृषि करेगा जो सबसे अच्छी या सर्वाधिक उपजाऊ भूमि होगी। फिर इससे कम उपजाऊ भूमि पर कृषि करेगा। चूंकि जनसंख्या में लगातार वृद्धि हो रही है और इससे मांग में वृद्धि होगी। इसलिए आगे वह इसी क्रम में खेती करेगा जब तक उसे ऐसी श्रेणी की भूमि न प्राप्त हो जाये जिससे कोई लगान उत्पन्न न हो। इसे ही रिकार्डो ने अपने प्रतिष्ठित लगान सिद्धान्त में सीमान्त भूमि की संख्या दी है। रिकार्डो ने यह भी कहा की लगान केवल भूमि पर ही उत्पन्न होता है उत्पादन के अन्य साधनों पर नहीं। हम लगान के सिद्धान्त की और विस्तृत जानकारी इकाई 19 में प्राप्त कर सकेंगे।

17.3.2 मजदूरी

कुल आय का वह अंश जो मजदूर को उत्पादन प्रक्रिया में उसकी सेवा के बदले उसे दिया जाता है, मजदूरी कहलाती है। मार्शल के शब्दों में ''श्रम को उसकी सेवाओं के बदले दिया गया मूल्य मजदूरी है'' सामान्यता मजदूरी एक अकुशल श्रमिक या शारीरिक श्रम करने वाले को दिये जाने वाले भुगतान को कहा जाता है। कर्मचारियों को उनकी सेवा के बदले किया जाने वाला भुगतान वेतन कहलाता है। लेकिन यहाँ पर यह स्पष्ट समझिये कि अर्थशस्त्र में सभी कर्मचारियों, अधिकारियों एवं श्रमिकों आदि सभी को दिया जाने वाले पारिश्रमिक को मजदूरी ही माना जाता है। मजदूरी के सिद्धान्तों में सर्वप्रथम प्रकृतिवादी अर्थशाास्त्री टर्गॉट ने जीवन–निर्वाह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इनके इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी जीवन–निर्वाह के बराबर रहती है। बाद में इस सिद्धान्त को ऐडम स्मिथ व उनके अनुयायियों एवं रिकार्डो ने और विकसित किया। यह जीवन–निर्वाह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि श्रम भी वस्तु की तरह खरीदा व बेचा जाता है और वस्तु की तरह श्रम का भी मूल्य निर्धारित होता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जिस प्रकार दीर्घकाल में वस्तु की कीमत इनकी लागत के बराबर होती

है। उसी प्रकार श्रम का मूल्य या मजदूरी भी श्रम की लागत के बराबर होगी। यहाँ पर श्रम की उत्पादन लागत से तात्पर्य उस धनराशि से है जो श्रमिक तथा उस पर आश्रित लोगों के जीवन–यापन हेतु आवश्यक है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के अनुसार यह एक प्राकृतिक दर है जो कि जीवन–निर्वाह हेतु आवश्यक है। इसलिये इस सिद्धान्त को जर्मन अर्थशाास्त्री लासेल ने लौह सिद्धान्त का नाम दिया है।

इस सिद्धान्त की आलोचना इस बात को लेकर की गई कि इसमें मजदूरी एवं कार्यक्षमता के मध्य सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सका। इसके बाद इस सिद्धान्त में कुछ सुधार के साथ टारेन्स ने रहन–सहन सिद्धान्त प्रस्तुत किया। जिसे मजदूरी का सुनहरा सिद्धान्त भी बोला जाता है। जे0 एस0 मिल ने सन् 1848 में अपनी पुस्तक Principal of Political Economy में मजदूरी निर्धारण हेतु मजदूरी–कोश सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार बचत की मात्रा के कुछ भाग का प्रयोग मजदूरों की मजदूरी के भुगतान हेतु किया जाता है। इसी भाग को मजदूरी निधि कहा जाता है। इसी निधि में से मजदूरी का भुगतान होता है। हॉलाकी व्यावहारिक रूप में श्रम हेतु कोई कोश स्थापित नहीं करता बल्कि एक अनुमान के अनुसार उत्पादक यह अवश्य ध्यान में रखता है कि इतनी पूंजी की आवश्यकता हो सकती है। यदि भविष्य में इस निधि या अनुमान में परिवर्तन होता है तो मजदूरी की दर में भी परिवर्तन होगा। भविष्य में यदि यह निधि अधिक होगी तो मजदूरी की दर में बढ़ोत्तरी होगी और यदि निधि में कमी हुई तो मजदूरी में भी गिरावट आयेगी।

17.3.3 ब्याज

सामान्यतया जब कोई ऋणी अपने उपयोग हेतु लिये गये ऋण के बदले अतिरिक्त प्रतिफल ऋणदाता को देता है तो उस अतिरिक्त प्रतिफल को ही ब्याज कहा जाता है। चूंकि उधार लिया गया धन या पूंजी उत्पादन क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिये पूंजी के प्रयोग के फलस्वरूप पूँजीपति को जो प्रतिफल मिलता है वही ब्याज कहलाता है। ब्याज के क्लासिकल सिद्धान्त का प्रतिपादन मार्शल के द्वारा किया गया। बाद में कैसल, पीगू, वालरा आदि अर्थशास्त्रियों ने इनका समर्थन भी किया। सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण बचत की मांग व बचत की पूर्ति के द्वारा होता है। जहाँ पर यह आपस में बराबर होगी वहीं पर ब्याज दर निर्धारित होगी। इसीलिये इसे मांग व पूर्ति का सिद्धान्त भी कहते हैं। यह प्रतिष्ठित सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार बचत व ब्याज दर में सीधा सम्बन्ध है और विनियोग (की मांग) की मात्रा व ब्याज में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। यदि बचत की पूर्ति तथा विनियोग के लिए बचत की मांग में परिवर्तन होगा तो ब्याज दर भी प्रभावित होगी। इसी प्रकार की बात ब्याज के नव–प्रतिष्ठित उधार देश कोष सिद्धान्त में भी कही गयी है। साथ ही इसमें ब्याज दर के निर्धारण में बचत व विनियोग के अतिरिक्त अन्य कारकों की भी व्याख्या की गयी है।

17.3.4 लाभ

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में आय वितरण के सिद्धान्तों में लाभ का अध्ययन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लेकिन लाभ निर्धारण के लिए प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के द्वारा कोई सटीक सिद्धान्त नहीं दिया जा सका है। क्योंकि लाभ निर्धारण के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख व्यावहारिक सामस्याएं रही हैं। जैसे कि लाभ अन्य सभी उत्पादन साधनों भूमि, श्रम व पूंजी को उनका हिस्सा देने के उपरान्त बचा हुआ आवषेष होता है। साथ ही लाभ नकारात्मक भी हो सकता है। जबकि अन्य साधनों के साथ

ऐसा नहीं है। इस प्रकार अन्य साधनों के भुगतान के बाद उद्यमी के लिये शेष बचा हुआ धन ही लाभ होता है। इसके बावजूद कुछ अर्थशास्त्रियों ने जैसे जे0 बी0 क्लार्क ने गतिशीलता का सिद्धान्त, हॉले ने जोखिम वहन का सिद्धान्त आदि ने लाभ की प्रकृति, लाभ के औचित्य तथा लाभ को प्रभावित करने वाले तत्वों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है। ऐडम स्मिथ व रिकार्डो ने भी अपने अध्ययन में पूंजी को ध्यान में रखते हुए लाभ के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किए। इनके अनुसार लाभ का सीधा सम्बन्ध पूंजी संचय के आकार पर निर्भर करता है।

यहाँ पर भूमिपति को मिलने वाले लगान, श्रम को मिलने वाली मजदूरी, पूंजी को मिलने वाले ब्याज व उद्यमी को मिलने वाले लाभ के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के द्वारा दिये गये सिद्धान्तों व विचारों का संक्षेप में प्रस्तुत किया गया। लेकिन उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि क्लासिकी सिद्धान्तों में आय वितरण के सिद्धान्तों का आधार ही सही नहीं था या सीमित था। जैसे लगान सिर्फ भूमि से उत्पन्न हो सकता है, श्रम की मजदूरी उसकी उत्पादकता से कम न होकर मजदूरी निधि से होना, ब्याज व बचत में सीधा सम्बन्ध होना और लाभ निर्धारण के सम्बन्ध में स्पष्ट सिद्धान्त न दे पाना आदि। इस प्रकार इनका व इनके सम्बन्ध में आधुनिक विचारों को हम आगे की इकाईयों में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न ख

1. **ब्याज व लाभ के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।**

.....
.....
.....
.....

2. **मजदूरी के निर्वाह सिद्धान्त के बारे में बताइये।**

.....
.....
.....
.....

3. **निम्न में से सही/गलत को बताइये।**

(i) सीमान्त भूमि के साथ सभी प्रकार की खेती से लगान उत्पन्न होता है। रिकार्डो के लगान सिद्धान्त में कुल तीन प्रकार की खेती की श्रेणीयाँ ही बताई गयी हैं।

(ii) प्रतिष्ठित ब्याज के सिद्धान्त के अनुसार ब्याज को बचत के सापेक्ष नहीं माना गया है।

(iii) मजदूरी के निर्वाह सिद्धान्त के अनुसार श्रमिकों को केवल उतनी मजदूरी मिलती है जितनी उन्हे जीवन जीने के लिए आवश्यकहोती है।

(iv) निवेश में परिवर्तन व ब्याज की दर में परिवर्तन विपरीति दिशा में होता है।

4. रिक्त स्थानों को भरिए।

(i) टारेन्स द्वारा प्रतिपादित रहन–सहन सिद्धान्त को मजदूरी का ..... भी कहा जाता है।

(ii) रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के अनुसार ..... से शून्य लगान उत्पन्न होता है।

(iii) लगान केवल .....से ही उत्पन्न होता है।

(iv) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज ..... करने का पारितोषिक है।

(v) क्लासिकल ब्याज का सिद्धान्त ..... की मान्यता पर आधारित है।

(vi) उत्पादन के अन्य .....को भुगतान के बाद बचा हुआ धन ही लाभ है।

(vii) .....के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा कोई निश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया जा सका।

17.4 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को साधनों के मूल्य निर्धारण के लिए एक सामान्य सिद्धान्त माना जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था के घोर विरोधी व आलोचक कार्ल मार्क्स के अनुसार श्रमिकों को मिलने वाला पारिश्रमिक उसकी उत्पादकता से हमेशा कम रहता है। अर्थात पूंजीपति श्रमिक को उसकी उत्पादकता के बराबर मूल्य नहीं देते। इस घारणा से सभी अर्थशाास्त्री सहमत नहीं थे। इस सम्बन्ध में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अवधारणा उत्पन्न हुई। जैसाकि माना जाता है कि सर्वप्रथम वॉन थनेन ने अपनी पुस्तक Der Isolierte Staat जो कि 1826 में प्रकाशित हुई थी, में 'प्राकृतिक मजदूरी' के निर्धारण हेतु 'सीमान्त उत्पाद' की व्याख्या की थी। इसके बाद इस सम्बन्ध में अन्य कई अर्थशास्त्रियों ने अपने विचार प्रस्तुत किये। लेकिन इस सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक व्याख्या करने का श्रेय जे0 बी0 क्लार्क को जाता है। इन्होंने 1902 में प्रकाशित अपनी पुस्तक The Distribution of wealth में इस सिद्धान्त की पूर्ण विवेचना प्रस्तुत की। इसके बाद अन्य कई अर्थशास्त्रियों जैसे जेवन्स विक्स्टड, वालरस, मार्शल व वालरा आदि ने इस सिद्धान्त के आधार पर सीमान्त उत्पादकता से सम्बन्धित अपने विचार प्रस्तुत कर योगदान किया।

17.4.1 उत्पादकता की अवधारणाएँ

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या के पूर्व यह आवश्यक होगा कि उत्पादकता से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं के बारे में समझा जाय। जो कि निम्नलिखित हैं।

सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product) : यहाँ पर सीमान्त उत्पादन को समझना आवश्यक होगा क्योंकि सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में सीमान्त उत्पादन का अहम योगदान है। यदि उत्पादन के अन्य सभी साधनों की मात्रा को स्थिर रखा जाय और किसी एक साधन माना कि श्रम की एक अतिरिक्त

इकाई बढ़ा दी जाय तो इस कारण कुल उत्पादन में जो अतिरिक्त वृद्धि होगी वही श्रम की एक इकाई का सीमान्त भौतिक उत्पादन (MPP) होगा।

$MPP = TPPn - TPP_{n-1}$

TPP_n = कुल भौतिक उत्पादन (श्रम की एक इकाई बढ़ाने के बाद का कुल उत्पादन)

TPP_{n-1} = कुल भौतिक उत्पादन (श्रम की एक इकाई बढ़ाने के पूर्व का कुल उत्पादन)

MPP = श्रम की nवीं इकाई का सीमान्त भौतिक उत्पादन।

MPP वक्र की प्रक्रति उल्टे U आकार की होती है। MPP वक्र APP वक्र को उच्चतम बिन्दु पर काटता है। (देखें चित्र 17.1)

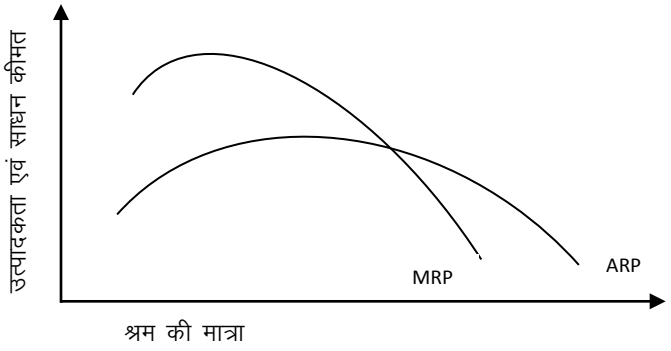

चित्र 17.1

सीमान्त आय उत्पादन (Marginal Revenue Product) : किसी उत्पादन साधन की एक अतिरिक्त इकाई के कारण कुल मूल्य उत्पादन या कुल आय में होनी वाली वृद्धि को ही सीमान्त आय उत्पादन (MRP) कहा जाता है। इसे हम सीमान्त भौतिक उत्पादन की सीमान्त आय से गुणा करके प्राप्त कर सकते है।

MRP = सीमान्त आय उत्पादन

MRP = सीमान्त भौतिक उत्पादन

MR = सीमान्त आय।

हमकों यहाँ पर यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि पूर्व प्रतियोगिता में कीमतें स्थिर होती हैं। इसलिए सीमान्त आय (MR) व मूल्य (कीमत) समान होती है। अतः MRP को मूल्य या सीमान्त आय (MR) किसी से भी गुणा करके प्राप्त किया जा सकता है। एकाधिकार में कीमत व सीमान्त आय अलग–अलग होती हैं। इसलिए एकाधिकार की स्थिति में MRP केवल MR से गुणा करके ही सही प्राप्त किया जा सकता है।

सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal Value Product) : सीमान्त मूल्य उत्पादन प्राप्त करने के लिये सीमान्त भौतिक उत्पादन को कीमत या औसत आय से गुणा किया जाता है। जो गुणनफल प्राप्त होता है उसे ही सीमान्त मूल्य उत्पादन (MVP) कहते हैं।

$MVP = MPP \times P (AR)$

MVP = सीमान्त मूल्य उत्पादक

P = कीमत / मूल्य

AR = औसत आय

औसत भौतिक उत्पादन (Average Physical Product) : यह कुल भौतिक उत्पादन को इसमें लगे साधन इकाईयों से भाग दिया जाय तो प्राप्त भागफल औसत भौतिक उत्पादन (APP) कहलायेगा। APP वक्र की प्रक्रति भी MPP की तरह उल्टे U आकार की होती है। MPP वक्र APP वक्र को उच्चतम बिन्दु पर ही काटता है। देखें चित्र 17.1

$$APP = \frac{TPP}{TU}$$

APP = औसत भौतिक उत्पादन

APP = TPP कुल भौतिक उत्पादन साधन

TU = कुल साधन उत्पादन।

इसी प्रकार यदि किसी साधन विशेष की औसत भौतिक उत्पादकता को ज्ञात करनी हो तो उस साधन (माना की श्रम) की कुल उत्पादन में योगदान को श्रम की इकाईयों से भाग देने पर श्रम की भौतिक उत्पादकता प्राप्त होगी।

$$APP_L = \frac{TPP_L}{TU_L}$$

APP_L = श्रम का औसत भौतिक उत्पादन

TPP_L = श्रम द्वारा कुल उत्पादन में योगदान

TU_L = श्रम की कुल इकाईयाँ

औसत आय उत्पादन (Average Revenue Product) : उत्पादन साधनों की औसत आय उत्पादन से तात्पर्य औसत भौतिक उत्पादन (APP) के मौद्रिक मूल्य से लगाया जाता है। इस प्रकार हम औसत भौतिक उत्पादन को उसके मूल्य से गुणा करके औसत आय उत्पादन (ARP) को ज्ञात कर सकते हैं।

$ARP = APP \times P$

ARP = औसत आय उत्पादन

APP = औसत भौतिक उत्पादन

P = वस्तु का मूल्य

17.4.2 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या

जैसा कि पूर्व में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि जे0 बी0 क्लार्क ने सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या क्रमबद्ध व वैज्ञानिक ढंग से की है। इनका यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा पर आधारित है। इनके अनुसार किसी भी उत्पादन साधन का पारिश्रमिक उसकी सीमान्त उत्पादकता के द्वारा निर्धारित होता है। हमें ज्ञात है कि कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु को तभी खरीदता है जब तक उसमें आवश्यकता की पूर्ति करने की उपयोगिता होती है। उत्पादन के साधन प्रत्यक्ष रूप से सभी आवश्यकताओं को पूरी नहीं करते। बल्कि यह महत्वपूर्ण इसलिये हैं क्योंकि यह आवश्यकता को पूरी करने वाली वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार इनकी मांग इन साधनों की उत्पादकता पर निर्भर करेगी।

एक नियोक्ता इन साधनों को जो कीमत या पारिश्रमिक तय करेगा वह इनकी सीमान्त उत्पादकता पर ही निर्भर करता है। इस सिद्धान्त को वितरण के सिद्धान्तों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जब कोई उत्पादक किसी साधन को उत्पादन प्रक्रिया में शामिल करता है तब साथ ही में वह अपने लाभ को भी अधिकतम करना चाहता है। उत्पादक का लाभ वहां पर सर्वाधिक होगा जहां पर उस साधन की अन्तिम इकाई से उत्पादित वस्तु से मिलने वाली आय उस उत्पादन साधन की अन्तिम इकाई को दिये जा रहे पारितोषिक के बराबर होगा। अर्थात साधन की अतिरिक्त इकाई की सीमान्त उत्पादन को बिक्री कर प्राप्त आय सीमान्त लागत के बाराबर होगी। इस सिद्धान्त को किसी एक उत्पादन साधन (माना की श्रम) का उदाहरण लेकर निम्न्न रेखाचित्र के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है।

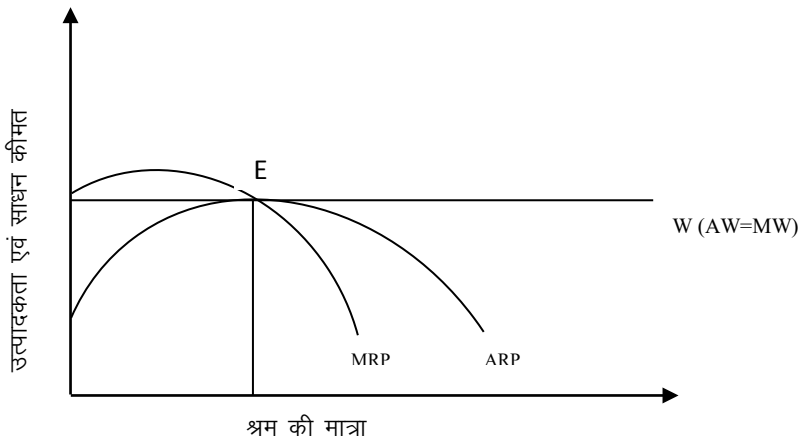

चित्र 17.2

पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त भौतिक उत्पादक (MPP) का मूल्य व सीमान्त आय उत्पादन (MRP) दोनों बराबर होते हैं। श्रम बाजार में उत्पादक फर्म का सन्तुलन वहां पर होगा जहां पर MRP, उत्पादन साधन को दी जाने वाली मजदूरी (जो कि दी हुई होती है) आपस में बराबर होगी। उपरोक्त रेखाचित्र 17.2 में दी हुई मजदूरी OW सीमान्त आय उत्पादन व औसत आय उत्पादन दोनों के बराबर हैं। चित्र में E बिन्दु तक ARP बढ़ रही है जो कि उत्पादन वृद्धि सिद्धान्त के कारण ऐसा

होता है। E बिन्दु के बाद ARP गिरने लगती है। इसका कारण उत्पादन ह्रास नियम है। E बिन्दु जो कि दीर्घकालीन सन्तुलन बिन्दु है जहां पर OW मजदूरी MRP और ARP बराबर हैं और यहीं पर उत्पादन समता नियम लागू हो रहा है।

17.4.3 सिद्धान्त की मान्यताएँ

यह सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

1. उत्पादन के साधन की इकाईयाँ समान व पूर्णतया गतिशील हैं। अर्थात एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।
2. साधन बाजार में पूर्व प्रतियोगिता है और साधन को खरीदने व बेचने वाले साधन मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकते।
3. सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की यह भी मान्यता है कि बाजार में पूर्ण रोजगार की स्थिति है अर्थात उत्पादन साधन की सभी इकाईयों को रोजगार प्राप्त है और कोई बेरोजगार नहीं है।
4. इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के आधार पर होता है अर्थात प्रारम्भ में उत्पादन वृद्धि, फिर उत्पादन समता व अन्त में उत्पादन ह्रासमान का नियम लागू होता है।
5. इस सिद्धान्त की यह भी मान्यता है कि शेष सभी साधनों को स्थिर मान कर किसी एक साधन की इकाईयों की मात्रा में परिवर्तन कर उत्पादन में परिवर्तन किया जा सकता है अर्थात उत्पादन प्रक्रिया के समय साधनों को कई अनुपातों में मिला कर उत्पादन किया जा सकता है।
6. विभिन्न उत्पादन साधनों के द्वारा उत्पादित वस्तुएँ पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में बिकती है।

17.5 सिद्धान्त की आलोचनाएँ

1. इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी व पहली आलोचना इस बात को लेकर की गई की यह पूर्ण प्रतियोगिता जैसी अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता व्यावहारिक जीवन में नही पायी जाती।
2. उद्यम जैसे उत्पादन साधन की उत्पादकता मापना कठिन है। क्योंकि इस साधन के इकाई की स्पष्ट माप व पहचान नहीं है। जबकि उद्यम को प्राप्त होने वाले लाभ का निश्चित अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि लाभ, उत्पादन के अन्य साधनों के मध्य आय वितरण के पश्चात बचा हुआ शेष धन है। लाभ को निर्धारित करने वाला कोई स्पष्ट सिद्धान्त भी प्रतिपादित नहीं किया जा सका। इस कारण इस सम्बन्ध में यह सीमान्त उत्पादन सिद्धान्त भी मौन है।
3. उत्पादन के सभी साधनों को छोटी–छोटी इकाईयों में विभाजित करना सम्भव नहीं होता है।
4. सेमुएलसन के अनुसार ''सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह नहीं बताता कि मजदूरी, ब्याज अथवा लगान का निर्धारण किस प्रकार होता है। यह केवल

यह स्पष्ट करता है कि किस तरह एक फर्म साधनों को किराये पर लेती है। जब एक बार उसका मूल्य ज्ञात हो जाता है। अर्थात यह सिद्धान्त मूल्य निर्धारण नहीं करता बल्कि यह मूल्य को दिया हुआ मान कर चलता है।

5. यह सिद्धान्त अल्पकाल के बजाय दीर्घकाल में लागू होने की व्याख्या करता है। जबकि दीर्घकाल मात्र एक कालपनिक सत्य ही है। कीन्स के शब्दों में ''दीर्घकाल में कोई जिन्दा नहीं रहता, अतएव आर्थिक समस्याओं के लिए दीर्घकाल का कोई महत्व नहीं होता''

6. बेन्हम ने कृषि का उदाहरण देते हुए इस सिद्धान्त की आलोचना की है। इनके अनुसार एक कृषक को इस बात की जानकारी नहीं होती है कि उसकी उपज की मात्रा क्या होगी और भविष्य में उसका मूल्य कितना होगा। उसकी उपज की मात्रा वर्षा एवं अन्य दशाओं पर निर्भर है। लेकिन कृषक को उत्पादन साधनों की कितनी मात्रा का उपयोग करें। इसका निर्णय उसे लेना पड़ता है। इस प्रकार बेन्हम के अनुसार यह कहना सही नहीं है कि साधन के सीमान्त उत्पादन व उसके कीमत का पता उसे पहले होता है।

7. टाजिग एवं डेवेनपोर्ट ने सीमान्त उत्पादकता के पूर्व में अनुमान के सम्बन्ध आलोचना करते हुये कहा कि उत्पादन किसी एक नहीं अपितु कई अथवा सभी साधनों के सहयोग से होता है। ऐसे में किसी साधन विशेष की सीमान्त उत्पादकता कितनी है इसका सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

बोध प्रश्न ग

1. **सीमान्त आय उत्पादकता को समझाइये।**

.....
.....
.....
.....

2. **सीमान्त भौतिक उत्पादन व औसत भौतिक उत्पादकता के मध्य अन्तर को बताइये।**

.....
.....
.....
.....

3. **निम्न में से सही/गलत को बताइये।**

(i) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता को मान्यता पर नहीं आधारित है।

(ii) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की क्रमबद्ध व सही व्याख्या जे0 बी0 क्लार्क के द्वारा की गयी।

(iii) सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त अल्पकालीन सन्तुलन की व्याख्या करता है।

(iv) सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र औसत भौतिक उत्पादन वक्र को सबसे उचें बिन्दु पर काटता है।

(v) सीमान्त भौतिक उत्पादन वक्र उल्टे U आकार का नहीं होता है।

4. रिक्त स्थानों को भरिये।

(i) ..... में साधन की सीमान्त आय उत्पादन व सीमान्त भौतिक उत्पादन का मूल्य आपस में सामान होते हैं।

(ii) औसत भौतिक उत्पादन को ..... से गुणा करने पर औसत आय उत्पादन प्राप्त होता है।

(iii) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के ..... पर सीमान्त आय उत्पादन व औसत आय उत्पादन आपस में बराबर होती है।

(iv) सीमान्त उत्पादन सिद्धान्त की सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से ब्याख्या .... ने की थी

(v) जे0 बी0 क्लार्क ने सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त को अपनी पुस्तक..... में दिया था।

17.6 सारांश

सामान्यता वितरण का अध्ययन हम दो रूप में करते है। एक तो राष्ट्रीय आय का बटवारा समाज के लोगों के मध्य किस प्रकार हो। जिसका अध्ययन हम वैयक्तिक वितरण में करते हैं। दूसरी तरफ उत्पादन के विभिन्न साधनों को उनका पारिश्रमिक किस प्रकार निर्धारित होगा जिसका अध्ययन हम कार्यात्मक वितरण में करते है। सभी क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने आय वितरण के सम्बन्ध में एक सामान्य सिद्धान्त नहीं दिया। बल्कि उत्पादन साधनों के अलग–अलग सिद्धान्त दिये हैं। रिकार्डो ने लगान का सिद्धान्त दिया और बताया की लगान भूस्वामी को भूमि की मूल व अविनाशी शक्तियों के बदले में प्राप्त होता है। मजदूरी के सम्बन्ध में मजदूरी–निर्वाह सिद्धान्त व मजदूरी कोष सिद्धान्त दिया गया है। पूँजीपति को मिलने वाले ब्याज की दर का निर्धारण मांग व पूर्ति द्वारा होता है। साथ ही यह बताया कि बचत का ब्याज से सीधा सम्बन्ध है। साहसी को मिलने वाला लाभ उत्पादन के सभी साधनों को भुगतान के बाद शेष बचा धन है। इस कारण कोई स्पष्ट सिद्धान्त विकसित नहीं हो सका। फिर भी लाभ की प्रकृति व स्वरूप के बारे में विचार अवश्य दिये।

क्लासिकी अर्थशास्त्रियों में जे0 बी0 क्लार्क ने उत्पादन साधनों को मिलने वाले पारिश्रमिक के सम्बन्ध में सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त क्रमबद्ध व वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। अपने विश्लेषण में बताया की किसी साधान का मूल्य उसकी सीमान्त आय उत्पादकता के आधार पर निर्धारित होता है। साधनों के मूल्य निर्धारण में इस सिद्धान्त को भी पूर्ण नहीं माना गया है। क्योंकि यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार व पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यताओं पर आधारित है। अनेक अर्थशास्त्रियों ने अव्यावहारिक मान्ताओं के कारण काफी आलोचना की। फिर भी यह सिद्धान्त

साधनों के मूल्य निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान रखता है और आगे के सिद्धान्तों का आधार भी है।

17.7 उपयोगी शब्दावली

- **वैयक्तिक वितरण** – समाज के लोगों के मध्य राष्ट्रीय आय का वितरण।
- **कार्यात्मक वितरण** – साधनों के मध्य उनके द्वारा की गई सेवा के बदले राष्ट्रीय आय का वितरण।
- **ब्याज** – पूँजीपति को मिलने वाला परिश्रमिक।
- **ल्गान** – भूमिपति को भूमि के बदले मिलना वाला।
- **निर्वाह–मजदूरी** – मजदूरी की वह दर जिससे केवल जीवन निर्वाह किया जा सकता है।
- **सीमान्त भौतिक उत्पादन** – साधन की एक अतिरिक्त इकाई के बदले कुल भौतिक उत्पादन में हुई अतिरिक्त वृद्धि।

17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) सही

3 (i) लाभ (ii) भूमि (iii) पूंजी (iv) आय (v) मजदूर (vi) राष्ट्रीय आय

ख 3 (i) गलत (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही (v) सही

4 (i) मजदूरी का सुनहरा सिद्धान्त (ii) सीमान्त भूमि (iii) भूमि (iv) बचत (v) पूर्ण रोजगार (vi) साधनों (vii) लाभ

ग 3 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत

4 (i) पूर्ण प्रतियोगिता (ii) मूल्य (iii) सन्तुलन बिन्दु (iv) जे0 बी0 क्लार्क (v) The Distribution of Wealth

17.9 महत्पूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के द्वारा दिये गये विचार की व्याख्या करें।

प्रश्न–2 जे0 बी0 क्लार्क के सीमान्त उत्पदकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

प्रश्न–3 लगान व ब्याज में क्या अन्तर है? इन दोनों के निर्धारण के सम्बन्ध में क्लासिकल विचारों की व्याख्या करें।

प्रश्न–4 सीमान्त भौतिक उत्पादन व औसत भौतिक उत्पादन से क्या तात्पर्य है? दोनो के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करें।

प्रश्न–5 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की अवधारणा क्या है? यह सिद्धान्त किन प्रमुख मान्यताओं पर आधारित है? समझाइये।

कुछ उपयोगी पुस्तके

- डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)
- डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

इकाई : 18 आय का "वितरण–I : मजदूरी और व्याज"

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 मजदूरी एवं मजदूरी सिद्धान्त

18.2.1 मौद्रिक मजदूरी व वास्तविक मजदूरी

18.2.2 मजदूरी सिद्धान्त

18.2.3 पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मजदूरी का निर्धारण

18.2.4 अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में मजदूरी का निर्धारण

18.3 सामूहिक सौदाकारी एवं मजदूरी

18.3.1 मजदूर संघ और सामूहिक सौदाकारी

18.3.2 मजदूरी में वृद्धि एवं सामूहिक सौदाकारी

18.4 ब्याज

18.4.1 कुल ब्याज एवं शुद्ध ब्याज

18.4.2 ब्याज दरों में अन्तर

18.5 ब्याज दर का निर्धारण

18.5.1 ब्याज का क्लासिकल सिद्धान्त

18.5.2 ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त

18.5.3 ब्याज की तरलता पसंदगी सिद्धान्त

18.6 सारांश

18.7 उपयोगी शब्दावली

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह समझने के योग्य होंगे कि

- प्रतियोगी मजदूरी तथा गैर–प्रतियोगी मजदूरी के मध्य अन्तर जान सकेंगे।
- श्रमिक के लिए सामूहिक सौदाकारी की महत्व को बता सकेंगे।

- मजदूरी की मौद्रिक व वास्तविक मजदूरीकी दरों के मध्य अन्तर स्पष्ट का सकें।
- ब्याज के क्लासिकी एवं कीन्स के विचारों को जान सकेंगे।
- कुल लाभ व शुद्ध लाभ के अन्तर को बता सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

सामान्य अर्थों में मजदूरी से तात्पर्य केवल एक मजदूर को उसके द्वारा किये कार्य के बदले में दिये जाने वाले पारिश्रमिक से लगाया जाता है। लेकिन यह मात्र एक सीमित विचार है। अर्थशास्त्र में मजदूरी का अर्थ व्यापक है। अर्थशास्त्र में कर्मचारियों, अधिकारियों व श्रमिक आदि सभी को मिलने वाले पारितोषिक को मजदूरी ही माना जाता है। एक मजदूर को अपनी मजदूरी के लिए नियोक्ता पर निर्भर रहना पड़ता है। कई बार नियोक्ता मजदूरों का शोषण करते हैं और उसे कम मजदूरी देते है। इस कारण मजदूर संघों व सामूहिक सौदाकारी महत्व बढ़ जाता है। मजदूरी की दर के निर्धारण में श्रम बाजार में किस प्रकार की प्रतियोगिता है, का भी असर होता है। ब्याज पूंजी की प्रयोग के बदले में मिलने वाला प्रतिफल है। ब्याज का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि क्लासिकल से लेकर आधुनिक अर्थशात्रियों के द्वारा ब्याज व इसकी दर के निर्धारण के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त दिये गये हैं। जहां क्लासिकल अर्थशात्रियोंका मत था कि ब्याज बचत का प्रतिफल है वहीं कीन्स ने इसे तरलता के परित्याग का प्रतिफल बताया है। ब्याज को दो भागो में बांटा जा सकता है जैसे कुल ब्याज व शुद्ध ब्याज।

18.2 मजदूरी एवं मजदूरी सिद्धान्त

अर्थशास्त्र में मजदूरी से तात्पर्य उस पारितोषिक से लगाया जाता है जो कि एक श्रमिक को उसकी सेवा के बदले में प्रदान की जाती है। व्यावहार में मजदूरी को कई नाम से जाना जाता है जैसे वेतन भोगी कर्मचारी को वेतन, किसी ऐजेन्ट को उसकी सेवा के बदले कमीशन एवं श्रमिक को दी जाने वाली राषि को मजदूरी आदि। अर्थशास्त्र के अध्ययन में इस तरह का अन्तर नहीं किया जाता है। सभी को किसी भी प्रकार का पारितोषिक मजदूरी ही कहलाती है। नियोक्ता मजदूर को उसका पारिश्रमिक का भुगतान मुद्रा में कर सकता है या वस्तु के रूप में कर सकता है अथवा मुद्रा व वस्तु दोनों में कर सकता है।

18.2.1 मौद्रिक मजदूरी व वास्तविक मजदूरी

मजदूरी के दो स्वरूपों की चर्चा अर्थशास्त्र में काफी की जाती है। मौद्रिक मजदूरी व वास्तविक मजदूरी। **मौद्रिक मजदूरीः** मौद्रिक मजदूरी से तात्पर्य जब श्रमिक की मिलने वाला पारिश्रमिक का भुगतान मुद्रा में होता है तो उसे मौद्रिक मजदूरी कहा जाता है। **वास्तविक मजदूरीः** वास्तव में मजदूरी का भुगतान केवल मुद्रा में न होकर कुछ अन्य सुविधायें व लाभ भी इसके साथ दी जाती हैं जैसे बच्चों का

षिक्षण खर्च, परिवहन व्यय, कम दर पर या फ्री में आवास की सुविधा आदि। इन सभी सुविधाओं के खर्च को मौद्रिक मजदूरी में जोड़ दिया जाये या इन व्ययों को मौद्रिक मजदूरी से घटा दें तो बची हुई मुद्रा वास्तविक मजदूरी कहलायेगी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को सिर्फ मौद्रिक मजदूरी के आधार पर किसी काम को करने या न करने का निर्णय नहीं लेना चाहिए। अतः मौद्रिक मजदूरी व वास्तिविक मजदूरी की समझना महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए माना कि किसी व्यक्ति को दिल्ली में पारिश्रमिक के तौर पर प्रति दिन 400 रूपये मिलते हैं। 30 दिन काम करने पर वह पूरे महीने में 12000 रूपये प्राप्त करेगा। यदि वह मुम्बई में जाकर काम करता है और वहां 500 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से एक महिने में 15000 रूपये प्राप्त कर सकता है। स्पष्ट है कि दिल्ली से मुम्बई जाने पर उसे 3000 रूपये की मौद्रिक मजदूरी अधिक प्राप्त होगी। लेकिन यदि मुम्बई जाने पर परिवहन खर्च 1000 रूपये, वहां रहने का खर्च 2000 रूपये, अन्य व्यय 1000 रूपये हो तो कुल अतिरिक्त व्यय (1000+2000+1000) 4000 रूपये होगा। इस प्रकार मुम्बई में वास्तिक मजदूरी (15000–4000) 11000 रूपये ही होगी। इसलिए सिर्फ मौद्रिक मजदूरी के हिसाब से उसका निर्णय गलत होगा।

व्यावहारिक जीवन में भी मजदूरी दर में काफी भिन्नता पाई जाती है। जैसे एक तकनीकी विषेषज्ञ को 25000 रूपये प्रति माह मिल सकते है। सामान्य कर्मचारी को 2000 रूपये प्रति माह कमा सकता है और शारीरिक श्रम करने वाले दैनिक मजदूर को 10000 रूपये महिने कमा सकता है। इसी प्रकार एक जैसे श्रम के लिये भारत में तय मजदूरी की अपेक्षा इंग्लैण्ड, अमरिका आदि कई देषों में मजदूरी का स्तर काफी ऊंचा होता है। इस प्रकार के अन्तर का मुख्य कारण देशों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन, तकनीकी विशेषज्ञता, पूंजी की मात्रा आदि होते हैं। इनके कारण ही विकसित देषों में उनकी उत्पादकता अधिक होती है और परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी की दर भी ऊंची होती है।

जिस प्रकार एक वस्तु की कीमत निर्धारण पर अलग–अलग प्रतियोगी बाजारों का प्रभाव पडता है उसी प्रकार श्रम के भी बाजार अलग–अलग होते हैं और मजदूरी दर के निर्धारण पर बाजार प्रतियोगी है या गैर प्रतियोगी बाजार, का प्रभाव पडता है। इसकी विस्तृत चर्चा इसी इकाई में आगे की गई है।

18.2.2 मजदूरी सिद्धान्त

मजदूरी के सिद्धान्तों में सर्वप्रथम प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री टर्गॉट ने जीवन–निर्वाह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इनके इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी जीवन–निर्वाह के बराबर रहती है। बाद में इस सिद्धान्त को ऐडम स्मिथ व उनके अनुयायियों एवं रिकार्डो ने और विकसित किया। यह जीवन–निर्वाह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि श्रम भी वस्तु की तरह खरीदा व बेचा जाता है और वस्तु की तरह श्रम का भी मूल्य निर्धारित होता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जिस प्रकार दीर्घकाल में वस्तु की कीमत इनकी लागत के बाराबर होती है, उसी प्रकार श्रम का मूल्य या मजदूरी भी श्रम की लागत के बराबर होगी। यहाँ पर श्रम की उत्पादन लागत से तात्पर्य उस धनराशि से है जो श्रमिक तथा उस पर आश्रित लोगों के जीवन–यापन हेतु आवश्यक है। इस प्रकार इस सिद्धान्त के

अनुसार यह एक प्राकृतिक दर है जो कि जीवन–निर्वाह हेतु आवश्यक है। इसलिये इस सिद्धान्त को जर्मन अर्थशास्त्री लासेल ने लौह सिद्धान्त का नाम दिया है।

इसके बाद इस सिद्धान्त में कुछ सुधार के साथ टारेन्स ने रहन–सहन सिद्धान्त प्रस्तुत किया। जिसे मजदूरी का सुनहरा सिद्धान्त भी बोला जाता है। जे0 एस0 मिल ने सन् 1848 में अपनी पुस्तक Principal of Political Economy में मजदूरी निर्धारण हेतु मजदूरी–कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार बचत की मात्रा के कुछ भाग का प्रयोग मजदूरों की मजदूरी के भुगतान हेतु किया जाता है। इसी भाग को मजदूरी निधि कहा जाता है। हॉलाकी व्यावहारिक रूप में श्रम हेतु कोई कोष स्थापित नहीं करता बल्कि एक अनुमान के अनुसार उत्पादक यह अवष्य ध्यान में रखता है कि इतनी पूंजी की आवश्यकता हो सकती है। यदि भविश्य में इस निधि या अनुमान में परिवर्तन होता है तो मजदूरी की दर में भी परिवर्तन होगा। भविश्य में यदि यह निधि अधिक होगी तो मजदूरी की दर में बढ़ोत्तरी होगी और यदि निधि में कमी हुई तो मजदूरी में भी गिरावट आयेगी।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्तः इस सिद्धान्त के अनुसार एक श्रमिक की मजदूरी उसकी उत्पादकता के अनुसार तैय होगी। श्रमिक की मजदूरी उतनी होगी जितनी उसकी सीमान्त उत्पादकता। कोई भी नियोक्ता किसी श्रमिक को उसका पारिश्रमिक उसकी सीमान्त उत्पादकता से अधिक नहीं देना चाहेगा। अल्पकाल में यह सम्भव हो सकता है कि श्रमिक का पारितोषिक उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर न होकर कम या अधिक हो सकती है। दीर्घकाल में ऐसा नहीं होगा। दीर्घकाल में श्रमिक का पारितोषिक उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही होगी। सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या आप इकाई 17 में जान चुके है (देखे चित्र 17.2)

मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त मांग व पूर्ति सिद्धान्त है। इसके अनुसार श्रमिक का पारिश्रमिक उसकी मांग व पूर्ति पर निर्भर करता है। यह उसी प्रकार निर्धारित होती है जिस प्रकार वस्तु बाजार में वस्तु का मूल्य उसकी मांग व पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। यहां पर महत्वपूर्ण यह कि श्रम बाजार में किस प्रकार की प्रतियोगिता है।

18.2.3 पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मजदूरी का निर्धारण

प्रतियोगी बाजार या पूर्ण प्रतियोगिता में श्रम के अपने मांग व पूर्ति वक्र होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में श्रमिकों की संख्या इतनी अधिक होती है कि आपस में प्रतियोगिता के कारण एक मजदूर मजदूरी को प्रभावित नहीं कर सकता। श्रम को क्रय करने वालों की संख्या भी अधिक होती है। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में एक श्रमिक प्रयास करता है कि उसे मजदूरी अधिक से अधिक मिले। दूसरी तरफ नियोक्ता यह प्रयत्न करते हैं कि उन्हें श्रमिक को मजदूरी कम से कम देनी पड़े। इस प्रकार मजदूरी की संतुलित दर वहां पर निर्धारित होगी जहां पर श्रम का मांग व पूर्ति वक्र आपस में काट रहे होंगे। इस प्रकार श्रम बाजार द्वारा निर्धारित मजदूरी एक फर्म के लिये दी हुई होती है। श्रम की मांग व्युत्पन्न मांग होती है। श्रम की उत्पादकता के आधार पर मांग उत्पन्न होती है तथा फर्म इसी के आधार पर श्रमिकों की संख्या या मांग निर्धारित करती है। इस प्रकार श्रम बाजार में पूर्ण

प्रतियोगिता के आधार पर श्रम को मिलने वाली मजदूरी, प्रतियोगी मजदूरी कहलाती है पूर्ण प्रतियोगी बाजार में मजदूरी दर के निर्धारण का चित्र 18.1 में स्पष्ट किया गया ।

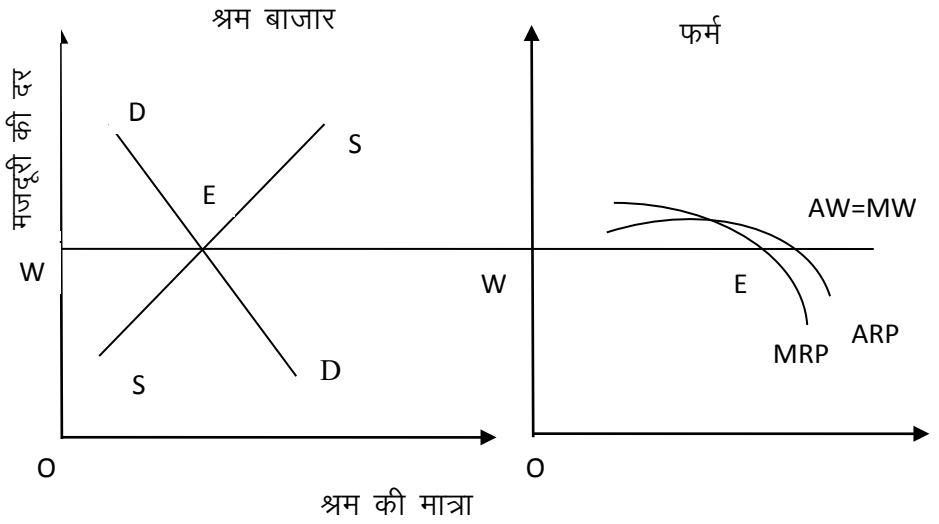

चित्र 18.1

चित्र 18.1 में SS श्रम की पूर्ति वक्र व DD श्रम का मांग वक्र है। E बिन्दु पर यह दोनों वक्र आपस में एक दूसरे को काटते हैं। यहां पर श्रम की मजदूरी OW निर्धारित होती है। यह मजदूरी की दर एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म के लिए दी हुई होती है। पूर्ण प्रतियोगी फर्म का सन्तुलन वहां पर होगा जहां पर श्रम की सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) और श्रम की सामान्त मजदूरी (MW) आपस में बराबर होगी।

18.2.4 अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में मजदूरी का निर्धारण

व्यावहार में पूर्ण प्रतियोगिता जैसी स्थिति नहीं पायी जाती। वास्तव में अपूर्ण प्रतियोगी बाजार ही पाये जाते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थितियां अलग होती हैं। यहां श्रमिकों की संख्या कम होती है। इस कारण औसत मजदूरी (AW) या पूर्ति वर्क (S) उपर की तरफ उठता हुआ होता है। परिणामस्वरूप सीमान्त मजदूरी वर्क (MW) भी उपर की तरफ उठता हुआ होगा। सन्तुलन वहां स्थापित होगा जहां सीमान्त मजदूरी (MW) व सामान्त आय उत्पादकता (MRP) दोनों आपसे में बराबर होगीं। इसको रेखा चित्र 18.2 में दर्शाया गया है।

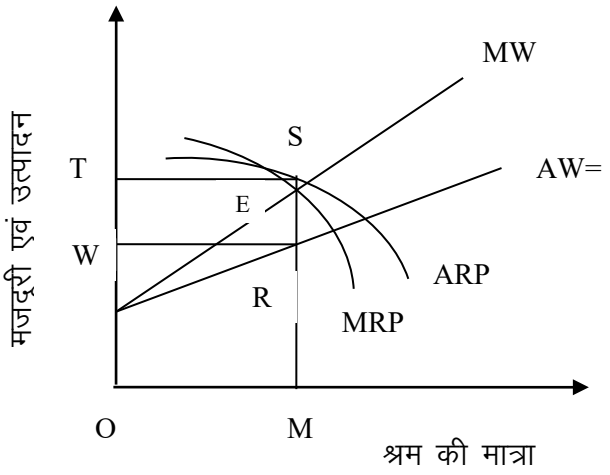

चित्र 18.2

उपरोक्त चित्र में सीमान्त आय उत्पादकता वक्र (MRP) सीमान्त मजदूरी (MW) को E बिन्दु पर कट करता है। यही सन्तुलन बिन्दु होगा। इस सन्तुलन बिन्दु पर मजदूरी की दर (OW) है और फर्म OM मात्रा में श्रमिकों को कार्य पर लगायेगी।

बोध प्रश्न 'क'

1. **मजदूरी की आवधारण से आप क्या समझते है?**

.....
.....
.....
.....

2. **वास्तविक मजदूरी व मौद्रिक मजदूरी के अन्तर को समझाइये।**

.....
.....
.....
.....

3. **निम्न में से सही/गलत को बताइये।**

(i) वास्तविक मजदूरी व मौद्रिक मजदूरी दोनों आपस में हमेशा बराबर होती हैं।

(ii) मौद्रिक मजदूरी की अपेक्षा वास्तविक मजदूरी अधिक महत्वपूर्ण होती है।

(iii) पूर्ण प्रतियोगी फर्म की औसत मजदूरी व सीमान्त मजदूरी बराबर होती है।

(iv) श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मजदूरी का निर्धारण मांग व पूर्ति के द्वारा होता है।

(v) अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त मजदूरी वक्र नीचे गिरता हुआ होता है।

(vi) अपूर्ण प्रतियोगिता में श्रमिकों की संख्या काफी अधिक होती है।

(vii) मजदूर को मिलने वाले पारितोषिक को लगान कहते है।

4. रिक्त स्थानों को भरिए।

(i) ..... का सिद्धान्त जे0 एस0 मिल द्वारा दिया गया है।

(ii) पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाजार में मजदूरी का निर्धारण वहां पर होता है जहां ..... वक्र एक दूसरे को ..... हैं।

(iii) पूर्ण प्रतियोगिता में श्रम के मांग वक्र की ढाल ..... होती है।

(iv) अपूर्ण प्रतियोगिता में श्रम का औसत आय उत्पादकता (ARP) वक्र .. .. आकार का होता है।

(v) एकाधिकारी शोषण की स्थिति में मजदूरी उसकी ..... से कम होती है।

(vi) ..... फर्म का औसत मजदूर वर्क X अक्ष के समान्तर होता है।

18.3 सामूहिक सौदाकारी एवं मजदूरी

उत्पादन के सभी साधनों में मजदूर को सबसे कमजोर साधन के रूप में जाना जाता है। इसका मुख्य कारण इनका असंगठित होना हैं। अकेला श्रमिक नियोक्ता पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डाल सकता। इसी कारण से नियोक्ता मजदूर को उसकी उत्पादकता से कम मजदूरी देने में सफल होते हैं और मजदूर का शोषण करते हैं। चित्र 18.2 में मजदूर के शोषण को आसानी से समझ सकते हैं। जहां एक नियोक्ता मजदूरी को उत्पादकता से कम पर निर्धारित करता है। मजूदरी की दर OW है जबकि सीमान्त आय उत्पादकता वक्र (MRP) है। प्रति इकाई सीमान्त उत्पादकता EM है। प्रति इकाई औसत उत्पादकता MS या OT है। इस प्रकार कुल उत्पादकता OT x OM = OTSM है। मजदूर को मिलने वाली कुल मजदूरी OW x OM = OWRM है। इस प्रकार TWRS के बराबर मजदूरी कम है और यही मजदूर का शोषण है।

जान रॉबिन्सन ने इसे क्रेताधिकारिक शोषण (Monoposonistic Exploitation) कहा है। इस प्रकार का शोषण या सीमान्त आय उत्पादक्ता (MRP) से कम मजदूरी देना साधन बाजार में क्रेताधिकार (Monopsony) के कारण ही होता है। क्रेताधिकार साधन बाजार की एक ऐसी स्थिति होती है जहां श्रम बाजार में अकेला क्रेता होता है। अर्थात श्रम की मांग या खरीदने वाली केवल एक ही नियोक्ता या फर्म होती है। सामूहिक सौदेदारी (Collective Bargaining) करके श्रमिक संघ मजदूरी को उस सीमा तक बढ़वा सकते हैं जब तक मजदूरी दर उसकी उत्पादकता के समान न हो जाय। यदि श्रमिक संघ ऐसा कर पाने में सफल होते हैं तो श्रमिकों का शोषण समाप्त हो सकता है।

18.3.1 मजदूर संघ और सामूहिक सौदाकारी

जैसा कि ज्ञात है कि एक अकेला मजदूर मजदूरी की दर को प्रभावित नहीं कर सकता और नियोक्ता के द्वारा शोषित होता रहता है। इसी कारण मजदूर संघों का उदय हुआ। ताकि मजदूर के शोषण को रोका जा सके। मजदूर को कम से कम उसकी उत्पादकता के अनुसार पारितोषिक मिल सके। मजदूर, संघ सामान्यता स्वैच्छिक संस्थाऐं होती हैं और इन्हें कानूनी मान्यता भी प्राप्त होती है। एक व्यक्ति इनमें स्वेच्छा से सदस्यता ले सकता है। यह संघ मजदूरों के हित के लिये कार्य करते हैं और नियोक्ता से उचित मजदूरी के लिये बात करते हैं। मजूदर संघों के द्वारा ही मजदूर संगठित होकर नियोक्ताओं से सामूहिक सौदेबाजी करने की स्थिति होते हैं। इन संघों का मुख्य उद्देश्य मजदूरों के हितों की रक्षा करना व इनके कार्य का उचित पारितोषिक दिलाना होता है। इसलिये श्रमिकों के लिये मजदूर संगठनों का होना महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि यह संगठन न हो तो मजदूर अधिक शोषित होगा।

18.3.2 मजदूरी में वृद्धि एवं सामूहिक सौदाकारी

यह तो तय है कि मजदूर संगठन नियोक्ताओं से बात करके या दबाव डाल कर सौदाकारी करते हैं। ताकि मजदूरी में वृद्धि हो सके और मजदूरों के हितों का शोषण न हो। यह संगठन अपनी बात मनवाने या शोषण को रोकने हेतु कई तरह से प्रयास करते हैं जैसेः

श्रम की पूर्ति को सीमित करना : मजदूर संगठन मजूदरी की दर में वृद्धि हेतु श्रम की पूर्ति को कई तरह से सीमित कर सकते हैं जैसे गैर सदस्यों को रोजगार से रोकना, कार्य के घण्टों में कटौती, धीमी गति से कार्य करना, प्रशिक्षण अवधि को बढाना आदि। इन तरीकों से पूर्ति को सीमित करने के प्रयासों का मजदूरी की दर पर प्रभाव को चित्र 18.3 में स्पष्ट किया गया है।

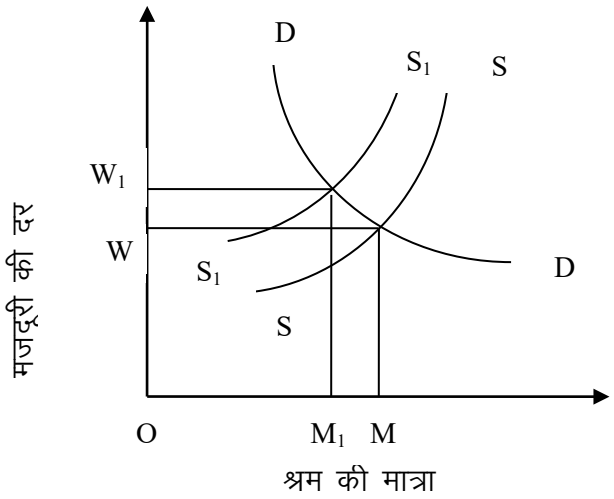

चित्र 18.3

उपरोक्त चित्र में SS श्रम का पूर्ति वक्र व DD श्रम का मांग वक्र है उपरोक्त प्रयासों के कारण यदि पूर्ति वक्र बायीं तरफ खिसक जाता है जबकि मांग वक्र वही रहता है। इस कारण मजदूरी पहले की तुलना में WW_1 के बराबर बढ़ जाती है।

मानक मजदूरी में वृद्धि हेतु दबाव डालना: प्रायः मजदूर संगठन मानक मजदूरी को बढ़ाने के लिये दबाव बनाते हैं। ऐसा करने पर कुछ रोजगार अवसरों में कमी होती है लेकिन मजदूरी की दर में बढ़ोत्तरी होती है। चित्र 18.4 में प्रारम्भिक मजदूरी की दर OW है। मजदूर संगठनों के दबाव में यदि मजदूरी की दर बढ़ कर OW होती है तो रोजगार में MM_1 के बाराबर कमी होगी।

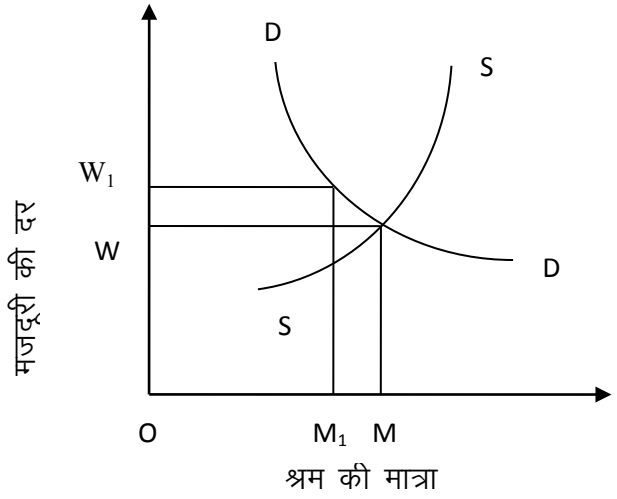

चित्र 18.4

मांग वक्र में बदलाव: यह भी सम्भव है कि यदि श्रम संगठन उंची मजदूरी की दर तय करवा लेते हैं तो श्रमिक की आय में वृद्धि से उसके जीवन स्तर में सुधार होगा और इस कारण उसकी उत्पादकता में भी वृद्धि सम्भव है। उत्पादकता में वृद्धि से श्रमिक की मांग में वृद्धि होगी।

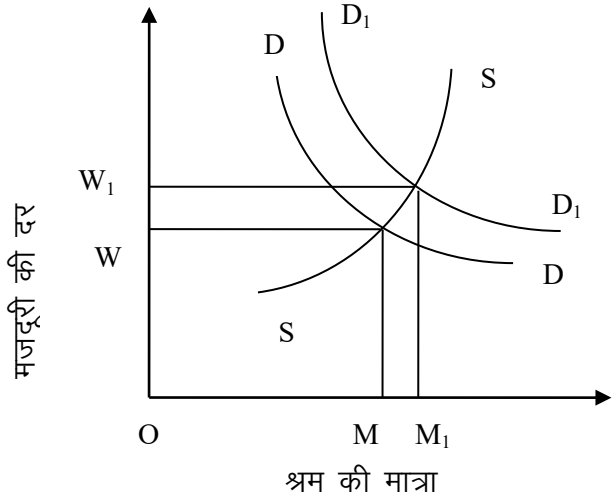

चित्र 18.5

चित्र 18.5 में SS श्रम का पूर्ति वक्र व DD श्रम का प्रारम्भिक मांग वक्र है और मजदूरी की दर OW निर्धारित है। यदि मांग वक्र ऊपर विवर्तित होकर DD_1 हो

जाता है तब मजदूरी की दर OW_1 हो जाती है तथा श्रम की पूर्ति OM से बढ़ कर OM_1 हो जाती है।

बोध प्रश्न ख

1. **मजदूर संगठनों से आप क्या सकते है?**

.....
.....
.....
.....

2. **साधन बाजार में सामूहिक सौदाकारी क्या होती है?**

.....
.....
.....
.....

3. **निम्न में से सही/गलत को बताइए।**

(i) श्रम बाजार में श्रम की पूर्ति सीमित नहीं की जा सकती है।

(ii) श्रम की मांग या खरीदने वाले एक ही नियोक्ता या फर्म की स्थिति को एकाधिकार कहते हैं।

(iii) नियोक्ता फर्में अकसर मजदूरों का शोषण करती हैं।

(iv) श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति नियोक्ताओं की अपेक्षा कमजोर होती है।

(v) अकेला श्रमिक नियोक्ता से सौदेबाजी कर मजदूरी को प्रभावित कर सकता है।

4. **रिक्त स्थानों को भरिये।**

(i) यदि श्रम का पूर्ति वक्र ..... तरफ खिसक जाय तो मजदूरी में वृद्धि होती है।

(ii) श्रमिक ..... की सहयता से नियोक्ता से सौदेबाजी करते हैं।

(iii) श्रम बाजार में अकेला क्रेता को ..... की स्थिति कहते हैं।

(iv) नियोक्ता मजदूरों को प्रायः ..... से कम मजदूरी देते हैं।

(v) नियोक्ता की अपेक्षा श्रमिकों की सौदेबाजी शक्ति ..... होती है।

18.4 ब्याज

सामान्य बोलचाल की भाषा में ऋणी द्वारा ऋणदाता को मूलधन के अतिरिक्त दिये गये भुगतान को ब्याज कहते हैं। अर्थशास्त्र में पूँजी के प्रयोग के बदले दी गयी कीमत ब्याज कहलाती है। उत्पादन के पांच साधन होते हैं। इन सभी साधनों का उत्पादन प्रक्रिया में योगदान होता है, जिसमें से पूँजी उत्पादन का

एक महत्वपूर्ण साधन है। जब पूँजीपति अपनी पूँजी उधार देता है तो उसे अपनी वर्तमान आवश्यकताओं को भविश्य के लिये स्थगित करना पड़ता है, ऐसा करने के के लिए उसे त्याग करना पड़ता है। अतः पूँजी की सेवाओं के बदले में पूँजीपति को दिये गये पुरस्कार को ही ब्याज कहते हैं। ब्याज शब्द का प्रयोग केवल मुद्रा रूपी पूँजी को एक निश्चित समयावधि के प्रयोग के भुगतान के लिये किया जाता है इस कारण ब्याज को प्रतिशत के रूप में व्यक्त करते हैं।

18.4.1 कुल ब्याज एवं शुद्ध ब्याज

ब्याज दो प्रकार का होता है कुल ब्याज एवं शुद्ध ब्याज। **कुल ब्याजः** एक पूँजीपति को पूँजी के उधार से जो आय प्राप्त होती है उसे कुल ब्याज कहते हैं। कुल ब्याज में निम्नलिखित तत्व भी शामिल रहते हैंः–

(i) जोखिम का पुरस्कार : जब कोई ऋणदाता, ऋणी को अपनी पूँजी उधार देता है तो उसे दो प्रकार की जोखिम– व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत जोखिम सहनी पड़ती हैं। कुल ब्याज में जोखिम का पुरस्कार शामिल रहता है। जोखिम की मात्रा जितनी अधिक होगी, ब्याज की दर भी उतनी ही अधिक हो गयी है।

(ii) असुविधा के लिए भुगतान : जब कोई पूँजीपति अपनी पूँजी उधार देता है तो वह एक निश्चित समयावधि के लिए उस पूँजी के प्रयोग से वंचित रहता है। ऐसे में यदि पूँजीपति को स्वयं के लिए पूँजी की आवश्यकता भी पड़े तो भी उसे किसी अन्य से पूँजी का प्रबन्ध करना पड़ता है, जिससे उसे असुविधा भी होती है। पूँजीपति की असुविधा जितनी ज्यादा होगीं, ब्याज की दर भी उतनी ही अधिक होगी।

(iii) प्रबन्ध अथवा व्यवस्था के लिये भुगतान : पूँजीपति जब अपनी पूँजी का लेन–देन करता है तो उसे ऋणियों को देने वाले ऋण का हिसाब–किताब भी रखना पड़ता है। कभी–कभी ऋण वसूली के लिये कानूनी सलाह तथा न्यायालय की भी शरण लेनी पड़ती है। ऐसे में ऋणदाता को उक्त कार्यों के लिये प्रबन्ध खर्च करना होता। इस प्रकार ब्याज के एक अंश के रूप में प्रबन्ध अथवा व्यवस्था की लागत भी शामिल होती है। इस प्रकार **कुल ब्याज** = जोखिम का पुरस्कार + असुविधाओं के लिये भुगतान + प्रबन्ध अथवा व्यवस्था के लिये भुगतान।

शुद्ध ब्याज : शुद्ध ब्याज वह भुगतान है जो केवल पूँजी में प्रयोग के बदले किया जाता है। यदि कुल ब्याज के रूप में प्राप्त हुये भुगतान में से जोखिम के पुरस्कार, असुविधाओं के लिये भुगतान एवं प्रबन्ध के लिये किये गये भुगतान को कम कर दिया जाये तो जो शेष बचता है उसे ही शुद्ध ब्याज कहते हैं। इस प्रकार **शुद्ध ब्याज =** कुल ब्याज – जोखिम का पुरस्कार + असुविधाओं के लिये भुगतान + प्रबन्ध अथवा व्यवस्था के लिये भुगतान।

18.4.2 ब्याज दरों में अन्तर

प्रायः यह देखने को मिलता है कि अलग–अलग स्थानों, व्यक्तियों एवं वित्तीय संस्थानों में ब्याज की दरों भिन्नता रहती है। वास्तव में ब्याज दरों में यह भिन्नता शुद्ध ब्याज दरों में नहीं बल्कि कुल ब्याज दरों के कारण होती है। साधारणतः शुद्ध ब्याज दर तो प्रत्येक व्यक्ति के लिये एक ही होती है, किन्तु कुल ब्याज दर भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के लिए अलग–अलग होती है। ब्याज दरों में विभिन्नता कई कारणों से हो सकती है, प्रायः देखने को मिलता है जिन व्यक्तियों की आर्थिक

स्थिति अच्छी होती है तथा जो ईमानदार होते हैं उन व्यक्तियों को कम ब्याज दर पर आसानी से ऋण प्राप्त हो जाता है, क्योंकि उनके सम्बन्ध में व्यक्तिगत जोखिम कम होता है। ऋण की अवधि भी ब्याज दरों में भिन्नता लाती है। ऋण की अवधि जितनी अधिक होगी ब्याज की दर भी उतनी ही अधिक होगी।

छोटे व्यापारियों, किसानों, कारीगरों आदि को ऋण देने में पूँजीपति को ऋण प्रबन्ध पर अधिक व्यय करना पड़ता है इस कारण पूँजीपति इन लोगों को ऊँची ब्याज दरों पर ऋण देते हैं। ब्याज दरों में भिन्नता का एक प्रमुख कारण ऋण की मात्रा भी है। ऋण की राशि जितनी ज्यादा होगी ब्याज की दर उतनी ही कम होगी, जबकि दूसरी ओर ऋण की राशि कम होने पर ब्याज की दरें अधिक हो जाती हैं। ऐसा प्रबन्ध व्यय के कारण होता है। ऋण की राशि कम होने पर पूँजीपति को ऋण के अनुपात में प्रबन्ध व्यय अधिक करना पड़ता है। व्यापारिक केन्द्रों से जो स्थान ज्यादा अधिक दूर होते हैं ब्याज दरें उतनी ही अधिक होती हैं, क्योंकि ऋणदाता को ऋण वसूलने के लिये ज्यादा असुविधा एवं व्यय करना पड़ता है। इन सभी के अतिरिक्त व्यवस्था की प्रकृति भी ब्याज दरों में भिन्नता का एक अन्य कारण है, जिन व्यवसायों में अधिक जोखिम होता है उनमें ब्याज दरें अधिक रहती हैं।

बोध प्रश्न ग

1. **कुल ब्याज एवं शुद्ध ब्याज में क्या अन्तर है, बताइये।**

.....
.....
.....
.....
.....

2. **ब्याज की दरों में भिन्नता के क्या कारण हैं?**

.....
.....
.....
.....
.....

3. **निम्न में से सही/गलत को बताइए।**

(i) शुद्ध ब्याज के अन्तर्गत कुल ब्याज भी शामिल होता है।

(ii) ब्याज को प्रतिशत में नहीं व्यक्त किया जा सकता है।

(iii) विभिन्न ब्याज दरों के मध्य भिन्नता पायी जाती है।

(iv) जिसमें जोखिम अधिक होता है उसकी ब्याज दरें कम होती है।

(v) ऋण की राशि जितनी ज्यादा होगी ब्याज की दर उतनी ही कम होगी, जबकि दूसरी ओर ऋण की राशि कम होने पर ब्याज की दरें अधिक हो जाती हैं।

18.5 ब्याज दर का निर्धारण

ब्याज दर के निर्धारण के सम्बन्ध में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग–अलग सिद्धान्त दिये हैं इन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मदभेद रहा है। इसलिये ब्याज दर निर्धारण को अर्थशास्त्र की जटिल समस्याओं में से एक माना जाता है। यहाँ पर ब्याज निर्धारण के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना की जा रही है।

18.5.1 ब्याज का क्लासिकल सिद्धान्त

ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त को माँग एवं पूर्ति के सिद्धान्त अथवा बचत एवं विनियोग के सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। ब्याज निर्धारण के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मुख्य रूप से मार्शल, पीगू, वालरस, रिकार्डो, नाइट आदि अर्थशास्त्रियों ने किया था। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्याज दर निर्धारण में कुछ वास्तविक तत्वों जैसे उत्पादकता, बचत, मितव्ययता, त्याग, प्रतीक्षा आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अतः इसे ब्याज का वास्तविक सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस स्थान पर पूँजी की माँग एवं पूर्ति बराबर होगी उसी स्थान पर ब्याज की दर निर्धारित होगी।

पूँजी की माँग – पूँजी की माँग उत्पादक वर्ग द्वारा विनियोग के उद्देश्य से की जाती है, जिसका आधार पूँजी की सीमांत उत्पादकता है। जैसे–जैसे पूँजी की अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जायेगा, पूँजी की सीमांत उत्पादकता गिरती जायेगी। उत्पादक, ब्याज की दर कम होने पर पूँजी की अधिक माँग करेंगे, इसके विपरीत जब ब्याज दरें अधिक होगीं, विनियोग के लिये पूँजी की माँग भी कम हो जायेगी। अतः विनियोग के लिये पूँजी की माँग एवं ब्याज दरों में विपरीत सम्बन्ध देखने को मिलता है, इसीलिये पूँजी की माँग रेखा बायें से दायें नीचे की ओर गिरती हुयी होती है।

पूँजी की पूर्ति – पूँजी की पूर्ति समाज की बचत की मात्रा पर निर्भर करती है। जब बचतकर्ता अपनी आय में से एक भाग की बचत करता है तो उसे वर्तमान उपभोग से वंचित रहना पड़ता है। अतः बचतकर्ता तब तक बचत नहीं करेगा जब तक उसे त्याग के लिये पुरस्कार न मिले, यही पुरस्कार ही ब्याज है। ब्याज दर एवं बचत की पूर्ति में सीधा सम्बन्ध होता है। कम ब्याज दर पर लोग कम बचत करते हैं, इसमें विपरीत ब्याज दरें अधिक होने पर बचतों में भी वृद्धि होती है। अतः पूँजी का पूर्ति वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर उठता हुआ होता है।

ब्याज दर का निर्धारण – ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है, जहाँ पर पूँजी की माँग एवं पूँजी की पूर्ति बराबर होते हैं, जैसा कि चित्र में दशार्या गया है–

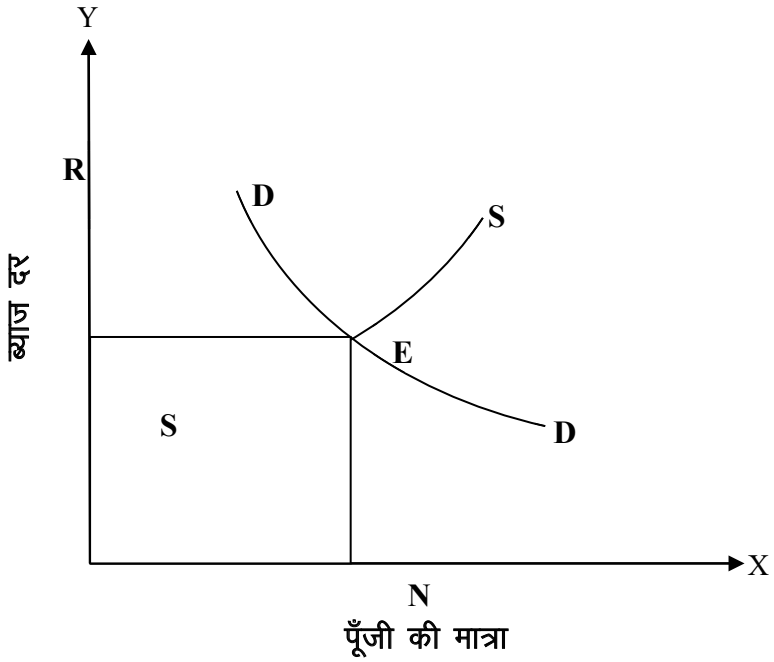

चित्र 18.6

उपरोक्त चित्र में DD पूँजी का माँग वक्र है एवं SS पूँजी का पूर्ति वक्र है, E बिन्दु पर पूँजी की माँग एवं पूर्ति वक्र एक–दूसरे को काट रहे हैं अतः यही साम्य की स्थिति होगी। इस स्थिति में पूँजी की माँग एवं पूर्ति ON होगी, जबकि ब्याज दर OR होगी।

18.5.2 ब्याज का उधार देय कोष सिद्धान्त

ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त की कमियों को दूर करने के लिये सर्वप्रथम स्वीडन के अर्थशास्त्री विकसैल ने उधार देय कोष सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। बाद में हैबरलर, ओहलिन, मिर्डल, हेन्सन, लिण्डल, राबर्टसन आदि ने इसमें संशोधन किये। ब्याज दर निर्धारण में उधार देय कोष सिद्धान्त के अनुसार ब्याज का निर्धारण उधार देय कोषों की माँग एवं पूर्ति द्वारा होता है। उपरोक्त सिद्धान्त ब्याज निर्धारण में मौद्रिक घटकों के साथ–साथ गैर मौद्रिक घटकों पर भी ध्यान देता है।

उधार देय कोषों की माँग – उधार देय कोषों की माँग मुख्य रूप से (i) उपभोग के लिये (ii) विनियोग के लिये (iii) संचय के लिये की जाती है। प्रायः उपभोक्ता उधार देय कोष की माँग उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये करते हैं। इसी प्रकार उत्पादकों द्वारा पूँजीगत वस्तुओं को क्रय करने के उद्देश्य से उधार योग्य कोषों की माँग की जाती है ताकि भविश्य में अधिक लाभ कमाया जा सके। व्यक्तियों का उद्देश्य धन संचय भी होता है अतः वे इसे तरल रूप में अपने पास रखना पसंद करते हैं, इसलिये वे अधिक उधार योग्य कोष की माँग करेंगे।

उधार देय कोषों की पूर्ति – उधार देय कोषों की पूर्ति मुख्यतः (i) बचतों (ii) बैंक साख (iii) अपसंचय (iv) विनिवेश से की जाती है। बचतें उधार देय

योग्य कोष का सबसे बड़ा स्रोत होती हैं। आय में से व्यय करने के पश्चात् जो धनराशि बच जाती है, उसे बचत कहते हैं। बचत एवं ब्याज दर में सीधा सम्बन्ध होता है, ऊँची ब्याज दर पर अधिक बचत एवं कम ब्याज दरों पर कम बचत करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। व्यापारिक बैंकें भी साख का सृजन करके उधार देय कोषों की पूर्ति बढ़ाती हैं। इसके अतिरिक्त ब्याज दर एवं अपसंचय का भी सीधा सम्बन्ध होता है। ब्याज दरें अधिक होने पर लोग पिछली बचतों का अपसंचय करके उधार देय कोषों की पूर्ति में वृद्धि करते हैं। विनिवेश का अर्थ है, पूँजीगत वस्तुओं का विक्रय। जब पूँजीगत वस्तुओं से अधिक आय प्राप्त न हो रही हो, दूसरी ओर ब्याज दरें अधिक हों तो ऐसे में विनियोगकर्ता इन पूँजीगत वस्तुओं के विक्रय से आय प्राप्त करते हैं तत्पश्चात् इसका प्रयोग उधार देय कोषों की पूर्ति के लिये करते हैं।

ब्याज दर का निर्धारण – ब्याज दर उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जिस पर उधार देय कोषों की माँग–उधार देय कोषों की पूर्ति के बराबर हो। जैसा कि उपरोक्त रेखाचित्र में दर्शाया गया है–

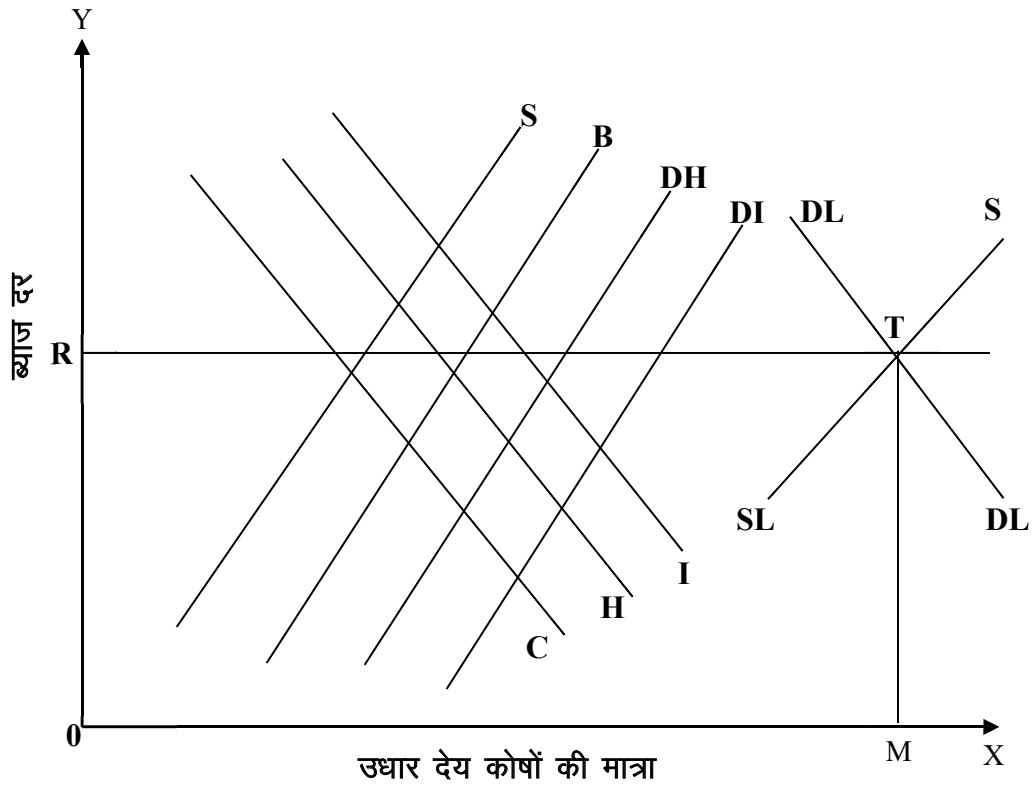

चित्र 18.7

उपरोक्त चित्र में उपभोग (C), विनियोग (I) है, एवं संचय (H) है। इन सभी का योग उधार देय कोषों की माँग (DL) है। जबकि बचतें (S), बैंक साख (B) अपसंचय (DH) एवं विनिवेश (DI) है, इन सभी का योग उधार देय कोषों की पूर्ति (SL) है। उपरोक्त रेखाचित्र में उधार देय कोष की माँग (DL) उधार देय योग कोष की पूर्ति (SL) को T बिन्दु पर काट रहे हैं। अतः ब्याज की दर OR होगी।

18.5.3 ब्याज की तरलता पसंदगी सिद्धान्त

जे0 एम0 कीन्स ने सन् 1936 में अपनी पुस्तक "The General Theory of Employment, Interest and Money" में ब्याज निर्धारण के तरलता पसंदगी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कीन्स के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है। कीन्स ने स्पष्ट किया कि ब्याज बचत का पुरस्कार न होकर द्रव्यता के परित्याग का पुरस्कार होती है। कीन्स ने बताया व्यक्तियों द्वारा मुद्रा की माँग नगद अर्थात् तरल रूप में रखने के लिये की जाती है। जबकि मुद्रा की पूर्ति का अर्थ किसी समय विशेष में उपलब्ध मुद्रा की कुल मात्रा से होता है जिसकी मात्रा केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित होती है, जो बेलोच होती है। अतः ब्याज निर्धारण में मुद्रा की माँग महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

मुद्रा की माँग– कीन्स के अनुसार मुद्रा की माँग तरलता के लिये की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने धन को नकद अर्थात तरल रूप में अपने पास रखना पसंद करता है। ऐसे में वह मुद्रा के लिये अपनी तरलता पसंदगी का त्याग उसी समय करेगा जबकि इसके बदले में उसे कुछ पुरस्कार मिलेगा, यही पुरस्कार ब्याज कहलाता है। तरलता पसंदगी जितनी अधिक होगी ब्याज की दर भी उतनी ही अधिक होगी। कीन्स के अनुसार लोग मुद्रा को नकद रूप में रखने की माँग निम्नलिखित उद्देश्यों से करते हैं:

(1) **कार्य सम्पादन उद्देश्य :** कार्य सम्पादन उद्देश्य दो श्रेणियों में बाँटा जाता है– आय उद्देश्य एवं व्यवसाय उद्देश्य। प्रायः लोगों को अपने दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिये नकदी की आवश्यकता होती है परन्तु उनकी आय एक निश्चित समयावधि में पश्चात् ही होती है। इसीलिये प्रत्येक व्यक्ति आय का कुछ भाग नकद रूप में अपने पास रखना पसंद करता है। इसके अतिरिक्त व्यापारियों को भी अपने दैनिक व्यवसायिक लेन–देन की आवश्यकता होती है। अतः व्यापारी अपने व्यावसायिक व्ययों को पूरा करने के लिये नकदी रखना चाहता है।

(2) **सतर्कता उद्देश्य :** प्रत्येक व्यक्ति द्वारा भविश्य में सम्भावित किसी आकस्मिक घटनाओं, बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी अथवा अन्य किसी अप्रत्याशित आवश्यकता को पूरा करने के लिये भी मुदा की माँग की जाती है।

(3) **सट्टा उद्देश्य :** सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत लोग ब्याज दरों में होने वाले परिवर्तनों का लाभ उठाने के लिये मुद्रा को नकद रूप में अपने पास रखते हैं। जो लोग वर्तमान ब्याज दरों को नीचा समझते हैं वे मुद्रा की अधिक मात्रा नकद के रूप में रखना पसंद करेंगे ताकि भविष्य में ब्याज दरें बढ़ने पर उधार देकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकें इसके विपरीत ब्याज दरें ऊपर होने पर लोग अधिकाधिक धन को उधार देना पसंद करेंगे अर्थात् नकदी की माँग कम होगी। कीन्स के अनुसार कार्य सम्पादन उद्देश्य, सतर्कता उद्देश्य एवं सट्टा उद्देश्य तीनों मिलकर मुद्रा की माँग को बताते हैं। यदि मुद्रा की माँग को L द्वारा, कार्यसम्पादन एवं सकर्तकता उद्देश्य को L_1 जबकि, सट्टा उद्देश्य को L_2 मान लिया जाये तो $L = L_1 + L_2$

मुद्रा की माँग को दर्शाने वाली रेखा LP ऋणात्मक ढ़ाल लिये बाँये से दायें गिरते हुये होती है, परन्तु एक निश्चित सीमा के पश्चात् यह X अक्ष के समानान्तर हो जाती है। ऐस ब्याज दरों के न्यूनतम होने के कारण होता है क्योंकि जब ब्याज दरें न्यूनतम स्तर पर पहुँच जाती हैं तो लोग उधार देना पसंद नहीं करते एवं अपने धन को तरल अर्थात् नकद रूप में अपने पास रखना पसंद करेंगे। कीन्स ने इसे तरलता जाल (Liquidity Trap) कहा है।

मुद्रा की पूर्ति – मुद्रा की पूर्ति के अन्तर्गत् पत्र मुद्रा, सिक्के एवं बैंक साख आदि शामिल किये जाते हैं। चूँकि मुद्रा की पूर्ति केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीतियों द्वारा निर्धारित होती है, जो बेलोच होती है। अतः किसी समय विशेष में मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है। मुद्रा की पूर्ति पर केन्द्रीय बैंक का नियत्रंण होने के कारण मुद्रा की पूर्ति ब्याज दर को प्रभावित करती है, किन्तु ब्याज दरें मुद्रा पूर्ति पर प्रभाव नहीं डाल सकतीं।

ब्याज दर का निर्धारण : ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जिस स्थान पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति आपस में बराबर होंगे।

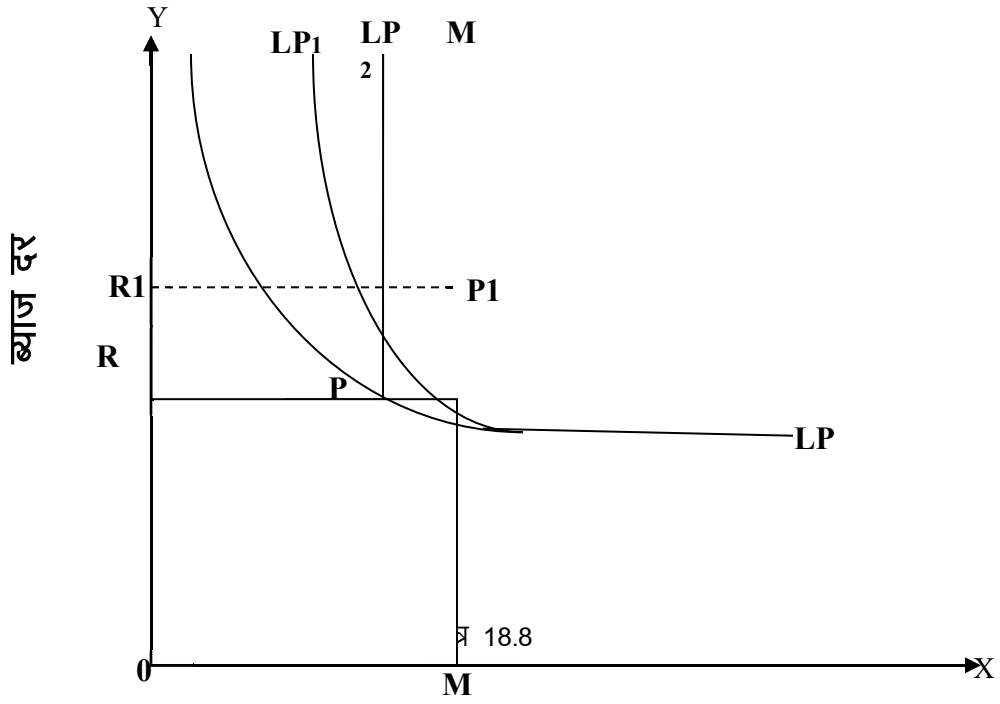

मुद्रा की माँग एवं पूर्ति

उपरोक्त रेखाचित्र में LP_1 मुद्रा की माँग तथा MM मुद्रा का पूर्ति वक्र है। रेखाचित्र में P बिन्दु पर सन्तुलन है यहाँ मुद्रा की माँग एवं पूर्ति आपस में बराबर हैं एवं ब्याज दर OR है। अब यदि तरलता पसंदगी बढ़ जाती है जिससे मुद्रा का माँग वक्र ऊपर की ओर खिसकर LP_2 हो जाता है जिस पर नया संतुलन P_1 पर स्थापित होगा एवं ब्याज दर भी बढ़कर OR_1 हो जायेगी।

18.6 सारांश

अर्थशास्त्र में मजदूरी से तात्पर्य उस पारितोषिक से लगाया जाता है जो कि एक श्रमिक को उसकी सेवा के बदले में प्रदान की जाती है। मजदूरी के सिद्धान्तों में सर्वप्रथम प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री टर्गॉट ने जीवन–निर्वाह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इनके इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी जीवन–निर्वाह के बराबर रहती है। **सीमान्त उत्पादकता** सिद्धान्त के अनुसार एक श्रमिक की मजदूरी उसकी उत्पादकता के अनुसार तैय होगी। श्रमिक की मजदूरी उतनी होगी जितनी

उसकी सीमान्त उत्पादकता।एक अकेला मजदूर मजदूरी की दर को प्रभावित नहीं कर सकता और नियोक्ता के द्वारा शोषित होता रहता है। इसी कारण मजदूर संघों का उदय हुआ। ताकि मजदूर के शोषण को रोका जा सके। मजदूर को कम से कम उसकी उत्पादकता के अनुसार पारितोषिक मिल सके।

पूँजी उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है जिसका प्रयोग भविश्य के उत्पादन के लिये किया जाता है। अतः पूँजीपति जब अपनी पूँजी उधार देता है तो उसे वर्तमान आवश्यकताओं से वंचित होना पड़ता है, ऐसा करने पर उसे पुरस्कार स्वरूप जो राशि दी जाती है, उसे ब्याज कहते हैं। ब्याज केवल मुद्रा रूपी पूँजी को एक निश्चित समय के प्रयोग के भुगतान के रूप में दिया जाता है। प्रायः अलग–अलग स्थानों, व्यक्तियों एवं वित्तीय संस्थानों में ब्याज दरों में भिन्नता देखने को मिलती है, जिसके अनेक कारण हो सकते है। वैसे तो ब्याज दर निर्धारण के अनेकों सिद्धान्त प्रचलित हैं परन्तु इनमें से ब्याज का परम्परावादी सिद्धान्त, ब्याज का नया– क्लासीकल सिद्धान्त एवं कीन्स का तरलता पसंदगी सिद्धान्त प्रमुख हैं। ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त का प्रतिपादन मुख्यतः मार्शल, पीगू, वालरस, रिकार्डो आदि ने किया था। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार जिस स्थान पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति बराबर होती है उस स्थान पर ब्याज दर का निर्धारण होता है। नव–क्लासिकल अर्थशास्त्री जिनमें विकसैल, हैबरलर, ओहलिन, मिर्डल आदि शमिल थे, इन्होंने ब्याज निर्धारण में मौद्रिक घटकों के साथ–साथ गैर मौद्रिक घटकों को भी शामिल किया। इसके पश्चात् कीन्स के इन दोनों सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया एवं एक नया सिद्धान्त जिसे ब्याज का तरलता पसंदगी सिद्धान्त नाम से जाना जाता है, इसका प्रतिपादन किया।

बोध प्रश्न घ

1. ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त का परीक्षण करें।

   .....
   .....
   .....
   .....
   .....

2. निम्न में से सही/गलत को बताइए।

   (i) ब्याज के उधार देय कोष का प्रतिपादन कीन्स ने किया था।

   (ii) ब्याज के तरलता पसंदगी सिद्धान्त का प्रतिपादन मार्शल ने किया था।

   (iii) ब्याज के उधार देय कोष सिद्धान्त में ब्याज निर्धारण में मौद्रिक घटकों के साथ–साथ गैर–मौद्रिक घटकों को भी शामिल किया जाता है।

   (iv) तरलता पसंदगी सिद्धान्त में ब्याज दरें मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करती हैं।

18.7 उपयोगी शब्दावली

- मौद्रिक मजदूरी – जब श्रमिक की मिलने वाला पारिश्रमिक का भुगतान मुद्रा में होता है तो उसे मौद्रिक मजदूरी कहा जाता है।
- सामूहिक सौदेदारी – जब श्रमिक मजदूर संगठनों के साथ मिलकर मजदूरी के लिए नियोक्ता पर दबाव बनाते है।
- क्रेताधिकार – जब साधन बाजार में अकेला क्रेता होता है।
- ब्याज – पूँजी के प्रयोग के बदले दी गयी कीमत।
- कुल ब्याज – शुद्ध ब्याज, जोखिम का प्रतिफल, असुविधाओं के लिये भुगतान, प्रबन्ध के लिये भुगतान का योग।
- तरलता – नकदी
- विनिवेश – पूँजीगत वस्तुओं का विक्रय।

18.8 बोध प्रश्नो के उत्तर

क 3 (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) गलत

4 (i) मजदूरी कोष (ii) मांग व पूर्ति, काटते (iii) ऋणात्मक (iv) उल्टा U (v) सीमान्त उत्पादकता (vi) पूर्ण प्रतियोगी फर्म

ख 3 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) गलत

4 (i) बायीं (ii) मजदूर संगठनों (iii) क्रेताधिकार (iv) सीमान्त उत्पादकता (v) सीमित

ग 3 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही

घ 2 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत

18.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 सामूहिक सौदेकारी से आप क्या समझते हैं श्रमिक नियोक्ता पर किस तरह से दबाव बनाते हैं। व्याख्या करें।

प्रश्न–2 अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण किस प्रकार होता है।

प्रश्न–3 मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की ब्याख्या कीजिये।

प्रश्न–4 ब्याज के तरलता पसंदगी सिद्धान्त की विवेचना कीजिये।

प्रश्न–5 उधार देय कोष सिद्धान्त और कीन्स के तरलता पसंदगी सिद्धान्त के मध्य अन्तर को समझाइये।

कुछ उपयोगी पुस्तके

- डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)
- डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

इकाई : 19 आय का "वितरण–II : लगान और लाभ"

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 लगान का सिद्धान्त

19.2.1 रिकार्डो का लगान

19.2.2 लगान का आधुनिक सिद्धान्त

19.2.3 आर्थिक लगान एवं अन्तरण आय

19.3 आभास लगान

19.4 लाभ

19.4.1 लाभ के सिद्धान्त

19.4.2 लाभ के कार्य

19.5 सारांश

19.6 उपयोगी शब्दावली

19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

19.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- लगान की अवधारणा को जान सकेंगे,
- लगान कैसे उत्पन्न होता है समझा सकेंगे,
- लगान और आभासी लगान में अन्तर बता कर सकेगें,
- आप लाभ की अवधारणा स्पष्ट कर सकेगें,
- लाभ के कार्य बता सकेंगे तथा
- लाभ के महत्व को विस्तार से समझा सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

उत्पादन के समस्त साधन मिलकर उत्पादन करते हैं तथा इसको बाज़ार में बेचकर कुल आगम की जो प्राप्ती होती है वह इन साधन स्वामियों के बीच में साधन आय–मजदूरी, ब्याज, लगान और लाभ के रूप में वितरित हो जाता है। पिछली इकाई में आपने पढ़ा था कि मज़दूरी और ब्याज, का निर्धारण कैसे होता हैं, इस इकाई में आप लगान और लाभ का अध्ययन करेंगे। भूमि के प्रयोग के लिए भू–स्वामी को जो प्रतिफल दिया जाता है, उसको लगान कहते हैं। प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान केवल भू–स्वामी के भूमि के प्रयोग के बदले में ही दिया जाता है परन्तु आधुनिक अर्थशासत्रियों का मत है कि लगान किसी भी साधन को उसकी उत्पादन क्षमता के अनुसार प्राप्त हो सकता है। इनके अनुसार जिस भी साधन की पूर्ति बेलाोच होाती है उससे जो अर्जित अतिरेक (Surplus) होता है, वह लगान देता है। किसी भी साधन को उसकी अवसर लागत से अधिक जो भी आय प्राप्त होती है वह लगान है। इस प्रकार प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान सिर्फ भूमि की आय है जबकि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुयार यह उत्पादन के सभी साधनों को मिल सकती है। इसका विस्तृत अध्ययन हम इकाई में आगे करेंगें। लाभ का विश्लेषण एक जटिल विवेचना है क्योंकि अन्य उत्पादन के साधनों के भगतान के बाद उद्यमी के लिए बचा हुआ धन ही लाभ होता है। अतः इसके निर्धारण का कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया जा सका है। इतः हम लाभ की विवेचना उसकी औचित्य कार्यों और स्रोतों के सम्बन्ध में करते हैं।

19.2 लगान का सिद्धान्त

लगान के सिद्धान्त का क्रमबद्ध व विस्तृत प्रतिपादन प्रसिद्ध प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो द्वारा किया गया। रिकार्डो के अनुसार ''पृथ्वी की उपज का वह भाग जो भूमि की मूल वह अविनाशी शक्ति के प्रयोग के लिए भूमि के स्वामी को दिया जाता है, वह लगान है।'' अर्थात् इनके अनुसार भूमि को अपनी कुल साधन आय में से वह भाग हो उसको अपनी उर्वरा शक्ति के लिये मिलता है केवल वही लगान है। इस प्रकार रिकार्डो ने लगान को बहुत सीमित अर्थ में व्यक्त किया, क्योंकि इनके अनुसार यह किसी अन्य साधन के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता। परन्तु इस सिद्धान्त ने एक महत्वपूर्ण तथ्य को उजागर किया कि स्थिर या पूर्णतया बेलोच पूर्ति वाले साधन लगान जैसी आय का उपार्जन करेंगे। इसी अवधारणा पर आगे जाकर आधुनिक लगान सिद्धान्त और आभास लगान के विचार को प्रतिपादित किया गया।

19.2.1 रिकार्डो का लगान

रिकार्डो के अनुसार लगान एक अवशेष भुगतान होता है जोकि बाकी सारे भुगतानों (जोकि भूमि पर हुए कुल उत्पाद में लगे है) को भूमि के उत्पादन की कुल प्राप्ती से घटाने के बाद बचता है तथा यह **शुद्ध लगान ही आर्थिक लगान** है जोकि भूमि को उसकी उर्वरा शक्ति के लिए मिलता है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की मान्यताएँ– यह सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित हैः–

1. लगान केवल भूमि पर उत्पन्न होता है।

2. लगान भूमि को उसकी मौलिक और अविनाशी उर्वरा शक्तियों के कारण मिलता है।

3. सर्वप्रथम सर्वाधिक उपजाऊ भूमि पर कृषि होगी। क्रमवार भूमियों का चयन होगा।

4. दीर्घकालिक सिद्धान्त हैं।

5. सीमान्त भूमि की अवधारणा–जिस पर कोई लगान नहीं मिलेगा। लगान रहित होती है।

6. भूमि समरूप नहीं होती है।

जैसा कि पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की उर्वरा शक्ति जोकि मौलिक और अविनाशी है के कारण मिलता है। इन्होंने भूमि को उसकी उपजाऊ शक्ति के अनुसार विभिन्न श्रेणियों A, B, C, D आदि में बाँटा और यह स्पष्ट किया कि मनुष्य सबसे पहले सर्वाधिक उपजाऊ भूमि का प्रयोग करता है, फिर, उससे कम उपजाऊ और फिर उससे निम्न प्रकार की भूमि का प्रयोग करता है। जैसे–जैसे जनसंख्या का दबाव बढ़ता है। इस कारण अनाज की अतिरिक्त माँग होने पर कम उपजाऊ भूमियों का भी प्रयोग उत्पादन में होने लगता है तथा हम सीमान्त भूमि, जो भूमि के प्रयोग की अन्तिम श्रेणी है (Last grade of Land) जिस पर लगान शून्य के बराबर होता है, का भी प्रयोग करते हैं। इस स्थिति में आकर भूमि की उपज से कल आगम और उसपे लगने वाली कुल लागत बराबर हो जाती है। अतः इस स्थिति में D श्रेणी की भूमि को रिकार्डो ने **सीमान्त भूमि या लगान रहित भूमि** (No Rent Lnad) कहा है। इससे पहले की सारी भूमियाँ A, B, C लगान देती हैं। रिकार्डो के अनुसार सभी प्रकार की भूमियों पर सीमान्त भूमि के उत्पादन से जितना अधिक उनका उत्पादन है, उसके मूल्य के बराबर लगान दिया जायेगा। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि लगान वह राशि है जो किसी भूमि पर सीमान्त भूमि के उत्पाद के आधिक्य के बराबर हो। इसे निम्न तालिका 19.1 से समझ सकते है।

तालिका 19.1

भूमि का प्रकार	A	B	C	D
व्यय किया गया धन (रू0)	300	300	300	300
उत्पादन का मूल्य (रू0)	600	500	400	300
लगान	300	200	100	0

उपरोक्त चार प्रकार की भूमि A, B, C, D, E पर एक निश्चित मात्रा में (300 Rs) यदि व्यय किये जाये तो उनसे प्राप्त होने वालो उपज के मूल्य के अनुसार A पर सर्वाधिक 300 रु0, B पर 200 रु0, C पर 100 रु0 तथा D पर शून्य लगान मिलेगा। अतः D भूमि सीमान्त भूमि या No Rent Land है। E प्रकार की भूमि जिस पर मिलने वाली उपज का मूल्य उसके कुल व्यय से कम है, अप्रयुक्त रहेगी। अर्थात् सीमान्त भूमि के प्रयोग में आने के बाद उत्पादन नहीं किया जायेगा। इसे चित्र 19.1 में प्रदर्शित किया गया है।

PIXAL-003

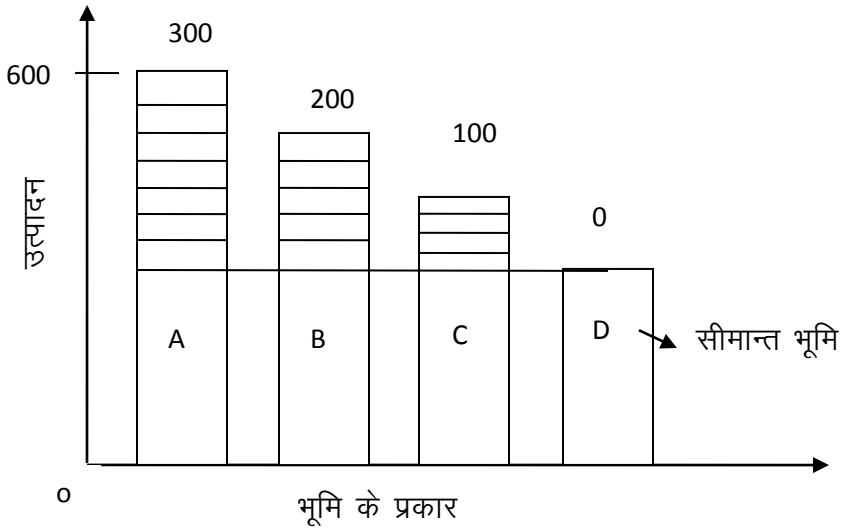

चित्र 19.1

19.2.2 लगान का आधुनिक सिद्धान्त

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने रिकार्डो की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया। उनके अनुसार लगान किसी भी साधन (और न केवल भूमि) के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस सिद्धान्त को विकसित करने में मार्शल, जोन राबिन्सन तथा बोलडिंग का विशेष योगदान रहा है। श्रीमती जोन राबिन्सन के अनुसार, '' लगान की अवधारणा का सारांश यह है कि यह अतिरेक है जोकि किसी उत्पादन साधन के किसी विशिष्ट भाग द्वारा उस न्यूनतम आय के अतिरिक्त अर्जित किया जाता है जो उसे अपना काम करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक होती है।''

इस अवधारणा के अनुसार आधुनिक सिद्धान्त के मुख्य तथ्व निम्न है :–

1. लगान उत्पत्ति के सभी साधनों से प्राप्त हो सकता है।
2. यह एक सामान्य भुगतान है जो अतिरिक्त आय के रूप में मिलती है।
3. यह दुर्लभता के कारण मिलता है।
4. इसकी गणना अवसर लागत था अन्तरण आय के आधार की जाती है।

अर्थशास्त्र में लगान की इस अवधारणा का व्यापक रूप में प्रयोग किया गया है। क्योंकि यह दुर्लभता पर आधारित है। प्रत्येक साधन का मूल्य उसकी दुर्लभता से निर्धारित होता है क्योंकि कोई भी साधन न तो निःशुल्क है और न ही उसकी पूर्ति असीमित। अतः प्रत्येक साधन उत्पादन में काम आने के प्रतिफल के रूप में कुछ न्यूनतम आय की अपेक्षा रखता है (जोकि उसकी अवसर लागत या अन्तरण आय के बराबर होता है और यही उसका न्यूनतम पूर्ति मूल्य होता है)। वास्तविक उर्पाजन इस न्यूनतम उपार्जन के बराबर, उससे कम या अधिक हो सकता है। यदि वास्तविक उपार्जन (न्ययूनतम उपार्जन/अवसर लागत) से अधिक है तो यह अतिरेक ही लगान है। लगान के आधुनिक सिद्धान्त की पूर्ति व माँग वक्रों के द्वारा भी समझाया जा सकता है।

19.2.3 आर्थिक लगान एवं अन्तरण आय

आर्थिक लगानः आर्थिक लगान को शुद्ध लगान भी कहा जाता है, क्योंकि यह केवल भूमि के प्रयोग के बदले में दिया जाता है। रिकार्डो के अनुसार आर्थिक लगान श्रेष्ठ और सीमान्त भूमि की उपज के बराबर होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक लगान एक साधन की उसकी अवसर लागत या अन्तरण आय के ऊपर बचत है।

अन्तरण आयः प्रत्येक साधन के वैकल्पिक प्रयोग होते हैं। यदि हम किसी एक साधन को किसी एक उत्पादन प्रक्रिया में न लगाये तो उसके प्रयोग दूसरे उतपादन प्रक्रिया में हो सकता है। अतः जब हम उत्पादन के साधन का को एक उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग करते हैं तो उस साधन से दूसरे स्थान पर होने वाली आय से वंचित रह जाते हैं। इस अवसर की हानि को ही हम अवसर लागत या हस्तांतरण या अन्तरण आय (Transfer Earnings) कहते है।

आधुनिक लगान का सिद्धान्त अन्तरण आय या आभास लगान के सिद्धान्त पर निर्भर करता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी भी साधन को कम से कम उसकी अवसर लागत के बराबर आय मिलती है। यदि इससे अधिक साधन को कुछ भी अतिरेक मिल रहा है तो इसके अन्तर के हम लगान कहेंगे। इस प्रकार लगान = कुल साधन आय – अवसर लागत

बोध प्रश्न क

1. **क्लासीकी अर्थशास्त्र में लगान की अवधारणा क्या है?**

.....
.....
.....
.....

2. **आधुनिक लगान से आप क्या समझते हैं।**

.....
.....
.....
.....

3. **अंतरण आय और आर्थिक लगान में क्या अन्तर है?**

.....
.....
.....
.....

4 **निम्न में से सही/गलत को बताइये।**

(i) रिकार्डो के अनुसार सीमान्त भूमि शून्य लगान वाली भूमि होती है।

(ii) क्लासिकल सिद्धान्त के अनुसार लगान भूमि की मूल व अविनाशी शक्तियों के द्वारा नहीं उत्पन्न होता है।

(iii) आधुनिक लगान सिद्धान्त के अनुसार लगान केवल भूमि के अलावा अन्य सभी साधनों से उत्पन्न होता है।

(iv) सीमान्त भूमि का विचार रिकार्डो के द्वारा किया गया।

(v) आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार लगान साधन की दुर्लभता के कारण उत्पन्न नहीं होता है।

19.3 आभास लगान

आभास लगान का प्रतिपादन मार्शल ने किया। मार्शल के अनुसार अनेक उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति अल्पकाल में स्थिर या बेलोच होती है, खास कर पूँजीगत साधन। इसी कारण मुख्यतः पूँजीगत साधनों को जो अर्जित आय मिलती है। उसको ''आभास लगान'' कहा जाता है। रिकार्डो के अनुसार केवल भूमि की ही पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार होती है। अतः सिर्फ भूमि को ही लगान मिलता है परन्तु मार्शल ने यह स्पष्ट किया कि अल्पकाल में पूँजीगत साधनों जैसे–भवनों, मशीनों, उपकरणों आदि सभी की पूर्ति स्थिर होती है। अतः इसके परिणाम स्वरूप इन सभी साधनों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है (क्योंकि पूर्ति बेलोचदार होने पर माँग बढ़ाने पर इनका मूल्य बढ़ता है)। मार्शल के अनुसार यही आभास लगान है। दीर्घकाल में जब पूर्ति बढ़ जाती तो यह नहीं मिलता है क्योंकि मूल्य पुनः पूर्व स्थिति में लौट आयेंगे तथा आभास लगान के रूप में मिली अतिरिक्त आय समाप्त हो जायेगी।

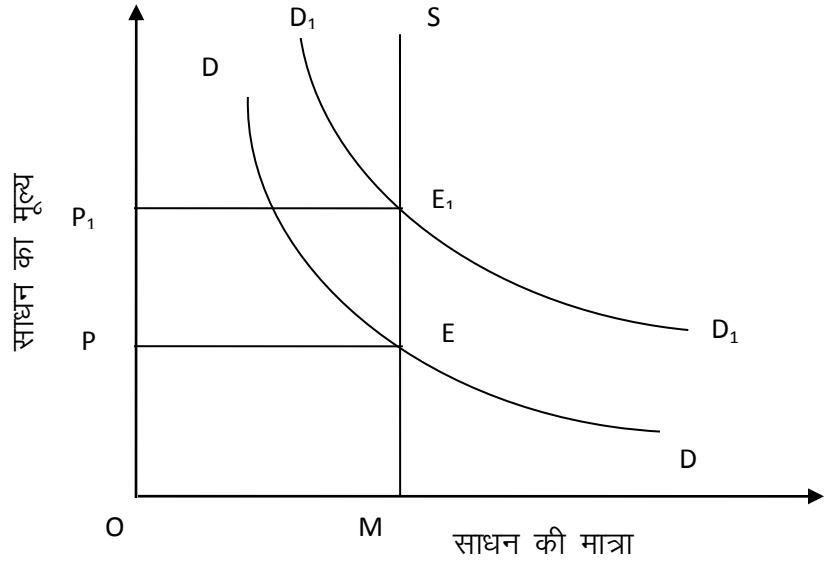

चित्र 19.2

उपरोक्त चित्र 19.2 में माँग वक्र D D और पूर्ति वक्र SM एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते है जिस पर 0 – P मूल्य निर्धारित हुआ। माँग जब बढ़ कर $D_1 – D_1$ हो गयी

और पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार रहने पर मूल्य बढ़कर 0 $-P_1$ हो गया। यह $P - P_1$ के बीच का अन्तर अतिरिक्त बढ़ा हुआ मूल्य ही अतिरिक्त आय या आभास लगान है।

बोध प्रश्न ख

1. आभास लगान को परिभाषित कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

2. **निम्न में से सही/गलत को बताइये।**

i. आभासी लगान का विचार ऐड्म स्मिथ के द्वारा प्रस्तुत किया गया।

ii. दीर्घकाल में प्राप्त होने वाला लगान आभासी लगान होता है।

iii. आभासी लगान किसी भी साधन के मालिक को मिल सकता है।

iv. आर्थिक लगान को शुद्ध लगान भी कहते हैं।

v. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान एक दीर्घकालीन विचार है।

19.4 लाभ

''अन्य उत्पादन के साधनों के भुगतान के बाद उद्यमी के लिए बचा हुआ धन ही लाभ होता है।'' लाभ की यह परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि लाभ को निर्धारित करने के लिए कोई सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता क्योंकि यह एक अवशेष भुगतान है जिसे बहुत सारे तत्व प्रभावित करते हैं। अतः इसका निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है। **लाभ की विशेषताएँ**:

1. लाभ एक अवशेष भुगतान है।
2. लाभ अन्य साधन आयो की तरह पूर्व निर्धारित नहीं होता।
3. उद्यमी को जोखिम और अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ता, तब लाभ मिलता है।
4. अपूर्ण प्रतियोगिता में लाभ बढ़ते है।
5. लाभ ऋणात्मक भी हो सकता है, एवं अन्य साधन आय सदैव धनात्मक होती हैं।
6. लाभ में तीव्र परिवर्तन हो सकते हैं।

उपरोक्त विशेषताओं के कारण लाभ की पूर्व गणना या निर्धारण नहीं किया जा सकता, केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

19.4.1 लाभ के सिद्धान्त

जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया गया है कि लाभ सभी साधनों के भुगतान के बाद बचा हुआ शेष धन ही लाभ होगा जो कि धनात्मक भी हो सकता है और ऋणात्मक भी। इस कारण कोई पूर्ण सिद्धान्त विकसित नहीं किया जा सका है। फिर भी कुछ अर्थशात्रियों ने लाभ के सम्बन्ध में अपने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं।

लाभ का गतिशीलता का सिद्धान्तः इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जे0बी0 क्लार्क के द्वारा किया गया। क्लार्क के अनुसार ब्याज मुख्य रूप से अर्थव्यवस्था की गतिशीलता पर निर्भर करता है। अर्थात् लाभ के उत्पन्न होने की पहली शर्त अर्थव्यवस्था में गतिशीलता का होना है। यह गतिशीलता कई कारणों से उत्पन्न होती है। जैसे कि उपभोक्ता की आय में वृद्धि, पूँजी निर्माण में तेजी, जनसंख्या में वृद्धि एवं तकनीकी परिवर्तन आदि। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि उपर्युक्त कारणों में परिवर्तन या वृद्धि न हो तो लाभ नहीं होगा।

लाभ का जोखिम वहन सिद्धान्तः इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एफ0बी0 हॉले के द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त की मुख्य मान्यता ही यह है कि लाभ जोखिम को वहन करने का पुरस्कार है। क्योंकि प्रत्येक व्यापारिक गतिविधि में जोखिम होता है। बिना जोखिम को उठाये व्यापारिक गतिविधि सम्भव नहीं होगी। कोई व्यक्ति व्यापारिक प्रक्रिया में जोखिम तभी लेगा जब उसे उससे कुछ लाभ प्राप्त होने की सम्भावना होगी। इस प्रकार लाभ जोखिम वहन का पुरस्कार है।

अनिश्चितता वहन का सिद्धान्तः लाभ का अनिश्चितता वहन का सिद्धान्त पूर्व में लाभ के सम्बन्ध में हॉले के द्वारा दिये गये जोखिम वहन सिद्धान्त का सुधरा हुआ रूप है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन Knight ने अपनी पुस्तक Uncertainty and Profit में किया था। जो कि 1940 में प्रभावित हुई थी। इस सिद्धान्त में दो तरह का जोखिम बताया गया। पहला बीमा योग्य जोखिम (Insurable Risks) एवं दूसरा बीमा आयोग्य जोखित (Uninsuranable Risks)। बीमा योग्य जोखिम वह जोखिम है जिसका बीमा कराया जा सकता है जैसे–चोरी, दुर्घटना, अग्नि या सामूहिक मात्रा जोखिम बीमा आदि। दूसरी तरफ बीमा अयोग्य जोखित वह है जिसका बीमा पहले से नहीं कराया जा सकता है जैसे–उपभोक्ता की माँग, उत्पादन तकनीकी में परिवर्तन, उपभोक्ता की रुचि–फौशन में परिवर्तन, राज्य की नीति में परिवर्तन आदि। इन सभी को नाइट ने अनिश्चित जोखिम या व्यावसायिक अनिश्चिततायें कहा हैं। इनके अनुसार लाभ इन्हीं अनिश्चितताओं के वहन का पुरस्कार है।

नव–प्रवर्तन का सिद्धान्तः नव–प्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन शुम्पीटर के द्वारा किया गया है। इस सिद्धान्त को लाभ का आधुनिक सिद्धान्त भी कहा जाता है। शुम्पीटर ने अपने सिद्धान्त में नव–प्रवर्तन को लाभ तथा उत्पन्न होने का मुख्य कारण बताया है तथा इन्हें ही उद्यमी के मुख्य कार्य माना है। इस सिद्धान्त के अनुसार इन प्रवर्तनों के माध्यम से लागत एवं आगम का अन्तर बढ़ाया जा सकता है जोकि उद्यमी का लाभ होगा। यह नव–प्रवर्तन कई तरह के हो सकते है जैसे–पैकेजिंग, विज्ञापन, डिजाइन, आकार में परिवर्तन किया जा सकता है अथवा ऐसा परिवर्तन जिससे उस उत्पाद की माँग बढ़ जाय या तकनीकी परिवर्तन हो जिससे लागत में कमी आ जाये, नव–प्रवर्तन कहलायेंगे। शुम्मीटर के अनुसार उद्यमी को इन्हीं नव–प्रवर्तन के कारण ही लाभ प्राप्त होता है।

19.4.2 लाभ के कार्य

लाभ के औचित्य पर सदैव ही चर्चा होती है। अलग–अलग अर्थव्यवस्थाओं में लाभ को अलग–अलग महत्व तथा रूप दिया गया है। जैसे कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य ही सर्वाधिक लाभ कमाना है। साधनों के अनुकूलतम प्रयोग तथा देश के विकास के लिए लाभ को ही मुख्य बिन्दु माना जाता है। इसके विपरीत समाजवादी अर्थव्यवस्था में लाभ को शोषण का साधन माना जाता है। परन्तु पुरातनकाल से आज तक यह सर्वविदित है कि लाभ अतिआवश्यक है। अर्थव्यवस्था के सुचारू रूप से चलने में पूँजी निर्माण (जो कि लाभ पर निर्भर करता है) मुख्य भूमिका निभाता है। लाभ के द्वारा किये गये कार्य ही उसके औचित्य का निर्धारण करते हैं जोकि इस प्रकार हैः

1. कुशलता एवं उत्पादकता का मापक/पैमाना है।
2. कई तरह की लागतो को अवशोषित करता है जैसे ह्रास आदि।
3. लाक भविष्य पूँजी निर्माण का स्रोत।
4. प्रेरणा का स्रोत।
5. फर्म के विस्तार का साधन (Reserve & Surpluses)
6. शोध एवं विकास का साधन।
7. सरकार की कर प्राप्ती का स्रोत।

अतः यह स्पष्ट है कि लाभ अर्थव्यवस्था के सुचारू रूप से चलने के लिए वृहद स्तर पर तथा उद्यमी के कुशलता पूर्वक संचालन के लिए सूक्ष्म स्तर पर दोनों ही स्तरों पर अति आवश्यक रोल अदा करता है।

बोध प्रश्न ग

1. लाभ की अवधारणा को समझाइये।

.....
.....
.....
.....

2. निम्न में से सही/गलत को बताइये।

(i) नाइट के अनुसार लाभ उद्यमी द्वारा अनिश्चितता वहन का पुरस्कार है।

(ii) स्थिर अर्थव्यवस्था की स्थिति में भी उद्यमी को लाभ प्राप्त होते रहेंगे।

(iii) हॉले ने लाभ को जोखिम वहन का पुरस्कार कहा है।

(iv) लाभ बीमा–योग्य व बीमा अयोग्य जोखिम दोनों के वहन से उत्पन्न होता है।

(v) उद्यमी को प्राप्त होने वाला लाभ अन्य सभी साधनों को भुगतान के बाद बचा हुआ शेष धन है।

(vi) लाभ हमेशा धनात्मक होता है।

(vii) लाभ भविष्य की पूँजी निर्माण का स्रोत है।

(viii) लाभ पूर्व निर्धारित होता है।

19.5 सारांश

लगान के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित विचारधारा यह है कि लगान केवल भूमि से उत्पन्न हो सकता है। किसी अन्य साधन से नहीं। इस विचारधारा के प्रमुख अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो थे। इनके अनुसार भूस्वामी को लगान भूमि की मौलिक वह अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले मिलता है। यह विचारधारा कुछ अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जैसे खेती करने क्रम, अन्य साधनों से लगान का उत्पन्न न होना आदि। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसे अस्वीकार किया और नये आधुनिक सिद्धान्त जो कि माँग व पूर्ति सिद्धान्त कहलाता है, का प्रतिपादन किया। जॉन राबिन्सन के अनुसार लगान केवल भूमि से ही प्राप्त नहीं होता बल्कि उत्पादन के अन्य सभी साधनों से उत्पन्न होता है। वास्तव में यह साधन की पूर्ति लोच पर निर्भर करता है। अर्थात यदि किसी साधन पूर्ति पूर्ण लोचदार है तो उस साधन की कुल आय हस्तांतरण आय के बराबर होगी। इस कारण लगान शून्य होगा। इसके विपरीत यदि साधन की पूर्ति पूर्ण बेलोचदार होगी तो साधन से प्राप्त सम्पूर्ण आय लगान कहलायेगी।

आभासी लगान का विचार मार्शल के द्वारा दिया गया। इनके अनुसार अल्पकाल में पूँजीगत साधन जैसे प्लाण्ट, मशीनरी आदि की पूर्ति पूर्ण बेलोचदार होती है। इस कारण इनकी माँग पर इनका मूल्य ही बढ़ेगा। यह बढ़ा हुआ मूल्य या आधिक्य ही लगान है। इसे ही मार्शल ने आभासी लगान कहा है। लाभ एक उद्यमी को उसके द्वारा किये उत्पादन कार्य के बदले मिलने वाला प्रतिफल है। वास्तव में यह अन्य सभी साधनों को भुगतान के बाद बचा हुआ शेष होता है। इसलिये यह धनात्मक अथवा ऋणात्मक दोनों हो सकता है। लाभ को हॉले ने जोखिम वहन का प्रतिफल कहा है। नाइट ने इसे ऐसी अनिश्चिताओं वाली जोखिम के वहन का प्रतिफल कहा है जिनका बीमा नहीं कराया जा सकता। इन सबके विपरीत आधुनिक विचार धारा के अनुसार लाभ नव–प्रवर्तन का प्रतिफल है। शुम्पीटर के अनुसार एक उद्यमी अपने उत्पादन में कई तरह से नर्व–प्रवर्तन कर सकता है और लाभ इन्हीं नव–प्रवर्तन के कारण उत्पन्न होता है।

19.6 उपयोगी शब्दावली

- **आर्थिक लगान** – उत्पादन के कारक के अंतरण आय के ऊपर आधिक्य।
- **सीमान्त भूमि** – इस प्रकार की भूमि जिस पर कोई लगान उत्पन्न नहीं होता।

- **रिकार्डो का लगान** – भूमि की मूल व अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के बदले मिलने वाला पुरस्कार।
- **अनिश्चितताएँ** – ऐसी जोखिम जिनका बीमा नहीं कराया जा सकता।
- **नव–प्रवर्तन** – ऐसा परिवर्तन जैसे–डिजाइन, आकार, तकनीकी परिवर्तन जिससे उत्पाद की माँग में वृद्धि हो या लागत में कमी हो।
- **लाभ** – उत्पादन के सभी साधनों के बाद शेष बचा धन।
- **अंतरण आय** – न्यूनतम पारिश्रमिक जो साधन को वर्तमान कार्य करते रहने को प्रोत्साहित करती है।

19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4 (i) सही (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही (v) गलत

ख 2 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) सही

ग 2 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) सही (viii) गलत

19.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 सीमान्त भूमि से क्या तात्पर्य है?

प्रश्न–2 ''लगान भूमि की उपजाऊ शक्ति के कारण नहीं बल्कि उसकी दुर्लभता के कारण मिलता है।'' व्याख्या करें।

प्रश्न–3 ''आभास लगान केवल अल्पकाल में मिलता है।'' स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–4 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये

प्रश्न–5 हॉले एवं नाइट के लाभ सिद्धान्तों के मध्य अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न–6 नव–प्रवर्तन से आप क्या समझते है? शुम्पीटर के द्वारा दिये गये लाभ सिद्धान्त को समझाइये।

प्रश्न–7 लाभ के कार्यों से आप क्या समझते हो? समझाइये।

कुछ उपयोगी पुस्तके

- डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)
- प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)
- डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

इकाई : 20 आय की असमानता

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 आय का वितरण

20.2.1 आय के विवरण सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्य

20.2.2 आय की असमान प्रवृत्तियाँ

20.3 आय की असमानता की माप

20.3.1 लारेन्ज वक्र

20.3.2 गिनी गुणांक अनुपात

20.4 आय की असमानता के कारण

20.5 आय की असमानता की समस्यायें

20.6 आय का पुनर्वितरण

20.7 सारांश

20.8 उपयोगी शब्दावली

20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

20.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप योग्य हो सकेंगे कि :–

- आय की असमानता की अवधारणा की ब्याख्या कर सकेंगे,
- आय की असमानता के प्रमुख कारणों एवं समस्याओं को बता सकेंगे,
- आय की असमानता को मापने की प्रमुख विधियों को सूचिबद्ध कर सकेंगे तथा
- आय के पुर्नवितरण एवं असमानता को कम करने वाले सुझावों पर चर्चा कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

विषमता अथवा असमानता का अर्थ है विषम उपलब्धता अथवा समानता का अभाव। आय की असमानता के संदर्भ में हम इसे कह सकते हैं, सामाजिक बराबरी

का न होना, अवसरों का समान रूप से न मिलना, सेवाओं आदि का असमान होना। आय की असमानता एक कल्याणकारी राज्य की सबसे बड़ी बिडम्बना होती है। किसी भी देश में धन एवं आय के वितरण की जो व्यवस्था होती है उसका देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन पर गहरा प्रभाव होता है। वास्तव में, आय की असमानता एक ऐसा कुचक्र है जो विकास की प्रारम्भिक स्थितियों से ही आरम्भ हुआ। आज सम्पूर्ण समाज 'सधन' एवं 'निर्धन' दो भागों में विभाजित हो चुका है। किसी भी देश की आर्थिक दृष्टि से आय की असमानता के अत्यन्त गम्भीर परिणाम होते हैं, जब समाज के एक वर्ग का जीवन स्तर बहुत नीचे हो जाता है जिससे आवश्यक वस्तुओं के उपभोग में भी कमी आने लगती है, इसके परिणामस्वरूप कार्यशील जनता की उत्पादन क्षमता भी घटने लगती है। यदि यह स्थिति अर्थव्यवस्था में लगातार बनी रहे तो देश के कुल उत्पादन एवं रोजगार पर इसके गम्भीर एवं विपरीत परिणाम होते हैं। इस इकाई में हम इस बात का पता लगायेंगे कि आर्थिक आयोजन का युग प्रारम्भ होने से अब तक हमने विकास के नये–नये आयाम तो स्थापित किये हैं परन्तु क्या आय की असमानता में कमी आयी है अथवा नहीं। उपरोक्त इकाई में उन कारणों एवं समस्याओं की भी जांच करेंगे, जिनसे आय की असमानता उत्पन्न होती है। अंत में आय के न्यायपूर्ण वितरण के लिये क्या–क्या प्रयास किये जायें इन्हें भी सुझाया जायेगा।

20.2 आय का वितरण

किसी भी देश में वितरण प्रक्रिया निर्धारित करती है कि उपलब्ध संसाधनों का कितना अंश किस वर्ग को मिल रहा है। किसी भी देश की आर्थिक नीति का लक्ष्य यह होना चाहिये कि उपलब्ध संसाधनों का समान एवं न्यासंगत रूप से वितरण हो। परन्तु यहाँ पर मौलिक प्रश्न यह है कि जब कोई राज्य अपने नागरिकों से कोई भेदभाव नहीं करता है और न ही किसी वर्ग विशेष के कल्याण को तिलांजलि देकर दूसरे की मदद करता है तो फिर अमीर और अधिक अमीर एवं गरीब और अधिक गरीब क्यों होता जा रहा है। आज आर्थिक विषमता की समस्या सर्वव्यापी क्यों हो चुकी है। वास्तव में संसार की कोई भी अर्थव्यवस्था ऐसी नहीं है जहाँ आय एवं सम्पत्ति का समान विवरण हो। अंतर केवल इस बात का है कि कुछ देशों में यह असमानता अधिक है और कुछ देशों में कम।

20.2.1 आय के विवरण सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्य

आय वितरण के आंकड़े अधिकतर देशों में नियमित रूप से एकत्रित नहीं किये जाते इसलिये आय के वितरण के आधार पर वैज्ञानिक व्याख्या का अभाव है। भारत के संदर्भ में यद्यपि केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (C.S.O.) लगभग 6 दशक से राष्ट्रीय आय के आँकड़े एकत्रित कर रहा है परन्तु इसके द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले आँकड़े आय वितरण की दृष्टि से अपर्याप्त है किन्तु समय–समय पर किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि राष्ट्रीय आय के वितरण में विभिन्न देशों में काफी असमानता रही है।

World Inequality Report-2018 के अनुसार विश्व के विभिन्न देशों में आय की विषमताओं में बहुत अन्तर पाये गये हैं। इनका स्तर यूरोप में निम्नतम् एवं मध्य पूर्व के क्षेत्र में अधिकतम पाया गया है। रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2016 में विभिन्न देशों की राष्ट्रीय आय में उच्चतम 10 प्रतिशत आय अर्जक वर्ग का हिस्सा सर्वाधिक 61 प्रतिशत मध्य पूर्व क्षेत्र में, भारत में 55 प्रतिशत, चीन में 41 प्रतिशत एवं यूरोप में 37 प्रतिशत था।(देखें तालिका 20.1)

तालिका 20.1

विभिन्न देशों में शीर्ष के 10% आय अर्जक वर्ग की राष्ट्रीय आय में हिस्सेदारी, 2016

क्र0 सं0	देश	राष्ट्रीय आय का अंश (प्रतिशत में)
1.	यूरोप	37
2.	चीन	41
3.	रूस	46
4.	संयुक्त राज्य अमेरिका–कनाडा	47
5.	सरहरेतर अफ्रीका	54
6.	ब्राजील	55
7.	भारत	55
8.	मध्य पूर्व क्षेत्र	61

Source :- World Inequality Report, 2018

विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति आय का तुलनात्मक अध्ययन करने पर इस बात का पता लगाया जा सकता है कि इन देशों के मध्य सापेक्षिक रूप से आय में कितनी असमानता है। विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति आय के आंकड़े तालिका 20.2 में दर्शाये गये हैं।

तालिका 20.2

विभिन्न देशों की प्रति व्यक्ति आय

क्र0 सं0	देश	प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (डॉलर में)	
		वर्ष 1960	वर्ष 2016
1.	अमेरिका	3007.1	57,638.2
2.	जापान	479.0	38,972.3
3.	यू0के0	1380.3	40,412.0
4.	चीन	89.5	8,123.2
5.	भारत	81.3	1,709.6
6.	पाकिस्तान	82.5	1,443.6
7.	श्रीलंका	142.8	3,835.4

Source : World Bank, 2018

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भले ही सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके भारत ने महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की हैं परन्तु प्रतिव्यक्ति आय में भारत अन्य देशों से बहुत अधिक पीछे है। वर्ष 2016 में भारत की प्रतिव्यक्ति आय केवल 1,709.6 डॉलर थी जबकि अमेरिका, जापान, यू0के0 एवं चीन की प्रतिव्यक्ति आय क्रमशः

57,638.2 डॉलर, 38,972.3 डॉलर एवं 8,123.2 डॉलर थी। तुलनात्मक रूप से भारत की अपेक्षा अमेरिका की प्रतिव्यक्ति आय 33.71 गुना, जापान की 22.79 गुना एवं चीन की 4.75 गुना अधिक है।

20.2.2 आय की असमान प्रवृत्तियाँ

पाश्चात्य आर्थिक विचारधारा के अनुसार आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य आय वितरण से मेल नहीं रखते हैं। इसका कारण है कि यह विचारधारा आर्थिक वृद्धि को अधिकतम करने पर जोर देती थी, भले ही आय का वितरण असमान हो। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री भी आय असमानता के पक्षधर थे, इनका मत था कि आय समानता से बचतों में कमी होगी। 18वीं सदी में ब्रिटेन, 19वीं सदी में पश्चिमी यूरोप एवं 20वीं सदी में जापान की अर्थव्यस्थाओं में देखने को मिला कि यहाँ आय एवं धन की असमानताओं से धनी वर्ग की बचतों में वृद्धि हुयी जिसे इस वर्ग ने उत्पादक कार्यों के लिये प्रयोग किया। जिससे इन देशों में आर्थिक उन्नति हुयी। परन्तु मार्क्स इस विचारधारा के विपरीत थे इनका मत था कि आय असमानता ही पूँजीवाद के विनाश का कारण बनेगी। 1950–1960 के दशक में आय असमानता के अध्ययन के आधार पर साइमन कुजनेट्स ने निष्कर्ष निकाला कि आर्थिक वृद्धि में प्रारम्भिक अवस्था में आय असमानता बढ़ती है इसके पश्चात कुछ समय के लिये यह स्थिर हो जाती है, तत्पश्चात् आय असमानता में कमी आने लगती है। एडलमैन एवं मौरिस ने भी 43 विकासशील एवं 13 विकसित देशों के अध्ययन के पश्चात् गिनी गुणांक के आधार पर कुजनेट्स के निष्कर्ष की पुष्टि की। इसी प्रकार मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने भी 60 देशों के आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सापेक्ष आय में असमानता बढ़ती है, तत्पश्चात इसमें गिरने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

तालिका 20.3

भारत के कुछ राज्यों में प्रतिव्यक्ति आय वर्तमान कीमतों पर (रू0 में)

क्र0 सं0	राज्य	वर्ष	
		2011–12	2016–17
1.	आंध्र प्रदेश	69,000	1,22,376
2.	अरूणाचल प्रदेश	73,068	1,30,759
3.	आसाम	41,142	–
4.	बिहार	21,750	35,590
5.	दिल्ली	1,85,361	300793
6.	गोआ	2,59,444	–
7.	गुजरात	87,481	1,56,691
8.	हिमाचल प्रदेश	87,721	1,46,073
9.	केरल	97,912	1,62,718
10.	मध्य प्रदेश	38,551	73,268
11.	महाराष्ट्र	99,173	1,64,757
12.	उत्तर प्रदेश	32,002	50,203
13.	पंजाब	85,577	1,28,821
14.	राजस्थान	57,192	92,076
15.	तमिलनाडु	92,984	1,53,263

Source : Reserve Bank of India, 2017-18

उपर्युक्त तालिका के आधार पर हम कह सकते हैं कि देश में विभिन्न राज्यों के बीच आय वितरण के सम्बन्ध में भारी असमानता है। प्रतिव्यक्ति आय के अनुमान के आधार पर पता चलता है कि बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान जैसे राज्यों की प्रतिव्यक्ति आय अन्य राज्यों जिनमें दिल्ली, महाराष्ट्र, केरल, गुजरात आदि हैं इनकी अपेक्षा काफी कम है। वर्ष 2016–17 में जहाँ दिल्ली की प्रतिव्यक्ति आय 3,00,793 रू0, महाराष्ट्र 1,64,757 रू0, केरल 1,62,718 रू0 एवं गुजरात 1,56,691 रू0 थी, वहीं बिहार की प्रतिव्यक्ति आय केवल 35,590 रू0, उत्तर प्रदेश 50,203 रू0 एवं मध्य प्रदेश 73,268 रू0 ही थी।

हाल ही में World Inequality Lab ने अपनी पहली World Inequality Report-2018 जारी की, जिसके आंकड़े पूरे विश्व के लिये चिंताजनक हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार विश्व के सभी देशों में आर्थिक असमानता तेजी से बढ़ी है। इस रिपोर्ट ने 1980 से 2016 के बीच में 36 वर्षों के वैश्विक आंकड़ों को अपने अध्ययन का आधार बनाया है। लगभग इसी प्रकार की एक अन्य रिपोर्ट अन्तर्राष्ट्रीय राइट्स समूह 'आक्सफेम' ने भी प्रकाशित की है इन दोनों रिपोर्टस के आधार पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं।

- भारत में वर्ष 2014 में शीर्ष के 1 प्रतिशत अमीरों के पास राष्ट्रीय आय की 22 प्रतिशत हिस्सेदारी थी जबकि वर्ष 2016 में शीर्ष के 10 प्रतिशत अमीरों के पास 55 प्रतिशत हिस्सेदारी थी।
- रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 84 करोड़पति हैं जिनकी कुल सम्पत्ति 248 विलियन डॉलर है।
- भारत में 60 फीसदी महिलाओं को तय न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी मिलती है।
- रिपोर्ट के अनुसार स्वतंत्रता के पश्चात् तीन दशकों में आय असमानता में कमी आयी थी, परन्तु 1980 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था में आये भारी बदलाव के पश्चात् असमानता तेजी से बढ़ी है।

World Inequality Report-2018 के अनुसार विश्व में 1 प्रतिशत अमीरों के पास दुनिया की कुल सम्पत्ति का 13 प्रतिशत हिस्सा है, इसके अतिरिक्त पिछले 36 वर्षों में जो नई सम्पत्तियाँ अर्जित की गयी हैं उनमें 1 प्रतिशत अमीरों के पास 27 प्रतिशत हिस्सा है। सम्पूर्ण विश्व में बढ़ती हुयी असमानता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आय की सर्वोच्च श्रेणी में आने वाले 1 प्रतिशत लोगों की कुल संख्या केवल 7.5 करोड है जबकि सबसे नीचे के 50 प्रतिशत व्यक्तियों की कुल संख्या 3.7 अरब है।

बोध प्रश्न क

1. **विश्व में आय असमानता कम होने के स्थान पर बढ़ी है, क्या आप इस कथन से सहमत हैं। आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।**

.....
.....
.....
.....

2. **आय की प्रवृत्तियों में विभिन्न देशों में क्या असमानता पायी गयी है, व्याख्या कीजिये।**

.....
.....
.....
.....

3. **आय की असमानता से आप क्या समझते हैं?**

.....
.....
.....
.....

4. निम्न में से सही/गलत को बताइए।

(i) विकास की प्रारम्भिक स्थितियों में असमानता में वृद्धि होती है।

(ii) भारत में वर्ष 2014 में शीर्ष 1 प्रतिशत अमीरों के पास राष्ट्रीय आय की 22 प्रतिशत हिस्सेदारी थी।

(iii) 1980 के दशक के पश्चात् विश्व के अधिकतर देशों में आय की असमानता में कमी आयी है।

(iv) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री आय असमानता के पक्षधर थे।

20.3 आय की असमानता की माप

किसी भी समाज में असमानता उस समय होती है जब वहां के कुछ लोगों को समान अवसरों की प्राप्ति न हो अथवा हितलाभों की उपलब्ध की श्रेणी में अंतर हो। प्रतिव्यक्ति वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद का स्तर एवं वितरण दोनों का आर्थिक कल्याण की दृष्टि से महत्व है। यदि किसी देश में उच्च प्रतिव्यक्ति वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पाद के साथ आय के वितरण में समानता नहीं है तो वह आर्थिक कल्याण की दृष्टि से निचले स्तर पर ही रहेगा। वैसे तो आय की असमानता को ज्ञात करने के लिये कई विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु यहाँ पर हम सबसे सरल एवं सामान्य विधि का वर्णन करेंगे।

20.3.1 लारेन्ज वक्र

लारेन्ज वक्र, जिसे संचयी प्रतिशत वक्र (Cumulative Percentage Curve) भी कहते हैं, यह आय के वितरण एवं असमानता के लिये रेखा चित्रीय मापक है। इस वक्र का प्रयोग सर्वप्रथम डॉ0 मैक्स ओ0 लारेन्ज (Max O. Lorenz) ने सन् 1905 में किया था। आय के वितरण की असमानता को ज्ञात करने के लिए बहुधा इसका

प्रयोग किया जाता है, इसे विषमता का मापक भी कहते हैं। लारेन्ज वक्र तैयार करने के लिये निम्नलिखित विधि अपनाई जाती है:–

1. सर्वप्रथम मूल्यों या मध्य बिन्दुओं के संचयी योग ज्ञात किये जाते हैं एवं फिर संचयी योग को 100 मानकर प्रत्येक संचयी योग के प्रतिशत ज्ञात कर लिये जाते हैं।

2. इसमें क्षैतिज अक्ष (X अक्ष) पर आय प्राप्तकर्ताओं (परिवारों) के प्रतिशत को संचयी रूप में एवं ऊर्ध्व अक्ष (Y अक्ष) पर उनकी आय के प्रतिशत वितरण को संचयी रूप में दर्शाया जाता है।

3. X अक्ष पर 0 प्रतिशत से 100 प्रतिशत एवं Y अक्ष पर 0 प्रतिशत से 100 प्रतिशत के विभाजनों में अंकित किया जाता है।

4. 0 से 100 को एक सीधी रेखा द्वारा मिला दिया जाता है जिसे समान वितरण रेखा (Line of Equal Distribution) कहते हैं यह समान वितरण की रेखा 45^0 का कोण बनाती है।

4. संचयी मूल्यों एवं सम्बन्धित संचयी आवृत्तियों के प्रतिशतों के बिन्दुओं को लगातार उन्हें आपस में मिला देते हैं, ऐसा करने से जो वक्र बनता है वह लारेन्ज वक्र कहलाता है। (देखें चित्र 20.1)

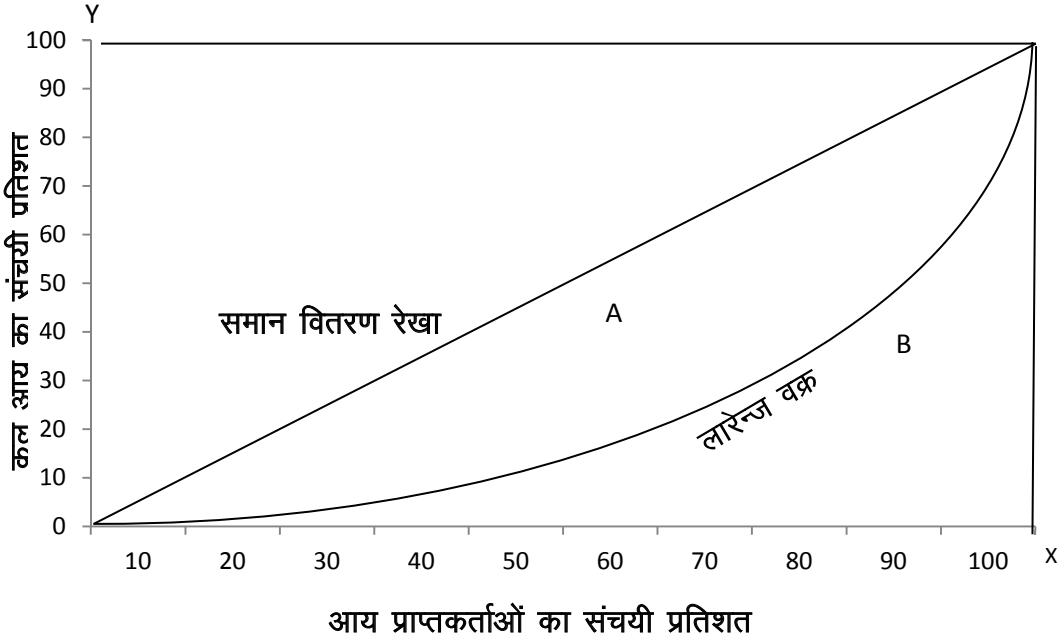

चित्र 20.1

लारेन्ज वक्र, समान वितरण रेखा से जितना पास होगा असमानता उतनी ही कम होगी, इसके विपरीत लारेन्ज वक्र जिसे वास्तविक आय वितरण रेखा भी कहते हैं, यह समान वितरण रेखा से जितना दूर होगा असमानता उतनी ही अधिक होगी। पूर्ण समानता की स्थिति में समान वितरण रेखा ही लारेन्ज वक्र रेखा होगी।

लारेन्ज वक्र आय असमानता को मापने का सरल एवं सुविधाजनक विधि है परन्तु इसके बावजूद यह वैज्ञानिक नहीं मानी जाती क्योंकि इससे असमानता की मात्रा का आंकात्मक माप संभव नहीं है।

20.3.2 गिनी गुणांक अनुपात

गिनी गुणांक समाज में व्याप्त आय एवं सम्पत्ति के असमान वितरण की सांख्यिकीय माप है। इस अनुपात की खोज सन् 1912 में कॉरेडो गिनी (Corrado Ginni) ने की थी। वर्तमान में आय की असमानता को ज्ञात करने के लिये यह सर्वाधिक उपयोग में लाया जाने वाला मापक है। लारेन्ज वक्र से गिनी गुणांक की गणना की जाती है। गिनी गुणांक समान वितरण रेखा एवं लारेन्ज वक्र के बीच अन्तर के क्षेत्रफल का समान वितरण रेखा में अधीनस्थ क्षेत्रफल से अनुपात है।

$$\text{गिनी गुणांक} = \frac{A}{A+B}$$

A = लारेन्ज वक्र के भीतर का क्षेत्र

B = लारेन्ज वक्र के बाहरी का क्षेत्र

गिनी गुणांक का मान 0–1 के मध्य होता है। यदि गिनी गुणांक का मान 1 है तो यह आय में पूर्ण असमानता को दर्शायेगा, अर्थात् हम कह सकते हैं कि समाज में वर्ग विशेष के पास समस्त आय केन्द्रित है। गिनी गुणांक का मान जितना 0 के नजदीक होगा आय की असमानता उतनी ही कम होगी।

बोध प्रश्न ख

1. **आय की असमानताओं को मापने की दो विधियों के नाम बताइये।**

.....
.....
.....
.....

2. **आय की असमानता मापने की लारेन्ज वक्र विधि का वर्णन कीजिये।**

.....
.....
.....
.....

3. **लारेन्ज वक्र विधि, गिनी गुणांक विधि से किस प्रकार भिन्न है। समझाइये।**

.....
.....
.....
.....

4. **आप जीवन की गुणवत्ता का आंकलन किस प्रकार करेंगे।**

.....
.....
.....
.....

5. **निम्न में से सही/गलत को बताइए।**

(i) गिनी गुणांक का मान 1 एवं 2 के मध्य होता है।

(ii) लारेन्ज वक्र विधि का प्रतिपादन कॉरेडो गिनी ने किया था।

(iii) लारेन्ज वक्र समान वितरण रेखा से जितना पास होगा असमानता उतनी ही अधिक होगी।

(iv) गिनी गुणांक को संचयी प्रतिशत वक्र भी कहते हैं।

20.4 आय की असमानता के कारण

इस इकाई के प्रारम्भ में आपने इस बात का अध्ययन किया कि आय की असमानता क्या है, इसकी प्रवृत्तियाँ क्या हैं, इसकी माप कैसे की जाती है, इत्यादि। उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् एक बात तो स्पष्ट है कि वर्तमान में विश्व की कोई भी ऐसी अर्थव्यवस्था नहीं है जहाँ पर आय की असमानता न हो, अन्तर केवल इस बात का है कुछ देशों के यह असमानता अधिक है जबकि कुछ में कम। विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के बावजूद समानतायें कम होने के स्थान पर बढ़ी हैं। अतः इस स्थिति में सुधार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए हमें उन कारणों को जानना आवश्यक है जो असमानता बढ़ाने के लिये उत्तरदायी हैं। आय के असमान वितरण के महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित हैं:–

1. **व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार :** व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रणाली आय में असमानता को बढ़ाने वाला एक प्रमुख कारण है। इस प्रणाली के अन्तर्गत भूमि, फैक्ट्री, भवन, उत्पादन के सभी साधन जिन पर व्यक्ति का निजी अधिकार होता है। उनके सभी आर्थिक निर्णय उसी व्यक्ति के द्वारा लिये जाते हैं जिसका इन पर अधिकार होता है। वह जिस तरह चाहे इसका प्रयोग कर सकता है। इसी कारण व्यक्ति निजी उद्देश्यों को उच्च प्राथमिकता देता है एवं वह सदैव अपनी पूंजी में वृद्धि करने का प्रयत्न करता है। जिन व्यक्तियों के पास अधिक पूँजी होती है वे और अधिक धनी हो जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप आय की असमानता में वृद्धि होती है।

2. **सम्पत्ति का असमान वितरण :** आय की असमानता को बढ़ाने वाला एक प्रमुख कारक सम्पत्ति का असमान वितरण भी है। देश में सम्पत्ति एवं पूँजी का अधिकांश भाग केवल कुछ धनिकों के पास है। इसके परिणामस्वरूप आय एवं भावी सम्पत्ति के वितरण में असमानता और अधिक बढ़ती जा रही है।

3. **शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अवसर की कमी :** आय की असमानता के कारण अर्थव्यवस्था दो भागों में बंट चुकी है धनी एवं निर्धन। निर्धन व्यक्ति के पास अपने बच्चों को उच्च शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु आवश्यक धन की कमी है, जबकि दूसरी ओर धनवान अपने बच्चों को आसानी से ये सुविधायें उपलब्ध करा लेते हैं। इस प्रकार ये असमानतायें व्यक्तियों की योग्यता में अन्तर ला देती हैं, जिसमे परिणामस्वरूप आय की असमानता बढ़ती जाती है।

4. **बैंकों एवं औद्योगिक वित्त निगमों की ऋण नीति :** विभिन्न बैंकों एवं औद्योगिक वित्त निगमों की ऋण नीति इस प्रकार की रही है कि अधिक आय वर्ग को आवश्यकता पड़ने पर आसानी से ऋण प्राप्त हो जाता है, जबकि दूसरी ओर गरीब को मासिक आय की कमी एवं अन्य जटिल प्रक्रियाओं के कारण ऋण प्राप्त नहीं हो पाता। इसके परिणामस्वरूप यदि कोई कम आय वर्ग का व्यक्ति छोटा–मोटा व्यवसाय करना भी चाहे तो उसे बैंकों एवं वित्त निगमों से समय पर ऋण नहीं मिल पाता।

5. **स्फीतिकारक दबाव :** मुद्रा स्फीति ने सदैव समृद्ध वर्ग को ही लाभ पहुँचाया है, जबकि निर्धन को हमेशा इससे हानि हुयी है। जब किसी देश में मुद्रा स्फीति तेजी से बढ़ती है तो उत्पादकों के लाभ भी बढ़ जाते हैं इससे विपरीत निम्न वर्ग की आय उस अनुपात में नहीं बढ़ पाती, इससे उच्च और निम्न आय वर्ग के बीच आय की असमानता में और अधिक वृद्धि होती है।

6. **असन्तुलित क्षेत्रीय विकास :** असन्तुलित क्षेत्रीय विकास भी आर्थिक असमानता में वृद्धि कराता है। भारत में विभिन्न प्रदेशों में विकास दरों में भारी अन्तर है एक ओर बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान जैसे राज्य हैं जो विकास दर में महाराष्ट्र, गुजरात, दिल्ली आदि राज्यों से बहुत पीछे हैं। इस कारण आज भी बड़े–बड़े उद्योग कुछ प्रदेशों तक ही सम्मिलित है। जिसके फलस्वरूप असमानता होना भी सम्भावित है।

7. **आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण :** आय के असमान वितरण का एक अन्य परिणाम यह होता है कि इससे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण हो जाता है। समृद्ध लोग जब अपनी आर्थिक शक्ति को राजनैतिक शक्ति में परिवर्तित कर लेते हैं तो प्रजातंत्र के लिये भी गम्भीर खतरा उत्पन्न हो जाता है।

बोध प्रश्न ग

1. **आय की असमानता के कारणों को बताइये।**

.....
.....
.....
.....

2. **व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिकार आय की असमानता को किस प्रकार प्रभावित करता है?**

.....
.....
.....
.....

3. **निम्न में से सही/गलत को बताइए।**

(i) देश में आय एवं सम्पत्ति का अधिकांश भाग केवल कुछ निर्धनों के पास है।

(ii) व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रणाली में व्यक्तिगत सम्पत्ति पर निजी अधिकार होता है।

(iii) मुद्रा स्फीति के कारण आय की असमानता में कमी आने लगती है।

(iv) सन्तुलित क्षेत्रीय विकास आय की असमानता में वृद्धि करता है।

20.5 आय की असमानता की समस्यायें

हम जानते हैं कि किसी भी देश में आय की असमानता उसके सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन पर गम्भीर प्रभाव डालती है। देश में गरीबी के

अतिरिक्त असमानता की गहनता भी बहुत अधिक है एवं इसमें किसी भी प्रकार की कमी भी नहीं हो पा रही है जिससे बहुत सी अन्य समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। आय की असमानताओं से होने वाली मुख्य समस्यायें निम्न हैं :

1. **वर्ग संघर्ष :** आय की असमानता के कारण समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है– धनी एवं निर्धन वर्ग। धनी वर्ग की आय इतनी अधिक है कि वे आराम से जीवन व्यतीत करते हैं तो दूसरी ओर निर्धन वर्ग जिन्हें एक दिन के भोजन के लिये भी संघर्ष करना पड़ना पड़ता है, वे धीरे–धीरे आन्दोलनों का सहारा लेने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप हड़ताल, घेराव आदि होते हैं। इससे समाज में अशांति होती है, उत्पादन में रूकावट आती है एवं राष्ट्रीय आय घटती है।

2. **उत्पादन शक्ति में कमी :** आय की असमानता उत्पादन शक्ति में कमी लाती है। जब श्रमिक को भरपेट पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता तो इससे उसके स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ने लगता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर पाता। इससे उत्पादन शक्ति एवं कार्यकुशलता में कमी आती एवं उसकी आय और कम हो जाती है।

3. **साधनों का अपव्यय :** जब किसी देश में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण कुछ हाथों में चला जाता है तो साधनों का अपव्यय होने लगता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति के पास यदि कई मकान हैं तो वह स्वयं सभी का उपयोग नहीं कर सकता। अतः ऐसे में उसके अन्य मकान बेकार रहेंगे जबकि वही जगह किसी जरूरतमंद के लिये प्रयोग की जा सकती थी।

4. **निजी निवेश में शहरी पूर्वाग्रह :** देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गावों में रहती है परन्तु निजी निवेश का लगभग 70 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में स्थापित उद्योगों में जाता है। जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन होता है, परन्तु दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण का अभाव रहता है। इस कारण इन्हें लाभकर रोजगार के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं। गाँवों से शहरों में आने वाले अधिकतर लोग सब्जियाँ, फल, समाचार पत्र बचेने, कुली, घरेलू नौकर आदि का कार्य करने लगते हैं। जब शहरी चकाचौंध के कारण ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की ओर तेजी से पलायन होने लगता है तो रोजगार के अवसर उस अनुपात में न उपलब्ध होने के कारण इन ग्रामीणों का शोषण होता है जिससे स्थिति और भी बरतर हो जाती है। ऐसे सभी लोग अल्परोजगार युक्त होते हैं एवं उनकी आमदनी बहुत कम होती है।

बोध प्रश्न घ

1. आय की असमानता से उत्पन्न होने वाली समस्याओं की सूची बनाइये।

.....

.....

.....

.....

2. निम्न में से सही/गलत को बताइए।

(i) आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण से साधनों का अपव्यय होता है।

(ii) भारत में निजी निवेश शहरी पूर्वाग्रह से ग्रसित रहा है।

(iii) आय की असमानता उत्पादन शक्ति को प्रभावित नहीं करती है।

(iv) आय की असमानता गरीब एवं अमीर के बीच अंतर को घटाती है।

20.6 आय का पुनर्वितरण

आय का पुनर्वितरण निर्धन वर्ग के पक्ष में हो, इससे आय के वितरण में समानता बढ़ेगी एवं आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी; ऐसा वर्षों से विभिन्न देशों की सरकारों का मानना रहा है। इसके बावजूद पिछले कुछ दशकों में विश्व के ज्यादातर देशों में आय की असमानता बढ़ी है, आखिर क्यों? भारत के सन्दर्भ में देखें तो आयोजन के प्रारम्भिक काल में सरकार ने धन सम्पदा के पुनर्वितरण पर कभी जोर नहीं दिया। उस समय देश के नीतिकारों का मुख्य ध्यान आर्थिक संवृद्धि की गति को तेज करने में रहा। परन्तु जब 1970 के दशक में यह बात सामने आने लगी कि आर्थिक संवृद्धि का लाभ केवल सीमित धनी वर्ग को ही हुआ है, इसके पश्चात् सरकारी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। हाल ही में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने भी आय में असमानता के खिलाफ संघर्ष का समर्थन किया एवं आय में पुनर्वितरण को आर्थिक वृद्धि के लिये आवश्यक बताया। निर्धनों के पक्ष में राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरण निम्न प्रकार किया जा सकता है:–

1. **प्रगतिशील कर :** देश में प्रगतिशील आय–कर लगाकर सरकार आय की असमानता को दूर कर सकती है। प्रगतिशील कर लगने से धनी वर्ग की आय अधिक होने के कारण उसे अधिक कर चुकाना पड़ता है जबकि निर्धन कम आय होने के कारण कर मुक्त रहते हैं।

2. **क्रय शक्ति का हस्तान्तरण :** क्रय शक्ति के हस्तान्तरण के द्वारा आय के वितरण में परिवर्तन 2 प्रकार से किया जा सकता है। पहला, उत्पादन प्रणाली में इस प्रकार सुधार किया जाये कि वे वस्तुयें सस्ती हो जायें जिनका प्रयोग निर्धन वर्ग करता है, जबकि धनी वर्ग जिन वस्तुओं का प्रयोग करता उन्हें महँगा कर दिया जाये। इसका लाभ यह होगा निर्धन वर्ग अपनी आय से पहले से अधिक और सस्ती वस्तुओं का उपभोग कर सकेगा। दूसरी विधि राशनिंग की है जिसके अनुसार जिन वस्तुओं का निर्धन अधिक उपयोग करते हैं एवं जो अपेक्षाकृत सस्ती भी हैं उन्हें धनिकों को त्यागने के लिये विवश कर दिया जाये अथवा उन्हें (धनिकों) वह वस्तुयें महँगी दर पर उपलब्ध हों इससे निर्धन वर्ग को अधिक उपभोग के लिये वस्तुयें उपलब्ध हो सकेंगीं।

3. **सार्वजनिक व्यय में निर्धन वर्ग को अधिक लाभ :** सरकार करों के माध्यम से प्राप्त आय का प्रयोग निर्धन वर्ग के जीवन स्तर को सुधारने के लिये भी कर सकती है। उदाहरण के लिये जब सरकार निर्धनों के लिये अस्पताल, स्कूल–कालेज, रोजगार के साधन उपलब्ध कराती है तो इससे उसके जीवन स्तर में सुधार होता है एवं उसकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है।

4. **न्यूनतम मजदूरी का कड़ाई से पालन :** सरकार ने सभी प्रकार के उद्योगों में कार्यरत् श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम तो बनाया है परन्तु इसका आज भी पालन नहीं किया जा रहा है। सरकार न्यूनतम मजदूरी का कड़ाई से पालन करके श्रमिकों के जीवन स्तर को सुधार सकती है।

5. **सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था :** सरकार को देश में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये, इसके लिये देश के सबसे निचले वर्ग, वृद्ध, बेरोजगारों की सहायता करना आवश्यक है। कई बार आय का कोई नियमित स्रोत न होने के कारण इनकी दुर्दशा हो जाती है। अतः सरकार को इनके लिये बीमा, पेंशन, भत्ता आदि जैसी सुविधायें प्रदान करनी चाहिये।

बोध प्रश्न ङ

1. **आय का पुनर्वितरण क्यों आवश्यक है? बताइये।**

.....
.....
.....
.....

2. **आय की असमानता को कम करने के लिये सुझाव दीजिये।**

.....
.....
.....
.....

3. **निर्धनों के पक्ष में आय का पुनर्वितरण किस प्रकार किया जा सकता है।**

.....
.....
.....
.....

4. **निम्न में से सही/गलत को बताइए।**

(i) आय की असमानता को कम करने के लिये परोक्ष करारोपण होना चाहिये।

(ii) क्रय शक्ति के हस्तान्तरण के द्वारा आय का पुनर्वितरण किया जा सकता है।

(iii) करों में निर्धन वर्ग की हिस्सेदारी के द्वारा आय का पुनर्वितरण किया जा सकता है।

(iv) सार्वजनिक व्यय में निर्धनों को अधिक लाभ देकर आय का पुनर्वितरण किया जा सकता है।

20.7 सारांश

आय का असमान वितरण एक ऐसा कुचक्र है जो विकास की प्रारंभिक स्थितियों से ही शुरू हुआ है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाले हैं कि विकास के प्रारम्भिक चरणों में आय की असमानता में वृद्धि होती है परन्तु जैसे–जैसे आर्थिक वृद्धि दर बढ़ती जाती है असमानता की गति भी कम होती जाती है। इसके बाद की स्थितियों में आय की असमानताओं में कमी आने लगती है।

वैसे तो आय वितरण के आंकड़े अधिकतर देशों में नियमित रूप से एकत्रित नहीं किये जाते, इसलिये इसकी वैज्ञानिक व्याख्या करना अत्यन्त कठिन है। परन्तु फिर भी उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि संसार में कोई भी देश नहीं है जहां आय में असमानता न हो अंतर केवल इस बात का है कि कुछ देशों में यह असमानता अधिक हैं तो कुछ में कम।

आय की असमानता की माप के लिये वैसे तो कई विधियाँ प्रचलित हैं परन्तु इनमें से सर्वाधिक जिस विधि का प्रयोग किया जाता है वह लारेन्ज वक्र है। किसी भी देश में आय की समान वितरण रेखा से लारेन्ज वक्र की दूरी जितनी अधिक होगी आय की असमानता भी उतनी ही अधिक होगी। वैसे तो आय असमानता मापने के लिये अर्थशास्त्रिों द्वारा लारेन्ज वक्र विधि का अधिकतर प्रयोग किया जाता है किन्तु इस विधि के द्वारा असमानता की मात्रा का अंकात्मक माप संभव नहीं है, इसलिये गिनी गुणांक का भी बहुतायत में प्रयोग किया जाता है। गिनी गुणांक का मान 0 से 1 के मध्य होता है।

किसी भी समाज में आय की असमानता अनेकों कारणों से होती है इनमें सम्पत्ति का असमान वितरण, शिक्षा–प्रशिक्षण एवं अवसरों की कमी, असन्तुलित क्षेत्रीय विकास, आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण आदि प्रमुख हैं। उपरोक्त कारणों से होने वाली असमानता से समाज को अनेकों समस्यायें वर्ग संघर्ष, साधनों का अपव्यय, उत्पादन शक्ति में कमी आदि का सामना करना पड़ता है। आय के पुनर्वितरण के द्वारा आय की असमानताओं में कमी लायी जा सकती है। यद्यपि आय का पुनर्वितरण करना आसान नहीं है, परन्तु वर्तमान में विभिन्न देशों की सरकारों ने इस दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं जिससे आय का न्यायोचित वितरण किया जा सके।

20.8 उपयोगी शब्दावली

- आय की असमानता – समानता का अभाव
- आय का पुनर्वितरण – आय का उचित वितरण
- लारेन्ज वक्र – आय की असमानता को मापने का रेखा चित्रीय मापन
- गिनी गुणांक विधि – आय की असमानता की संख्यात्मक माप
- प्रगतिशील कर – आय में वृद्धि होने के साथ कर की दर में वृद्धि
- वर्ग संघर्ष – धनी एवं निर्धन के मध्य अशांति
- व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रणाली – ऐसे सभी साधन जिन पर व्यक्ति का निजी अधिकार हो
- असन्तुलित क्षेत्रीय विकास – क्षेत्रीय असन्तुलन

- शीर्ष आय अर्जक वर्ग – ऐसा वर्ग जिनकी राष्ट्रीय आय में सर्वाधिक हिस्सेदारी हो
- संचयी प्रतिशत वक्र – लारेन्ज वक्र
- मुद्रास्फीति – वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि, मुद्रा के मूल्य में कमी
- आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण – आर्थिक शक्ति का कुछ हाथों में आ जाना

20.9 बोध प्रश्नो के उत्तर

क 4 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) सही

ख 5 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत

ग 3 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत

घ 2 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत

ङ 4 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही

20.10 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न–1 आय की असमानता से क्या तात्पर्य है? आय के असमान वितरण के क्या कारण हैं?

प्रश्न–2 आय के असमान वितरण को दूर करने के लिये क्या उपाय किये जा सकते हैं? बताइये।

प्रश्न–3 आय के असमान वितरण की माप किस प्रकार करते हैं, लारेन्ज वक्र विधि के आधार पर समझाइये।

प्रश्न–4 पिछले कुछ वर्षों के दौरान विभिन्न देशों में आय की असमान प्रवृत्तियों को आंकड़ों के आधार पर समझाइये।

प्रश्न–5 ''भारत में असमानतायें कम होने के स्थान पर बढ़ी है।'' आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।

कुछ उपयोगी पुस्तके

- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त, व्यष्टिपरक आर्थिक विश्लेषण (नई दिल्ली, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0 2008)
- ❖ एस0 के0 मिश्रः आर्थिक प्रणालिया एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र(प्रगति पब्लिकेशन, दिल्ली 1988)

- ❖ प्रो0 एस0 एन0 लालः अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, व्यष्टि अर्थशास्त्र (इलाहाबाद, शिव पब्लिकेशन हाउस)
- ❖ डा0 एच0एल0 आहूजाः व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण (आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन)
- ❖ एस0सी0 बरलाः उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र (नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)
- ❖ लक्ष्मी नारायण नाथूरामकाः व्यष्टि अर्थशास्त्र (मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन 1988)
- ❖ पी0ए0 सैम्युलसनः अर्थशास्त्र दसवां संस्करण (दिल्ली, कैपिटल बुक हाउस 1982)
- ❖ डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए0 हालमैनः मूल्य सिद्धान्त एवं उसके उपयोग (चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)
- ❖ एन0सी0आर0टी0 व्यष्टि अर्थशास्त्र एक परिचय कक्षा 12 के लिए अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक, फरवरी 2014.

****

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी